मध्ययुगीन सूफी और संत साहित्य

(एक तुलनात्मक अध्ययन)

डॉ० (मुक्तेश्वर) तिवारी

"मध्य-युगीन सूफी और संत साहित्य

प्रकाशक : सरस्वती प्रकाशन मन्दिर
६६, नया बैरहना, इलाहाबाद-२११००३
लेखक : डॉ० मुक्तेश्वर तिवारी 'बेसुध'
एम० ए०, एम० कॉम, पी-एच० डी०
मुद्रक : वेस्टर्न प्रिन्टर्स, कीडगंज, इलाहाबाद-३
संस्करण : प्रथम; १६८०
मूल्य : साठ रुपये मात्र (छात्र संस्करण)
पचहत्तर रुपये (पुस्तकालय संस्करण)

MADHYA YUGEEN SUFI AUR SANT SAHITYA

सन्त साहित्य मर्मज्ञ

स्व० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी

को

पुण्य-स्मृति में

सादर समर्पित !

प्राक्कथन

'मध्ययुगीन सूफी और संत साहित्य' श्री काशी विद्यापीठ के पी-एच० डी० की उपाधि हेतु हिन्दी का प्रथम स्वीकृत शोध-प्रबन्ध (१९७० ई०) "सूफी अध्यात्म-दर्शन का मध्यकालीन हिन्दी संत कवियों पर प्रभाव" का प्रकाशित रूप है जिसमें 'मध्ययुगीन हिन्दी सूफी और सन्त साहित्य, का एक सम्यक् संश्लिष्ट तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ कुल ग्यारह अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में 'मध्ययुगीन हिन्दी के सूफी और सन्त साहित्य' से सम्बन्धित पुरानी मान्यताओं एवं उपलब्धियों का दिग्दर्शन कराते हुये, नयी संभावनाओं की विवेचना की गई है। प्रस्तावना के रूप में यह तर्क-सगत विवेचन विषय की स्थापना में सहायक होता है।

द्वितीय अध्याय में काल-निर्धारण के साथ-साथ मध्ययुगीन सिद्धान्त और साधना की कुछ मोटी-मोटी बातों का उल्लेख है जिसमे ज्ञान, योग, भक्ति और प्रेम-मार्ग के सैद्धान्तिक स्वरूप पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डाला गया है। तीसरे अध्याय में सूफी मत और उसके आध्यात्मिक स्वरूप पर विचार किया गया है जिसमें सूफी मत के अभ्युदय और उसके विकास का एक संक्षिप्त इतिहास देते हुये भारत मे उसके प्रसार और प्रभाव को स्पष्ट किया गया है।

ग्रन्थ का चतुर्थ अध्याय 'मध्ययुगीन हिन्दी सूफी साहित्य' का एक संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत करता है जिसमें जायसी के पूर्ववर्ती सूफी कवि मौलाना दाऊद कुतुबन, मंझन आदि से प्रारम्भ कर १७वीं शती के अन्त तक के सूफी कवियों की रचनाओं का तो उल्लेख किया ही गया है, इसके साथ ही ग्रन्थ में दक्खिनी हिन्दी के भी सूफी साहित्य का एक विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। सूफी साहित्य का यह अध्ययन तीन श्रेणियों में विभक्त है :—(क) फुटकर सूफी काव्य, (ख) सूफी प्रेमाख्यान, (ग) सूफी तत्व प्रभावित असूफी प्रेमाख्यान।

पाँचवें अध्याय में 'मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक पक्ष' का विवेचन है तथा छठें अध्याय में 'मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवि और उनका काव्य' विषय का परिचयात्मक विवरण दिया गया है जिसमें [illegible] के पूर्ववर्ती नामदेव, रामानन्द आदि से लेकर रज्जब, दादूदयाल और रैदास [illegible]

सिक्ख गुरुओं आदि सहित समकालीन एवं परवर्ती सन्तों और उनकी रचनाओं के अध्ययन का समावेश है।

मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियों की अपनी विशेषताओं का उल्लेख सातवें अध्याय में विस्तार से किया गया है। आठवें, नवें और दसवें अध्याय में क्रमशः सिद्धान्त-साधना तथा अभिव्यक्ति एवं रचना-शिल्प की दृष्टि से सूफी और सन्त साहित्य का पृथक्-पृथक् अनुशीलन किया गया है। अन्तिम ग्यारहवें अध्याय में 'उपसंहार' के अन्तर्गत 'हिन्दी सन्त साहित्य पर सूफी साहित्य' के पड़े हुये प्रभावों का विवरण है। विषय की सीमित परिधि के अन्तर्गत विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालने के लिये तर्क एवं प्रमाणों का पुनरुल्लेख मेरी विवशता थी। ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट के रूप में सहायक ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं की एक वृहद् तालिका भी पाठकों की सुविधा के लिये दे दी गयी है।

आज के युग में कोई अनुसंधानकर्त्ता शायद ही सब कुछ अपना दे पाता हो। मेरे साथ भी ठीक यही हुआ है। मैंने भी पर्याप्त तथ्यों को पूर्ववर्ती अध्ययनों से ग्रहण किया है इसे स्वीकारने में मुझे रंचमात्र भी झिझक नहीं है फिर भी तथ्य के विवेचन में मेरी मौलिक दृष्टि रही है। संभव है मेरे कुछ तर्कों से विद्वान् समीक्षक सहमत न हों फिर भी स्वतन्त्र चिन्तन की अभिव्यक्ति की छूट तो हमें मिलनी ही चाहिये।

प्रबन्ध-लेखन एवं प्रकाशन के लगभग एक दशक के लम्बे अन्तराल में इस विषय पर बहुत से कार्य हुये हैं जिनका यथा-संभव उल्लेख ग्रन्थ में करने का प्रयास अवश्य किया गया, किन्तु फिर भी बहुत चाहते हुये भी अभी बहुत से कार्य अनुल्लिखित ही हैं। यह लेखक की अपनी विवशता और अल्पज्ञता है। प्रूफ सम्बन्धी अशुद्धियों का दोषारोपण भी मैं अपने ही सिर लेता हूँ क्योंकि प्रकाशक से बहुत दूरस्थ हूँ।

यद्यपि ग्रंथ का प्रणयन शोध परम्परानुगत ही हुआ है किन्तु सम्बन्ध विषय का प्रतिपादन इतनी स्पष्टता एवं सरलता से किया गया है कि मुझे पूर्ण विश्वास है—ग्रंथ मध्ययुगीन हिन्दी सूफी और संत साहित्य के अध्येताओं के लिये निश्चय ही उपयोगी सिद्ध होगा।

प्रस्तुत प्रबंध काशी विद्यापीठ के हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ० केशव प्रसाद सिंह के निर्देशन में पूरा हुआ था जिसके लिये सन्त साहित्य मर्मज्ञ आचार्य प्रवर स्व० पं० परशुराम चतुर्वेदी के स्नेह-सिक्त सान्निध्य लाभ से विषय से सम्बद्ध

दुर्लभ सामग्रियों की उपलब्धि वरदान ही सिद्ध हुई थी। ग्रंथ के प्रणयन में सर्वश्री पं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय जैसे शुभेच्छुओं का अनुग्रह न हुआ होता तो इस कार्य की पूर्णता संदिग्ध थी। स्व० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० देवेन्द्र नाथ शर्मा ने प्रबंध का परीक्षण कार्य किया था और जो आशीर्वाद दिया है उससे मेरा उत्साह वर्द्धन हुआ है। आज श्रद्धेय गुरुजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुये श्रद्धावनत हूँ। इसके साथ ही इस कार्य मे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जिन विद्वानों और उनकी कृतियों से मुझे सहायता मिली है उनके प्रति भी आभार प्रदर्शन करना मेरा कर्त्तव्य होता है। पुस्तक के प्रकाशक बंधुवर श्री वी० एन० भट्ट को जिन्होंने कागज की इस महंगी में ग्रंथ के प्रकाशन के प्रति उदारता एवं दिलचस्पी दिखलाई धन्यवाद देना नही भूल सकता। श्री अभय नारायण चौबे ने पाण्डुलिपि के टंकन आदि मे जो सहयोग दिया उसके लिये उन्हें आभार प्रदर्शित क्या करूँ? वे तो अपने ही हैं।

संभावित न्यूनताओं के रहते हुये भी ग्रंथ विज्ञ पाठकों को यदि थोड़ा भी संतोष दे पाया तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगा। धन्यवाद...... ।

चित बड़ा गाव (बलिया)
बसन्त पंचमी स० २०३६ वि०
(२२ जनवरी, १९८०)

—मुक्तेश्वर तिवारी

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

अध्याय १

विषय-प्रवेश : पुरानी उपलब्धियाँ और नयी स्थापनायें

भारतीय संस्कृति एवं अध्यात्म-दर्शन के सम्यक् विवेचन के लिये मध्यकालीन हिन्दी संत साहित्य और उसकी साधना अत्यंत ही महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती है। सिद्धों, नाथों, सूफियो और संत-भक्तो की सम्मिलित विचारधाराओ का निर्माण इसी काल में हुआ है। असंख्य ज्ञात अथवा अज्ञात आध्यात्मिक चिन्तन-धाराओ को अपने अंचल में समेटती हुई पावन सलिला भागीरथी की भाँति सत साहित्य की साधना धारा अपने सशक्त रूप में प्रवाहित दिखाई पड़ती है। इसके सारग्राही स्वभाव ने समस्त आध्यात्मिक विचारधाराओ के सार-तत्व को अपने में इस प्रकार आत्मसात् कर लिया है कि वे उसके अंग से प्रतीत होते है और उन्हे उससे पृथक् कर पाना अत्यन्त ही कठिन है। मध्यकालीन आध्यात्मिक चिन्तन धाराओ मे सगुणोपासना और निर्गुणोपासना की दो प्रमुख पद्धतियो के नाम विशेष उल्लेखनीय है। सगुणोपासको को 'भक्त' और निर्गुणोपासको को 'संत' नाम से अभिहित किया गया है। सगुणोपासना जहाँ वैष्णव, एव भागवत धर्म की देन है, निर्गुणोपासना, सगुणोपासना से ही उद्भूत किन्तु उससे ऊपर उठी हुई साधना है। सगुणोपासना में जहाँ केवल भक्ति-तत्व की प्रधानता है, निर्गुणोपासना मे भक्ति, ज्ञान तथा प्रेम तीनो की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। इसकी सारग्राही प्रवृत्ति ने तत्कालीन सभी धर्म एवं सम्प्रदायों के सार तत्वो को ग्रहण करने की चेष्ठा की है। भक्ति तत्व को 'निगुनिया' संतों ने सगुणोपासकों से लिया है। ज्ञान तत्व को उन्होने वेदो और उपनिषदों से न लेकर सतसंग और गुरु से प्राप्त किया है। शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा इन संतों ने अनुभूत ज्ञान को ही विशेष प्रश्रय दिया है। जहाँ तक प्रेम तत्व का सम्बन्ध है वह तत्कालीन सूफी साधको से ग्रहण किया गया है जो उस समय भारत में मुसलमानी आक्रमण के पश्चात् धार्मिक कटुता को मिटा कर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये एक स्तुत्य प्रयास था। संतो के उदारवादी धार्मिक दृष्टिकोण मे मानवीय प्रेम का संदेश था। विदेशी परिवेश में होने पर भी इसकी आत्मा बिल्कुल ही भारतीय थी। संकीर्णता की शृंखलाओं को तोड़ स्वच्छन्द विचरण करने वाले भारतीय संतों को सूफी साधकों में अपनत्व की भावना के दर्शन हुये हैं। वे एक-दूसरे के सम्पर्क में

आये। परिणामत: हिन्दी साहित्य में निर्गुणोपासना की दो धारायें एक इस्लामी दर्शन से प्रभावित होकर और दूसरी भारतीय दर्शन से प्रभावित होकर आपस में मिल गईं। पहली धारा को प्रेममार्गी और दूसरी को ज्ञानमार्गी नाम दिया गया है।

"हिन्दी साहित्य की प्रेममार्गी धारा सूफी अध्यात्म-दर्शन से प्रभावित होने के कारण 'प्रेम' को प्रधानता देती है। दाऊद, कुतुबन, जायसी, मंझन, उसमान, शेखनबी आदि इसके प्रमुख कवि है।" दूसरी ओर अनुभूत ज्ञान को भारतीय ज्ञानमार्गी धारा ने महत्व दिया है। इन लोगों ने सगुणोपासकों की वैधी भक्ति का बहिष्कार किया किन्तु मधुरा भक्ति को ग्रहण किया। कुछ लोगों को यह शंका होती है कि संतों ने जो प्रेमा भक्ति अपनायी है वह वैष्णवी भक्ति अथवा भागवत सम्प्रदाय से ही ली गई है किन्तु वास्तविकता यह है कि हमारे हिन्दी के प्राय: संत कवियों को यह प्रेमा भक्ति सीधे सूफियों से ही मिली है। कारण इनका सम्बन्ध वैष्णव अथवा भागवत सम्प्रदायों की अपेक्षा सूफियो से अधिक घनिष्ठ था। साथ ही अनपढ होने के कारण ये शास्त्रीय अध्ययन मे भी सक्षम नही थे। वैष्णव और भागवत सम्प्रदाय मे प्राय: वैधी भक्ति का निरूपण किया गया है जिसको संतों ने बाह्याडबर मान कर परित्याग कर दिया है। अत: संतों मे कान्ता भक्ति का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है वह निस्संदेह सूफियो की ही देन जान पड़ता है। नामदेव से लेकर कबीर, दादू, नानक और मलूक दास आदि तक सभी संत इस धारा का प्रतिनिधित्व करते है।

अब तक हिन्दी साहित्य की इन प्रेममार्गी और ज्ञानमार्गी दोनो शाखाओं का पृथक्-पृथक् अध्ययन तो किया गया है किन्तु दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है और प्रेममार्गी शाखा का ज्ञानमार्गी शाखा पर कहाँ तक आध्यात्मिक प्रभाव पडा है ? इस प्रश्न पर अभी तक विचार नहीं हो पाया है। 'सूफी अध्यात्म-दर्शन का मध्यकालीन हिन्दी संत कवियो पर प्रभाव' नामक इस प्रबन्ध मे इसी समस्या पर विचार प्रस्तुत किया जायेगा।

मध्यकाल का निर्धारण—(सं० १३७५ वि०—१७०० वि०)

प्रस्तुत प्रबन्ध मे केवल मध्यकालीन हिन्दी संत कवियों पर ही सूफी अध्यात्म-दर्शन के पडे हुये प्रभावों पर विचार करना है। अब प्रश्न यह है कि इस मध्यकाल की सीमा कहाँ से कहाँ तक मानी जाय। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने मध्यकाल की सीमा का निर्धारण अपने-अपने विचारों से पृथक्-पृथक् किये हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐतिहासिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक

परिस्थितियों के अनुशीलन एवं विभिन्न रुचियों के रूप में संचारित व्यवस्था के अनुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास को चार कालों में विभक्त किया है—

(१) आदि काल (वीरगाथा काल—सं० १०५० से १३७५)

(२) पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल— सं० १३७५ से १७००)

(३) उत्तर मध्यकाल (रीति काल—सं० १७०० से १९००)

(४) आधुनिक काल (गद्य काल— सं० १९०० से १९८४)[१]

डॉ० श्यामसुन्दर दास ने शुक्ल जी के काल-विभाजन मे थोड़े परिवर्तन के साथ वीरगाथा काल को १०५० वि० से १४०० वि० तक तथा भक्ति काल को १४०० वि० से १७०० वि० तक माना है। शेष कालों के सम्बन्ध में वे शुक्ल जी से बिल्कुल सहमत है।[२] जहाँ तक भक्ति काल का सम्बन्ध है डा० रामकुमार वर्मा, शुक्ल जी की ही राय को मानते है।[३] इस तरह हिन्दी साहित्य का मध्यकाल लगभग सं० १३७५ से १९०० वि० तक का माना जाना चाहिये। किन्तु इस मध्यकाल का उत्तराश (सं० १७०० से १९०० वि०) जिसे रीति काल कहा गया है साहित्य सर्जना की दृष्टि से पूर्व मध्यकाल (सं० १३७५ वि० से १७०० वि०) तक के संत साहित्य की मौलिक मान्यताओ से बिलकुल ही मेल नही खाता। हमारे आलोच्य काल का सम्बन्ध केवल भक्ति काल (पूर्व मध्य काल) से ही है जिनका समय हम काल-निर्धारण के विवाद में विशेष न पडकर सं० १३७५ से १७०० वि० तक ही मानना उचित समझते है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने हिन्दी संत साहित्य की परम्परा जयदेव से प्रारम्भ कर स्वामी रामतीर्थ तक निर्धारित की है जिसमें साधना, त्रिलोचन, नामदेव, रामानन्द, कबीर, रैदास, नानक, दादूदयाल, रज्जब, सुन्दरदास, हरिदास निरंजनी, तुलसीदास, सिंगा जी, मलूक दास आदि प्रमुख संत आते है। कबीर से पूर्व नामदेव और रामानन्द आदि को पूर्णरूपेण संत भले ही न कहा जाय किन्तु इन्हें पथ प्रदर्शक संत तो मानना ही पड़ेगा। इस तरह संत साहित्य का प्रारम्भ नामदेव (जीवन काल १३२७ से १४०५ वि०) से ही मानना उचित होगा क्योंकि मूल रूप से नामदेव ही संत साहित्य के प्रेरक तत्व रहे हैं जिन्होंने सं० १३३७ वि० मे उत्तरी भारत में तीर्थाटन करते समय संत परम्परा का श्रीगणेश किया था। इस तरह यदि हम अपने आलोच्य काल का प्रारम्भ संत नामदेव के उत्तरी भारत में आने के समय (सं० १३७७ वि०) के आस-पास का मानें तो मध्यकाल का प्रारम्भ सं० १३७५ वि० को मानना उचित ही होगा।

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, ८वां संस्करण, पृष्ठ १।

२. हिन्दी साहित्य —डा० श्यामसुन्दर दास चतुर्थ, संस्करण स० २००३, पृष्ठ १८।

३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ २१५।

आलोच्य काल के प्रारम्भिक काल का निर्धारण कर लेने के पश्चात् अन्तिम सीमा (सं० १७०० वि०) के औचित्य पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। जहाँ तक संत साहित्य की मौलिक मान्यताओं का प्रश्न है मलूक दास (सं० १७०० वि०) तक संत साधना में किसी प्रकार का विकार दृष्टिगोचर नहीं होता। संत मलूक दास के पश्चात् स्वाधीन चिन्तन की परम्परा एक प्रकार से समाप्त होती दिखाई देती है। अब तक वे 'आँखिन देखी' कहते थे अब वे 'कागद लेखी' कहने लगे जिसका संत मत से कट्टर विरोध है। अतः इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर यदि विचार किया जाय तो शुद्ध संत साहित्य के सर्जना का समय मलूक दास (सं० १७०० वि० के कुछ आगे तक) ही ठहरता है।

आलोच्य प्रबन्ध में हमें संत साहित्य के साथ-साथ सूफी साहित्य के आध्यात्मिक पक्ष का अध्ययन करना होगा। (हमने मध्यकाल का जो समय निर्धारित किया है उसके भीतर भारत में सूफी संतों का आगमन हो चुका था और उनकी हिन्दी रचनायें भी जन-साधारण के बीच आ चुकी थी। इस तरह सूफी मत के साथ संत साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में इस काल-विभाजन से कोई कठिनाई प्रस्तुत नही होगी। अतः सब तरह से विचार करने के पश्चात् हम भी पं० रामचन्द्र शुक्ल के पूर्व मध्यकाल (भक्ति काल सं० १३७५ से १७०० वि०) तक को ही मध्यकाल की सीमा मान कर चलेगे।)

उपलब्ध सामग्री—प्रस्तुत प्रबन्ध मे हमे मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य एवं संत साहित्य का आध्यात्मिक दृष्टिकोण से तुलनात्मक विवेचन करना होगा। इस सम्बन्ध मे जहाँ तक उपलब्ध सामग्री का प्रश्न है सूफी और संत दोनों प्रकार के काव्यों पर पृथक्-पृथक् प्रचुर मात्रा में विवेचन किया गया है जिस पर हम संक्षेप में आगे विचार करेंगे।

(क) मध्यकालीन हिन्दी सूफी काव्य सम्बन्धी उपलब्ध सामग्रियों का विवेचन

जहाँ तक हमे मध्यकालीन हिन्दी सूफी काव्य सम्बन्धी सामग्री उपलब्ध हुई है उनमे मुख्य रूप से दो प्रकार की रचनायें हैं (१) फुटकर और (२) प्रेमाख्यान काव्य। अब तक सूफी काव्य पर जो विचार प्रस्तुत किये जा चुके हैं वे केवल प्रेमाख्यानो से ही सम्बन्धित है। विद्वान् आलोचकों ने सूफियों की फुटकर रचनाओं की ओर ध्यान नही दिया है। साथ ही साथ उत्तरी भारत की अवधी में लिखित सूफी प्रेमाख्यानों तक ही सूफी काव्य की सीमा निर्धारित रखी है। दक्खिनी हिन्दी मे लिखित सूफी काव्यो पर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया गया है जो वास्तव में हिन्दी का ही एक अंग है। हम आगे इनसे सम्बन्धित उपलब्ध सामग्रियों की भी विवेचना करेंगे।

श्री चन्द्रबली पाण्डेय—सूफीमत के सिद्धान्त और साधना की जानकारी हमें हिन्दी में सर्वप्रथम आचार्य चन्द्रबली पांडेय की 'तसव्वुफ अथवा सूफीमत' नामक पुस्तक से मिलती है। इस ग्रंथ मे सूफीमत का उद्भव, विकास, परिपाक, आस्था, साधन, प्रतीक, भावना, अध्यात्म, साहित्य, ह्रास और भविष्य आदि विषयो पर बड़े ही विस्तार से विचार किया गया है। पुस्तक की परिशिष्ट मे तसव्वुफ का प्रभाव तथा तसव्वुफ पर भारत का प्रभाव विषयों पर भी प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। किन्तु पांडेय जी के इस अध्ययन मे अरबी और ईरानी सूफीमत पर जितना विस्तार से प्रकाश डाला गया है उतना भारतीय सूफीमत पर नहीं। यही कारण है कि पांडेय जी का यह अध्ययन एकांगी-सा प्रतीत होता है। विचारों में संकीर्णता की गंध आती है। हमारे विचार से भारतीय सूफीमत अत्यन्त ही उदार और समन्वयवादी दृष्टिकोण रखता है। इसे किसी सम्प्रदाय विशेष मे ही सम्बन्धित रखना इसके प्रति अन्याय होगा। पांडेय जी के सूफीमत से सम्बन्धित इस अध्ययन मे यह कमी खटकती है। 'तसव्वुफ अथवा सूफीमत' के अतिरिक्त पांडेय जी ने नूर मुहम्मद कृत 'अनुराग बांसुरी' की भूमिका मे भी सूफी काव्य की विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका अथवा अन्यत्र पांडेय जी के जो निबंध जायसी तथा अन्य सूफी कवियों के सम्बन्ध में प्रकाशित हुये है वे भी अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध करते है।

आचार्य पंडित रामचन्द्र शुक्ल--यद्यपि पं० सुधाकर द्विवेदी और जार्ज ग्रियर्सन ने सर्वप्रथम सूफी प्रेमाख्यान जायसी के प्रारम्भिक खंडों को प्रस्तुत किया किन्तु हिन्दी जगत् को पद्मावत का पूर्ण एवं प्रामाणिक संस्करण प्रस्तुत करने का श्रेय आचार्य प० रामचन्द्र शुक्ल को ही है। शुक्ल जी ने जायसी ग्रंथावली की भूमिका मे पद्मावत के ऐतिहासिक आधार, प्रेम पद्धति, वस्तु वर्णन आदि के साथ-साथ सूफीमत और सिद्धान्त पर भी विचार प्रस्तुत किया है जो जिज्ञासु पाठको के लिये अत्यन्त ही उपयोगी सामग्री प्रदान करता है। शुक्ल जी के इस अध्ययन में भारतीय अद्वैतवाद, ब्रह्मवाद एवं एकेश्वरवाद का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण विवेचन हुआ है। इसके अतिरिक्त शुक्ल जी ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रेममार्गी शाखा के अन्तर्गत सूफी कवि कुतुबन, जायसी, मंझन, उसमान, शेखनबी एवं नूर मुहम्मद का जो आलोचनात्मक परिचय दिया है उससे भी सूफी काव्य परम्परा पर काफी प्रकाश पड़ता है। किन्तु शुक्ल जी का यह अध्ययन मौलिकता की दृष्टि से भले ही महत्वपूर्ण माना जाय, शोध की दृष्टि से अब बहुत पीछे पड़ गया है। शुक्ल जी ने सूफी काव्य परम्परा की समाप्ति नूर मुहम्मद से ही कर दी है जबकि नवीनतम शोधों के आधार पर यह परम्परा बीसवीं शती के प्रथम दो दशकों तक

में भी मिलती जा रही है। इसी प्रकार कुतुबन से भी पूर्व सूफी प्रेमाख्यानकार दाऊद और उसकी रचना 'चंदायन' का भी पूर्ण परिचय हिन्दी जगत् को प्राप्त हो चुका है।

डॉ० रमा चौधरी—सूफी अध्यात्म-दर्शन की सामान्य जानकारी के लिये 'प्राच्य वाणी मंदिर, कलकत्ता' से प्रकाशित डा० रमा चौधरी का अंग्रेजी मे लिखा प्रबन्ध 'सूफिज्म एण्ड वेदान्त' भी महत्वपूर्ण तथ्यो को प्रकाश मे लाता है। प्रकाशकीय योजना के अन्तर्गत यह प्रबन्ध तीन खंडों मे प्रकाशित होना था किन्तु हमारे सामने इसके प्रथम दो खण्ड ही आ सके है। पुस्तक के प्रथम खण्ड मे 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति और परिभाषा, सूफीमत का इतिहास, तथा इसके सिद्धान्त और साधना सम्बन्धी विविध तथ्यों पर विचार व्यक्त किये गये है। द्वितीय खण्ड मे सूफी साधिका राबिया से लेकर जामी तक चौदह फारसी सूफियों के आलोचनात्मक जीवन परिचय दिये गये हैं। पुस्तक का तृतीय खण्ड जो हमारे प्रबन्ध के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण था और जिनमे सूफीमत का भारतीय वेदान्त से तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया था। उसके प्रकाश मे न आने से डा० चौधरी के इस प्रबन्ध के महत्व को ही कम कर देता है। फिर भी डा० चौधरी ने पुस्तक के दो खण्डों मे जिन तथ्यों को प्रकट किया है उनसे सूफीमत से सम्बन्धित अनेक मौलिक जानकारी प्राप्त हो जाती है।

डॉ० रामपूजन तिवारी—आलोच्य प्रबन्ध की उपयोगिता की दृष्टि से श्री रामपूजन तिवारी की पुस्तक 'सूफीमत-साधना और साहित्य' का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। इस पुस्तक में इस्लाम धर्म के साथ-साथ सूफीमत के आविर्भाव, उसके क्रमिक विकास, प्रारम्भिक काल के सूफी साधक, सूफी सिद्धान्त और साधना, भारतवर्ष मे सूफीमत का प्रवेश तथा भारतीय परिपार्श्व मे सूफीमत, भारतवर्ष के सूफी सम्प्रदाय, सूफी काव्य की विशेषता और सूफी कवि आदि विषयो पर कुल १७ अध्यायों मे बड़े ही विस्तार से बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत की गई है। श्री चन्द्रबली पाण्डेय की भाँति इस पुस्तक में भी भारतीय सूफियो और उनकी रचनाओं पर प्रकाश नही डाला गया है। जहाँ तक सूफीमत के सिद्धान्त और साधना सम्बन्धी जानकारी का प्रश्न है श्री चन्द्रबली पांडेय की 'तसव्वुफ अथवा सूफीमत' के पश्चात् यह दूसरा महत्वपूर्ण अध्ययन कहा जा सकता है। 'सूफी काव्य की भूमिका' जो तिवारी की एक दूसरी पुस्तक भी है जो पूर्व पुस्तक के पढने के पश्चात् विशेष महत्वपूर्ण नही रह जाती यद्यपि इसके भी कुछ अंश निश्चय ही उपयोगी हैं।

आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी—आचार्य पं० परशुराम चतुर्वेदी ने अपनी 'मध्य-

युगीन प्रेम साधना' में जायसी की प्रेम साधना के साथ-साथ अन्य मध्ययुगीन प्रेम साधनाओं पर बड़े ही विस्तार से प्रकाश डाला है। इनके 'सूफी काव्य संग्रह' में सूफी कवियों की कुछ रचनाओं के संग्रहों मे सूफी कवियों की कुछ रचनाओं के संग्रहों के साथ-साथ जो विस्तृत भूमिकायें दी गई हैं उनमें अरब, ईरान और भारत के सूफीमत पर बड़े ही सुन्दर ढंग से आलोचनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस पुस्तक के आधार पर हमारा ध्यान हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानो तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि सूफियों की फुटकर रचनाओं की ओर भी चला जाता है। इसके अतिरिक्त चतुर्वेदी जी ने 'भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा' में सूफी प्रेमाख्यानों के अतिरिक्त असूफी तथा अन्य भारतीय भाषाओं मे उपलब्ध प्रेमाख्यानो का अध्ययन प्रस्तुत करके शोधकर्त्ताओ के लिये एक नयी दिशा प्रदान की है। 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' मे प्रकाशित 'दक्खिनी सूफी की प्रेमगाथाएँ' शीर्षक निबंध से दक्खिनी हिन्दी के सूफी कवियो पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। चतुर्वेदी जी की एक अन्य रचना 'हिन्दी काव्य धारा मे प्रेम प्रवाह' मे सूफी कवि और उनके काव्यों पर महत्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' खण्ड ४ का सम्पादन कर चतुर्वेदी जी ने उसमे भी सूफीमत से सम्बन्धित महत्वपूर्ण तथ्यो को निरूपित किया है। सत मत पर पड़े हुये सूफियो के प्रभावों की ओर भी आचार्य जी ने सकेत करने की जो चेष्टा की है वह अत्यन्त ही संक्षिप्त होने पर भी विशेष महत्वपूर्ण है। सं० २०२४ के 'नागरी-प्रचारणी पत्रिका-श्रद्धाजलि अक' में प्रकाशित चतुर्वेदी जी के निबन्ध कुतुबन कृत मृगावती के तीन संरकरण में पाठ सम्बन्धी विशेषताओ पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। चतुर्वेदी जी ने 'हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान' नामक पुस्तक में उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत के प्रेमाख्यानो का पृथक्-पृथक् विवेचन प्रस्तुत कर उनके पारस्परिक तुलना करने की चेष्टा की है जो जिज्ञासु पाठको के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।

श्री पं० राहुल सांकृत्यायन—हिन्दी साहित्य के विकास मे दक्खिनी हिन्दी और उर्दू के महत्व को स्वीकार करते हुये पंडित राहुल सांकृत्यायन ने दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा नामक जिस पुस्तक का सम्पादन किया है वह दक्खिनी हिन्दी के सूफी कवियो और उनकी काव्यों की जानकारी के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। यद्यपि लेखक ने पुस्तक के प्रारम्भ में कोई विवेचनात्मक भूमिका प्रस्तुत नही की है फिर भी कवियो की रचनाओं के साथ-साथ जो आलोचनात्मक संक्षिप्त जीवन-परिचय दिया है उससे दक्खिनी हिन्दी के सूफी कवियों के सम्बन्ध मे बहुत कुछ महत्वपूर्ण तथ्य सामने आ जाते हैं। लेखक ने सूफी काव्यो के महत्वपूर्ण अंशो को नागरी

लिपि में प्रस्तुत कर उर्दू लिपि के न जानने वालों के लिये उपयोगी सामग्री प्रदान की है। फिर भी शोध की दृष्टि से यह सामग्री अपर्याप्त है। यह ग्रन्थ शोध छात्रों के लिये एक संकेतात्मक दिशा प्रदान करता है जिसके आधार पर मूल ग्रन्थो को गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने की आवश्यकता है।

डॉ० विमल कुमार जैन—'सूफीमत और हिन्दी साहित्य' नामक प्रबन्ध मे डा० विमल कुमार जैन ने सूफीमत सम्बन्धी जो विवेचना प्रस्तुत की है उसमें सूफी साधना और सिद्धान्त निरूपण के साथ साथ हिन्दी सूफी काव्यो पर भी काफी प्रकाश पड़ता है। फिर भी डा० जैन का यह अध्ययन आलोच्य प्रबन्ध की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हुये भी सूफी साहित्य सम्बन्धी नवीनतम तथ्यो को प्रस्तुत करने में समर्थ नही कहा जा सकता।

डॉ० विमला व्याघ्रे—श्रीमती डॉ० विमला व्याघ्रे के प्रबंध 'दखिनी के सूफी लेखक' मे दक्खिनी हिन्दी के सूफी लेखको के संबंध मे पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है। पुस्तक के द्वितीय अध्याय मे सूफीवाद का अध्ययन करते हुये उसकी साम्प्रदायिक एवं नामकरण संबंधी विशिष्टताओं आदि का जो वर्णन है उसमे भले ही मौलिकता का प्रभाव हो किन्तु तृतीय और चतुर्थ अध्यायों में क्रमशः आदि-कालीन और मध्यकालीन दक्खिनी लखकों की रचनाओं की जो आलोचनात्मक विवेचना की गई है उसके आधार पर हमें प्रस्तुत प्रबन्ध में दक्खिनी के सूफी काव्यकारों के संबंध में चितन्न करने की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हुई है। पुस्तक की परिशिष्ट में सूफी लेखकों की एक वृहद् सूची भी दे दी गई है जो कम उपयोगी नही है।

डॉ० सरला शुक्ल—'जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य' नामक पुस्तक में डॉ० सरला शुक्ल ने सूफीमत के सिद्धान्त और साधना के अतिरिक्त जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य पर अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत किया है जिसमें हस्तलिखित ग्रंथों का अच्छा उपयोग हुआ है। सूफीमत की प्रारंभिक जानकारी के लिये पुस्तक अत्यंत ही उपयोगी है। हिन्दी प्रेमाख्यानों के साथ-साथ फारसी मसनवियों का यदि पुस्तक में उल्लेख कर दिया गया होता तो पाठको को दोनो के तुलनात्मक अध्ययन में पर्याप्त सहायता मिलती!

डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय—सूफी साहित्य के विवेचमात्मक मौलिक अध्ययन मे डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय का विशेष योगदान है। इनकी पुस्तक 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' में सूफी और सूफी प्रेमाख्यानों का प्रेम निरूपण, कथा सगठन, तथा शील निरूपण की दृष्टि से जो तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है उससे सूफी प्रेमाख्यानों के स्वरूप को समझने में काफी सहायता मिलती है। डॉ० पाण्डेय

का अध्ययन अत्यंत ही सारगर्भित और प्रामाणिक तथ्यो से परिपूर्ण है। पुस्तक मे समस्त मूल स्रोतो का मथन करके महत्वपूर्ण निष्कर्षो का प्रतिपादन किया गया है जिससे अध्ययन के लिये एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण मिलता है। डॉ० पाण्डेय ने सम्बन्धित सामग्री के साथ-साथ फारसी और अरबी के मूल ग्रंथो का भी अध्ययन किया है। डॉ० पाण्डेय का दूसरी पुस्तक सूफी काव्य-विमर्श प्रथम पुस्तक की पूरक रूप मे अत्यंत ही उपयोगी है। इस पुस्तक मे सूफी प्रेमाख्यानों के अध्ययन काल मे उठी हुई विभिन्न समस्याओं की विवेचना की गई है। पुस्तक के अंत में सूफीमत और साहित्य से संबधित जो सहायक पुस्तक की सूची दी गई है वह शोध छात्रो के लिए अत्यंत ही उपयोगी है।

डॉ० माता प्रसाद गुप्त—सूफी प्रेमाख्यानों के अध्ययन में डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित 'दाऊदकृत चादायन', 'कुतुबनकृत मृगावती', 'जायसी ग्रथावली' 'मंझनकृत मधुमालती' ग्रन्थों के साथ-साथ जो भूमिकाये दी गई है वे अत्यंत ही उपयोगी है। इन सूफी मूल ग्रंथो का सुसंपादन तथा मूल पाठ की वैज्ञानिकता के साथ-साथ साधारण पाठको की जानकारी के लिए जो टीकाएँ दी गई है उनका भी प्रबन्ध प्रणयन मे काफी सहयोग रहा है। डॉ० गुप्त का 'जायसी का प्रेम पंथ', 'लोरकहा तथा मैनासत' आदि सूफी काव्यो से सम्बन्धित निबन्धो मे भी पर्याप्त जानकारी उपलब्ध होती है।

सूफी काव्य सम्बन्धी अन्य कृतियां

उपर्युक्त सामग्रियों के अतिरिक्त 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' में डॉ० रामकुमार वर्मा ने सूफी प्रेम काव्य के अन्तर्गत सूफीमत और काव्य-धारा का परिचय देते हुये जायसी पर विस्तार से अध्ययन प्रस्तुत किया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य की भूमिका मे 'सूफी काव्यधारा' पर अपने विचार व्यक्त किये है और पद्मावत की छंद पद्धति को भारतीय होने का सर्वप्रथम दावा किया है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल द्वारा लिखित पद्मावत की विद्वत्तापूर्ण भूमिका से भी सूफी काव्यो के समझने मे पर्याप्त सहायता मिलती है। डा० पृथ्वी नाथ कमल कुलश्रेष्ठ का 'हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य' प्रेमाख्यान साहित्य का प्रथम-प्रबन्ध है। इस प्रबन्ध में हिन्दी के प्रेमाख्यानो पर प्रकाश डाला गया है। सूफी अध्यात्म-दर्शन सम्बन्धी डा० कमल कुलश्रेष्ठ के विचारो में अधिक स्पष्टता नहीं है। उनके प्रबन्ध में तुलनात्मक अध्ययन का भी अभाव है। डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव ने अपने 'भारतीय प्रेमाख्यान काव्य' में असूफी प्रेमाख्यानों को विशेष रूप से स्थान दिया है। साथ ही सूफी प्रेमाख्यानो की उपेक्षा भी की है किन्तु असूफी प्रेमा-

ख्यानों के परिप्रेक्ष्य में सूफी प्रेमाख्यानों को समझने में इस पुस्तक से काफी सहायता मिल सकती है।

'सूफी महाकवि जायसी' में डॉ० जयदेव कुलश्रेष्ठ ने जायसी की कृतियों के अध्ययन के साथ-साथ अंत में सूफीमत और उसके दर्शन पर संक्षेप में प्रकाश डालने का प्रयास किया है किन्तु उसमें किसी मौलिक तथ्य की उपलब्धि नहीं होती। डॉ० शिव सहाय पाठक की 'मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य' मे जायसी की कृतियों की विद्वत्तापूर्ण विवेचना के साथ-साथ ग्यारहवें अध्याय में सूफीमत तथा बारहवें अध्याय मे प्रेमाख्यान परम्परा का विशद् विवेचन किया गया है। साथ ही साथ जायसी और कबीर के रहस्यवाद की जो तुलनात्मक विवेचना प्रस्तुत की गई है उससे प्रस्तुत निबन्ध के मार्ग निर्धारण में अच्छा संकेत मिलता है।

सूफी मूल ग्रंथों की प्रामाणिकता

सूफी प्रेमाख्यानों के अध्ययन के समय प्रायः देखा जाता है कि एक ही ग्रंथ के कई संस्करण सामने आते हैं जिसमें पाठान्तर की समस्या विकट होती है। फिर भी थोड़े हेरफेर के साथ कथानक मे एकरूपता आ जाती है। हमारे आलोच्य प्रबन्ध का सम्बन्ध पाठ की वैज्ञानिकता से न होकर उसके आध्यात्मिक पक्ष से है। अतः हमने प्रेमाख्यानो के प्राप्त सभी संस्करणों का जहाँ जैसा अवसर आया है बिना किसी भेदभाव के उपयोग करना उचित समझा है। 'दाऊदकृत चंदायन' के दो संस्करण हमारे सामने हैं एक डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त का और दूसरा डॉ० माता प्रसाद गुप्त का जिनमे विद्वान् सम्पादकों ने एक दूसरे के संस्करण को हेय बताने की चेष्टा की है। मैंने इस विवाद से तटस्थ रहकर आवश्यकतानुसार दोनों संस्करणों का उपयोग किया है। इसी तरह कुतुबनकृत मृगावती के तीन संस्करण क्रमशः डॉ० शिवगोपाल मिश्र (१९६३ ई०), डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त (१९६७ ई०), तथा डॉ० माता प्रसाद गुप्त १९६८ ई०) के हमारे सामने हैं। कौन संस्करण उत्कृष्ट है और कौन निकृष्ट इस विवाद में न पड़कर हमने यथासंभव तीनो संस्करणों का उपयोग किया है।[1] यही उपादेयता हमारे लिये मंझनकृत मधुमालती के दोनों संस्करणों (डॉ० शिवगोपाल मिश्र एवं डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित ग्रंथो) की रही है। पाठ की वैज्ञानिकता की दृष्टि से परवर्ती संस्करण पूर्ववर्ती संस्करणों की अपेक्षा अधिक सहायक सिद्ध हुये हैं फिर भी इसका यह तात्पर्य नहीं कि पूर्ववर्ती

---

१. तीनों संस्करणों की विशेष जानकारी के लिये देखिये आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का निबन्ध – नागरी प्रचारिणी पत्रिका-श्रद्धांजलि अंक सं० २०२४ वि० पृष्ठ १४ से ३६ तक।

संस्करण अनुपादेय हो गये हैं। प्राचीनता एवं मौलिकता की दृष्टि से पूर्ववर्ती संस्करणों की कम महत्ता नहीं है।

(ख) मध्यकालीन हिन्दी संत काव्य सम्बन्धी उपलब्धियों का विवेचन

बीसवी शताब्दी के प्रथम दो तीन दशकों तक तो हमारा मध्यकालीन हिन्दी संत साहित्य निश्चय ही उपेक्षित रहा है किन्तु इसके पश्चात् विद्वानो का ध्यान इस उपेक्षित निधि की ओर जो खिचा तो अनेक अनमोल रत्न हिन्दी जगत् को प्राप्त हुये है। भारत के विश्वविद्यालयो मे अब तक लगभग ढाई दर्जन शोध-प्रबन्ध संत-साहित्य पर लिखे जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से लिखे ग्रन्थो की संख्या भी इससे किसी भी तरह कम नही है। अपने प्रबन्ध के प्रणयन मे हमे संत-साहित्य से सम्बन्धित जिन उपलब्धियों को देखने का अवसर मिला है उनका संक्षिप्त विवेचन कर देना यहाँ आवश्यक है।

डॉ॰ पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल—हिन्दी काव्य के निर्गुण सम्प्रदाय पर सर्वप्रथम प्रकाश डालने का श्रेय डॉ॰ पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल को ही है जिन्होंने सर्वप्रथम सन् १९३४ में काशी विश्वविद्यालय से डी॰ लिट्॰ की उपाधि के लिये 'दि निर्गुन स्कूल आफ हिन्दी पोयट्री' नामक प्रबन्ध प्रस्तुत किया जो बाद में अनूदित होकर हिन्दी में 'हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस प्रबन्ध ने निर्गुनिया संतो के प्रति व्याप्त इस धारणा को कि इनका अपना कोई दार्शनिक सिद्धान्त नही है और भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक विषयो से सम्बन्ध रखने वाली इनकी धारणायें अस्पष्ट और क्रमरहित है, 'गलत सिद्ध कर दिया। पुस्तक के प्रणयन मे अनेक हस्तलिखित ग्रंथो की सहायता से प्रबंध की मौलिकता' तथा प्रामाणिकता और भी बढ़ जाती है। डॉ॰ बड़थ्वाल के इस ग्रंथ मे व्यापक शोध के साथ-साथ निर्गुण कवियों की तत्व-चिंतन-धारा एवं काव्य-वैभव का भी अनुसंधान किया गया है। ज्ञात और अज्ञात संतो की परम्परा को शृंखलाबद्ध करके उनका वर्गीकृत क्रमबद्ध अध्ययन इस पुस्तक मे हुआ है। पुस्तक की परिशिष्ट मे संत साहित्य से संबधित पारिभाषिक शब्दावली से संत साहित्य के समझने मे काफी सहायता मिलती है। परिशिष्ट के दूसरे भाग मे 'निर्गुण सम्प्रदाय' सबंधी पुस्तकों की प्रामाणिकता के संबंध में व्यक्त किये गये विचार भी शोध-कर्त्ताओं के लिये अत्यन्त ही उपयोगी है।

जहाँ तक हमारे प्रबंध के लिये डा॰ बड़थ्वाल के इस प्रबंध की उपादेयता का संबंध है हमें निर्गुण सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्त तथा अनुभूति की अभिव्यक्ति की जानकारी प्राप्त करने में भी इस ग्रंथ से सहायता मिली है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी का 'उत्तरी भारत की संत परम्परा' नामक ग्रंथ तो संत साहित्य के अध्ययन के लिये एक कोष से कम

महत्व नहीं रखता। इस ग्रंथ में प्रचलित सभी सम्प्रदायों के [illegible] गये है। चतुर्वेदी जी ने अलग से 'संत काव्य' नामक ग्रंथ में [illegible] रामतीर्थ के समय तक की चुनी हुई रचनाओं का जो संग्रह [illegible] संतो का साहित्यिक परिचय मिलने मे काफी सहायता [illegible] प्रस्तावना मे ही चतुर्वेदी जी ने उल्लेख कर दिया है [illegible] से ही सबधित है।' अतः उसके मत और साहित्य [illegible] है। संतो के साहित्यिक मूल्यांकन के लिए चतुर्वेदी जी का [illegible] है। पुस्तक के प्रारम्भ मे १०६ पृष्ठो की जो भूमिका दी गई है [illegible] के आदर्श, रहस्य, दाम्पत्य भाव, काव्य-सौदर्य, भाषा [illegible] होती है। संत साहित्य सम्बन्धी चतुर्वेदी जी की तीसरी महत्वपूर्ण [illegible] प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित होने वाले 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' चतुर्थ मार्ग का संपादन है जिसका उल्लेख इसके पूर्व भी किया जा चुका है। इस ग्रंथ में चतुर्वेदी जी ने पाँच खण्डो के अन्तर्गत संतमत के क्रमिक-विकास, संत परम्परा, सूफीमत और उसका साहित्य अन्य प्रभावित साहित्य, एवं अंत मे साहित्यिक समीक्षा देकर उसके महत्व को अधिक बढ़ा दिया है।

डॉ० रामखेलावन पाण्डेय—'मध्यकालीन संत साहित्य' में डा० रामखेलावन पाण्डेय ने संत समाज और सूफीमत बाद का अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है किन्तु पाण्डेय जी का यह अध्ययन केवल प्रतीक-विधानों, चिन्तनधाराओ, प्रेम-दर्शन और रहस्य भावनाओं तक ही सीमित रह गया है। विवेचना मे सैद्धान्तिक पक्ष को इतने विस्तार से व्यक्त किया गया है कि मुख्य विषय गौण-सा हो गया है। अतः आलोच्य प्रबंध की उपादेयता की दृष्टि से पाण्डेय जी के इस ग्रंथ से आशा से कम ही सहायता मिल सकी है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—स्वतन्त्र रूप से लिखे गये ग्रंथों में डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का 'कबीर' एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण एवं उपादेय ग्रंथ है। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' में भी द्विवेदी जी ने संत साहित्य सम्बन्धी अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये हैं। द्विवेदी जी के 'कबीर' में भिन्न-भिन्न साधन मार्गों के ऐतिहासिक विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। पुस्तक के अंत में 'कबीर-वाणी' के नाम से जो संग्रह प्रस्तुत किया गया है वह भी प्रस्तुत प्रबंध के प्रणयन मे पर्याप्त सहायक सिद्ध हुआ है।

डॉ० रामकुमार वर्मा—'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' के साथ-साथ डा० रामकुमार वर्मा ने 'कबीर का रहस्यबाद' एवं 'संत कबीर' नामक दो रचनाओं द्वारा संत साहित्य के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्मा जी

के ये ग्रंथ यद्यपि केवल कबीर को ही दृष्टिकोण में रखकर लिखे गये हैं फिर भी कबीर संत परम्परा के प्रतिनिधि कवि होने के कारण उन पर लिखे गये इन ग्रंथो से सम्पूर्ण संत परम्परा पर अच्छी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

डॉ० केशनी प्रसाद चौरसिया--'मध्यकालीन हिन्दी संत-विचार और साधना' नामक ग्रंथ में डा० केशनी प्रसाद चौरसिया ने भारतीय दर्शन और इतिहास की पृष्ठभूमि में मध्यकालीन हिन्दी संतो की विचार और साधनाओ की मीमांसा प्रस्तुत की है। डा० रामकुमार वर्मा के शब्दों में साधना-पद्धति को मनोवैज्ञानिक भाव-भूमि में प्रस्तुत करने का संभवतः यह प्रथम प्रयास है। डा० चौरसिया ने अब तक के हुये प्रायः सभी संत साहित्य संबंधी कार्यों का सांगोपांग विवेचन इस पुस्तक मे प्रस्तुत किया है।

डॉ० रामजी लाल 'सहायक'—प्रस्तुत प्रबंध की उपयोगिता की दृष्टि से डा० रामजी लाल 'सहायक' का 'कबीर-दर्शन' नामक प्रबंध भी संतो के सिद्धान्त और साधना संबंधी तथ्यो की जानकारी के लिये पर्याप्त सहायक है। डा० सहायक ने अपने इस ग्रंथ में कबीर के दार्शनिक सिद्धान्तो के साथ-साथ मध्यकालीन दार्शनिक शृंखला में कबीर के स्थान निरूपण का जो प्रयास किया है उससे पूरी तो नही किन्तु कुछ-कुछ संत साहित्य की विशिष्टताओ पर प्रकाश अवश्य पड जाता है। श्री सहायक ने 'कबीर दर्शन' को केवल भारतीय आध्यात्मिक परिवेश में ही देखने का प्रयास किया है। सूफी अध्यात्म-दर्शन के पड़े हुये प्रभावो की ओर इनका ध्यान बहुत ही कम गया है।

डॉ० जयराम मिश्र—सिक्ख गुरुओ के 'आदि ग्रंथ' का संत साहित्य की जानकारी के लिये अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। डा० जयराम मिश्र के 'श्री गुरु-ग्रंथ दर्शन' तथा 'नानक-वाणी' नामक दोनो ग्रंथ सिक्ख गुरुओ के आध्यात्मिक सिद्धान्तो और साधनाओं को समझने तथा चिंतन करने मे काफी सहायक है। 'श्री गुरु-ग्रंथ दर्शन' मे डा० मिश्र ने सिक्खों की रचनाओं के परिप्रेक्ष्य मे उनके सिद्धान्त और साधनाओं पर बड़े ही विद्वतापूर्ण विचार व्यक्त किये हैं।

डॉ० गोविंद त्रिगुणायत—ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी निर्गुनिया संतो के तुलनात्मक अध्ययन की ओर दिशा प्रदान करने का काम संभवत. डा० गोविंद त्रिगुणायत का प्रबन्ध 'कबीर और जायसी का रहस्यवाद और तुलनात्मक विवेचन' ही सर्व-प्रथम करता है। कबीर और जायसी दोनो क्रमश. ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि संत कवि रहे है। डा० त्रिगुणायत का यह प्रबंध विषय को इसके ऊपरी सतह को छूता हुआ ही निकल जाता है।

डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित—दादू-सम्प्रदाय के प्रमुख संत 'सुन्दर दास'

की रचनाओं के आधार पर उनके अध्यात्म-दर्शन के स्पष्टीकरण हेतु 'सुन्दर दर्शन' नामक ग्रंथ का प्रणयन कर डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित ने प्रस्तुत प्रबन्ध के लिये अत्यन्त ही उपयोगी सामग्री प्रदान की है। इसके अतिरिक्त डा० दीक्षित का 'संत-दर्शन' नामक ग्रंथ भी संतों की विचारधाराओं को समझने में काफी सहायक सिद्ध हुआ है। डा० दीक्षित का संत मलूक दास संबंधी शोध-ग्रंथ अब तक अप्रकाशित है।

संत साहित्य संबंधी अन्य उपलब्धियाँ

उपर्युक्त विशिष्ट ग्रंथों के अतिरिक्त संतमत और इसकी साधना और साहित्य से सम्बन्धित लगभग ढाई दर्जन ऐसी और भी उपलब्धियाँ हमारे अध्ययन मे सामने आयी जो किसी न किसी रूप मे अत्यन्त ही उपादेय रही। श्री सिद्धिनाथ तिवारी का 'निर्गुण काव्य दर्शन' मे कुछ प्रमुख सतो के दार्शनिक विचारो पर अत्यन्त ही संक्षेप मे प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। श्री तिवारी ने अत में कुतुबन, मंझन, उसमान और नूर मुहम्मद तथा जायसी की काव्य चेतनाओं पर भी प्रकाश डाल कर संत काव्य के साथ तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है किन्तु विषय का गंभीर मथन हुआ नही जान पडता। जान पडता है तिवारी के सामने सूफी मूल ग्रंथो का अभाव है। 'निरंजनी सम्प्रदाय और संत तुलसीदास निरंजनी' नामक ग्रथ में डा० भागीरथी मिश्र द्वारा प्रारंभ की ११६ पृष्ठो की भूमिका निरजनी सम्प्रदाय के सिद्धान्त और साधना सम्बन्धी जानकारी के लिये अत्यन्त ही उपादेय है। इसके अतिरिक्त 'संत नामदेव की हिन्दी पदावली' के सम्पादक के रूप मे डा० मिश्र ने ७७ पृष्ठों की भूमिका मे नामदेव के जीवन और साहित्य सम्बन्धी प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की है। डा० केशव प्रसाद सिंह के शोध 'दादू पंथ और उसके साहित्य का समीक्षात्मक प्रबंध' में संत दादू दयाल तथा रज्जब पर पडे सूफी प्रभावों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है जो हमारे आलोच्य प्रबंध के लिये आवश्यक मार्ग निर्देश करता है।

प्रस्तुत प्रबंध से संबंधित बहुत से संतों के काव्य-दर्शन की जानकारी डा० मदन कुमार जानी के शोध प्रबंध 'राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकालीन संत एवं भक्त कवि' में भी हो जाती है फिर भी यह सामग्री इतनी अपर्याप्त है कि उस पर केवल सन्तोष कर लेना प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रति अन्याय होगा। संत कवि रज्जब जी के संबंध में डा० ब्रजलाल वर्मा के शोध-प्रबन्ध 'संत कवि रज्जब-सम्प्रदाय और साहित्य' तथा 'संत कवि सिंगा जी' के सम्बन्ध में डा० रमेशचन्द्र गंगराडे के प्रबन्ध 'निमाड़ के संत कवि सिंगा जी' से अच्छी उपादेय सामग्री प्राप्त होती है। डा० गंगराडे ने पुस्तक में सिंगा जी की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर उनकी

वाणियों का संग्रह प्रस्तुत करके जिज्ञासु पाठकों के लिये एक बड़े ही अभाव की पूर्ति कर दी है। इसी प्रकार डा० ब्रजलाल वर्मा ने भी संत कवि रज्जब जी की रचनाओं का संग्रह 'रज्जब वाणी' नाम से सम्पादित कर एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति कर दिया है। डा० हरस्वरूप माथुर ने अपने 'साधना और साहित्य' में केवल भारतीय साधना सम्बन्धी विवेचन प्रस्तुत किया है जिसमें उपनिषद, गीता, सांख्य, पातंजलि-योग नाथ सम्प्रदाय एवं निर्गुण सम्प्रदाय, के सिद्धान्त साधना पर अलग-अलग प्रकाश डाले गये हैं। निर्गुण सम्प्रदाय की प्रेम-साधना की बिल्कुल ही इस ग्रंथ मे उपेक्षा की गई है। संतमत की साधना के स्वरूप निर्धारण हेतु प्रताप सिंह चौहान का 'संतमत में साधना का स्वरूप' नामक ग्रंथ देखने को मिला जिसकी सामग्री मौलिक और सन्तोषजनक नही कही जा सकती। यद्यपि कबीर सम्बन्धी अध्ययन के लिये डा० केदार नाथ द्विवेदी के शोध प्रबन्ध 'कबीर और कबीर पंथ' की विशेष चर्चा है किन्तु डा० द्विवेदी ने जो कुछ भी मौलिक सामग्री अपने इस ग्रंथ में दिया है उसकी उपयोगिता हमारे प्रबन्ध के लिये नाम-मात्र की ही रही। डा० बद्रीनारायण श्रीवास्तव का शोध-प्रबन्ध 'रामानन्द सम्प्रदाय तथा हिन्दी साहित्य पर उसका प्रभाव' से स्वामी रामानन्द के दार्शनिक सिद्धान्तों को समझने में सहायता मिलती है। किन्तु डा० श्रीवास्तव ने इस ग्रंथ मे स्वामी रामानन्द के सिद्धान्तो के निरूपण क लिये उनकी हिन्दी रचनाओ की उपेक्षा कर दी है। डा० मोहन सिंह की पुस्तक 'मोडि-वियल भक्ति मूवमेण्ट' में कबीर पर सूफी प्रभाव को कुछ अंशो में स्वीकार किया गया है।

संत काव्यों की पाठ संबंधी प्रामाणिकता----संत काव्यो के अध्ययन के समय उनके काव्यों के मूल पाठ को प्रामाणिकता के संबंध मे हमने सूफी काव्य ग्रंथो के अध्ययन वाले मार्ग को अपनाना उचित समझा है। हमने अपने अध्ययन के लिये प्रायः जिन संत कवियो को चुना है उन सबकी वाणियो के संग्रह किसी न किसी रूप मे अवश्य ही उपलब्ध है। अधिकांश वाणियों के संग्रह बेलवेडियर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुके है। मूल पाठो की भिन्नता की समस्या सबसे अधिक कबीर के साथ है। कबीर ग्रंथावली के अब तक तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित डॉ० श्याम सुन्दर दास का संस्करण सबसे प्राचीन होने के कारण महत्वपूर्ण है। बाद के डॉ० पारसनाथ तिवारी का प्रयाग संस्करण तथा डॉ० माता प्रसाद गुप्त का आगरा संस्करण पाठ की वैज्ञानिकता की दृष्टि से उपादेय है। पाठ की दृष्टि से डॉ० माता प्रसाद गुप्त की 'कबीर ग्रंथावली', डॉ० श्याम सुन्दर दास की 'कबीर ग्रंथावली' का ही संशोधित संस्करण कहा जा सकता है। डॉ० गुप्त ने इस ग्रंथ में कबीर के पाठों को शुद्ध करने का प्रयास

किया है। साथ ही उसका अनुवाद भी कर दिया है जो पाठकों के लिये पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है। 'कबीर ग्रंथावली' के अतिरिक्त कबीर साहित्य के अध्ययन के लिये डॉ० रामकुमार वर्मा का 'संत कबीर' तथा डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'कबीर' में संग्रहीत कबीर की रचनाएँ अधिक सहायक रही है। स्वामी रामानन्द की हिन्दी रचनाओं का काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित संग्रह के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रमाणित संग्रह सामने नही आया। इसी तरह संत मलूक दास और रैदास के पदों और बानियों का अध्ययन बेलवेडियर प्रेस प्रयाग के संग्रह से ही किया गया है। सिक्ख गुरुओं, दादू, रज्जब, सुन्दरदास, हरिदास, निरजनी, तुलसीदास, सिगा जी आदि संतो की वाणियों के संग्रह जो उपयोग मे लाये गये संतो की विचारधारा को समझने के लिये पर्याप्त थे। संत काव्य सम्बन्धी जो प्रकाशित काव्य उपलब्ध हो चुका है वह अब तक कई बार जाँच की कसौटी पर कसा जा चुका है। बार-बार उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध मे छान बीन करना अनावश्यक प्रयास के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

प्रस्तुत अनुशीलन का दृष्टिकोण—सूफी और संत काव्यों पर अब तक विभिन्न दृष्टिकोणों से जो विचार व्यक्त किये गये है वे प्रायः एकपक्षीय ही है। निर्गुण साधना से संबंधित इन दोनों भागों के संत कवियों को सामूहिक रूप से एक ही तुला पर रख कर अभी तक उनका मूल्याकन नहीं हुआ है। कुछ विद्वानो ने दोनों शाखाओं के प्रतिनिधि कवि कबीर और जायसी के रहस्यवाद का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास अवश्य किया है किन्तु यह अध्ययन केवल सैद्धान्तिक विवेचन तक ही सीमित रह जाता है। व्यावहारिक पक्ष की ओर विद्वानों ने ध्यान नहीं दिया है। अतः यह अध्ययन उद्देश्य की पूर्ति में पूर्ण सहायक सिद्ध नहीं हो पाता। अन्य विद्वानो ने दोनो शाखाओ का या तो पृथक-पृथक अध्ययन किया है अथवा किसी एक शाखा के किसी विशेष कवि को ही लेकर उसी तक सीमित रहे है। प्रस्तुत प्रबन्ध "सूफी अध्यात्म-दर्शन का मध्यकालीन संत कवियो पर प्रभाव" इसी प्रभाव की पूर्ति के दृष्टिकोण से लिखा गया है। इसमे प्रेममार्गी और ज्ञानमार्गी दोनों प्रकार के कवियों की केवल आध्यात्मिक प्रवृत्तियो का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन की सामग्री की दृष्टि से यह प्रबन्ध सं० १३७५ वि० से १७०० वि० तक लगभग सवा तीन सौ वर्षों के निर्गुण साहित्य का सामूहिक आध्यात्मिक विवेचन प्रस्तुत करता है जिसमें साधना सम्बन्धी दो विभिन्न दिशाएँ दृष्टि गोचर होती हैं। एक ने 'प्रेम साधना' को प्रधानता प्रदान की है तो दूसरी ने 'ज्ञान और भक्ति' साधना को परस्पर एक-दूसरे की विरोधी दीखने वाली ये प्रवृत्तिया मूलतः

एक ही हैं। इनके साधना सम्बन्धी अनेक तत्व दोनों में विद्यमान हैं। प्रस्तुत प्र[illegible] में पृथक्-पृथक् सिद्धान्त, साधना एवं अभिव्यक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन [illegible] इन्हीं तथ्यों के स्पष्टीकरण का प्रयास किया गया है।

इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर प्रस्तुत प्रबन्ध में सर्वप्रथम मध्यकालीन आध्यात्मिक सिद्धान्त और साधनाओं पर इसलिये प्रकाश डाला गया है कि यह समझने में सरलता हो जाय कि ये साधना और सिद्धान्त किस रूप में सूफियों द्वारा और किस रूप में संतों द्वारा आत्मसात् कर लिये गये हैं। तत्पश्चात् सूफीमत और संतमत सम्बन्धी ऐतिहासिक, आध्यात्मिक तथा साहित्यिक सामग्रियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। सूफी साहित्य में प्रेमाख्यानों के स्पष्टीकरण के लिये हमने कुछ प्रमुख असूफी प्रेमाख्यानों की चर्चा इसलिये कर दी है कि असूफी प्रेमाख्यानों के परिप्रेक्ष्य में सूफी प्रेमाख्यानों के स्वरूप-निर्धारण में सरलता हो जाय। सूफी और संत काव्यों के पृथक्-पृथक् साहित्यिक विवेचन करने के पश्चात् दोनों के अध्यात्म-दर्शन का विवेचन प्रस्तुत किया गया है फिर उनके सिद्धान्तों और साधनाओं के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा उनकी समताओं और विषमताओं का स्पष्टीकरण हुआ है।

अपनी आध्यात्मिक विचारधाराओं को सूफियों और संतों ने व्यक्त करने के लिए विभिन्न रचना शैलियों और अभिव्यक्तियों को अपनाया है। अत. सिद्धान्तों और साधनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के साथ-साथ उनकी अभिव्यक्ति और रचना शैलियों का भी तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर देना आवश्यक हो था। सूफीमत तथा संतमत सम्बन्धी ऐतिहासिक सामग्री को अत्यन्त ही संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है क्योंकि इस विषय पर पहले से ही काफी काम हो चुका है। प्रबन्ध में दोनों पक्षों के आध्यात्मिक तथ्यों को ही विस्तार से निरूपित करने का प्रयास हुआ है। अंत में उपसंहार के अन्तर्गत 'सूफी अध्यात्म-दर्शन का मध्यकालीन हिन्दी संत कवियों पर प्रभाव' विषय पर विषय के समाहार रूप में विचार व्यक्त कर दिया गया है।

अध्ययन सम्बन्धी कुछ नवीन स्थापनाएँ—यह तो हमें सर्वथा मान्य है ही कि आज के युग में कोई भी शोधकर्त्ता कदाचित् सब कुछ अपना नही दे सकता। मैंने भी पूर्ववर्ती अध्येताओं से पर्याप्त तथ्यों को ग्रहण किया है किन्तु उसको अपनी दृष्टि से प्रस्तुत करने की मेरी सदैव चेष्टा रही है। प्रस्तुत प्रबंध में अध्ययन संबंधी निम्नलिखित कुछ मेरी अपनी मान्यताएँ हैं :—

(१) मध्यकालीन हिन्दी के संत कवियों पर सूफियों के अध्यात्मदर्शन के पड़े

हुये प्रभावों को लेकर विद्वानो के दो विचार हैं। कुछ लोगों का विचार है कि संतों ने ब्रह्म की अद्वैतता, एकेश्वरवादिता, निराकारवादिता आदि तात्विक तथ्यों को भारतीय वेदान्त से ग्रहण किया है। कुछ लोगों का विचार है कि संतों ने इसे इस्लामी दर्शन के प्रभाव से अपनाया है। हमने इन दोनों विचारों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। हमारे विचार से संतों ने तात्विक ज्ञान को दोनों धाराओं से ग्रहण करने की चेष्टा की है। एक ओर तो भारतीय वेदान्त भागवत और वैष्णव धर्म की मान्यताएँ उनके समक्ष है। दूसरी ओर यही मान्यताएँ इस्लामी वातावरण में जाकर सूफियों द्वारा आत्मसात् होकर सामने आती है जो पहले की अपेक्षा सहज, सरस, स्वाभाविक एवं बोधगम्य प्रतीत होती हैं। अतः संतों का ज्ञान सूफियों द्वारा प्रभावित होते हुये भी मूल रूप से भारतीय ही माना गया है।

(२) संतो की प्रेम-साधना को लेकर भी विद्वानों के दो दृष्टिकोण है। कुछ विद्वानों का विचार है कि संतो की प्रेम-साधना नारद भक्ति सूत्र एवं साडिल्य भक्ति-सूत्र, भागवत और वैष्णव मत से प्रभावित है—कुछ लोग उसे सूफी प्रेम का प्रभाव मानते है। वस्तुतः संतों की प्रेम साधना मे एक निश्चित सीमा तक दोनो का सामंजस्य है। संतमत मे प्रेम भक्ति रूपा है उसमें प्रम के दास्य, सख्य, वात्सल्य और दाम्पत्य कई स्वरूप है किन्तु सूफीमत मे भक्ति ही प्रेमरूपा हो गई है। वहाँ केवल दाम्पत्य परक प्रेम को ही मान्यता दी गई। इस तरह सतो की प्रेम-साधना में जो दाम्पत्य परक प्रेम का निरूपण हुआ है वह अधिकांशतः सूफी प्रेम साधना से प्रभावित है शेष नारद भक्ति सूत्र, सांडिल्य भक्ति सूत्र एवं भागवत से लिया गया है। सतों के दाम्पत्य परक प्रेम में भी विरह की आतुरता, प्रबलता विरह में आनन्द की अनुभूति, आदि सूफी प्रभावों की ही देन हैं।

(३) सूफियों के यहाँ सौदर्य ही प्रेम का जनक है। कुछ लोगों का विचार है कि संतो के यहाँ सूफियों के सौदर्य की भांति किसी ऐसे तत्व को प्रधानता नहीं दी गई है। हमने इस सम्बन्ध में एक नया दृष्टिकोण रखा है। सतो का सौदर्य बोध सूफियों के सौदर्य की अपेक्षा अत्यंत ही उदार है। सूफी सौदर्य का सम्बन्ध जहाँ केवल भौतिकवादी है वहाँ संतो का सौन्दर्य बिलकुल आध्यात्मिक है। सूफी दैहिक सौदर्य को ही महत्व देते है जब कि संतों ने आत्मिक सौदर्य को प्रधानता दी है। इस तरह संत काव्य में दैहिक सौदर्य का भले ही अभाव दृष्टिगोचर होता हो किन्तु आतरिक सौदर्य बोध तो है ही और यही आतरिक सौदर्य ईश्वरीय प्रेम का जनक होता है। यह आत्मिक सौदर्य-बोध दैहिक सौंदर्य की अपेक्षा और भी महत्वपूर्ण है। सूफियों का दैहिक सौदर्य तो कुछ अंशो तक वर्णनीय हो भी जाता

है किन्तु संतों का आध्यात्मिक सौंदर्य जो ईश्वरीय प्रकाश के रूप में वर्णित है बिलकुल ही अनिर्वचनीय हो जाता है। उसके वर्णन में वाणी कुण्ठित हो जाती है फिर कैसे कहा जाय कि संतों के यहाँ सौंदर्य-बोध जैसा कोई तत्व है ही नहीं।

(४) जहाँ तक आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति का प्रश्न है सूफियों ने उसे बोधगम्य बनाने के लिये प्राय(सूफी प्रेमाख्यानों में कथात्मक शैली द्वारा व्यक्त किया है किन्तु संतों के यहाँ किसी भी प्रेमाख्यान की रचना नहीं हुई। इस आधार पर प्रायः सोचा जा सकता है कि अभिव्यक्ति सम्बन्धी सूफी प्रभाव तो संतों पर पड़ा ही नहीं। इस तथ्य को लेकर भी हमारा अपना अलग दृष्टिकोण है। संत कवियों ने भले ही अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए कथात्मक शैली का अनुसरण न किया हो किन्तु अपने मुक्तक पदों में संत कवियो ने भी उन्हीं प्रतीकों का प्रयोग किया है। जिन्हे सूफियों ने लम्बे-लम्बे प्रेमाख्यानों में चित्रित किये हैं। प्रेमाख्यानो में क्या विस्तार एवं परम्परा-निर्वाह के लिये कहीं-कहीं आध्यात्मिक विषयान्तर भी हो जाते हैं जो पाठकों को समझने मे दुरूह से प्रतीत होने लगते हैं। इसके विरुद्ध संत काव्य मे प्रतीकों के प्रयोग केवल संकेत मात्र के लिये हुये हैं। वर्णन क्षेत्र अत्यन्त ही मर्यादित होने के कारण पाठको के लिये ये प्रतीक विधान सूफी प्रतीक विधानों की अपेक्षा और भी सरस, सरल और बोधगम्य हो गये है। इस तरह संतो ने सूफियों की प्रतीक योजनाओं को निश्चय ही अपनाया है किन्तु उसे कुशलतापूर्वक सजा और सवार कर इतना ठोस और सुसंगठित ढग से प्रस्तुत किया है कि विषय से इधर-उधर दृष्टि जाने का अवसर ही नहीं मिलता।

(५) कुछ विद्वानो की यह धारणा रही है कि सूफी कवि इस्लामी दर्शन के प्रचारक रहे हैं। उनकी रचनाओ का मुख्य उद्देश्य साम्प्रदायिक प्रचार करना मात्र था। इस सम्बन्ध मे भी हमने अलग ही दृष्टिकोण अपनाया है। सूफी कवि इस्लामी कट्टरता से ऊब चुके थे। उनके समक्ष मानवीय प्रेम का महान् उद्देश्य था। जाति सम्प्रदाय अथवा धर्म-विशेष की सीमाओं से वे सर्वथा मुक्त थे। वे परस्पर प्रेम और सद्भावना के लालायित थे। इस्लामी राजसत्ता के आश्रय मे पालित होने के कारण भले ही उन पर साम्प्रदायिक प्रचार का आरोप किया जा सके किन्तु यह सर्वथा निराधार ही है। यदि ऐसा नहीं होता तो वे संतो के सम्पर्क मे आकर ज्ञान और भक्ति की गंगा जमुनी धारा में प्रेम की सरस्वती लाकर त्रिवेणी बहा देने में समर्थ नही हो पाते।

(६) ऊपर से देखने में सूफी कवियों ने योग सम्बन्धी तात्विक विवेचना को बिलकुल ही छोड़ दिया है। वे केवल योगीवेश में प्रिय को ढूंढने निकल जाते हैं। योग-मार्ग में कठिनाइयों का अनुभव करते हैं और फिर [illegible]

हुये प्रभावों को लेकर विद्वानो के दो विचार हैं। कुछ लोगों का विचार है कि संतों ने ब्रह्म की अद्वैतता, एकेश्वरवादिता, निराकारवादिता आदि तात्विक तथ्यों को भारतीय वेदान्त से ग्रहण किया है। कुछ लोगों का विचार है कि संतों ने इसे इस्लामी दर्शन के प्रभाव से अपनाया है। हमने इन दोनो विचारों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया है। हमारे विचार से संतों ने तात्विक ज्ञान को दोनो धाराओं से ग्रहण करने की चेष्टा की है। एक ओर तो भारतीय वेदान्त भागवत और वैष्णव धर्म की मान्यताएँ उनके समक्ष है। दूसरी ओर यही मान्यताएँ इस्लामी वातावरण में जाकर सूफियों द्वारा आत्मसात् होकर सामने आती है जो पहले की अपेक्षा सहज, सरस, स्वाभाविक एवं बोधगम्य प्रतीत होती हैं। अतः संतो का ज्ञान सूफियों द्वारा प्रभावित होते हुये भी मूल रूप से भारतीय ही माना गया है।

(२) संतो की प्रेम-साधना को लेकर भी विद्वानों के दो दृष्टिकोण है। कुछ विद्वानों का विचार है कि संतो की प्रेम-साधना नारद भक्ति सूत्र एवं साडिल्य भक्ति-सूत्र, भागवत और वैष्णव मत से प्रभावित है--कुछ लोग उसे सूफी प्रेम का प्रभाव मानते है। वस्तुतः संतो की प्रेम साधना मे एक निश्चित सीमा तक दोनों का सामंजस्य है। संतमत मे प्रेम भक्ति रूपा है उसमे प्रेम के दास्य, सख्य, वात्सल्य और दाम्पत्य कई स्वरूप है किन्तु सूफीमत मे भक्ति ही प्रेमरूपा हो गई है। वहाँ केवल दाम्पत्य परक प्रेम को ही मान्यता दी गई। इस तरह संतों की प्रेम-साधना मे जो दाम्पत्य परक प्रेम का निरूपण हुआ है वह अधिकांशतः सूफी प्रेम साधना से प्रभावित है शेष नारद भक्ति सूत्र, सांडिल्य भक्ति सूत्र एवं भागवत से लिया गया है। संतों के दाम्पत्य परक प्रेम में भी विरह की आतुरता, प्रबलता विरह में आनन्द की अनुभूति, आदि सूफी प्रभावो की ही देन है।

(३) सूफियों के यहाँ सौदर्य ही प्रेम का जनक है। कुछ लोगों का विचार है कि संतो के यहाँ सूफियो के सौंदर्य की भांति किसी ऐसे तत्व को प्रधानता नही दी गई है। हमने इस सम्बन्ध मे एक नया दृष्टिकोण रखा है। संतो का सौंदर्य बोध सूफियो के सौदर्य की अपेक्षा अत्यंत ही उदार है। सूफी सौंदर्य का सम्बन्ध जहाँ केवल भौतिकवादी है वहाँ संतो का सौन्दर्य बिलकुल आध्यात्मिक है। सूफी दैहिक सौदर्य को ही महत्व देते है जब कि संतों ने आत्मिक सौदर्य को प्रधानता दी है। इस तरह संत काव्य में दैहिक सौदर्य का भले ही अभाव दृष्टिगोचर होता हो किन्तु आतरिक सौदर्य बोध तो है ही और यही आतरिक सौदर्य ईश्वरीय प्रेम का जनक होता है। यह आत्मिक सौदर्य-बोध दैहिक सौंदर्य की अपेक्षा और भी महत्वपूर्ण है। सूफियो का दैहिक सौदर्य तो कुछ अंशों तक वर्णनीय हो भी जाता

है किन्तु संतों का आध्यात्मिक सौंदर्य जो ईश्वरीय प्रकाश के रूप में वर्णित है बिलकुल ही अनिर्वचनीय हो जाता है। उसके वर्णन में वाणी कुन्ठित हो जाती है फिर कैसे कहा जाय कि संतों के यहाँ सौंदर्य-बोध जैसा कोई तत्व है ही नहीं।

(४) जहाँ तक आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति का प्रश्न है सूफियों ने उसे बोधगम्य बनाने के लिये प्राय(सूफी प्रेमाख्यानों में कथात्मक शैली द्वारा व्यक्त किया है किन्तु संतों के यहाँ किसी भी प्रेमाख्यान की रचना नहीं हुई। इस आधार पर प्रायः सोचा जा सकता है कि अभिव्यक्ति सम्बन्धी सूफी प्रभाव तो संतों पर पड़ा ही नहीं। इस तथ्य को लेकर भी हमारा अपना अलग दृष्टिकोण है। संत कवियों ने भले ही अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए कथात्मक शैली का अनुसरण न किया हो किन्तु अपने मुक्तक पदों में संत कवियों ने भी उन्हीं प्रतीकों का प्रयोग किया है। जिन्हें सूफियों ने लम्बे-लम्बे प्रेमाख्यानों में चित्रित किये हैं। प्रेमाख्यानों में कथा विस्तार एवं परम्परा-निर्वाह के लिये कहीं-कहीं आध्यात्मिक विषयान्तर भी हो जाते है जो पाठकों को समझने में दुरूह से प्रतीत होने लगते हैं। इसके विरुद्ध संत काव्य में प्रतीकों के प्रयोग केवल संकेत मात्र के लिये हुये हैं। वर्णन क्षेत्र अत्यन्त ही मर्यादित होने के कारण पाठकों के लिये ये प्रतीक विधान सूफी प्रतीक विधानों की अपेक्षा और भी सरस, सरल और बोधगम्य हो गये हैं। इस तरह संतो ने सूफियों की प्रतीक योजनाओं को निश्चय ही अपनाया है किन्तु उसे कुशलतापूर्वक सजा और संवार कर इतना ठोस और सुसंगठित ढंग से प्रस्तुत किया है कि विषय से इधर-उधर दृष्टि जाने का अवसर ही नहीं मिलता।

(५) कुछ विद्वानो की यह धारणा रही है कि(सूफी कवि इस्लामी दर्शन के प्रचारक रहे है। उनकी रचनाओं का मुख्य उद्देश्य साम्प्रदायिक प्रचार करना मात्र था। इस सम्बन्ध में भी हमने अलग ही दृष्टिकोण अपनाया है (सूफी कवि इस्लामी कट्टरता से ऊब चुके थे। उनके समक्ष मानवीय प्रेम का महान् उद्देश्य था)। जाति सम्प्रदाय अथवा धर्म-विशेष की सीमाओं से वे सर्वथा मुक्त थे। वे परस्पर प्रेम और सद्भावना के लालायित थे। इस्लामी राजसत्ता के आश्रय मे पालित होने के कारण भले ही उन पर साम्प्रदायिक प्रचार का आरोप किया जा सके किन्तु यह सर्वथा निराधार ही है। यदि ऐसा नहीं होता तो वे संतो के सम्पर्क मे आकर ज्ञान और भक्ति की गंगा जमुनी धारा में प्रेम की सरस्वती लाकर त्रिवेणी बहा देने में समर्थ नहीं हो पाते।

(६) ऊपर से देखने में सूफी कवियों ने योग सम्बन्धी तात्विक विवेचना को बिलकुल ही छोड़ दिया है। वे केवल योगीवेश में प्रिय को ढूंढने निकल जाते है। योग-मार्ग में कठिनाइयों का अनुभव करते हैं और फिर प्रिय के दर्शन हो जाते हैं।

संतो की भांति योग की तात्विक विवेचना करते हुये नही चलते हैं। इस सम्बन्ध में हमारा अपना विचार है कि सूफियो ने योग की तात्विक विवेचना ऐसे गूढ़ प्रतीकों में बांध कर की है कि उसे समझने के लिये अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता होगी। प्रायः सभी सूफी प्रेमाख्यानो मे 'सरोवर' मे प्रिय के दर्शन का उल्लेख मिलता है। संतो के यहाँ शून्य-सरोवर सम्बन्धी ब्रह्म निवास की कल्पना इसी यौगिक प्रतीक का द्योतक हो सकता है। इस सम्बन्ध में यह हमारा अपना दृष्टिकोण है।

(७) विरहानुभूति की तीव्रता, आतुरता, प्रेम विह्वलता आदि के जो चित्रण सूफी काव्यो मे किये गये है वे सर्वथा अमर्यादित है। फिर भी उसका प्रभाव हिन्दी संत कवियो की रचनाओं पर निश्चय रूप से पड़ा है किन्तु अत्यंत ही संयमित एवं सुसंस्कृत रूप मे। इस तथ्य की ओर इसी सत्यता को ध्यान मे रखकर प्रस्तुत प्रबंध मे विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

(८) सामूहिक रूप से हिन्दी के प्रमुख सूफी कवि और उनकी रचनाओं के साथ मध्यकालीन हिन्दी के प्रमुख संत कवियों की रचनाओ का तुलनात्मक अध्ययन इस प्रबन्ध मे पहली बार हुआ है। सूफी कवियो का प्रतिनिधित्व खड़ी बोली के लिये दक्खिनी के निजामी, वजही, अमीन, गौवासी, मुकीमी, ख्वाजाबंदेनवाज, शाहमिराजी, अशरफ, बुरहानुद्दीन जानम, शाह अली (गाँव धनी), मुहम्मद कुली को तथा अवधी के लिये दाऊद, कुतुबन, जायसी, मंझन, उसमान, नियामत खां (जानकवि) और शेख नबी की रचनाओं से हुआ है। इसी तरह संत कवियो मे नामदेव, स्वामी रामानन्द, कबीर, रैदास, नानक और परवर्ती सिक्ख गुरु, दादू-दयाल, रज्जब जी, सुन्दर दास, निरंजनी संत हरिदास, तुलसी दास, सिंगा जी, तथा मलूक दास जी की रचनाओ को तुलनात्मक अध्ययन के लिए चुना गया है। इस तरह इतने व्यापक रूप से सामूहिक एवं व्यक्तिगत रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास इस प्रबंध मे किया गया है।

(९) कुछ विद्वानो के विचार से ब्रह्म प्राप्ति मे बाधक तत्व 'माया' संत साहित्य में तो मिलती है किन्तु सूफियों मे दिखाई नही पड़ती। हमने सूफियो के 'शैतान' को ही 'माया' नाम देने का प्रयास किया है। संतो के यहाँ माया के दो रूप दिखाई पड़ते हैं एक मे वह अत्यन्त ही मोहक और आकर्षक है किन्तु दूसरे में वह अत्यंत ही क्रूर, कुटिल और भयंकर चित्रित की गई है। दोनो रूपो मे वह ईश्वर मिलन मे बाधक होती है। सूफियो के यहां भी माया के ये ही दोनो रूप मिलते है। पहले मे उपनायिका के रूप मे और दूसरे मे तूफान, राक्षस, सर्प आदि के रूप में माया का ही चित्रण है। सूफियो के शैतान मे संतों की माया का आरोप हमारी अपनी स्थापना है।

इन्ही कुछ नवीन स्थापनाओ को ध्यान मे रखकर पुरानी उपलब्ध सामग्रियों के आधार पर प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रणयन की ओर हम अग्रसर होगे।

अध्याय २

मध्यकालीन आध्यात्मिक सिद्धान्त और साधना

मध्यकालीन हिन्दी के संत कवियों ने जिस ब्रह्म की उपासना की उसके निर्गुणत्व की मान्यता के लिए उन्हें पूर्णरूपेण श्रेय नहीं दिया जा सकता क्योंकि ब्रह्म के निर्गुण स्वरूप की उद्भावना न तो उनके निजी मस्तिष्क से हुई थी और न सूक्ष्म ब्रह्म का पता उन्होंने सर्वप्रथम लगाया था। वास्तविकता तो यह थी कि मध्यकालीन संतों ने ब्रह्म-चिंतन की उस सूक्ष्म धारा को अपनाया जो उनसे बहुत पहले से प्रवाहित होती चली जा रही थी। ब्रह्म चिंतन संबंधी इस सूक्ष्म धारा का मूल स्रोत वेदों में मिलता है जहां से उद्भूत हो यह धारा उपनिषदों तथा परवर्ती युगों के तट को स्पर्श करती हुई आगे बढ़ी। जैन और बौद्ध मतों के प्रभाव में उससे मिलते-जुलते प्रश्न पर कुछ अपने ढंग से विचार हुआ और पिछले दार्शनिकों ने सारी बातों का एक बार पुनः विवेचन करके कुछ अपने-अपने सिद्धान्त निश्चित किये। अन्त में जिस समय भक्ति आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और इस चिंतन-धारा के साथ उपासना का मेल बिठाया गया तो एक विलक्षण स्थिति आ गई जिसके प्रभाव में संतों ने अपनी-अपनी वाणियां लिखीं। इस तरह यह आध्यात्मिक विचार-धारा अनुभवाश्रित संतों की सहज साधना के सरोवर में विलीन हो गई। अतः मध्यकालीन आध्यात्मिक सिद्धान्त और साधना के विवेचन के लिये उसकी पृष्ठभूमि में पूर्ववर्ती सभी विचार-धाराओं पर एक विहंगम दृष्टि डाल देना यहां पर आवश्यक होगा।

(क) मध्यकालीन आध्यात्मिक सिद्धान्त

आध्यात्मिक सिद्धान्त से हमारा तात्पर्य उन तत्व चिंतनों से है जिनसे जीवात्मा और परमात्मा संबंधी जिज्ञासा का बोध होता है। ब्रह्म क्या है? जीव क्या है?, जगत और माया क्या है? इन्हीं के तात्विक विवेचन आध्यात्मिक सिद्धान्तों के अन्तर्गत विचारणीय है। हम यहाँ पर आध्यात्मिक सिद्धान्त के अंतर्गत परमतत्व (ब्रह्म) तथा सृष्टितत्व (जीव, जगत् और माया) संबंधी मध्यकालीन विभिन्न विचार-धाराओं पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

परमतत्व (ब्रह्म) का स्वरूप—मध्यकालीन संतों के यहां जैसा कि हम आगे बतायेंगे परमतत्व सम्बन्धी कोई एक विचार नहीं है। कभी वे उसे निर्गुण मानकर चलने लगते हैं तो कभी सगुण और कभी उसे निर्गुण और सगुण दोनों से परे मान बैठते हैं। कभी वे उसकी एकमात्र सत्ता को स्वीकार करते हैं तो कभी उसकी सर्व-व्यापकता की दुहाई देने लगते हैं और कभी दोनों मतों का समन्वय भी कर बैठते है। इस तरह इनकी परमतत्व सम्बन्धी विचारधाराओं पर उन प्राचीन चिन्तनों की छाप पड़ती स्पष्ट होती है जो इनसे पूर्व कई शताब्दियों से वेदान्त और शास्त्र के अध्येताओं द्वारा उद्भूत हुई थी और पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करते हुये क्रमशः होती चली आ रही थी।

परमतत्व : उपनिषदों के अनुसार—उपनिषदों मे आध्यात्मिक चिंतन विद्या सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती है, जहा नासदीय सूक्त की पेचीदी बातों को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। सूक्ष्म ब्रह्म के 'निर्गुणत्व' का संभवतः सर्वप्रथम प्रयोग उपनिषदों में ही मिलता है। उपनिषदो मे वर्णित 'ब्रह्म' का निरूपण इस प्रकार हुआ है :—

> एको देवः सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
> कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासःसाक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥[1]

अर्थात् 'समस्त प्राणियो मे स्थित एक देव है, वह सर्व-व्यापक है, वह सर्व-भूतों की अन्तरात्मा, सभी कर्मों का अधिष्ठाता, सभी प्राणियों मे बसा हुआ, सबका साक्षी तथा सबको चेतना प्रदान करने वाला शुद्ध और निर्गुण है।''

यह ब्रह्म अति सूक्ष्म और इन्द्रियो इन्द्रियों से परे है। इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ है, विषयों से मन उत्कृष्ट है। मन से बुद्धि और बुद्धि से भी उत्कृष्ट महान् आत्मा है।[2] केनोपनिषद् मे इस तथ्य पर बार-बार जोर दिया गया है कि ब्रह्म इतना सूक्ष्म है कि वहाँ तक नेत्र नही पहुँच सकते। वाणी और मन नही जा सकते। ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण वाणी से परे है। वह ब्रह्म विदित और अविदित दोनो से परे है।[3] बृहदारण्यकोपनिषद् मे याज्ञवल्क्य ने गार्गी को सम्बोधित करते हुये

---

१. श्वेताश्वतरोपनिषद्—अध्याय ६ मंत्र ११

२. इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिबुद्धिरात्मा महान्परः॥
—कठोपनिषद्—अध्याय १, वल्ली ३, मं० १०।

३. न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनु-शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथोअविदितादधि।
—केनोपनिषद्—प्रथम खण्ड मंत्र ३।

समझाया है कि "उस तत्व को ब्रह्म-वेत्ता लोग 'अक्षर' कहते हैं। ब्रह्म न मोटा है, न पतला है, न छोटा है न बड़ा है, न लाल है, न द्रव है, न छाया है, न तम है, न वायु है, न आकाश है, न रस है, न गंध है, न नेत्र है, न कान है; न वाणी है, न मन है, न तेज है, न प्राण है, न मुख है, न माप है, उसमे न अंतर है न बाहर है। वह कुछ भी नहीं खाता, उसे कोई नहीं खाता।"[1] इसके अतिरिक्त कुछ उपनिषदों में 'ब्रह्म' के लिए 'निरंजन' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जिसका प्रयोग आगे चलकर नाथ पंथियों के साध्य रूप में हुआ है और संतों ने भी बराबर इसका स्मरण किया है। 'श्वेताश्वतरोपनिषद् का एक उदाहरण लीजिये—

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरंजनम्।
अमृतस्य परं सेतु दग्धेन्धनमिवानलम्॥[2]

सांख्यदर्शन के अनुसार ब्रह्म का स्वरूप—सांख्य-दर्शन के अनुसार 'परमतत्व' 'पुरुष' रूप में मान्य हुआ है। यहां पर पुरुष को निर्विकार, द्रष्टा, विषयी और उदासीन माना गया है। सांख्य-दर्शन के अनुसार सम्पूर्ण विश्व मे दो ही तत्व नित्य माने गये है—एक प्रकृति और दूसरा पुरुष शेष सभी नश्वर और अस्थायी है। इस तरह सांख्य-दर्शन के अनुसार यद्यपि ब्रह्म को निर्गुण माना गया है किन्तु साथ ही द्वैत भावना को भी स्वीकार किया गया है।

परमतत्व : गीता के अनुसार—उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्मवाद का विकसित रूप गीता में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है जहा पर भगवान श्रीकृष्ण ने अपने को तीनों गुणों से परे तथा संसार को इन तीनों प्रकार के भावों से मोहित बतलाया है जिसके लिये वह संसार को अदृश्य बना हुआ है। यथा—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।
मोहितंनाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥—गीता, ७/१३

गीता के अनुसार ब्रह्म की स्वतंत्रता और प्रकृति की परतंत्रता का स्पष्ट प्रतिपादन किया गया है किन्तु गीता का 'पुरुष' सांख्य के 'पुरुष' की भांति एकदम निष्क्रिय और उदासीन नहीं है। सांख्य-दर्शन में जहा 'पुरुष' स्वयं 'कर्त्ता' रूप मे व्यक्त नहीं किया गया है वहां गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि मैं ही सम्पूर्ण जगत् का कारण हूं और मेरे से ही सब जगत् चेष्टा करता है।[3] गीता के अनुसार 'ब्रह्म' को

१. बृहदारण्यकोपनिषद् अध्याय ३, ब्राह्मण ८
२. श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय ६, मंत्र १९
३. 'अहं सर्वस्य प्रभवो, मतः सर्वं प्रवर्तते।' गीता—अध्याय १०/८

अजन्मा, अविनाशी, सर्वव्यापी, निर्विकार और इन्द्रियातीत बतलाया गया है।

परमतत्व : जैन के मतानुसार—जैन मत में जगत् कर्त्ता ईश्वर की कल्पना नहीं की गई है। वे आत्मा की दो कोटियां मानते हैं—(१) व्यवहारनय और (२) शुद्धनय। व्यवहारनय आत्मा अशुद्ध रूप में है और शुद्धनय आत्मा ज्ञानमय, अति सूक्ष्म, विकास शून्य, निरंजन और अजन्मा है। इस तरह जैन साधुओं ने ईश्वरीय सत्ता को अस्वीकार कर मनुष्य को ही सदाचरण द्वारा श्रेष्ठ बनाकर संसार के कल्याण के लिए ईश्वर पद का अधिकारी बना दिया है। संतो की 'साधु महिमा' पर जैनियों का यह प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है।

परमतत्व : बौद्ध मतानुसार—बौद्धमत मे 'अनात्मवाद' की प्रतिष्टा की गई है जिसमे संसार को अनित्य तथा 'निर्वाण' को नित्य माना गया है। 'निर्वाण' की उपलब्धि केवल 'कर्म प्रवाह' की समाप्ति द्वारा ही संभव मानी गई है। बौद्धों के 'निर्वाणपद' की स्थिति ठीक वैसे ही है जैसे उपनिषदों में पुरुष की 'सूक्ष्म स्थिति'। 'निर्वाण पद' का अधिकारी बिलकुल ही शून्य में रहता है वह बिलकुल ही निर्गुण और निर्विकार है।

परमतत्व : नाथ और सिद्धों के मतानुसार :—बौद्ध धर्म मे विकृति आने के परिणामस्वरूप 'महायान' के उपसम्प्रदाय 'मंत्रयान' में 'मंत्रो' की महत्ता स्वीकार की गई। ईश्वरीय सत्ता का लोप हो गया। इस तरह सिद्धों के लिये 'मंत्र' ही सब कुछ था। इसके पश्चात् योगमार्गी नाथ सम्प्रदाय का विकास हुआ जहाँ पर अब तक के परमतत्व सम्बन्धी सभी मतों का सामंजस्य स्थापित कर परम तत्व को अलख, निरंजन, निर्विकार, निर्गुण और निराकार रूप दिया गया। जिससे इन्द्रिय निग्रह, प्राणसाधना, मनसाधना आदि प्रेरणा मूलक-तत्वो के आधार पर निर्गुण सम्प्रदाय का उद्‌भव हुआ तथा आगे चलकर संत कवियों ने ब्रह्म के इसी समन्वित रूप को स्वीकार किया।

परमतत्व इस्लामी मतानुसार :—भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं के साथ-साथ हिन्दी के मध्यकाल मे यहा इस्लामी आध्यात्मिक विचारधारा भी अपना स्थान बना चुकी थी। इस्लामी अध्यात्म दर्शन के अनुसार परमतत्व 'अल्लाह' के रूप मे मान्य हुआ है। वह एकमात्र इस संसार का मालिक है। वही जमीन और आसमान का पैदा करने वाला है; वह जमीन और आकाश का प्रकाश है।[१] वह सर्व-शक्तिमान् है। (कुरान ३५ : १-२) वह निराकार और निरपेक्ष है। वह किसी का न बाप है और न बेटा। (कुरान ११२ : १-४) इस्लामी दर्शन की ये मान्यताएँ

१. कुरान मजीद सूर : २४ अननूर आयत-३५।

अधिकांश रूप से सूफियो द्वारा आत्मसात् करके संतों के समक्ष प्रस्तुत हुई जिनका प्रभाव भी उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है।

सृष्टितत्व (जीवन, जगत् और माया) का स्वरूप

सृष्टितत्व के सम्बन्ध में उपनिषद् काल से लेकर निर्गुण मत के प्रादुर्भाव-काल तक जितनी भी विचारधारायें है उनमें एकरूपता का अभाव है। इस सबन्ध मे मुख्यतः तीन धारणाये है---कही पर सृष्टि को परमतत्व का ही स्वरूप माना गया है, कहीं उसका अंश माना गया है और कही उसका कार्य। जैसा कि पहले कहा जा चुका है सांख्य दर्शन में 'प्रकृति' और 'पुरुष' दोनों की सत्ता स्वीकार की गई है। 'प्रकृति' ही सभी कार्यों का सम्पादन करती है। 'पुरुष' उसका कर्ता नहीं होता। 'प्रकृति' स्वभावत: अचेतन है किन्तु गुण समन्वित होने के कारण सक्रिय है। अचेतन पुरुष के कर्म चेतन पुरुष के लिये उसी तरह किये जाते है जिस प्रकार नि स्वार्थी दास अपने स्वार्थों का त्याग कर स्वामी की सेवा करता है, अथवा जैसे गाय के थन से बछड़े के लिये अनजान मे ही दूध निकलता रहता है।

'वत्स विवृद्धि निमित क्षीरस्य यथा प्रवृत्तिरज्ञस्य।'[1]

साख्य प्रवचन सूत्र के अनुसार प्रकृति को त्रिगुणात्मक जड, दृश्य और विषय रूप में माना गया है। यह 'जगत' दोनों के संतुलन से चलता है। किन्तु आगे चलकर गीता मे ब्रह्म को ही सृष्टिकर्त्ता के रूप मे माना गया है। साथ ही संपूर्ण विश्व मे मूल रूप मे ब्रह्म की स्थिति को स्वीकार किया गया तथा सारे जगत् को उसी का स्वरूप माना गया है।[2]

गीता के अनुसार परमात्मा स्वेच्छा से परा प्रकृति द्वारा व्यष्टि भावापन्न नाना जीव के रूप में परिवर्तनशील, त्रिगुणात्मक अपरा प्रकृति के विस्तार द्वारा स्थूल एव सूक्ष्म शरीरों तथा सामूहिक रूप मे जगत को धारण करता है। तात्पर्य यह कि व्यष्टि भाव रूप जीव और समष्टि भाव रूप परमेश्वर 'ब्रह्म' से भिन्न नही है। अतर केवल इतना ही है कि जीव व्यक्तित्व के अहकार, राग-द्वेषादि को ग्रहण कर लेता है और अपने वास्तविक स्वरूप का परित्याग कर देता है। अत: दुखी परतत्र और शक्ति-हीन बन जाता है। इसके प्रतिकूल परमात्मा अपने सर्वात्मभाव का अनुभव रखता है। वह स्वतंत्र, सर्वज्ञ और नित्य आनंद स्वरूप रहता है। जीवात्मा

---

१. निर्गुण काव्यदर्शन---डॉ० सिद्धिनाथ तिवारी पृ० २२ से उद्धृत।

२. यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥
---गीता अध्याय १०, श्लोक ३९।

अपने राग-द्वेषादि के परदे को फाड़कर जब सर्वात्मभाव से समष्टि का अनुभव करने लगती है तो ब्रह्म रूप हो जाती है।[1]

जैनमत के अनुसार 'जगत' को अनादि और अनंत माना गया है। उन्हें जगत् ईश्वरीय सृष्टि के रूप मे मान्य नही है। जैनियों के सिद्धान्त के अनुसार प्राणी कर्म-पाश वश जन्म लेते और मरते हैं। इसी तरह बौद्धों के यहाँ भी 'जगत्' अनित्य माना गया है। इस्लामी दर्शन के अनुसार 'अल्लाह' ही सृष्टि का कर्त्ता है जिसने अपने प्रभुत्व के दर्शन के लिये सृष्टि की रचना की। भारतीय दर्शन की भाँति 'जन्मांतरवाद' को मान्यता नहीं दी गई है। इनके यहां आखिरत के उल्लेख मे आदमी मरने के बाद से लेकर कयामत तक इच्छा रहते हुये वापस नहीं जा सकता।[2] इस्लामी मत में पैगम्बर को भी मान्यता दी गई है। सृष्टि संबंधी इस्लामी मत का प्रभाव सूफियों द्वारा कुछ अंशों में ग्रहण किया गया है। उन्हीं के प्रभाव मे हिन्दी संत कवियों ने भी भारतीय 'ब्रह्मवाद' के साथ-साथ 'अल्लाह' को भी पर्याय रूप मे सृष्टिकर्ता, सर्व-शक्तिमान्, सर्वगुण सम्पन्न माना है। फिर भी वे इस्लामी आखिरत के सिद्धान्त को नही मानते। सूफियों के यहाँ भी भारतीय दर्शन की भाँति जन्मान्तरवाद को ही मान्यता दी गई है। इस प्रकार सृष्टि तत्व (जीव, जगत् और माया) सम्बन्धी विचारधारा ऋग्वेद से चलकर भिन्न-भिन्न मतमतान्तरो का प्रश्रय ग्रहण करती हुई संतो के निर्गुणमतान्तर्गत सभी मतो के समन्वित रूप मे आत्मसात् कर ली गई है।

ब्रह्म और जीव की सत्ता सम्बन्धी विभिन्न विचारधारायें

'ब्रह्म' और 'जीव' की सत्ता और उनके पारस्परिक सम्बन्धों को लेकर तात्विक मीमासकों की अनेक विचारधारायें जो संतमत मे ग्रहण की गई है वे मूल रूप मे निम्नलिखित है--

(१) स्वामी शंकराचार्य का अद्वैतवाद

(२) स्वामी रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद

(३) विष्णु स्वामी तथा बल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद।

(४) मध्वाचार्य का द्वैतवाद।

(५) निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद।

---

१. वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता.।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावभागता:॥
—गीता अध्याय ४, श्लोक १०।

२. कुरान मजीद सूर : २३ अलहज्ज आयत १००

(६) चैतन्य महाप्रभु का भेदाभेदवाद ।

(७) इस्लामी दर्शन का एकेश्वरवाद ।

(१) स्वामी शंकराचार्य का अद्वैतवाद

इसे शंकर का केवलाद्वैतवाद भी कहा जाता है। इसके अनुसार 'ब्रह्म' को सत्य और 'जगत्' को मिथ्या बतलाया गया है।[1] 'ब्रह्म' और 'जीव' में पारस्परिक ऐक्य स्थापना के लिए ही स्वामी शंकराचार्य ने अपने प्रसिद्ध मत 'अद्वैतवाद' का प्रतिपादन किया था। 'अद्वैतवाद' के चार मुख्य सिद्धान्त हैं :—

(१) ब्रह्म ही सत्य है।

(२) जगत् मिथ्या है।

(३) जीव ब्रह्म ही है।

(४) जीव ब्रह्म से किसी प्रकार भिन्न नहीं है।

स्वामी शंकराचार्य के मतानुसार निर्विकल्प, निरुपाधि तथा निर्विकार सत्ता को 'ब्रह्म' कहा गया है। यही 'ब्रह्म' विश्व का कर्त्ता, भर्त्ता और संहर्त्ता है। सत्, चित्, आनन्द रूप होने के कारण वह सच्चिदानन्द कहलाता है। माया के प्रभाव के कारण यही 'ब्रह्म' सगुण रूप धारण करता है। 'चैतन्य' जो अन्तःकरण से ब्रह्म का अविच्छिन्न अंग है 'जीव' कहलाता है। 'जीव' की प्रवृत्तियाँ जब वहिर्मुखी होती हैं तो विषयो की ओर आसक्ति होती है और जब अन्तर्मुखी होती है तो 'अहंकर्त्ता' को प्रकट करती है।

शंकर का मायावाद—जीव जब अपने अज्ञान के कारण स्वयं को शरीर, इंद्रियों और मन से अविच्छिन्न समझ लेता है और उसी के सुख अथवा दुःख को अपना सुख अथवा दुःख समझने लगता है तो इस अज्ञान अथवा अविद्या को 'माया' कहते है। शंकराचार्य का मायातत्व अनिर्वचनीय है। वह सत् और असत् दोनों से भिन्न है। जिस प्रकार सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में हिलता हुआ दिखाई पड़ता है किन्तु वास्तव में सूर्य में कोई कम्पन नहीं होता, ठीक उसी प्रकार माया (अविद्या) के कारण उत्पन्न कष्टों से पीड़ित जीवों के कष्ट से ईश्वर किसी भी प्रकार प्रभावित नहीं होता। संक्षेप में यही शंकर का मायावाद है जिसे प्रायः मध्यकालीन हिन्दी संतों ने अपनाने का प्रयास किया है।

शंकराचार्य वेदान्त सूत्र के सर्वश्रेष्ठ तथा प्राचीन भाष्यकार है। इनके विचारों में दार्शनिक विश्वबन्धुत्व की छाप है जिसमें बौद्धदर्शन की मुख्य-मुख्य बातों

---

१. 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव न परः ।'—शंकराचार्य के कथन पर आधारित।

को ग्रहण कर लिया गया है। इनके विचार पूर्णरूपेण समन्वयवादी है। एक तरफ ये 'अद्वैतवादी' हैं तो दूसरी ओर विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य और गणेश इन पंच देवों के अस्तित्व को भी स्वीकार करके चलते हैं। पच देवो मे संबन्धित रचित स्त्रोत ही इसके प्रमाण हैं। बहुदेववादी एवं अद्वैतवादी विचारधाराओ के बीच शंकर की इस समन्वयवादी प्रवृत्ति का प्रभाव कबीर आदि मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियों पर भी कुछ अश में पड़ा उस समय दिखाई पड़ता है जब वे ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूप में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास करते है।

(२) स्वामी रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद

शंकर के 'मायावाद' की प्रतिक्रियास्वरूप स्वामी रामानुजाचार्य द्वारा प्रतिपादित 'विशिष्टाद्वैतवाद' मे 'अद्वैतवाद' की ही भाति ब्रह्म' को परम सत्ता तो मान लेते है किन्तु जहाँ शंकराचार्य जीव को नाम रूपोपाधि से कल्पित ब्रह्म को सत्य तथा जगत् को ब्रह्म की माया से प्रतिभासित मानते हे 'विशिष्टाद्वैतवाद' मे जीव को ब्रह्म का ही एक अंश माना गया है। इनके यहाँ भी लोक की उत्पत्ति ब्रह्म की माया-शक्ति से मानी गई है किन्तु यह माया-शक्ति विवर्त्त रूप मे नहीं, बल्कि 'ब्रह्म' के विकार रूप मे मान्य हुई है। शकराचार्य के अद्वैतवाद मे जहाँ ब्रह्म का ही एकमात्र अस्तित्व स्वीकार किया गया है रामानुजाचार्य के मत से 'जीव' और 'प्रकृति' को भी 'ब्रह्म' के समान ही अनादि माना गया है। इस मत को 'विशिष्टाद्वैत' इसलिये कहा गया है कि इसमे जीव को 'ब्रह्म' का एक विशिष्ट रूप माना गया है। मोक्ष की अवस्था मे भी 'ब्रह्म' मे इसकी सत्ता बनी रहती है, लय नही होती।[1] जीव ब्रह्म का अंश है अत: सदैव उसका सामीप्य चाहता है। 'ब्रह्म' को अभिव्यक्ति पाँच प्रकार स की जाती है—अन्तर्यामिन, सूक्ष्म, पूर्णावतार, अंशावतार और अर्चावतार, जो ब्रह्म के क्रमश. सूक्ष्म से स्थूलतर रूप है। साधक ब्रह्म के स्थूल रूप की उपासना करते-करते सूक्ष्म और अन्तर्यामी रूप का भी साक्षात्कार करने मे समर्थ हो सकता है।

स्वामी रामानुजाचार्य के मतानुसार जीव के परम कल्याण हेतु भगवान की 'श्री' नामक शक्ति सदैव सचेष्ट रहती है। 'श्री' की कृपा से ही जीव को पापों से मुक्ति मिलती है और उसे परम तत्व का सामीप्य प्राप्त होता है। यही आनन्द की पराकाष्ठा होती है जो मुक्ति मार्ग का वास्तविक रहस्य है। आगे चलकर सूफीमत' मे यही 'श्री', 'हुस्न' अथवा 'सौंदर्य' नाम से प्रतिष्ठित होती है जो साधक के हृदय मे 'इश्क' अथवा 'प्रेम' को विकसित करने का कारण बनती है। 'इश्क' का 'हुस्न'

---

१. सूफीमत और हिन्दी साहित्य— डॉ० विमल कुमार जैन, पृष्ठ १०७।

के साथ रहस्यात्मक मिलन (वस्ल) ही सूफीमत में पराकाष्ठा मानी गई है। संतमत मे भी जहाँ मधुराभक्ति के अन्तर्गत दाम्पत्य प्रेम का निरूपण किया गया है इसी विशिष्टाद्वैतवादी विचारधारा की झलक मिलती है।

(३) विष्णु स्वामी तथा वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद

'शुद्धाद्वैतवाद' के अन्तर्गत 'सर्व खलु इद ब्रह्म' अर्थात् सब कुछ ब्रह्म ही है की मान्यता दी गई है। इसके अन्तर्गत 'माया' को हटाकर 'अद्वैत' के शुद्ध रूप की व्याख्या की गई है। इसीलिये इसे 'शुद्धाद्वैतवाद' कहा जाता है। इस मत के अनुसार 'कृष्ण' को 'ब्रह्म' रूप मे प्रधानता दी गई है जो सत्, चित्, आनन्द स्वरूप बतलाया गया है। सच्चित् आत्मा एव चित् प्रकृति का जन्म इसी ब्रह्म मे हुआ है। इसीलिए प्रकृति को मिथ्या नही माना गया है। ससार मे ईश्वर-प्राप्ति के लिए भक्ति आवश्यक है जो भगवान श्रीकृष्ण की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है।[1]

बाद मे यही शुद्धाद्वैत वल्लभाचार्य द्वारा 'रुद्र सम्प्रदाय' नाम से प्रतिष्ठापित हुआ जो 'पुष्टिमार्ग' नाम से प्रख्यात हुआ। तार्किक दृष्टि से देखने पर यह मत शुद्ध द्वैतवाद सा ही दीख पड़ता है। इसमे अनेक जीव, जगत्, कर्म, स्वभाव, काल, अक्षर, ब्रह्म तथा परब्रह्म का भेद नित्य तथा सनातन रहता है।

'पुष्टिमार्ग' को साक्षात् भगवान श्रीकृष्ण के शरीर से उद्भूत माना जाता है। इसीलिये इसके अनुयायी आत्म-समर्पण भाव से रसात्मक प्रेम द्वारा भगवान की आनन्द-लीला मे तल्लीन होने के इच्छुक होते है। यह एकमात्र भगवान की कृपा पर निर्भर है। मुडकोपनिषद्,[2] और कठोपनिषद्[3] म भी इसी प्रकार के भाव मिलते है।

(४) मध्वाचार्य का द्वैतवाद

शंकराचार्य के 'अद्वैतवाद' की प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप ब्रह्म सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री मध्वाचार्य द्वारा प्रवर्तित 'द्वैतवाद' मे विष्णुरूप ब्रह्म की स्वतंत्रता मानी गई है। सारे चराचर का नियंता एकमात्र ब्रह्म ही है। जीवात्मा परतंत्र है। ब्रह्म और जीव मे स्वामी और सेवक का सम्बन्ध है। अत. जीव कभी भी ब्रह्म नहीं हो सकता। बैकुण्ठ प्राप्ति ही मुक्ति है जिसकी प्राप्ति के लिये ससार का ज्ञान

१. सूफीमत और हिन्दी साहित्य—डॉ० विमल कुमार जैन, पृष्ठ १०७-१०८।

२. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम्॥
—मुंडकोपनिषद् मुंडक ३ खड २ मंत्र ३।

३. कठोपनिषद् अध्याय १, वल्ली २, मंत्र २३।

आवश्यक है। इस तरह जगत् मिथ्या नही, सत्य है। माया भक्ति में बाधक है। अतः अग्राह्य है। मध्वाचार्य के द्वैतवाद में शंकराचार्य के अद्वैतवाद के 'अभेद' का खण्डन निम्नलिखित पंच-भेद के सिद्धान्त पर किया गया है :—

(१) ईश्वर का जीव से नित्य भेद है।

(२) जीव का जड़ पदार्थ से नित्य भेद है।

(३) एक जड़ पदार्थ का दूसरे पदार्थ से नित्य भेद है।

(४) ईश्वर का जड़ पदार्थ से नित्य भेद है।

(५) एक जीव का दूसरे जीव से नित्य भेद है।

मध्वाचार्य के इस 'द्वैतवाद' को मध्यकालीन 'सगुणोपासना' में विशेष रूप से ग्रहण किया गया है। किन्तु संतों के यहाँ जहाँ वे 'ब्रह्म' के निर्गुणत्व में सगुणत्व का भी आरोप करने लगते है आंशिक रूप में इसका कुछ-कुछ आभास मिलता है।

(५) निम्बार्काचार्य का द्वैताद्वैतवाद

इस मत के अनुसार 'कृष्ण' (ब्रह्म) सगुण भी है और निर्गुण भी है किन्तु इसके सगुण रूप का विशेष महत्व माना गया है। ब्रह्म को ही एकमात्र सृष्टिकर्त्ता स्वीकार किया गया है। सारी सृष्टि उसी का प्रदर्शन मात्र है। जीव भी उसी का अंश है किन्तु वह उससे अभिन्न नहीं है। मुक्ति हो जाने पर वह ब्रह्म-स्वरूप होते हुये भी ब्रह्म में एकाकार नहीं हो सकता। वह 'ब्रह्म' गोलोकवासी हो जायेगा। इस प्रकार मुक्ति का साधन श्रीकृष्ण की भक्ति है। आगे चलकर यह सम्प्रदाय 'सनकादि सम्प्रदाय' नाम से प्रख्यात हुआ। इसी सम्प्रदाय की एक शाखा 'राधा बल्लभ सम्प्रदाय' नाम से प्रचलित हुई जो हिन्दी के प्रसिद्ध कवि 'हित हरिवंश' द्वारा प्रवर्तित हुआ। इसमें भक्त भगवान श्रीकृष्ण से राधा के माध्यम से निवेदन करता है। इसी सम्प्रदाय के अन्तर्गत एक उप-सम्प्रदाय 'सखी भाव' वालो का भी है। हिन्दी संत कवियों की प्रेमोपासना पर इस मत का प्रभाव उस समय स्पष्ट पड़ा दिखाई पड़ता है जब वे ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दोनो रूपों को स्वीकार करते है।

(६) चैतन्य महाप्रभु का भेदाभेदवाद

निम्बार्काचार्य के द्वैताद्वैतवाद से मिलता-जुलता ही 'भेदाभेदवाद' भी है। इस मत के अनुसार 'ब्रह्म' से संसार की भिन्नता और अभिन्नता दोनों समान महत्व रखती है। इसीलिये इस मत को 'भेद' और 'अभेद' दोनों मानने वाला मत 'भेदाभेदवाद' कहा गया है। भेदाभेदवाद के सिद्धान्त को समझने के लिए एक उदाहरण लेना उचित होगा। मिट्टी से घट का निर्माण हुआ है अतः 'घट'

ार्य और मिट्टी कारण है। नाम-रूप और आकार की दृष्टि से दोनों भिन्न प्रतीत ोते हैं जब कि वास्तव मे घट और मिट्टी दोनों अभिन्न ही हैं क्योंकि घट और मट्टी तात्विक दृष्टि से एक ही हैं। ठीक यही बात संसार और ब्रह्म के भी म्बन्ध में है। 'संसार' कार्य है और 'ब्रह्म' कारण है। दोनों तात्विक दृष्टि से क होते हुये भी नाम-रूप और आकार की दृष्टि से एक-दूसरे से भिन्न हैं। संक्षेप े यही भेदाभेद का मूल सिद्धान्त है। चैतन्य महाप्रभु के इस भेदाभेदवाद का भाव सन्तों के यहाँ मधुराभक्ति के अंतर्गत दाम्पत्ति-प्रेम के रूप में दिखाई ड़ता है।

(७) इस्लामी दर्शन का एकेश्वरवाद

इस्लामी दर्शन के अनुसार 'अल्लाह' हर प्रकार का सामर्थ्य रखने वाला बादशाह है। (कुरान ५४ : ५५) आसमानों, जमीन और जो कुछ भी इनके बीच मे है वही सबका एकमात्र पालन-कर्त्ता तथा प्रभुत्व-शाली है।[1] अल्लाह के सिवा किसी का शासन नहीं है। (कुरान १२ : ४०)। यही इस्लामी एकेश्वरवाद का सिद्धान्त है। भारतीय 'अद्वैतवाद' से यह इस अर्थ में भिन्न है कि 'अद्वैतवाद' के अनुसार इस संसार मे ईश्वर के अतिरिक्त कोई दूसरा तत्व है ही नही। जो कुछ भी है वह ब्रह्म ही है। किन्तु 'एकेश्वरवाद' के अनुसार संसार में ईश्वर का ही एकमात्र प्रभुत्व स्वीकार किया गया है। संसार उससे भिन्न तत्व है जिसकी रचना उसने अपने चमत्कार प्रदर्शन के लिये की है। इस्लामी दर्शन का 'एकेश्वरवाद' मध्यकालीन हिन्दी के 'बाशरा' कोटि के सूफी कवियों की रचनाओं मे देखने को मिलता है। संतो का आध्यात्मिक दृष्टिकोण अत्यन्त ही व्यापक होने के कारण उनकी रचनाओं में इस्लामी दर्शन का यह 'एकेश्वरवाद' अत्यन्त ही गौण-सा हो गया है।

(ख) मध्यकालीन आध्यात्मिक साधना

साधना का स्वरूप—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, "किसी प्रधान उद्देश्य को ध्यान में लाकर उसके निमित्त आवश्यक यत्न करने की क्रिया को बहुधा 'साधना' की संज्ञा दी जाती है। उसका मुख्य लक्ष्य वा साध्य वस्तु या तो कोई ऐहिक सुख होता है अथवा पारलौकिक आनन्द हुआ करता है।[2]" इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किसी बाह्य शक्ति की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ण सहायता

---

१. कुरान मजीद सूर : ३८-अस्सफात आयत ६६।

२. उत्तरी भारत की संत परम्परा-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी सं० २०२१, पृष्ठ १६।

पर आश्रित होकर साधक अपनी साधना मे प्रवृत्त होता है किन्तु हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक कार्य मे प्रायः उक्त इन बातों का अभाव रहता है। वस्तुतः साधना की कोटि मे उन्ही कार्यों का उल्लेख किया जाता है जिनका सम्बन्ध धार्मिक कृत्यों अथवा आध्यात्मिक जीवन से होता है।

साधना के मार्ग—साधना का मुख्य आधार या तो ज्ञान होता है अथवा भक्ति। ज्ञानमयी साधना प्राय: तर्कसंगत होती है। वह अत्यन्त ही व्यवस्थित ढग से प्रतिपादित की जाती है। इसके प्रतिकूल भक्ति साधना में तर्क-वितर्क के स्थान पर श्रद्धा और विश्वास को प्रश्रय मिलता है। साधना को सम्पन्न करने के लिये विविध कर्मों तथा निश्चित नियमों का पालन भी करना होता है। साधक को दत्त-चित्त होकर लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना पड़ता है। इस तरह साधना मे ज्ञान और भक्ति मार्गों के साथ-साथ कर्म और योग मार्गों की भी आवश्यकता हो जाती है। संक्षेप में साधना के निम्नलिखित चार मार्ग होते है—

(१) ज्ञान मार्ग।
(२) कर्म मार्ग।
(३) योग मार्ग।
(४) भक्ति मार्ग।

साधना के उक्त चारो मार्ग व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र होते हुये भी परस्पर एक-दूसरे पर अवश्य ही आश्रित रहते है। बिना एक दूसरे की सहायता के किसी भी साधना मार्ग का अस्तित्व असंभव है। देश काल अथवा परिस्थिति के अनुसार किसी साधना पद्धति का महत्व भले ही बढ़ जाय किन्तु साधना के उक्त सभी मार्ग परस्पर सहायक रूप में सदैव विद्यमान् रहते है।

(१) ज्ञान मार्ग

जहाँ तक संत साधना का सम्बन्ध है सतो के ज्ञान मार्ग का आदि रूप अथर्ववेद मे वर्णित व्रात्यो की चिंतनधारा में मिलता है। ये व्रात्य अयाज्ञिक और तपस्या के पक्षपाती थे। शरीर को तपा-तपा कर, घुला-घुला कर ये अयाज्ञिक तपस्वी ब्रह्म चिंतन मे तल्लीन रहा करते थे तथा यज्ञ कर्मों का विरोध करते थे।

साधना के ज्ञान मार्ग के दो मुख्य आधार है—(१) शास्त्र (२) तर्क। जहाँ पर तात्विक ज्ञान का आधार केवल शास्त्रों को ही माना जाता है। शास्त्रो से हट कर स्वतत्र चितन करने की जहाँ थोड़ी भी गुंजायश नहीं होती उस साधना मार्ग को शास्त्रीय ज्ञान मार्ग नाम से पुकार सकते है। इस मार्ग में शास्त्रीय मान्यताओं को ही सर्वोपरि मान कर चला जाता है। वेदो, उपनिषदों

में वर्णित ज्ञान-तत्व इस मार्ग के आधार हैं। इस्लामी दर्शन में ज्ञान-तत्व कुरान सम्मत होने के कारण शास्त्रीय कोटि का कहा जा सकता है। इसमें कोई भी इस्लाम का कट्टर समर्थक कुरान के विधि-विधानों से हट कर चिंतन करने का साहस नहीं कर सकता।

इसके प्रतिकूल तर्कसंगत ज्ञान मार्ग वह साधना मार्ग है जहाँ पर तात्विक चिंतन के लिये साधक को तर्क-वितर्क करने तथा स्वतंत्र चिंतन करने की पूरी छूट होती है। इसमें वह शास्त्रीय ज्ञान का अध्ययन तो कर सकता है, किन्तु उस पर चिंतन करने के लिए वह पूर्णतया स्वतंत्र है। वह शास्त्रीय विधि-विधानों का अनुसरण करने को बाध्य नहीं है। तर्कसंगत ज्ञान मार्ग में ज्ञान तत्व शास्त्रीय न होकर स्वानुभूति जन्य होता है। मध्यकालीन हिन्दी संत साधना का ज्ञान मार्ग प्राय. इसी कोटि का कहा जा सकता है। संतों ने शास्त्रीय ज्ञान को केवल ढोंग बतलाया है। वे "कागद लेखी" पर विश्वास न करके 'आंखो देखी' पर आस्था रखने लगे थे। उनसे पूर्व साधना मार्ग शास्त्रीय ज्ञान पर आधारित था। ठीक इसी प्रकार इस्लामी दर्शन में भी "वाशरा" कोटि के सूफियों की साधना का ज्ञान मार्ग शास्त्रीय कोटि का तथा "वेशरा" कोटि के सूफियों का ज्ञान मार्ग तर्क-संगत कोटि का ज्ञान कहा जा सकता है। शास्त्रीय ज्ञान मस्तिष्क प्रसूत होता है जब कि तर्क-संगत ज्ञान हृदय-जन्य होता है। इसीलिये शास्त्रीय ज्ञान में जहाँ नीरस विवेचन के प्रतिपादन के अतिरिक्त अन्य व्यापारों की आवश्यकता नहीं होती। हृदय प्रसूत तर्क-संगत ज्ञान में इंद्रियाँ अपना-अपना काम एक साथ करती प्रतीत होती है और इसी कारण इसका परिणाम सच्चे अनुभव के रूप में सरस और सहज ग्राह्य बन जाता है। इसे "सहज ज्ञान" भी कह सकते हैं। संतों के इस सहज ज्ञान में निर्गुण परमात्म तत्व के प्रति प्रदर्शित प्रेमाभक्ति विषयक उद्‌गार मिलते हैं। इसमें आत्म ज्ञान जनित आनंद की अनुभूति होती है साथ ही एक ऐसे आध्यात्मिक जीवन की रूप-रेखा भी सामने आती है जिसमें पूर्ण शांति, सद्‌भावना तथा विश्व-कल्याण के भाव निहित होते है। संत-साधना में "ज्ञान मार्ग" से हमारा तात्पर्य इसी "सहज ज्ञान" से है वेदों और उपनिषदों के नीरस तत्व-ज्ञान से नहीं। इस ज्ञान मार्ग में साधक संसार में रहते हुये शास्त्रीय ज्ञान के अभाव में भी तत्व-चिंतन में बराबर लीन रहता है और केवल उन्हीं सत्यों को जीवन में अपनाता है जो उसके अनुभव की कसौटी पर खरे उतरते हैं।

(२) मार्ग

कर्म शब्द की उत्पत्ति "कृ" धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'करना"। इस

शब्द का पारिभाषिक अर्थ "कर्मफल" भी होता है। यदि दार्शनिक दृष्टि से विचार किया जाय तो इसका अर्थ कभी-कभी वे फल भी होते हैं जिनका कारण हमारे पूर्व जन्म के कर्म रहते हैं। किन्तु यहाँ पर "कर्म" शब्द से हमारा मतलब "कार्य" से ही है।

साधना में 'कर्म' से तात्पर्य उन विधि विधानों से है जिन्हें सम्पन्न करते हुये साधक अपने साधना मार्ग पर अग्रसर होता है। ये कर्म प्रायः दो प्रकार के होते हैं :—

(१) वाह्य कर्म, (२) अन्तः कर्म।

'वाह्य कर्म' से तात्पर्य यज्ञ, अनुष्ठान, पूजा, अर्चा आदि से संबंधित माना जा सकता है तथा 'अन्तः कर्म' से तात्पर्य उन कर्मों से लगाया जा सकता है जिसे अपनाकर साधक अपने अन्तःकरण को शुद्ध करता है। ये कर्म प्रायः आचरण और नैतिकता से संबंधित होते है जैसे सत्य बोलना, जीवों पर दया करना, आदि। वैदिक काल में साधना के लिये 'यज्ञों' का जो विधान मिलता है उसके पीछे इसी वाह्य कर्म का रहस्य छिपा हुआ है। किन्तु केवल 'बाह्य कर्म' मात्र ही साधना को सफल बनाने मे सहायक सिद्ध नही हो सकता उसके लिये अन्तः कर्मों का होना भी आवश्यक होता है। वैदिक साधना मे यज्ञ, तप, आदि अनुष्ठानो को भले ही महत्व दिया गया किन्तु इस वाह्य कर्म साधना को परवर्ती साधकों ने निरर्थक मान लिया। उन्होने उपनिषदों के रचनाकाल तक आते-आते इसकी कटु आलोचनाएं तक भी कर डालीं किन्तु आगे चलकर गीता में पुनः 'कर्म' के महत्व को स्थापित किया गया है। इस 'कर्म मार्ग' को 'प्रवृत्ति मार्ग' का नाम दिया गया जिसका सम्बन्ध 'निष्काम कर्म' से है। इस तरह साधना में 'कर्म मार्ग' निःस्वार्थपरता एवं सत्कर्म द्वारा मुक्ति प्राप्त करने की एक विशेष प्रणाली है। इसमें साधक को किसी मत अथवा धर्म विशेष के अनुसरण करने की आवश्यकता नहीं होती। इसमें निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्यों का पालन करना ही 'कर्म' माना गया है। गीता की कर्म साधना मे व्यक्तिगत कल्याण की अपेक्षा समष्टिगत कल्याण की भावना सर्वोपरि मानी गयी। 'कर्म मार्ग' की यही उत्कृष्टता भगवान बुद्ध की साधना में दृष्टिगोचर होती है। आगे चलकर संत साधना में भी कर्म की विश्व कल्याणकारी भावना के दर्शन होते हैं।

सूफी एवं सत साधना में यद्यपि 'वाह्य कर्मों' की निश्चय ही उपेक्षा की गई है, उन्हे वाह्याडम्बर ढोंग बताकर त्याज्य माना गया है किन्तु अन्तः कर्मों पर मतो ने भी विशेष रूप से बल दिया है। इस तरह 'कर्म मार्ग' भी साधना मे एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

(३) योग मार्ग

'योग' शब्द युज् धातु से बनता है। जिसका तात्पर्य 'समाधि' है अर्थात्

पूर्णरूप से ब्रह्म के साथ युक्त हो जाना ही योग है।[1] इस तरह जिस अवस्था में परब्रह्म की सत्ता, चैतन्य और आनंद स्वत: हमारी वाणी भाव और कार्य द्वारा प्रस्फुटित हो प्रकट हो जाए उसी का नाम योग है। महर्षि पातंजलि के मतानुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध सर्वथा स्थगित हो जाना ही 'योग' है।[2] योग शास्त्र की तीन अवस्थाएँ मानी गई है :—

(१) **सविकल्प योग**—यह पूर्वावस्था है जिसमें विवेक ज्ञान नही होता।

(२) **निर्विकल्प योग**—इसे निर्विकार समाधि भी कहा जाता है।

(३) **निर्बीज योग**—इस अवस्था में चित्त की समस्त वृत्तियां नष्ट हो जाती है। यही योग का अन्तिम लक्ष्य होता है।

योग भारत का अत्यन्त ही प्राचीन एवं महत्वपूर्ण साधन है। बीज रूप में 'योग मार्ग' सम्बन्धी चर्चा वेदों मे भी मिलती है। वेदों के अतिरिक्त उपनिषद, गीता, श्रीमद्भागवत्, योग वाशिष्ठ तथा तंत्र ग्रन्थों मे भी 'योग' का विशेष उल्लेख प्राप्य है[3]। भारत में प्राय: सभी प्राचीन धर्म जैसे बौद्ध धर्म, जैन धर्म, आदि योग की महत्ता को पूर्णरूप से स्वीकार करते है। तंत्र शास्त्र की साधना में भी योग को विशेष महत्व प्रदान किया गया है। 'नाथ सम्प्रदाय' तो योग की विशिष्टता के कारण योगी नाम से ही प्रख्यात् हो गया। गोरखनाथ तथा अन्य सिद्धों के ग्रन्थों मे अमृत, नाद, अमृतबिन्दु, तेजबिन्दु, नादबिन्दु, हन्स, कुडलिनी आदि का वर्णन बड़े ही विस्तार के साथ किया गया है। नाथ पंक्तियों के पश्चात् सूफी और संत साधनाओ में भी योग विषयक वर्णन पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध होते है।

'योग' को दो श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है : —(१) हठ योग और (२) राज योग।

(१) **हठ योग—(कुंडलिनी योग)**—श्वास प्रश्वास एव शारीरिक अंगो पर अधिकार प्राप्त कर उसका उचित संचालन करते हुये मन को एकाग्र करना और उसे 'परमब्रह्म' में नियोजित करना 'हठ योग' है। इसमें, यम, नियम, शासन और प्राणायाम की साधना करके वायु तथा श्वासों पर अधिकार किया जाता है तथा अंगों एवं इन्द्रियों को नियन्त्रित करके चित्त को बलपूर्वक ब्रह्म में मिलाया जाता है। इसका सम्बन्ध दैहिक साधना से है। इसमें शरीर को कष्ट दे देकर सुखा डालते है। लक्ष्य की प्राप्ति के लिये दैहिक कष्ट की इस हठीली प्रवृत्ति के कारण ही इस 'हठ योग' नाम दिया गया है। 'हठ योग' को 'कुंडलिनी योग' भी

---

१. संत दर्शन—डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित (संतों की सहज समाधि साधना)

२. 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध' :—पातंजल योग-दर्शन (समाधि पाद १, सूत्र २)।

३. कल्याण — योगांक (पृष्ठ ८१ से १२२ तक)।

कहा जाता है। इसमें श्वास निरोध द्वारा कुंडलिनी को जाग्रत कर ऊपर को उठाया जाता है और ब्रह्मरंध्र तक पहुँचाया जाता है। शरीर के अंतर्गत इडा, पिंगला और सुषुम्ना तीन नाडियां है जिससे सुषुम्ना नाड़ी वाहिका है जिसके द्वारा कुंडलिनी षट चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्मरंध्र तक पहुँचती है। 'इडा' को चन्द्र नाड़ी तथा 'पिंगला' को सूर्य नाडी कहा गया है। त्रिनाडियों के संगम को 'त्रिवेणी' या ब्रह्मरंध्र कहते हैं। योगियों के प्राण प्रायः इसी रंध्र को बेध कर निकलते हैं। इसी को 'दशम द्वार' भी कहा जाता है जिसके खुलते ही 'अमृत रस' झरने लगता है। इसीलिये योगियो की भाषा में इस 'ब्रह्मरंध्र' को 'उलटा कुआँ' भी कहा जाता है। बौद्धों के यहाँ यही ब्रह्मरंध्र 'रोचन द्वार' कहा गया है।

हठ योग की परिणति के फलस्वरूप हिन्दू पद्धति के अनुसार साधक को समाधि की उपलब्धि होती है। नाथ पंथी इस समाधि में कुंडलिनी रूपी शक्ति का सहस्रार स्थित शिव से मिलन मानते है। आगे चलकर संत और सूफी साहित्य में आत्मा और परमात्मा के विवाह और मिलन के रूप मे इसे बतलाया गया है।

(२) **राज योग**— 'हठ योग' मे जहां शारीरिक साधना पर विशेष जोर दिया जाता है वहां राज योग में चित्तवृत्तियों को वश में करने का विशेष प्रयास किया जाता है। महर्षि पतंजलि के अनुसार जिस समय चित्त की वृत्तियो का निरोध हो जाता है उस समय 'द्रष्टा' आत्मा अपने ही रूप में स्थित हो जाती है।[२] चित्त निरोध की दो मुख्य विधियां हैं :—

(१) प्राण स्पदंन की गति पर सम्यक् नियंत्रण।

(२) वैराग्य विवेक द्वारा मन को वाह्य विषयों से हटाना।

इस तरह प्रवृत्ति भावना से अलग हो निवृत्ति भावना के दृढ़ हो जाने पर मन का निरोध अपने आप हो जाता है। इसके लिये शास्त्र श्रवण, मनन, सदाचार और सत्संग आवश्यक होते हैं। मनः साधना के लिये लगन, साधना और धैर्य की नितांत ही आवश्यकता है।[3]

---

१. षटचक्र (१) मूलाधार चक्र, (२) स्वाधिष्ठान चक्र, (३) मणिपूरक चक्र, (४) अनाहत चक्र, (५) विशुद्ध चक्र, (६) आज्ञा चक्र।

२. 'तदा द्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम्'- पातंजल-योग दर्शन (समाधि पाद १, सूत्र ३)

३. 'स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारा ऽऽसेवितो दृढभूमिः।" वही (समाधि पाद १, सूत्र १४)

अथवा

'स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥"—गीता अध्याय ६, श्लोक २३।

राज-योग का साधक माया और योग के बीच रहते हुये भी कमल की भांति प्रभाव हीन रखता है। उस पर पाप और पुण्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह सदा परमानंद में मग्न रहता है। उसके कल्याणकारी गुण चन्द्रकला की भांति क्रमशः बढते रहते है। उसे सुख, दुःख, हर्ष और शोक व्याप्त नही होता। वह न तो अग्नि मे जलता है और न पानी में डूबता है।[१] राज योग के लक्षणों का उल्लेख पातंजल योग दर्शन मे विभूति पाद ३ के सूत्र ३६ से ५० तक वर्णित है जिसके अनुसार संयम से पुरुष का ज्ञान होने पर प्रातिम (भूत, भविष्य और वर्तमान तथा सूक्ष्म व ढँकी वस्तुओ का ज्ञान), श्रावण (दिव्य शब्द सुनने की शक्ति), वेदन (दिव्य स्पर्श की अनुभव-शक्ति), आदर्श (दिव्य रूप के दर्शन करने की शक्ति), आस्वाद (दिव्य रस के अनुभव की शक्ति). वार्त्ता (दिव्य गंध के अनुभव की शक्ति) ये ६ सिद्धियाँ प्रकट होती है।[२]

राज योग सभी योगों मे श्रेष्ठ है। डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित के अनुसार 'मन को एकाग्र करके परब्रह्म के आनन्द स्वरूप का मनन करते हुये आत्म समाधिस्थ हो ब्रह्म से मिलना राज योग है।'[3] इसमें काया साधना के साथ-साथ प्राण साधना और मन साधना भी सम्मिलित है। इसमें अष्टांग योग के अंतिम तीन अंग--ध्यान, धारणा और समाधि विशेष रूप से महत्वपूर्ण माने गये है। इसमे ज्ञान और भक्ति का भी समावेश रहता है। राज योग के दो उपभेद भी है—(१) मन्त्र योग और (२) लय योग।

(१) **मन्त्र योग**—जप साधना मन्त्र योग की सबसे बड़ी विशेषता है। जब किसी 'मन्त्र' के द्वारा चित्तवृत्ति का निरोध किया जाता है तो उसे 'मन्त्र योग' कहते है। महर्षि पतजलि ने भी 'तस्य वाचक '[४] लिखकर मन्त्र योग की ओर संकेत किया है इस योग के अनुसार 'नाम' और 'नामी' का सम्बन्ध अकाट्य और अनादि माना गया है। शास्त्रो में 'नाम-जप' को बड़ी विशेषता बतलाई गई है। गीता में

---

१. सदा प्रसन्न परम आनंदा। दिन दिन कला बधै ज्यू चंदा ।।
जाकौ दुःख अरु सुख नहि होई। हर्ष शोक व्यापै नहि कोई ।।
अग्नि न जरै न बूडै पानी। राज योग की यह गति जानी ।।
—सुदर-सार-पुरोहित हरिनारायण (पृष्ठ ५८ राजयोग)

२ 'ततः प्रातिम श्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते'
—पातंजल योग दर्शन (विभूति पाद ३, सूत्र ३६)

३. मलूकदास, चरणदास की दार्शनिक विचारधारा
—डॉ० त्रिलोकीनारायण दी० (पृ० ५३४)

४. पातंजल योग दर्शन—(साधना पाद १, सूत्र २७)

भी भगवान श्रीकृष्ण ने अपने को यज्ञों में श्रेष्ठ 'जप यज्ञ' ही बतलाया है।[1] मनु ने भी एक स्थान पर कहा है कि साधक और कुछ करे अथवा न करे वह केवल जप से ही सिद्धि पा जाता है।[2] 'मन्त्र' शब्द से तात्पर्य उन 'शब्द' अथवा वाक्यों से है जिनका जप देवताओं की प्रसन्नता या कामनाओं की सिद्धि के लिए की जाती है। वैदिक साहित्य में 'मन्त्रों' की भरमार तो है ही, बौद्ध मत के 'तन्त्रयान' सम्प्रदाय में भी 'मन्त्र' साधना को प्रमुख स्थान दिया गया है। नाथ और सिद्ध सम्प्रदायों में भी मन्त्रों को विशेष महत्व मिला है। आगे चलकर सूफियों और सन्तों ने भी मन्त्र जप को ग्रहण किया है। सूफियों के यहां 'जिक्र' जप का ही दूसरा रूप है। सन्तों की 'नाम स्मरण साधना' मन्त्र योग ही है। उनके यहां 'मन्त्र योग' की शास्त्रीय विधि को नहीं अपनाया गया है। वे मुद्रा, तर्पण, बलि आदि की आलोचना करते हैं किन्तु शुद्ध आसन, आचार, योग, जप, ध्यान और समाधि का समर्थन करते है।

(२) **लय योग**—अनुभवी गुरू के मार्ग निर्देशन मे पिंड का रहस्य जान लेने के पश्चात् आवश्यक क्रियाओं द्वारा 'प्रकृति' (कुडलिनी) को पुरुष (सहस्रार) में 'लय' कर देना ही 'लय योग' है। इसकी दो प्रमुख विशेषताएँ है—(१) सपूर्ण ब्रह्मांड का दर्शन स्वशरीर में करना; तथा (२) साधना द्वारा अन्तर्जगत् मे एक अलौकिक बिंदु के दर्शन करना तथा उसी बिंदु मे स्थित रह कर परमात्मा का ध्यान करना। इसके विरुद्ध 'मन्त्र योग' में साधक 'ब्रह्म' के रूप की कल्पना करके ध्यान करता है और हठ योग में 'योगी' 'ज्योति' की कल्पना करता है सन्तों के यहाँ 'लय' शब्द का प्रयोग बहुत ही सामान्य अर्थ मे हुआ है। यहां 'लय' का तात्पर्य 'प्रेम' से लिया जा सकता है अर्थात् अति अधिक एकाग्र मन से परब्रह्म निर्गुण परमात्मा का ध्यान करना ही 'लय योग' को सन्तों की 'समाधि अवस्था' तथा सूफ़ियों के 'फना' का पर्याय माना जा सकता है।

(३) भक्ति मार्ग

'भक्ति' से तात्पर्य उस क्रिया से है जिसके द्वारा साधक अपने मन को 'ब्रह्म' के स्वरूप मे नियोजित करता है। गीता के अनुसार भक्ति को भी एक योग ही माना गया है। भक्ति योग के अन्तर्गत भक्ति के तीन स्वरूप हैं—अनुग्रह, प्रेम और भक्ति। पुत्र अथवा शिष्य के प्रति जो प्रेम किया जाता है उसे 'अनुग्रह' कहते है। स्त्री आदि के प्रति किये गये स्नेह को प्रेम और अपने से श्रेष्ठ जनों अथवा देवताओं

---

१. 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि'—गीता अध्याय १०, श्लोक २४

२. गीता रहस्य—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, पृष्ठ ७५८

के प्रति प्रदर्शित 'स्नेह' को भक्ति की संज्ञा दी गई है। 'भक्ति' का प्रादुर्भाव भगवान की कृपा से ही होता है।[1]

धर्मशास्त्र के अनुसार भक्ति योग की बड़ी प्रशंसा की गई है। 'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया है कि अनन्य भक्ति करके मुझे जाना जा सकता है, देखा जा सकता है और मेरे प्रति एकात्मभाव पैदा किया जा सकता है।[2] श्रीमद्भागवत् पुराण में भी भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि जिस प्रकार आग में तपाने पर सोना मैल छोड़ देता है उसी प्रकार मेरे भक्ति योग के द्वारा आत्मा कर्म और वासनाओं से मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त हो जाती है क्योंकि मैं ही उसका वास्तविक स्वरूप हूँ।[3] भक्ति योग को ही साधन भक्ति भी कहते हैं जिसके द्वारा परा भक्ति का अधिकार होता है। महर्षि शांडिल्य के मत से 'सा परानुरक्तिरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर मे परम प्रेम ही भक्ति है। ठीक यही भाव नारद के भक्ति सूत्र मे भी मिलता है। यथा :—

'सा त्वस्मिन परम प्रेम रूपा 'तथा' ॐ सा कस्मै परम प्रेम रूपा'

भक्ति योग की सीमा में वर्ण, वर्ग अथवा आश्रम की कोई आवश्यकता नहीं होती। महर्षि शांडिल्य के अनुसार 'भक्ति' मे अनेक भावो का सामंजस्य होता है। यथा : —

'सम्मान, बहुमान, प्रीति, बिरहे, तरचिकित्सा महिमा ख्याति।
तदर्थ प्राण स्थानतदीयता सर्व्वतदभावा।
प्रीति कूल्यादीनि च स्मरणेन्यो वाहुल्यात्।।[4]

भक्ति के भेद—यों तो विद्वानो ने भक्ति के अनेक भेद किये हैं किन्तु हम भक्ति को स्वभाव के अनुसार केवल दो कोटियो में बाट सकते है —

(१) वैधी भक्ति
(२) रागानुगा भक्ति।

---

१ मुण्डकोपनिषद् मुंडक ३, खण्ड २, मन्त्र ३ तथा कठोपनिषद् १/२/२३

२. भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।

—गीता—११/५४

३. यथा अग्निना हेम मलं जहाति, ध्यमातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूयमद् योगेन भजत्यथो माम्।।

—श्रीमद्भागवत् पुराण—स्कंद ११ (अध्याय १४ श्लोक २५)

४. शांडिल्य सूत्र २/१/४

वैधी भक्ति से तात्पर्य उस कोटि की भक्ति से है जिसका विवेचन नारद भक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्ति सूत्र तथा अन्य धर्म ग्रन्थों में किया गया है। इस प्रकार की भक्ति-साधना के लिये एक निश्चित विधि का अनुसरण करना आवश्यक होता है। देवर्षि नारद द्वारा भक्ति के ८४ सूत्रों द्वारा तथा अन्य धर्मशास्त्रों में वर्णित भक्ति तत्व की व्याख्या, भक्ति के अन्तराल, भक्ति के साधन, भक्ति महिमा, भक्तों के महत्व आदि पर डाले गये प्रकाश इसके मूल आधार होते हैं। इसके विरुद्ध 'रागानुगा' भक्ति का मूल आधार शास्त्रीय न होकर एकमात्र 'प्रेम' ही होता है। इसमें साधक किसी भी विधि-विधान की चिन्ता किये बिना ही सहज भाव से भगवान के चरणों मे अपने को समर्पित कर देता है।

भक्ति का विकास-क्रम---भक्ति साधना का पूर्ण विकास सातवीं, आठवीं और नवी शताब्दी मे सुदूर दक्षिण के आड्वार भक्तों के माध्यम से हुआ। इनकी भक्ति-साधना का प्रधान लक्ष्य अपने आराध्यदेव के प्रति अनन्य भावना, आत्म-समर्पण की तीव्र आकांक्षा अत्यन्त ही साधारण सात्विक जीवनचर्या, सांसारिकता के प्रति अनासक्ति एवं कृष्णावतार की विविध लीलाओं का भावपूर्ण गीतों में तल्लीनता-पूर्वक गायन था। इनमें किसी प्रकार की भेद-भावना का अभाव था। अड्वारो की यह भक्ति साधना क्रमश. दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ने लगी जिसका प्रभाव महाराष्ट्र के 'बारकरी सम्प्रदाय' पर भी पड़ा जिसके परिणामस्वरूप 'बारकरी संप्रदाय' के सन्तो ने 'विट्ठल' को अपना आराध्यदेव मानकर उसके प्रति अनन्य प्रेम भावना से निर्गुण भक्ति का प्रदर्शन किया। उत्तरी भारत में सन्त नामदेव ने जिस निर्गुण पंथ का प्रचार किया वह महाराष्ट्र का 'बारकरी सम्प्रदाय' था जिसमें कर्मकाण्डों का बहिष्कार कर सर्व-सुलभ 'भक्ति' का मार्ग बतलाया गया।

आगे चलकर मध्यकालीन सन्तों ने अपनी साधना में इसी प्रकार की भक्ति का आश्रय लिया जो 'प्रेमा भक्ति' के नाम से मान्य हुई। निर्गुण की इस अद्वैत भक्ति में सगुण रूप की आवश्यक भूमिका इसलिये माननी पड़ी कि प्रभु से तादात्म्य स्थापित करने के लिये उसके नाम का निरन्तर स्मरण और उसके अलौकिक गुणों का कीर्तन किया जा सके। प्रभु के प्रति किये गये प्रेम का स्वरूप विशेषकर निम्न-लिखित रूपों मे परिलक्षित हुआ :—

(१) दास्य भाव।
(२) सख्य भाव।
(३) वात्सल्य भाव।
(४) दाम्पत्य भाव।

यद्यपि भक्ति का यह स्वरूप हमारे धर्मशास्त्रों में बहुत पहले से वर्णित है

किन्तु शास्त्रों में वर्णित भक्ति वैधी (मर्यादित) कोटि का था। उसमें भक्त अपने आराध्य देव के प्रति जिस प्रेम का प्रदर्शन करता है वह एक सीमा तक ही मर्यादित है किन्तु सन्तों की भक्ति 'अभेद भक्ति' का एक रूप थी। इसके माध्यम से जो मानवीय प्रेम अब तक दाम्पत्य जीवन, मैत्री जीवन एवं पारिवारिक जीवन के सीकचों में जकड़ा हुआ था वह शुद्ध रूप में विकसित होकर ईश्वरीय प्रेम के रूप मे परिणित हो गया। 'भक्ति' का यह स्वरूप इस्लाम के माध्यम से आये हुये 'सूफी-सम्प्रदाय' की प्रेम-साधना और विरह-साधना में भी पहले से ही दिखलाई पड़ती है।

इस्लामी रहस्यवाद का प्रेम मार्ग

जैसा कि हम सकेत कर चुके है सन्तो की भक्ति-साधना के साथ-साथ हिन्दी के मध्य युग में इस्लामी रहस्यवाद के 'प्रेम मार्ग' का भी विशेष प्रभाव था जो 'सूफी प्रेम साधना' के नाम से अभिहित हुआ है। भारतीय भक्ति मे 'प्रेम' के नाम से जो 'रति' का प्रतिपादन हुआ है उसमें श्रद्धा और भय की प्रधानता है। वह मर्यादित और वंधी है किन्तु सूफी प्रेम साधना का प्रेम किसी मर्यादा की परिधि से बिलकुल ही बाहर है। 'सूफीमत' के अनुसार 'प्रेम' को एक 'दैवी विभूति' माना गया है जिसकी साधना अत्यन्त ही कठोर बतलाई गई है। प्रेम के लिये साधक को अपने प्राणों तक की बाजी लगानी पड़ती है। इनके प्रेम में 'रति भाव' की प्रधानता होती है। प्रियतम के प्रति पूर्ण रति के बिना नाना प्रकार के वेश आदि व्यर्थ हैं। यदि रति है तो वन सदन सब समान है। चाहे जहां रहकर उसे अपनाया जाय वह प्रसन्न हो जाता है। दिव्य प्रेम की अभिव्यक्ति पर से सभी प्रकार के आवरण हट जाते है।

सूफियों की प्रेम साधना में 'विरह' को विशेष महत्व दिया गया है। सूफी सिद्धान्त के अनुसार जिस तरह जीवात्मा परमात्मा से मिलने के लिये आतुर रहता है उसी तरह परमात्मा भी जीवात्मा से मिलने के लिये तड़पता रहता है। विरह साधक के लिये अत्यन्त ही सहायक सिद्ध होता है। 'विरह की पीर' प्रिय की स्मृति को सदैव जगा दिया करती है।

सूफी प्रेम साधना एक प्रकार से 'प्रतीकोपासना' कही जा सकती है। उनका लौकिक प्रेम एक प्रकार से ईश्वरीय प्रेम का प्रतीक है। सूफी आस्था के अनुसार प्रेम, ईश्वरीय प्रेम तक पहुँचने का सोपान होता है जिसके सहारे साधक प्रिय (ईश्वर) प्राप्ति में समर्थ होता है। सूफी ईश्वर और जीव को भिन्न मानते हैं। उनके मतानुसार जीव ईश्वर का अंश है। प्रेम की उद्भावना के पूर्व ममता और अहंकार की भावना, दोनो के मिलन में अवरोध पैदा करती है। सूफियों के दिव्य

प्रेम का परिणाम बड़ा ही मधुर होता है जो कोई प्रेम मार्ग को पार कर प्रियतम का साक्षात्कार कर लेता है वह फिर वापस आकर भौतिक प्रपंच में नही फंसता। साधक को प्रियतम के साक्षात्कार के पश्चात् उस उत्तम पद की प्राप्ति हो जाती है जहाँ कभी मृत्यु का भय नहीं होता सदा सुख का हीं निवास होता है। अरब मे उद्भूत तथा फारस मे पल्लवित इस्लामी रहस्यवाद के इस सूफियाना प्रेम मार्ग को भी हमारे मध्यकालीन हिन्दी संत कवियों ने बहुत कुछ अंशों मे ग्रहण करने का प्रयास किया है और इसी के परिणामस्वरूप वे 'वैधी भक्ति' का बहिष्कार करने लगते है।

साधना के विभिन्न मार्गों का सामंजस्य

जैसा कि हम पहले ही संकेत कर चुके है कोई भी साधना मार्ग अपने मे पूर्ण नहीं कहा जा सकता। साधना की सफलता के लिये उक्त सभी साधना मार्गों का कम अथवा अधिक प्रयोग आवश्यक होता है। हमारे मध्यकालीन हिन्दी के संत कवियो की साधना में उक्त सभी साधना मार्गों का सामंजस्य दिखलाई पड़ता है। जहाँ वे 'ज्ञान मार्ग का अनुसरण करते है केवल तर्क-संगत अनुभूत ज्ञान को ग्रहण करते हैं। शास्त्रीय ज्ञान से उन्हे कोई मतलब नही होता। जहाँ 'कर्म मार्ग' का अनुसरण करते है वे अन्त. कर्म के सिद्धान्त को अपनाकर नैतिकता और सदाचार पर जोर देते है। यज्ञ आदि वाह्याचारों का विरोध करते है। जहाँ तक योग मार्ग के अनुसरण का प्रश्न है वे चित्त-निवृत्ति के लिये हठयोग (कुण्डलिनी) योग का उल्लेख तो करते है किन्तु काया साधना पर विशेष जोर न देकर 'राजयोग' को ही विशेष प्रश्रय देते है। मन्त्र योग इनके नाम स्मरण मे तथा लय योग इनको समाधि अवस्था मे दृष्टिगोचर होते है। भक्ति मार्ग की रामानुगा भक्ति ही इनको प्रिय है। दाम्पत्य प्रेम की भावना का ही विशेष रूप से इनकी भक्ति साधना मे प्राबल्य होता है। प्रेम की विह्वलता और विरह की बेचैनी संतो ने 'सूफी प्रेम मार्ग' से ग्रहण किया है। इस तरह संत साधना प्रचलित सभी साधना मार्गों का एक समन्वित रूप कही जा सकती है।

निष्कर्ष

मध्यकालीन आध्यात्मिक सिद्धान्त और साधना का पृथक्-पृथक् विवेचन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आलोच्य काल में अध्यात्म और साधना सम्बन्धी दो प्रकार की विचारधारायें प्रचलित थीं। एक तो शुद्ध भारतीय आध्यात्मिक सिद्धान्त और साधना की धारा थी जिसका सम्बन्ध वेदान्त, उपनिषद्

तथा अन्य धर्म ग्रन्थों से था, दूसरी इस्लामी रहस्यवाद के रूप में फारस से आई सूफी सिद्धान्त और साधना की धारा थी जो अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय सिद्धान्तो मे साम्य रखते हुये भी प्रत्यक्षतः विदेशी परिवेश में दिखाई पड़ती थी। एक तरफ भारतीय आध्यात्मिक सिद्धान्त और साधना समय और परिस्थितियों के अनुसार ज्ञान मार्ग, कर्ममार्ग, योग मार्ग, भक्ति मार्ग से होती हुई आगे बढ रही थी तथा अपने मे सभी साधना मार्गों के समन्वित रूप को आत्मसात् करती हुई भक्ति मार्ग के 'प्रेमाभक्ति' पर आकर टिकी हुई थी। दूसरी ओर सूफियों की प्रेम साधना विदेशो से आकर विश्व प्रेम की उदार भावना के कारण अपनी ओर सबको आकृष्ट कर रही थी। मध्यकालीन हिन्दी के संतो की साधना में इन दोनों विचारधाराओं का एक साथ सगम हुआ है। संतों ने भारतीय साधना से जहा तत्व ज्ञान, भक्ति, योग, सदाचार, नैतिकता, निर्गुणोपासना आदि को आत्मसात् किया है वही सूफी प्रेम साधना से प्रेम तत्व को अपनाया है। जैसा कि हम ऊपर संकेत कर चुके है। सूफियों से प्राप्त यह प्रेम तत्व की ही एक ऐसी विशेषता थी जिसके माधुर्य ने संतो की आध्यात्मिक साधना को अत्यन्त ही सरल, सहज, सरस और सुग्राह्य बनाकर प्रिय बना दिया।

सूफी अध्यात्म के सिद्धान्त और साधना का प्रभाव हमारे मध्यकालीन हिन्दी के संत कवियों पर किस अंश तक पडा है उसके विवेचन के लिये हमे दोनो की आध्यात्मिक विचारधाराओं का पृथक्-पृथक् विवेचन करना आवश्यक होगा।

अध्याय ३

सूफीमत और उसका भारतीय स्वरूप

'सूफीमत' इस्लामी दर्शन का उत्तरवादी संस्करण है जो इस्लाम की कट्टर-पंथी कुरान समर्थित मान्यताओ के विरोध स्वरूप अरब में प्रवर्तित हुआ किन्तु फारस मे जाकर विकसित हुआ। राजाश्रय के लोभ मे इसे समय-समय पर कुरान की मान्यताओं को स्वीकार करने के लिये विवश होना पड़ा एवं कालांतर में जैसे-जैसे अन्य धर्म, संस्कृति तथा दर्शन से सम्पर्क बढ़ा इसने अपनी उदारता से उनसे समन्वय स्थापित किया और अपने सिद्धान्तो में परिवर्तन कर लोकप्रियता प्राप्त की।

'सूफीमत' शब्द का मूल स्रोत

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे बहुत पहले से विवाद चला आ रहा है। 'अलबेरूनी' (जन्मकाल ९७३ ई०) के जीवन-काल मे 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफी (ऊन)' से मानी जाती रही किन्तु 'अलबेरूनी' ने इसे मानने से अस्वीकार किया। उसके कथनानुसार 'सूफी' वह युवक है जो 'साफी' (पवित्र) है। यह 'साफी' ही अलबेरूनी के कथनानुसार 'सूफी' हो गया।[1]

आधुनिक काल के विद्वान् जिनमे ब्राउन, बारबेरी तथा मीर वलीउद्दीन प्रमुख है 'सूफी' से ही 'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति मानते है। फारसी में रहस्यवादी साधकों को 'पश्मीना पोश' (ऊन धारण करने वाला) कहा गया है।[2] इससे भी उनके मत की पुष्टि हो जाती है। प्रारम्भिक काल में 'सूफी' एक विशेष प्रकार के 'ऊनी' वस्त्र धारण किया करते थे अतः बहुत कुछ संभावना यही है कि ऐसे 'पश्मीना पोश' संतों को 'सूफ' के कारण ही 'सूफी' संज्ञा दी गई हो।

सूफीमत का प्रारम्भ

सूफीमत का इतिहास मुहम्मद साहब के हिजरत (सन् ६२३ ई०) से प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में यह एक इस्लामी प्रवृत्ति मूलक धर्म मात्र था इसमें दर्शन का

---

१. अलबेरूनीज इंडिया—अनुवादक सचाऊ, पृष्ठ ३३

२. ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ पर्सिया—ब्राउन-भाग १, पृष्ठ ४१७

नाम मात्र भी लेश नहीं था। बाद में धीरे-धीरे इसमे कुछ ऐसे व्यक्ति सामने आये जिनमें भक्ति भावना का सन्निवेश हुआ। इन लोगों ने आत्म-शुद्धि पर बल दिया। ऐसे सूफियो में बसरा के 'अलहमन' (जीवन-काल ६४३ ई० से ७२८ ई०), 'इब्राहम-बिन-अधम' (मृत्यु ७८३ ई०) 'अयाज' (मृत्यु ८०१ ई०), 'राबिया' (८०१ ई०) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'राबिया' से पूर्व के सूफियो ने केवल अंत करण की शुद्धि पर बल दिया था किन्तु बसरा निवासिनी 'राबिया' ने सूफीमत में सर्वप्रथम प्रेम दर्शन के उदात्त एवं प्रखर रूप को सामने लाकर 'सूफीमत' को नया मोड दिया। उसके हृदय मे परमात्मा का प्रेम तथा विरह व्याप्त था उसकी एकमात्र चाह ईश्वरीय ज्योति मे विलीन हो जाने की थी। वह एक निष्कपट नारी थी।[1]

यद्यपि राबिया मे 'प्रेम' की भावना ही सर्वोपरि थी किन्तु इसके साथ-साथ उसमें इस्लामी भय का भी अभाव नहीं था। वह रसूल मुहम्मद का भय इसलिये मानती थी कि उसने उनके महत्व का ध्यान रखे बिना ही 'खुदा' से प्रेम करना प्रारम्भ कर दिया था। वह अपनी इस विवशता को स्पष्ट करती हुई रसूल मुहम्मद से प्रार्थना करती है --'ऐ खुदा के रसूल ! तुम्हें कौन प्यार नही करता ? किन्तु परमेश्वर के प्रेम से मेरा हृदय इतना परिपूर्ण है कि मेरे हृदय मे अन्य किसी के लिये प्रेम अथवा घृणा का भाव आता ही नहीं।'[2]

इस तरह 'सूफीमत' में माधुर्य भावना के उद्भूत करने का श्रेय सर्वप्रथम 'राबिया' को है जिसने शामी परम्परागत 'इश्क' को सूफीमत में पुनर्जीवन प्रदान किया। ईश्वरोपासना में किसी मध्यस्थ की अनावश्यकता तथा निष्काम भावना राबिया की 'सूफीमत' के लिए नयी देन थी।

सूफीमत पर विदेशी प्रभाव—इसी समय 'सूफीमत' पर ईसाइयत, नव अफलातूनी मत तथा भारतीय वेदान्त दर्शन, बौद्ध और जैन दर्शन के प्रभाव भी दृष्टिगोचर होने लगे थे। आगे चलकर 'जुनद शिबली' और 'मंसूर हल्लाज' जैसे सूफियों से उक्त विदेशी आध्यात्मिक दर्शनो से प्रभावित होकर इस्लाम विरोधी विचारों को व्यक्त किया और 'सूफीमत' को एक नयी दिशा प्रदान की। 'मंसूर हल्लाज' भारत आये थे।[3] उन्होने गुजरात में भ्रमण किया था।[4] मंसूर के

---

१. राबिया दी मिस्टिक—मार्गरेट स्मिथ, पृष्ठ ५४

२. ए लिटरेरी हिस्ट्री आफ अरब्स—आर० ए० निकोलसन, पृष्ठ २३४

३. ए० लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ पर्सिया—ब्राउन, पृष्ठ ४३१

४. 'आउट लाइन ऑफ इस्लामिक कल्चर १९५४ संस्करण—शुस्त्री, पृष्ठ ३५२

"अन-अल-हक' (मैं ही सत्य हूँ) कथन ने इस्लाम के कट्टर समर्थकों को क्रुद्ध कर दिया क्योंकि 'कुरान शरीफ' के अनुसार 'अल्लाह' एक है। वह निराधार एवं सर्वाधार है उसके कोई औलाद नहीं और न वह किसी की औलाद है। कोई उसकी समता नहीं कर सकता।[१] मंसूर हल्लाज का कथन सर्वथा इसके विरुद्ध पडता था जिसे कट्टर उलेमा सहन नहीं कर सके। परिणामस्वरूप ६२२ ई० में उनका कत्ल कर दिया गया। 'मंसूर हल्लाज' वेदान्त से प्रभावित प्रतीत होते है और वेदान्त का 'अहम् ब्रह्मास्मि' ही 'अन-अन-हक' के रूप में मुखरित हुआ है।

सूफी अध्यात्म दर्शन पर अन्य धर्मों और मतों का प्रभाव—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सूफीमत के उद्गम बिन्दु अन्य धर्मों में रहे हों किन्तु सम्प्रदाय के रूप में वह इस्लामी देशो में ही संगठित हुआ। अरब के नगरों में यहूदीमत, ईसाइयत, हिन्दुत्व, बौद्धमत, इस्लाम इन सभी मतो का मिलन हुआ था। अत: मूल रूप में इस्लामी परम्परा मे पोषित होने पर भी सूफीमत पर अन्य धर्मों और मतो का भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे अवश्य ही प्रभाव पड़ा है। हम संक्षेप में उन्ही धर्मों और मतों का सूफीमत के साथ तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक समझेंगे जिससे सूफी अध्यात्म दर्शन का स्वरूप और स्पष्ट हो सके।

सूफीमत और इस्लाम धर्म

सूफीमत के विकास का उल्लेख करते हुये हमने बतलाया था कि सूफीमत का आविर्भाव इस्लाम की कट्टरता की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था किन्तु बाद में उसे अपनी रक्षा एवं पल्लवन के लिये इस्लाम से समझौता कर लेना पड़ा। किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि सूफीमत ने इस्लाम के सभी मूलभूत सिद्धान्तो को अक्षरश: मान लिया था। सनातन पंथी इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तो के साथ सूफीमत के सिद्धान्तों में सामान्यत: निम्नलिखित अंतर है—

(१) सूफीमत में परमात्मा के प्रति जिस प्रेम और मिलन की चर्चा है उससे सनातन पंथी इस्लाम का कोई मेल नहीं खाता। रहस्यवादी प्रकृति, भावविष्टावस्था, जिक्र आदि को सूफी महत्व देते है किन्तु सनातन पंथी इस्लाम इनको कोई स्थान नहीं देते।

(२) सूफीमत की संन्यास प्रवृति इस्लाम में मान्य नही है। एकान्त सेवन आदि सूफीमत की अपनी चीजें है। कुरान की प्रारम्भिक सूराओं में यद्यपि संन्यास और आत्म-संयम पर विशेष बल दिया गया है किन्तु जब मुहम्मद सा॰ को

१. कुरान मजीद—सूर : इखलास, पृष्ठ ८६०

उनके ईसाई धर्म का होने का पता चला तब उन्होंने उस पर जोर देना छोड़ दिया।[1]

(३) सनातन पंथी इस्लाम में नमाज, हज, रोजा, जकात, आदि वाह्याचारों पर विशेष जोर दिया गया है। जबकि सूफी इसको अनावश्यक मानते हैं। वे वाह्याचारों की अपेक्षा आन्तरिक पवित्रता पर बल देते है।

(४) सनातन पंथी इस्लाम में मुसलमान (विश्वासी) तथा काफिर (अविश्वासी) के भेद पर विशेष जोर दिया गया है किन्तु सूफियों मे ऐसी प्रभेद की कोई भावना नही है। सूफियो में उदारता है। उनके यहां 'जेहाद' (धर्म युद्ध) का अर्थ बुराइयो से युद्ध करना है।

(५) सूफीमत का 'गुरुवाद' सनातन पंथी इस्लाम मे बिलकुल ही मान्य नहीं है।

(६) परम-तत्व के निरूपण में सनातन पंथी इस्लाम में जहा परमात्मा के सर्वातीत रूप को मान्यता दी गई है, परमात्मा और मनुष्य के बीच व्यवधान माना गया है. इस्लामी आस्था के अनुसार परमात्मा का ऐक्य कभी संभव नहीं है, वहा सूफी परमात्मा के साथ प्रेमी, प्रियतम का सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वे परमात्मा सर्वगत रूप को स्वीकार करते है। परमात्मा के प्रति उनका रागात्मक भाव ही सबसे बडी विशेषता है।

इस्लाम के साथ सूफीमत की तुलना से स्पष्ट हो गया कि सूफीमत की उक्त विशेषतायें अन्य धर्मों और मतो से ग्रहण की गई है जिनका उल्लेख हम आगे करेंगे।

सूफीमत और भारतीय वैदिक चिन्तनधारा

आत्मा, परमात्मा, सृष्टि रहस्य, चरम लक्ष्य आदि के सम्बन्ध में सूफियों मे काफी मतभेद है। सूफियों की ये विचारधारायें भारतीय वेदान्त के अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद आदि के साथ काफी साम्य रखती है। इब्नुल अरबी का परमात्मा सम्बन्धी यह कथन कि 'हमावुस्त' अर्थात सब कुछ वही है कुरान की आयत 'इन्ना-लिल्लाह' व 'इन्ना-इल्लैहे राजयून' अर्थात् हम लोग परमात्मा से पैदा हुये हैं और परमात्मा मे ही लौट जायेंगे पर आधारित है। परमतत्व सम्बन्धी यह विचार तैत्तिरीयोपनिषद के इस अनुवादक से बहुत कुछ मिलता-जुलता है—

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्वि जिज्ञासस्व। तद् ब्रह्मेति।'

---

१. स्टडीज इन अर्ली मिस्टीसिज्म इन दि नीयर ऐण्ड मिडिल ईस्ट (१६३१)
—मार्गरेट स्मिथ, पृष्ठ १३०

अर्थात् 'जिससे निश्चय ही ये सर्व-भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न रहने पर जिसके आश्रय पर ये जीवित रहते हैं और अन्त में विनाशोन्मुख होकर जिसमें ये लीन होते है उसे विशेष रूप से जानने की इच्छा कर वही ब्रह्म है।'[1]

इसी प्रकार सूफियों का यह कथन कि 'वास्तव में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक ही आत्मा है जो विभिन्न पदार्थों और जीवों के रूप मे अभिव्यक्त होती है।'[2] श्वेताश्वत्तर उपनिषद के अध्याय ६, मंत्र ११ में ठीक यही विचार व्यक्त किया गया है। 'जिली' ने परमात्मा और सृष्टि के सम्बन्ध में जो कुछ रहा है वह छान्दोग्योपनिषद् के अध्याय ६, प्रथम खंड क मंत्र (४-६) से स्पष्ट प्रतिध्वनित हो रहा है। सृष्टि के सम्बन्ध में भी सूफीमत की तथा उपनिषदों की विचारधाराओ में समानता है। इस तरह स्पष्ट है कि सूफियों के बहुत से सिद्धान्त यदि वेदान्त की कुछ विचारधाराओं की हू-बहू नकल नहीं है तो उन पर उनकी स्पष्ट छाप अवश्य है। सिद्धान्तो मे बहुत कुछ साम्य रखते हुये भी वेदान्त और सूफीमत मे बहुत कुछ भिन्नता भी है। सूफी साधारणतः अवतारवादी नहीं होते। पुनर्जन्म के सिद्धान्त भी सूफियों को प्रायः मान्य नही है।

सूफीमत और भारतीय योग-साधना

सूफीमत भारतीय योग-साधना से भी बहुत कुछ प्रभावित है। सूफियों मे 'लतायफीसित्ता' का सिद्धान्त प्रचलित है। जिक्र (ध्यान) आदि की क्रियाओं द्वारा सूफी एक के बाद एक 'लतीफ' को जाग्रत करने मे समर्थ होता है और अन्त मे उसे प्रकाश के दर्शन होते हैं। कहा जाता है कि जैसे-जैसे सालिक (साधक) ऊपर की ओर बढ़ता जाता है वह भिन्न-भिन्न रंगों का दर्शन करता है। इस तरह साधक को सित्ता (छः) लतीफों को जाग्रत करना पड़ता है। लतायफी सित्ता के सिद्धान्त के प्रवर्त्तक शेख अहमद नक्शबंदी (११वीं शताब्दी) है। इनका यह सिद्धान्त कुंडलिनी चक्र के सिद्धान्त से बहुत कुछ साम्य रखता है। संभवतः 'लतायफी सित्ता' की नफ्स, कल्ब, रूह, सिर्र, खफी और अल्फा, ये छः अवस्थायें कुंडलिनी चक्र के मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा षट चक्र ही हैं। इसी तरह सूफियों ने योग की प्राणायाम आदि की क्रियाओं को भारतवर्ष से ही सीखा था। योग की प्राणायाम, ध्यान आदि से सूफियों के 'जिक्र' की क्रियाओं की बहुत कुछ समानता है।

सूफीमत और बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन का सार-तत्व आवागमन से मुक्ति पाना तथा जीवन के सुख-दुःख

१. तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली अनुवाक १

२. कन्सेप्शन ऑफ डिविनिटी इन इस्लाम ऐण्ड उपनिषद्स—वाशेद हुसैन, [illegible]

से विरक्त होना है। उनका चरम लक्ष्य निर्वाण है। सूफीमत मे चरम लक्ष्य 'फना' फील्लाह है।[1] सूफी परमात्मा को ही परम सत्य मानते है उसी मे विलीन होना उनका परम लक्ष्य है। इसके लिये वे संसार तथा आने वाले जीवन के प्रति एकदम अनासक्त हो जाते है। संसार तथा भावी जीवन के प्रति सूफियो की अनासक्ति की भावना बौद्ध दर्शन का ही प्रभाव है। सूफियों के 'फना' और बौद्धों के 'निर्वाण' में भी काफी साम्य है। बौद्धों के ध्यान अथवा समाधि की कल्पना सूफियो के यहाँ 'मराकबा' के रूप मे व्यवहृत हुई है। बौद्धों का एकान्त सेवन सम्भवत सूफियों के यहाँ 'खिलवत' के नाम से महत्व पाया है।[2]

यद्यपि बौद्ध धर्म की चिन्तनधारा के साथ सूफियों के फना, मुराकबा, खिलवत आदि से बहुत कुछ साम्य दिखाई पड़ता है किन्तु स्पष्ट रूप से यह कहना कठिन है कि सूफियो ने इस सिद्धान्त को बौद्ध धर्म से हू-बहू अनुकरण किया है। फिर भी इतना तो मानना ही पडेगा कि सूफियों ने बौद्ध दर्शन से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कुछ न कुछ अवश्य ग्रहण किया।

सूफीमत और नव अफलातूनी मत

ब्राउन, निकोलसन आदि विद्वान् सूफीमत पर सबसे अधिक प्रभाव नव-अफलातूनी दर्शन का पडा मानते है। नव अफलातूनी दर्शन, तर्क और बुद्धि के द्वारा चरम लक्ष्य की प्राप्ति को संभव नही मानता। प्लेटो (अफलातून) का तर्क नव अफलातूनी मत मे सहज वृत्ति और अन्तर्ज्ञान के रूप मे परिवर्तित हो गया। मस्तिष्क का स्थान 'हृदय' ने ले लिया। नव अफलातूनी मत के अनुसार परमात्मा से ऐक्य स्थापित नहीं किया जा सकता किन्तु सूफी इसके विरुद्ध परमात्मा से समात्मक संबन्ध स्थापित करने की बात कहते है। यदि यह मान भी लिया जाय कि सूफीमत नव अफलातूनी दर्शन से विशेष प्रभावित है तो भी इतना तो स्पष्ट है कि सूफीमत का जन्म और विकास पूर्वी मस्तिष्क की ही देन है। नव अफलातूनी दर्शन का जन्मदाता 'प्लोटिनस' था जिसने प्लेटो और अरस्तू के सिद्धान्तो का पूर्णरूप से अध्ययन करके उनका भारतीय दर्शन से सामंजस्य स्थापित करते हुये 'नव अफलातूनी' दर्शन को जन्म दिया। इस तरह नव अफलातूनी मत का भारतीय विचारधारा से बहुत कुछ साम्य है। अत 'सूफीमत' पर नव अफलातूनी का जो प्रभाव माना जाता है वह अप्रत्यक्ष रूप में भारतीय दर्शन का ही प्रभाव माना जाना चाहिये।

---

1. ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ पर्सिया एडवर्ड ब्राउन लंदन (१९०९), पृष्ठ ४४१
2. सूफीमत साधना और साहित्य---रामपूजन तिवारी, पृष्ठ ३९२-३९३

सूफीमत और नास्टिक मत—ईसा की दूसरी शताब्दी तक नाना प्रकार के मतवाद तथा नाना सम्प्रदायों की विभिन्न विचारधारायें सम्मिलित भाव से 'नास्टिक मत' के नाम से प्रख्यात हुई। ये विचारधारायें मुख्य रूप से मिस्र में पुष्पित और पल्लवित हुई। नास्टिक मत इस विश्व ब्रह्माण्ड के ऊपर एक परमात्मा को मानता है जिसके साथ किसी प्रकार का वैयक्तिक रागात्मक सम्बन्ध नही स्थापित किया जा सकता है। कभी-कभी उसे 'पवित्र-ज्योति' भी कहा गया है। वह सर्वातीत है, सबका पिता है, अजन्मा और अज्ञेय है। वह वर्णनातीत है। नास्टिक मत मे 'संन्यास व्रत' का भी उल्लेख है जिसके द्वारा मनुष्य बुराइयों पर विजय प्राप्त कर आध्यात्मिक जगत् को प्राप्त कर सकता है। यद्यपि ये सभी बातें सूफीमत में थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ पाई जाती है फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि नास्टिक मत का प्रभाव सूफीमत पर कुछ वैसा नही है जिस पर विशेष जोर दिया जा सके।[१] फिर भी पाश्चात्य विद्वान् सूफीमत पर इसका प्रभाव किसी तरह खींचकर लाने का अनावश्यक प्रयास करते है।

सूफीमत और ईसाइयत—बहुत से यूरोपीय विद्वानो का कहना है कि ईसाइयत के संन्यास जीवन, उपवास, अन्न शुद्धि, विकारो के विनाश के लिए विविध कष्ट साधन, प्रार्थना-विधि आदि से इस्लाम और साथ ही साथ सूफीमत काफी प्रभावित है। इसके दो मुख्य कारण बताये जाते है—एक तो ईसाई साधकों तथा तापस जीवन बिताने वालो का निकट सम्पर्क तथा दूसरा इस्लाम और ईसाइयत का पारस्परिक सामाजिक सम्बन्ध। इस तरह ईसाइयत का प्रभाव इस्लाम पर भले ही किन्तु ये प्रभाव ईसाइयत के अपने निजी नही कहे जा सकते, क्योंकि ईसाइयत स्वयं ही नास्टिक मत, नव अफलातूनी दर्शन, ग्रीक की विविध विचारधाराओं, बौध धर्म तथा संन्यासियो से प्रभावित हो चुका था। ऐसी दशा में ईसाई रहस्यवादियों ने बहुत कुछ अन्य मतों से ग्रहण किया। इस तरह यह कहना कठिन है कि उपर्युक्त विचारधाराये इस्लाम मे सीधे ईसाई मत से ही आईं। इस्लाम धर्म वाले अन्य धर्मों की बातों को सीधे मानने को तैयार नहीं थे। कुरान की प्रारम्भिक सूराओं मे संन्यास और आत्म-संयम पर जोर दिया गया था वह बाद में यह पता चलने पर कि ये बाते ईसाई मत में भी हैं मुहम्मद द्वारा महत्वहीन बना दी गई जैसा कि हम पहले भी बता चुके है। अत सूफीमत पर ईसाइयत का उक्त प्रभाव मानना अनुचित होगा। इतना तो अवश्य है कि इस्लाम ने अपना प्रचार तलवार के नीचे किया और अन्य धर्मावलंबी जब इस्लाम का विरोध करने में अपने को असमर्थ पाये तो उन्होंने

---

१. सूफीमत–साधना और साहित्य—रामपूजन तिवारी, पृष्ठ ४०१।

इस्लाम को स्वीकार कर लिया किन्तु अपनी प्राचीन परम्पराओं तथा संस्कारों को बिलकुल ही छोड़ देना उनके लिये सरल नहीं था। इस प्रकार अन्य धर्मों की विशेषतायें नये अनुयायियो द्वारा इस्लाम धर्म में आकर उसका अंग बनी गई जिससे सूफीमत भी प्रभावित हो गया।

सनातन इस्लाम से समन्वय—मंसूर हल्लाज के कत्ल के पश्चात् सूफीमत के विकास को गहरा धक्का लगा। एक और सूफीमत के विरोध में कट्टर उलेमाओं से संचालित शासन सत्ता थी जिन्हें 'कुरान' का शक्तिशाली समर्थन प्राप्त था, दूसरी ओर सूफियों का अभी तक कोई सुसम्बद्ध दर्शन तैयार नहीं हो सका था। अत: अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए सूफियो को दर्शन का शक्तिशाली आधार तैयार करना पड़ा। यह उनके इतिहास का तृतीय युग था। इस युग मे सूफीमत के सनातन इस्लाम से समन्वय स्थापित करने की चेष्टा प्रारम्भ की। सूफीमत के प्रथम युग में जहाँ आचरण को प्रधानता दी गई, द्वितीय युग मे चिन्तन और संघर्ष का ही बोलबाला रहा। तृतीय युग मे सूफीमत इस्लाम के साथ सामंजस्य स्थापित करने में प्रयत्नशील हुआ। इस युग में 'अबूबकर-अल-कला-बाघी' ने सन् ९९५ ई० मे 'किताबुल तार्रूफ मजहबे अहले तसव्वुफ' का प्रणयन किया।[1] जिसमें यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि 'सूफीमत' मूल इस्लाम धर्म का किसी प्रकार विरोधी नहीं है। 'कालावधि' की इस पुस्तक को कट्टर इस्लाम द्वारा भी समर्थन प्राप्त हो गया। इस युग के दूसरे विचारक एवं साधक 'हुज्वेरी' (मृ० १०९२ ई०) ने 'कश्फुल महजूब' (रहस्योद्घाटन) नामक ग्रंथ लिखा जिसमें सूफी सिद्धान्तों का विवेचन किया गया। इस ग्रन्थ में उस समय तक प्रचलित सूफीमत के १२ विभिन्न सम्प्रदायों पर भी अलग-अलग प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।[2] इसमें लेखक ने प्राय: मौलिक परम्पराओं से उपलब्ध सामग्री का ही उपयोग किया है।[3] 'कश्फुल महजूब' फारसी में लिखित 'सूफी सिद्धान्त' का प्रथम ग्रन्थ है। हुज्वेरी के पश्चात् अलगजाली' (मृ० ११११ ई०) ने अपने प्रयास मे सूफीमत और कट्टर इस्लाम से पूर्ण सामजस्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त कर ली। सूफीमत को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने का श्रेय 'अलगजाली' को ही है। 'अलगजाली' के कुरान के साथ-साथ अरब दार्शनिक एवं नव अफलातूनी के ग्रन्थों के अरबी अनुवादक 'अलकिंदी' की रचनाओं का साथ-साथ अध्ययन किया। ये यूनानी दर्शन मे भी पूर्ण

---

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान - डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय—पृष्ठ ६।

२. कश्फुल महजूब—निकोलसन अध्याय १४, ल्युजक एण्ड कम्पनी लंदन १९११।

३. वही भूमिका, पृष्ठ २३।

परिचित थे। इस तरह इनकी विचारधारा पर कुरान, पूर्ववर्ती सूफी 'हसन अलबसरी (७२८ ई०) राबिया तथा जुनैद आदि के मतों का प्रभाव पड़ा। 'अलगजाली' का 'अहिया-उल अलूम' दूसरा कुरान माना जाता है और 'अलगजाली' इस्लाम धर्म के 'हुज्जतुल इस्लाम' (प्रमाण स्वरूप) माने जाते हैं।[1] 'अलगजाली' के विचार से तौहीद (एकत्व) और तवक्कुल (आत्मसमर्पण) में पूरा गठबन्धन दिखलाया गया है। इस तरह इस्लाम और सूफीमत का पारस्परिक विरोध दूर हो गया और दोनों का प्रचार एक साथ प्रारम्भ हुआ। सूफियो के 'कादरिया' सम्प्रदाय के प्रेरणा स्रोत बराबर अलगजाली रहे हैं। 'अलगजाली' ने संगीत को भी महत्व दिया है और उसे अनंत तक पहुँचाने का द्वार कहा है।[2] उनके विचार मे 'खुदा' कारण है, अनन्त ज्ञान का स्रोत है, परम सौन्दर्य है, अनावृत्त ज्योति है, और एक अन्तिम सत्य है। अलगजाली ने 'न बुद्धि भेदं जनयेत' का आदेश दे 'गृह्य विद्या' को गुप्त रखने का आदेश दिया किन्तु इसके साथ ही साथ प्रतिभा के उत्कर्ष तथा अध्यात्म अनुशीलन के लिये उन्होने छूट दी।[3] भय को प्रतिष्ठित कर उसे मगलप्रद एवं आवश्यक माना है और वाद-विवाद को व्यर्थ बतलाया है।

सूफी दर्शन के दो स्वरूप : इस्लाम विरोधी और इस्लाम परस्त

'अलगजाली' के समय तक आते-आते सूफी दर्शन के दो स्वरूप दिखलाई पड़ने लगे-एक तो कट्टर इस्लाम विरोधी 'मंसूर हल्लाज' और उसके अनुयायियों का दर्शन था जिसका दृष्टिकोण अत्यन्त ही उदार था, दूसरा इस्लाम के साथ समझौता करने वाले 'अलगजाली' आदि का दर्शन था जो कुरान से कही भी प्रतिकूल जाते नही दिखाई पड़ता। प्रथम कोटि के दार्शनिको मे 'इब्नुल अरबी' (मृ० १२४० ई०) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। सूफीमत के इस रूप को बेशरा कहते है। ये लोग कुरान के विधि-विधानो को मानने के लिये बाध्य नही हैं। धर्म के मामले में वे अपने को स्वतन्त्र मानते है। बेशरा सम्प्रदाय वाले सूफियों पर सनातन पंथी इस्लाम की वक्र-दृष्टि रहती है फिर भी यह सम्प्रदाय जनसाधारण में अत्यन्त ही लोकप्रिय है। दूसरी कोटि के सूफियों को जो कुरान के बताये आदेशों का कट्टरता से पालन करते है, उसमें आस्था रखते है इस्लामी जगत् से अच्छा सम्बन्ध रखते हैं बेशरा कोटि का सूफी मानते है।

प्रथम कोटि के सूफी 'इब्नुल अरबी' का दृष्टिकोण कुरान के 'एकेश्वरवाद'

---

१. वेदान्त और सूफिज्म—डॉ० रमा चौधरी, पृष्ठ ७।
२. अलगजाली दि मिस्टिक—मार्गरेट स्मिथ, अध्याय ६।
३. तसव्वुफ और सूफीमत—चन्द्रबली पाण्डेय, पृष्ठ ५७।

से किंचित् भिन्न तथा भारतीय वेदान्त के अत्यन्त ही निकट है। कुरान जहाँ ईश्वर को एक मानता है।[1] वहाँ 'इब्नुल अरबी' 'केवल ईश्वर है और कुछ नही है' को मानता है जो वेदान्त के 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म' से साम्य रखता है। इब्नुल अरबी भारतीय दर्शन से परिचित है। उन्होने भारतीय योग की पुस्तक 'अमृत कुंड' के अरबी अनुवादक दमिश्क निवासी एक सूफी साधक को अनुवाद कार्य मे काफी सहयोग दिया था। भारत में मधुमालती के रचयिता सूफी कवि 'मंझन' इब्नुल अरबी के मत से विशेष प्रभावित है। इनके गुरु शेख मुहम्मद गौस ने भी 'अमृत कुंड' का सर्वप्रथम अरबी अनुवाद किया था।[2] अमृत कुंड के अरबी अनुवाद का यदि अध्ययन किया जाय तो बहुत कुछ सम्भावना है कि सूफीमत पर भारतीय दर्शन के पडे हुए प्रभावो पर समुचित प्रकाश पड सके। अकबर कालीन दार्शनिक 'मुजद्दीद अल फसानी' ने 'इब्नुल अरबी' के सिद्धान्तों की कटु आलोचना करते हुए 'तौहीद' की मान्यता को जो श्रेष्ठ ठहराने का प्रयास किया है[3] उससे इस बात की स्पष्ट झलक मिल जाती है कि अकबर के समय तक भारत में निश्चय ही सूफियों का एक वर्ग 'इब्नुल अरबी' से प्रभावित रहा होगा अन्यथा 'अलफसानी' जैसे दार्शनिक को 'इब्नुल अरबी' के सिद्धान्त की आलोचना करने की क्या आवश्यकता थी?

सूफीमत के कवियों की देन—बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही सूफीमत के प्रचार में सूफी साधकों के साथ-साथ कवियों का भी विशेष हाथ हो गया। उनमे 'उमरखैय्याम (मृ० ११२३ ई०), सनाई (मृ० ११३१ ई०), निजामी (मृ० १२०३ ई०), अत्तार (मृ० १२०३ ई०), रूमी (मृ० १२७३ ई०), सादी (मृ० १२९२ ई०), सब्सतरी (मृ० १३२० ई०), हाफिज (मृ० १३९० ई०), आदि फारसी कवियो के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमे 'सनाई' मसनवी पद्धति के सर्वप्रथम प्रमुख कवि हैं। 'अत्तार' और 'रूमी' ने इसे 'मसनवी' पद्धति को क्रमश: चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। अब तक सूफीमत के जो सिद्धान्त केवल नीरस और उपदेश मात्र रहे उन्हें इन कवियों ने अपनी कला का पुट देकर आकर्षक और सुन्दर रूप प्रदान कर सजीव बना दिया जो सर्वसाधारण के लिए हृदयग्राही बन गया। इस प्रकार सूफियो के जीवन में शुष्क वैराग्य के स्थान पर सरसता का समावेश हुआ। प्रेम

---

१. कुरान मजीद—अनुवादक मुहम्मद फारूख खाँ सूर : अलबकर : आयत १६३, पृ० २७।

२. हकायके हिन्दी—अनुवादक अतहर अब्बास रिजवी, पृष्ठ १८।

३. कनसेप्शन आफ तौहीद—बुरहान अहमद फारूकी।

और विरह ही सर्वत्र दृष्टिगोचर होने लगा और फारसी के साथ-साथ अन्य भाषाओं के साहित्य पर भी इसका प्रभाव दिखलाई पड़ने लगा।[1]

सूफीमत का देश निर्वासन

भारत मे सूफीमत का प्रचार और प्रसार कब और कैसे हुआ ? इस संबंध मे जान ए० सुबहान[2], यूसुफ हुसेन[3], तथा खालिक अहमद निजामी,[4] ने बडे ही विस्तार से लिखा है। सूफीमत की आधार-भूमि उस रहस्यमयी भावना मे ओत-प्रोत है जो देश-काल की अपेक्षा किये बिना ही मानव मात्र के हृदय मे उद्भूत हो सकती है। इसका उद्भव मुस्लिम हृदय में संघर्षमय जीवन एवं वाह्याडम्बरों के प्रति अरुचि के परिणामस्वरूप हुआ था जो भावना स्वतन्त्र रूप से विचरण करना चाहती थी। वह प्रारम्भ मे तो दण्ड भय से दबा दी गई किन्तु पुनः शक्ति पाकर बलवती हो उठी। मुहम्मद साहब की मृत्यु के लगभग २०० वर्षों पश्चात् यह अपनी पूर्ण शक्ति के साथ वाह्य क्षेत्र मे अवतरित हुई। फिर धीरे-धीरे मेसोपोटामिया, सीरिया, फारस आदि देशो में फैल गई और मिस्र एवं स्पेन तक पहुँच गई। इन सभी देशो की अपेक्षा फारस में 'सूफियो' की संख्या अधिक थी। फारस का प्रत्येक विचारक ही कवि हुआ और सूफी प्रायः सभी कवि थे।[5] घुलनून मिस्त्री, बायजीद, इब्नुल अरबी, जुनेद, अलगजाली, फरीदुद्दीन अत्तार, जिली, जलालुद्दीन रूमी आदि ने अपनी-अपनी लेखनी मे सूफीमत के विकास मे पर्याप्त योगदान किया। जर्मन रहस्यवादी ऐक हर्ट टौलर और रूसो सूफीमत से प्रभावित थे। धीरे-धीरे पाश्चात्य सभ्यता के भौतिकवादी दृष्टिकोणो के प्रभाव इस मत को पर्याप्त ठेस पहुँची। शिया और सुन्नी के पारस्परिक विरोध से तो इसे आघात पहुंचा कि यह मत सदा के लिए फारस से विदा हो चला। अरब की धर्मनिष्ठा एवं अंध-विश्वास ने पहले ही इस स्वतन्त्र विचारधारा को अपने यहां से खदेड़ दिया था फारस की सुसंस्कृत स्वच्छन्द आत्मा द्वारा इस प्रेम-साधना को प्रश्रय अवश्य मिला था, किन्तु शिया और सुन्नियो के परस्पर विरोध ने उसे जड़ से उखाड़ फेका। शिया लोग शासकों में 'देवी अधिकार' मानते थे जब कि सुन्नी प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तो के समर्थक थे। इस प्रकार शिया मत द्वारा सूफीमत का फारस से अन्त कर दिया गया। सफवी

---

१. सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ३२।
२. सूफिज्म इट्स सेंट्स ऐण्ड आइन्स—जान ए० सुबहान।
३. ग्लिम्पसेज आफ मेडीवियल इंडियन कल्चर—यूसुफ हुसेन।
४. तारीखे मसायले चिश्त—खालिक अहमद निजामी।
५. दि पर्सियन मिस्टिक्स—जलालुद्दीन रूमी, पृष्ठ २२।

शासन-काल में सूफियों का निर्वासन, बहिष्कार, दाह, हत्या आदि विविध अत्याचारों को सहन करना पड़ा। उनसे मठ, खानकाह आदि नष्ट कर दिए गए। अन्त में विवश होकर सूफियों को भारत और अफगानिस्तान मे आश्रय लेना पड़ा।

सूफीमत का भारत में प्रवेश

भारत में सूफीमत का प्रवेश अफगानिस्तान के गजनी निवासी प्रसिद्ध विचारक 'हुज्वेरी' के आगमन के साथ ही हुआ था। वे तुर्किस्तान और सीरिया की यात्रा करने के पश्चात् लाहौर में आकर रहने लगे और वहीं उनकी मृत्यु १०६२ ई० में हुई थी। किन्तु जहाँ तक इस मत के क्रमबद्ध इतिहास का सम्बन्ध है यह उस समय से प्रारम्भ होता है जब सन् ११६० ई० में 'ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती' भारत में आये। ये कुछ दिन लाहौर मे रहने के पश्चात् दिल्ली चले आये, फिर वहाँ से अजमेर चले गये। भारत मे उस समय पृथ्वीराज चौहान का शासन था। 'ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती' का प्रभाव भारतीय जन-जीवन पर विशेषकर निम्न वर्ग के लोगो पर इतनी तेजी से बढ रहा था कि आतंकित हो अजमेर के ब्राह्मणों ने पृथ्वीराज से 'ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती' को देश से निष्कासित कर देने का अनुरोध किया। पृथ्वीराज ने पुजारियो के प्रतिनिधि रामदेव को उस कार्य के लिये भेजा। कहा जाता है कि स्वयं रामदेव ख्वाजा साहब से इतना प्रभावित हुआ कि वह भी उनका मुरीद हो गया।[1] वास्तविकता चाहे जो भी हो किन्तु इतना तो स्पष्ट ही था कि ख्वाजा साहब का प्रभाव समाज के निम्न वर्गीय लोगो मे दिनो-दिन बढ रहा था। अजमेर मे ही ख्वाजा साहब १२३५ ई० मे मर गये।

इस प्रकार भारत मे सूफीमत का प्रवेश 'ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती' द्वारा प्रारम्भ होता है जो भारत मे चिश्तिया सम्प्रदाय के प्रवर्तक माने गये हे। जकारिया

भारत मे सूफीमत की विभिन्न शाखायें

मित्रो मे से थे।

भारत मे ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के आगमन के लकर इस परम्परा में प्रविष्ट हुआ। वह बाद मे 'चिश्तिया सम्प्रदाय' के नाम । उन्होंने सैयद 'जलालुद्दीन के अन्य सूफियो ने समय-समय से अनेक शाखाएँ दे दीन्ह उजियारा ।।

प्रायः सभी शाखायें एक ही हैं किन्तु —पद्मावत-जायसी-स्तुति खंड-छंद १८

इनके नामो में विभिन्नता आ गई है। हंस बिन साहस दाम ।

दाय भारत में विशेष महत्वपूर्ण रहे चिश्ती शाह निजाम ।।

—चित्रावली-उसमान छंद ३३

१. ग्लिम्पसेज ऑफ मेडीविल... पंथ

२. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान सूफी ४७।

(१) **चिश्तिया सम्प्रदाय** —(१२वीं शती के उत्तरार्द्ध में प्रचारित) ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती प्रथम प्रचारक।

(२) **सुहरावर्दिया सम्प्रदाय** —(१३वीं शती के पूर्वार्द्ध में गठित) शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी प्रवर्त्तक तथा भारत में उनके दो शिष्य शेख हमुदुद्दीन नागौरी और शेख बहाउद्दीन जकारिया प्रथम प्रचारक।

(३) **कादरिया सम्प्रदाय** —(१५वी शती के उत्तरार्द्ध में पोषित) शेख अब्दुल कादिर जिलानी प्रवर्त्तक।

(४) **नक्श बन्दिया सम्प्रदाय**—(१६वी शती के उत्तरार्द्ध मे संगठित) सर्वप्रथम प्रचारक ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंद।

(५) **मेंहदवी सम्प्रदाय** —(१४०० से १७०० ई० के बीच) सैयद मुहम्मद जौनपुरी प्रवर्त्तक।

(६) **शत्तारी सम्प्रदाय** —(१५वी शती में संगठित) शेख अब्दुल्ला शत्तारी प्रथम प्रवर्त्तक।

(१) **चिश्तिया सम्प्रदाय**—जैसा कि हम पहले ही स्पष्ट कर चुके है कि इस सम्प्रदाय के प्रथम प्रवर्त्तक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती थे। इस सम्प्रदाय के दूसरे सन्त 'ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी' हुये जो 'ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती' के साथ ही बगदाद से भारत आये थे। रास्ते मे कुछ दिन मुल्तान में रुककर फिर दिल्ली पहुँचे थे। दिल्ली मे इल्तुतमिश द्वारा इनका भव्य स्वागत किया गया था। इल्तुतमिश ने ठेस न्हें अपने निवास के समीप ही रहने का अनुरोध किया था किन्तु उन्होंने अस्वीकार यह मत सा था।[१] ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती उन्हें अजमेर ले गये, बाद मे इल्तुतमिश ने विश्वास ने पहु विनय के बाद उन्हें दिल्ली वापस लाया था। वह 'शेख अली बिस्तानी' की सुसंस्कृत स्वच्छ हाल' की स्थिति में मरे थे। इनके शिष्य 'बाबा फरीद' ने अपना शिया और सुन्नियो के प(पंजाब) में बनाया था। बाबा फरीद के शिष्यों में 'ख्वाजा शासकों मे 'दैवी अधिकार' मानें इशाक, शेख जमालुद्दीन, अली अहमद, साबिर, शेख थे। इस प्रकार शिया मत द्वारा सूफी लेखनीय है। इनका देहावसान ६३ वर्ष की अवस्था

१. सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम च
२. सूफिज्म इट्स सेंट्स ऐण्ड आइन्स—जान ए० ता दी गई है। साधक को ४० दिनों
३. गिलम्पसेज आफ मेडीवियल इंडियन कल्चर—यू पड़ता है जिसे 'चिल्ल' कहते है।
४. तारीखे मसायले चिश्त—सालिक अहमद निजामी। —खालिक अहमद निजामी,
५. दि पर्सियन मिस्टिक्स—जलालुद्दीन रूमी, पृष्ठ २२।

इस अवस्था में साधक बहुत ही कम भोजन के ने भारत । किन्तु सर्वात्मवाद
चिन्तन और प्रार्थना में लगाता है। चिश्तिया लोग स. अहमद सरहिन्द
तथा रंगीन वस्त्र धारण करते हैं। ये 'अली' को परमात्मा में शती के अंत में हुआ।
मानते हैं। १३८६ ई०) माने

चिश्तिया सम्प्रदाय की दो अन्य उप-शाखायें--औलिया और सा. कि इस सम्प्र- न साहब'

बाबा फरीद के शिष्य 'ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया' ने आगे दवी 'औलिया' नामक एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय को रूप दिया जिसका केन्द्र बदायूं था। अमीर खुसरो ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया का ही शिष्य था जो बाद में फारसी का उच्चकोटि का कवि हुआ। मलिक मुहम्मद जायसी की एक गुरु परम्परा चिश्तिया सम्प्रदाय का भी है जिसमें उसने सैयद अशरफ जहाँगीर का नाम बड़े आदर के साथ लिया है।[1] उसमान के गुरु शाह निजाम भी इसी सम्प्रदाय के थे।[2] अकबर के समय में शेख सलीम चिश्ती इस सम्प्रदायों में विशेष सम्मानित सूफी हुये थे।

बाबा फरीद के दूसरे शिष्य शेख अलाउत अली अहमद साबिर ने चिश्तिया सम्प्रदाय मे 'साबिरी' नामक एक नयी शाखा की स्थापना की। इस शाखा का प्रचार उस समय बहुत ही जोरों पर था जब १४२३ ई० में 'शेख अहमद हक' ने बाराबंकी जिले के 'रुदौली' मे अपना केन्द्र बनाया।

(२) **सुहरावर्दिया सम्प्रदाय**--'आवारिफुल मारिफ' के लेखक शेख शहाबुद्दीन सुहरावर्दी ने इस सम्प्रदाय के भारत में प्रचार हेतु अपने दो शिष्यों 'शेख हमीदुद्दीन नागोरी' तथा 'शेख बहाउद्दीन जकारिया' को भेजा था। भारत में इस सम्प्रदाय का भी काफी प्रचार हुआ। नागौरी संगीत प्रेमी थे वे कभी-कभी 'अख्तियार काकी' के साथ 'सभा' मे भी भाग लेते थे।[3] दूसरे शिष्य शेख बहाउद्दीन जकारिया भी चिश्ती सम्प्रदाय से प्रभावित थे। बाबा फरीद इनके घनिष्ठ मित्रों मे से थे। फारसी का प्रसिद्ध कवि ईराकी इनका शिष्य था। आगे चलकर इस परम्परा में इनके पुत्र 'शेख सद्रुद्दीन' फिर 'रुकनुद्दीन' खलीफा हुये। उन्होंने सैयद 'जलालुद्दीन

---

१ सैयद असरफ पीर पियारा। जेहि मोंहि पंथ दीन्ह उजियारा ॥

—पद्मावत-जायसी-स्तुति खंड-छंद १८

२. गहि भुज कीन्हें पार जे, बिन साहस बिन साहस दाम।
कश्ती सकल जहाज ।चश्ती शाह निजाम ॥

पंथ —चित्रावली-उसमान छंद ३२

३ मेडिवल इंडियन सूफी ४७।

... इस्लामी देशों में ही संगठित हुआ । अरब के नगरों में 'यहूदी ..., हिन्दुत्व, बौद्ध मत तथा इस्लाम इन सभी मतों का मिलन हुआ था । .. यह स्वाभाविक था कि सूफीमत पर इन सबका भी कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पडे । इसी का परिणाम है कि सूफीमत 'सम्प्रदायगत' होते हुये भी असम्प्रदायगत है । सूफीमत इस्लाम से प्रभावित होने पर भी नबी और कुरान की अवहेलना कर उसकी उस सीमा से बाहर फैलने का प्रयास करता है जिसके अन्तर्गत इस्लाम को समेटने का प्रयास किया गया है। उदाहरण के लिये नबी ने जहाँ संगीत को प्रश्रय नहीं दिया, प्रायः सूफियों ने संगीत को साधना का एक अंग माना । कुरान की दृष्टि से कवियो का स्थान अत्यंत ही हेय है किन्तु सूफियो में तो प्रायः सभी सूफी कवि हुये ही । समय-समय पर भिन्न-भिन्न देशों और महापुरुषो का निरन्तर प्रभाव पड़ते रहने के कारण इसमे कई बाहरी बातों का भी समावेश हो गया । यही कारण है कि ईश्वर, जगत् अथवा मानव सम्बन्धी दार्शनिक दृष्टिकोणो पर सूफियों मे मत-भेद है । जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है इनमे दो प्रकार की विचारधारायें काम करती है । 'बेशरा' सम्प्रदाय वाले स्वतन्त्र विचारक हैं इसके विपरीत 'बाशरा' वाले इस्लाम के साथ सामंजस्य स्थापित करके चलना चाहते हैं । आगे हम सूफीमत के मूल सिद्धान्तो को संक्षेप मे स्पष्ट करेगे ।

(१) **परमतत्व**--परमतत्व के सम्बन्ध में मुस्लिम दार्शनिक तीन प्रकार के है :—

(१) इजादिया (एकेश्वरवादी), (२) शहूदिया (सर्वात्मवादी), (३) वुजूदिया (एकात्मवादी) ।

'इजादिया' लोग ईश्वर के अस्तित्व को जगत् से अलग मानते है । उनका विश्वास है कि ईश्वर ने सृष्टि को 'शून्य' से पैदा किया है । इस मत को हम शुद्ध 'एकेश्वरवाद' कह सकते है । 'इजादिया' लोगों के अनुसार जीवात्मा, परमात्म और जड़-जगत् तीनो अलग-अलग तत्व है । 'शहूदिया' लोगो का विश्वास है कि ईश्वर इस जगत् से परे है । उसकी सारी बातें किसी दर्पण के भीतर प्रतिबिम्ब रूप मे दृष्टिगोचर हो रही हैं । इसे 'सर्वात्मवाद' नाम से पुकारा जा सकता है । 'वजूदिया' लोगों का मत है कि ईश्वर के सिवा इस संसार में कोई अन्य वस्तु है ही नहीं । वही एकमात्र सत्ता है । विश्व की अन्य सारी वस्तुएँ उसी के रूप मात्र है । इस वर्ग को हम 'एकात्मवाद' या 'तत्ववादी' नाम दे सकते हैं ।[1]

जहाँ तक एकेश्वरवाद (इजादिया) का सम्बन्ध है वह मूल इस्लाम धर्म के

---

१. सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-भू... ३५ ।

बिलकुल अनुकूल है। उसका 'सूफीमत' से कोई मेल नहीं खाता। किन्तु सर्वान्मिवाद (शहूदिया) और एकात्मवाद (वुजूदिया) सूफीमत के अनुकूल है।

ईश्वर इस संसार में व्याप्त है या इस संसार मे पृथक है इस विषय पर सूफियों में पाँच विचारधाराएँ है :—

(क) अधिकांश सूफियों का विश्वास है कि ईश्वर संसार से पृथक रहकर भी उसमे लीन है उनके विचार से ईश्वर जगत् मे उसकी 'अन्तरिमा' के रूप में परिव्याप्त है। उसके कारण यह किसी प्रकार 'सदोष' या सीमाबद्ध नही माना जा सकता। 'गुलशने राज' के सूफी कवि का कथन है कि "हमारे प्रियतम का सौंदर्य अणु-परमाणु तक के अवगुंठन मे दिखाई पडता है।" फिर भी इसका यह तात्पर्य नहीं कि जगत् और ईश्वर दोनो एक ही है। वे ईश्वर के 'सर्वात्मवाद' को कदापि नही मानते। वे 'ईश्वराधिकत्ववाद' म विश्वास रखते है जिसके अनुसार ईश्वर इस ससार मे उसकी 'अन्तात्मा' मात्र है।

(ख) दूसरी विचारधार के अनुसार ईश्वर और जगत् को समपरिमाण स्वरूप मानते हैं। ये सर्वान्मिवादी हैं। इस विचारधारा के पोषक स्वय 'इब्नुल अरबी' है।

(ग) तीसरी विचारधारा 'जिली' की है जो 'इब्नुल अरबी' के विचारो से बहुत निकट है। वह ईश्वर से पृथक् 'जगत्' की कोई भिन्न सत्ता नही मानता। यह ईश्वर को ही जगत् रूप मानता है। दोनो को दो भिन्न पदार्थ नही मानता।

(घ) चौथी विचारधारा 'हुज्बेरी' की है जो उपरोक्त विचारो से बिलकुल ही प्रतिकूल है। हुज्बेरी ईश्वर और जगत् को अलग-अलग दो वस्तु मानता है। वह ईश्वर को इस जगत् से बिलकुल ही पृथक् समझता है। इस्लामी 'एकेश्वरवाद' से इसका बहुत कुछ साम्य है।

(च) पाँचवी विचारधारा उपर्युक्त चारों मतो से बिलकुल भिन्न है। वह ईश्वर को न तो जगत् में लीन मानता है और न उससे परे। इस विचारधारा का समर्थक 'रूमी' ईश्वर के स्वरूप का चिंतन बाहर और भीतर ऐसे शब्दों के द्वारा नहीं करना चाहता जिसका प्रयोग केवल 'भौतिक पदार्थों के लिए ही संभव है। परम-तत्व तो एक साथ ही भीतर और बाहर दोनो जगह रह सकता है।[1]

परम तत्व के निर्गुण और सगुण रूप

'जामी' अपनी पुस्तक 'लावेह' मे परम-तत्व को दो रूपों मे व्यक्त करता

---

१ जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य—डॉ० सरला शुक्ल, पृष्ठ ३५।

है —(१) 'आन्तरिक व्यक्तिकरण' जिसे 'फैजेअकदास' या 'अथलेकुल' कहते हैं। यह विश्व-व्यापी 'बुद्धि तत्व' से सम्बन्धित है। (२) 'वाह्य व्यक्तिकरण' जिसे 'फैजे मुकद्दमे या 'नफसेकुल' कहते हैं। इस अवस्था में वह कोई मूर्त्त रूप धारण कर लेता है। निराकार और साकार इन्हीं के पर्याय माने जा सकते है। 'हुज्वेरी' 'कलावाधी' आदि सूफी ईश्वर के सगुण रूप को मानते हैं। वे उसके गुणों की संख्या अनंत मानते हैं। किन्तु 'इब्नुल अरबी', 'हल्लाज' और 'जामी' आदि सूफियों ने ईश्वर के निर्गुण रूप की ही कल्पना की है, जो अवर्णनीय, निरपेक्ष माना गया है। यह वेदान्त के शांकराद्वैतवाद-सा प्रतीत होता है किन्तु वास्तव में यह भ्रम है शांकराद्वैतवाद में ब्रह्म को एक बार 'निर्गुण' और उसी को व्यक्त रूप मे 'सगुण' नहीं कह सकते। इसी प्रकार सूफियों का 'सगुण' वाद भी विशिष्टाद्वैत-सा प्रतीत होते हुये भी उससे भिन्न है क्योंकि ईश्वर के गुण और कार्य के सम्बन्ध में सूफियों और विशिष्टाद्वैतवादियो की विचारधाराओं में भिन्नता है।

वास्तव मे 'परम तत्व' का स्वरूप मानवीय अभिव्यक्ति से परे हैं क्योंकि वह बुद्धिगम्य नही। वह प्रेम और तल्लीनता द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। ईश्वर अनुपम है वह निकट भी है दूर भी है। दृश्य भी है, अदृश्य भी है। हजारों उसे जानते है किन्तु पहचाना थोड़ों ने है वह मुखर भी है, मौन भी है। प्रसन्न भी है, विपन्न भी है। धनाढ्य भी है, निर्धन भी है। राजा भी है, रंक भी है। शुस्त्री के अनुसार परमात्मा के सिवा इस संसार में कुछ भी नही है।[१] 'मुहीउद्दीन इब्नुल अरबी' के अनुसार भी ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।[२] दृश्य जगत् की स्वप्न एवं छाया के समान है अत: ज्ञानी इसके भ्रम मे नहीं पड़ते।[३] ईश्वर एक भी है अनेक भी है, क्योंकि सारा विश्व उसी का प्रदर्शन है। वही सत्य है और विश्व का सार है अत एक है तथा भिन्न-भिन्न रूपों मे दिखाई पड़ता है अत: अनेक है।

'सूफीमत' मे एकत्व से तात्पर्य ईश्वर और जीव दो पदार्थों के मिलन से नही बल्कि 'अद्वैत की भावना' से है जिसके अनुसार 'मैं' और 'तू' में कोई अंतर नही रह जाता। इस तरह हम देखते है कि "कुरान का केवल एक ही ईश्वर है" सूफियों के यहाँ आकर 'केवल ईश्वर ही वास्तविक है और कुछ नहीं' बन गया।

ईश्वर के अभेद रूप की जानकारी प्राप्त करना सूफियों का परम उद्देश्य है। वास्तव मे 'आत्मा' और 'परमात्मा' में कोई अन्तर नहीं। 'जिली' के मता-

---

१. आउट लाइन ऑफ इस्लामी कल्चर-ए० एम० ए० शुस्त्री, पृष्ठ ५०३

२. दि मिस्टिकल फिलासफी ऑफ मुहीउद्दीन इब्नुल अरबी-ए० ई० अफीफी पृ०, ५५

३. अलगजाली दि मिस्टिक-मार्गरेट स्मिथ, पृष्ठ १५६

नुसार हम एक ही की आत्मा हैं यद्यपि दो शरीरों मे रहते हैं ।[1] इस तरह ऐक्य की भावना से ओत-प्रोत सूफी हृदय आत्म स्रोत की खोज में निमग्न रहता है। वह अपने मे ही अपने को खोजता है। प्रारंभ में वह बुद्धि का सहारा अवश्य लेता है किन्तु सत्य की खोज में उसे असमर्थ पाता है। बुद्धि को केवल पथ प्रदर्शिका मात्र जानकर उसका त्याग कर देता है तथा परमात्मा द्वारा ही परमात्मा की खोज के प्रयास में सफल होता है। जैसा कि खुरासान के अब्दुल नूरी का कथन है।[2]

(२) सृष्टि तत्व—कुरान के अनुसार ईश्वर ने 'कुन' (होजा) शब्द मात्र से विश्व का निर्माण किया।[3] इस कथन से ईश्वरीय इच्छा की प्रधानता प्रकट होती है। प्रारभ में सूफियों ने सृष्टि की उत्पत्ति ईश्वरीय प्रकाश से मानी। अधिकांश सूफियों का विचार है कि जगत् की उत्पत्ति चार कारणों से हुई :—

(१) ईश्वर का स्वभाव।
(२) निर्माण कर्त्तृ आत्मा।
(३) अदृश्य जगत्।
(४) सचेतन संसार।

किन्तु यह विचार कुरान और हदीस के प्रतिकूल पड़ता है। चूंकि द्वैत में अद्वैत को स्थान नही है अतः सिद्धान्ततः सृष्टि की सत्ता मानते हुये भी इसे स्वप्नवत् माना गया है। 'हल्लाज' के अनुसार सृष्टि के पूर्व ईश्वर अपने को ही प्यार करता था और इसी प्रेम के कारण उसने अपने लिये अपने को पैदा किया।[4] अत्तार भी सृष्टि की पृथक् सत्ता नही मानता। उसके अनुसार "दृश्य जगत् उस विभूति की खोज का साधन मात्र है।"[5] अधिकांश सूफियों का विश्वास है कि सारा विश्व उसी का प्रदर्शन है। वास्तव मे विश्व ईश्वर का एक स्वच्छ दर्पण है किन्तु 'रूमी' के अनुसार यह उसी को ज्ञात होता है जिसकी आंखों पर से आवरण हट गया है तथा अनुराग ने मार्जन कर जिसकी अन्तर्दृष्टि को पारदर्शी बना दिया है।[6]

---

१. दि लिगेसी आफ इस्लाम-सर टामस अर्नाल्ड ऐण्ड अल्फ्रेड, पृष्ठ २१६
२. आउट लाइन आफ इस्लामिक कल्चर-ए० एम० ए० शुस्त्री भाग २, पृष्ठ ४६४
३. कुरान मजीद-हिन्दी अनुवादक-मु० फारूख खाँ सूर : आले इमरान आयत ४५
४. इन साइक्लोपीडिया आफ रेलिजन ऐण्ड एथिक्स-स० जेम्स हेस्टिंग्स, भाग १२, पृष्ठ १४, १५
५. दि पर्सियन मिस्टिक्स अत्तार—मार्गरेट स्मिथ, पृष्ठ २१
६. दि पर्सियन मिस्टिक्स—जलालुद्दीन रूमी—एफ० हैडलैंड डेविस, पृष्ठ ६१

शामी परम्परा के अनुसार कहा जाता है कि एक बार "हजरत दाऊद' ने ईश्वर से प्रश्न किया था कि "हे प्रभु आपने मानव जाति की सृष्टि क्यों की ? जिसके उत्तर मे उसने बताया था कि मैने अपने गूढ रहस्य को व्यक्त करने की इच्छा से ऐसा किया।" यह शामी मत हल्लाज आदि सूफियो के मत से साम्य रखता है जिनके अनुसार "निर्गुण और अव्यक्त ईश्वर ने अपने को व्यक्त एवं सगुण रूप में प्रकट किया था जिसका कार्य विश्व रूप मे व्यक्त हुआ। "हल्लाज" का कथन है कि ईश्वर अपने-स्वरूप का निरीक्षण कर अपने आप पर ही मुग्ध हो गया और उसके उस आत्म प्रेम का सृष्टि रूप दर्पण मे अपना प्रतिबिम्ब देख आत्म-ज्ञान के साथ-साथ उसकी आनन्द लाभ की कामना भी संतुष्ट हुई। ईश्वर की यह आनन्द कामना संभवत: उस लीला से उद्भूत आनंद से पूर्ण हुई जिसकी कल्पना का आभास हमें बल्लभाचार्य के शुद्धाद्वैतवाद मे मिलता है।[1] इस तरह विश्व की सृष्टि ईश्वर के स्वत: स्फूर्त एवं अपरिमेय आनंद का एक मूर्त्त विकास मात्र है। इसका उद्देश्य न तो किसी अभाव की पूर्ति करना है और न किसी वासना की पूर्ति क्योकि ऐसा होने पर ईश्वर मे निश्चय ही कोई न कोई न्यूनता आ जायेगी।

इस तरह अव्यक्त ईश्वर ही "व्यक्त रूप" में प्रकट हुआ। अत: हम इसे 'परिणामवाद' की संज्ञा दे सकते हैं किन्तु इस विचार को मान लेने पर कुरान समर्थक सूफियों के विचार इससे भिन्न पड जाते है। 'हुज्वेरी' जैसे मूल इस्लाम प्रेमी सूफियों के विचार से सृष्टि की रचना 'शून्य' से हुई। फिर भी अधिकांश सूफियो का विचार है कि ईश्वर ने सर्वप्रथम अपने नाम के 'आलोक' से 'नुरुल मुहम्मदिया', 'मुहम्मदीय प्रकाश' की रचना की और वही आदिभूत बन गया। बाद में उसी 'नूर' से पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, चार तत्वों की रचना हुई, फिर आकाश और तारे हुये तत्पश्चात् सात भुवन-धातु, उद्भिज पदार्थ, जीव-जन्तु, एवं मनुष्य की रचना हुई जिससे ब्रह्माण्ड बना और अनेक ब्रह्माण्डों के परिणामस्वरूप विश्व का सृजन हुआ।

सूफियों के मतानुसार सृष्टि का चरमोत्कर्ष मानव शरीर की रचना है। मानव शरीर में जो कुछ बना है उसमें ईश्वर का पूर्ण प्रतिरूप विद्यमान् है। मानव शरीर के भीतर क्षिति, जल, पावक, समीर इन चार तत्वों के साथ-साथ जड़, आत्मा (नफ्स) का भी समाहार है। मानव शरीर का आध्यात्मिक अंश उसके हृदय (कल्ब), आत्मा (रूह), ज्ञानशक्ति (सिर्र), उपलब्धि शक्ति (खफी) तथा अनुभूति शक्ति (आरूपा) का संयुक्त रूप है जिसमे बायीं ओर 'कल्ब' दायीं ओर 'आत्मा'

१. सूफी काव्य-संग्रह-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, भूमिका, पृष्ठ ३७

मध्य में 'सिर', ललाट में 'खफी,' मस्तिष्क में 'आरूफा' स्थित है जिनके प्रभाव से मनुष्यत्व की सिद्धि होती है। उपरोक्त पांच जड़ एवं पाच आध्यात्मिक उपादानों द्वारा निर्मित मानव पृथ्वी पर विद्यमान होकर उसके पार्थिव तत्वों पर अधिकार प्राप्त करता है तथा उसके आध्यात्मिक स्वरूप की ओर क्रमश. अग्रसर होता है। इसी को अपना कर्त्तव्य समझता है। 'नफ्स' (जड, आत्मा) उसके कार्य मे बाधक होता है किन्तु 'रूह' (अजड, आत्मा) की ईश्वरीय शक्ति उसे 'कल्ब' (हृदय) रूपी स्वच्छ दर्पण मे ईश्वर को प्रतिबिम्बित कर उससे मिलन करा देता है।

(३) **मानव तत्व**—सूफी सिद्धान्त के अनुसार मानव की पूर्णता ही उसके जीवन का परम लक्ष्य है। 'इब्नुल अरबी' ने इस पूर्ण मानव (अल इन्सानुल कामिल) के प्रश्न को बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। उसका कहना है कि पूर्ण मानव ही ईश्वर की सच्ची अभिव्यक्ति है जिस तरह मानव सृष्टि का चरमोत्कर्ष है ठीक उसी प्रकार 'पूर्ण मानव' मनुष्य का परमोत्कर्ष है। प्रत्येक मानव के भीतर परिपूर्णता 'बीज' रूप में विद्यमान है और इसी से उसमें ईश्वरीय गुणों की संभावना रहती है। 'पूर्ण मानव', मानव और ईश्वर के बीच मिलन-सेतु का कार्य करता है। 'जिली' के अनुसार 'हजरत मुहम्मद' पूर्ण मानव है। इसीलिये मुहम्मदीय ज्ञान (अल-हकीकतुल मुहम्मदिया) को विशेष महत्व दिया गया है। इस तरह सूफियो का 'पूर्ण मानव' या 'सिद्ध पुरुष' 'अद्वैतवादियों के जीवन मुक्त से बिलकुल ही भिन्न हो जाता है। सूफियों का 'पूर्ण मानव' सृष्टि का आदि उपादान कारण है किन्तु अद्वैतवादियों के 'जीवन मुक्त' में ऐसा कुछ भी नही। अद्वैतवादियों का 'जीवन-मुक्त' ईश्वर की अभिव्यक्ति नही स्वयं 'ब्रह्म स्वरूप' है। उसके और ईश्वर के बीच सेवक और सेव्य का सम्बन्ध नही। उसमें 'उपासक' और उपास्य का भावना का बिलकुल ही लोप रहता है। पूर्ण मानवत्व की उपलब्धि 'प्रेम मूलक' है। जब कि 'जीवन मुक्त' की उपलब्धि 'ज्ञान मूलक' है। 'जीवन मुक्त' जगत् का 'धर्मगुरु' नह 'ज्ञान गुरु' हुआ करता है। इस तरह 'सूफियो' को पूर्ण मानव माना गया है। उन्हे 'वली' या पीर कहा गया है। मूल इस्लाम के प्रेमी सूफी साधारणतया नबी और पैगम्बर (धर्म प्रवर्त्तक) तथा साधुओं (पीर औलिया) मे कुछ अन्तर मानते है। उनके विचार से 'नूह', 'इब्राहम', 'आइजाक', 'जेकब', 'जोब', 'ईसा', 'मूसा', 'सुलेमान', 'दाऊद', 'अर्न', तथा 'मुहम्मद' ये ही बारह धर्म-प्रवर्त्तक (नबी) हैं जिसमे 'मुहम्मद' सर्वश्रेष्ठ नबी हैं। उनके बाद उस कोटि का कोई अन्य 'नबी' नही हुआ। इन नबियो का ईश्वर के साथ नित्य सम्बन्ध है जो अन्य प्रकार के पूर्ण मानव को कदापि प्राप्त नहीं किन्तु बाद के विज्ञानवादी सूफियो का विचार है कि

पूर्ण मानव होने पर मुहम्मद साहब के बाद भी यह स्थिति प्राप्त हो सकती है। रूमी ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर के सम्पर्क में आकर उसका साक्षात्कार कर सकता है।[1] इसमें नबी की सहायता की कोई आवश्यकता नहीं। हाँ, पीर अथवा 'सद्गुरु' के प्रति पूर्ण श्रद्धा के साथ उसकी शिक्षाओं के अनुसार आध्यात्मिक जीवन का ग्रहण करना आवश्यक है। कुछ सूफियों ने तो 'पूर्ण मानव' को अवतार भी माना है किन्तु अधिकांश सूफी इस मत से सहमत नहीं है।

मानव जीवन के उद्देश्य के सम्बन्ध मे सूफियों के दो प्रकार के विचार है—(१) अभाव बोधक, (२) भाव बोधक। अभाव सत्ता का नाम उन्होंने 'फना' अर्थात् विलय या ध्वस कर दिया है। 'कलाबाधी' तथा 'हुज्वेरी' जैसे सनातनी सूफी 'फना' शब्द का अर्थ जीव की अहंता का ध्वंस होना मानते हैं। जीव की जगत् के प्रति जो आसक्ति है वह नष्ट हो जाती है। जीव ईश्वर के प्रति पूर्ण अनुराग एव आधीनता मे अवस्थित हो जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार विचार किया जाय तो जीव और ईश्वर पृथक्-पृथक् वस्तुएँ हैं। 'भाव बोधक' उद्देश्य को 'बका' कहा गया है जिसका अभिप्राय जीव का ईश्वर में अवस्थित होने से है। सर्वात्मवादी सूफी 'जिली' के अनुसार ईश्वर एवं जगत् का सम्बन्ध ठीक उसी प्रकार का है जैसा जल और बर्फ का। जिस तरह बर्फ जल का ही एक रूप है ठीक उसी तरह जगत् भी ईश्वर का एक रूप मात्र है। दोनों मूलत: अभिन्न है। 'गुलशने राज' के रचयिता 'सविस्तारी' का मत भी 'जिली' के मत से मिलता-जुलता है किन्तु 'सविस्तारी' के मत मे ईश्वर और जगत् वस्तुत: अभिन्न नहीं हैं बल्कि ईश्वर ही एकमात्र सत्ता है और सारा संसार मिथ्या या मरीचिका मात्र है। इस तरह 'फना' शब्द का तात्पर्य मानवीय गुणों का विलय और 'बका' का अर्थ ईश्वर के साथ ऐक्य स्थापित करना है। 'जिली' और 'सविस्तारी' के मतों में अन्तर है। 'जिली' के अनुसार मृण्मय घट नष्ट होकर पुन: मिट्टी का रूप धारण कर लेता है। किन्तु सविस्तारी के अनुसार जल के ऊपर पडने वाला सूर्य का प्रतिबिम्ब जल के न रहने पर नष्ट होकर सूर्य मे मिल जाता है। 'रूमी' का मत 'कलाबाधी,' 'हुज्वेरी', 'जिली' और 'सविस्तारी' के मत से सर्वथा भिन्न है। 'रूमी' का विचार है कि ईश्वर और जीव यद्यपि स्वरूप से भिन्न है किन्तु गुण से अभिन्न है। इस तरह 'फना' का तात्पर्य मानवीय 'गुणों का नाश' और 'बका' का अर्थ ईश्वरीय गुणों की उपलब्धि मानना चाहिये। यदि हम अपने भारतीय वेदान्त के मतों से तुलना करें तो 'कलाबाधी' और 'हुज्वेरी' का मत 'मध्वाचार्य' के द्वैतवाद से मिलता-जुलता है। 'जिली' का

---

१. सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ४१

मत 'बल्लभाचार्य' के शुद्धाद्वैत और पुष्टिमार्ग से तथा 'सविस्तारी' का मत 'शंकराचार्य' के अद्वैतवाद के समान है। अन्तिम रूमी का मत रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवाद एवं निम्बाकाचार्य के द्वैताद्वैतवाद से बहुत कुछ साम्य रखता है।

(४) **माया तत्व**—सूफी संतों के अनुसार माया का कोई 'सत्स्वरूप' नहीं है। मनुष्य शरीर के भीतर ही 'आलमे-खल्क' विद्यमान है। यह 'नफ्स' या 'अहं' भावना ही 'रूह' को आगे बढ़ने से रोकती है। 'रूह' का लक्ष्य सदैव परम सत्ता तक पहुँचने का रहा है। अतः माया के रूप का चित्रण जहाँ कही भी सूफियों द्वारा किया गया है वहाँ इन्द्रियगत विषय भोगों के आकर्षण तथा उसके दुष्प्रभाव का ही वर्णन सर्वाधिक है। साधक जब अपनी साधना को बढ़ाकर ईश्वर-प्राप्ति की चेष्टा करता है तो उसे सबसे अधिक पडाव पार करना पड़ता है 'इन्द्रिय पुर' की। वहाँ की प्रत्येक वस्तु सुहावनी लगती है। शब्द, रूप, रस एवं संयोग वहाँ के विशेष आकर्षण है। इस तरह संयोग रूपी माया के आकर्षण मे आकर भोग की इच्छा से मनुष्य योग का त्याग कर देते हैं।[1] पंचेन्द्रिय जनित भोग ही मनुष्य को बुद्धि को भ्रमित किये रहता है। यदि मनुष्य उसके वशीभूत हो जाता है तो पथभ्रष्ट हो जाता है।

सूफी प्रेम साधना—सूफियों के उद्भव और विकास को ध्यान में रखते हुये यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सांसारिक पदार्थों से विरक्त हो ईश्वरीय सौंदर्य के प्रति आसक्त होने वाले को 'सूफी' कहते है। इस मत की सम्पूर्ण साधना ही 'प्रेम' पर आधारित है। 'अबुल हसन अली हुज्वेरी' ने अपने 'कश्फुल महजूब' में यह स्पष्ट लिखा है कि 'वह शख्स जो कि मुहब्बत के वास्ता से मुस्सफा होता है साफी है और जो शख्स दोस्त की मुहब्बत के गर्क हो गैर-दोस्त से बरी हो वह सूफी होता है।[2] इससे स्पष्ट है कि सूफी वास्तव मे वही है जो अपने प्रिय के प्रेम मे सदैव डूबा रहे। अतः यह विचार कर लेना आवश्यक है कि सूफियो की दृष्टि से 'प्रेम' का क्या स्वरूप है ?

सूफी प्रेम का स्वरूप—सूफियो के विचार से प्रेम ज्ञान की भाँति ही ईश्वरीय देन है। यह कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसे जो चाहे प्राप्त कर ले। ईश्वर के

---

१ लहृत बसेरा ठांवें ठाउं। जाइ परे इन्द्रियपुर गाँउं ॥
बहुत सुहावन सुन्दर लोगे। सबद रूप रस परम संयोगे ॥
तासो माया के बस बहुते लोग। जोग न चाहे, कीन्ह चाहे भोग।
—अनुराग बांसुरी—नूर मुहम्मद, पृष्ठ १३१

२. कश्फुल महजूब—(उर्दू तर्जुमा लाहौर) हुज्वेरी, पृष्ठ ४१

प्रेमी वे ही व्यक्ति हो सकते हैं जिन्हें ईश्वर स्वयं प्रेम करता है।[1] प्रेम के स्वरूप का निरूपण करते हुये जुनेद ने लिखा है—"प्रिय की विशेषताओं में अपनी विशेषता को मिला देना प्रेम है।" दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि प्रेम की विशेषता वह है जिसमें अपने निजी व्यक्तित्व को मिटा दिया जाय। यह एक अनियन्त्रित आनन्द है ईश्वरीय कृपा है जो बराबर प्रार्थना और कामना करने से उपलब्ध हो सकती है। 'सूफी दार्शनिक-अलफरावी' (९५० ई०) ने तो 'प्रेम' कोसाक्षात् ईश्वर ही माना जाता है। वे प्रेम को सृष्टि का कारण मानते है। उनका कथन है कि "भौतिक वस्तुओं, ज्ञान तथा बुद्धि से परे एक विशिष्ट वस्तु है जिसे प्रेम कहते है।" प्रेम के सहारे इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु जिसमे व्यक्ति भीशामिल है अपनी समग्र सम्पूर्णता पर पहुँच जाती है।"[2] सूफी विश्वास के अनुसार सृष्टि की रचना ईश्वर ने अस्तित्व जनाने के लिये की है। इसके प्रमाण मे वे हदीस का हवाला देते है—

"कंतो कंजन मखफियन फअह बबतो अन ओ रफा फरवल कतुल खल्क।"[3]

अर्थात् "मैं एक छिपा हुआ खजाना था। मेरी इच्छा थी कि लोग मुझे जाने अतः मैने 'मखलूक' (सृष्टि) की रचना की।"

हुज्बेरी के 'कश्फुल महजूब' के अनुसार प्रेम को दार्शनिकों ने तीन प्रकार से व्यक्त किया है सासारिक प्रेम, ईश्वरीय कृपा, ईश्वरीय प्रेम। इसे अधिक स्पष्ट करते हुये वह लिखता है कि "ईश्वर के प्रति मानवीय प्रेम वह गुण है जो केवल उन्हीं पवित्र व्यक्तियो मे श्रद्धा और गरिमा के रूप में उत्पन्न होता है जिनकी ईश्वर के प्रति आस्था है। इसलिये कि वे अपने प्रिय को संतुष्ट कर सकें उसके दर्शन के लिये व्याकुल हो सके। उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु में उनके मन न रमें। ऐसा व्यक्ति बराबर उसके स्मरण में लगा रहता है और किसी दूसरे को याद नहीं करता।"[4]

प्रेम और सौंदर्य—प्रेम और सौदर्य का बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। अल-गजाली ने सौंदर्य प्रेम का जनक माना है। ईश्वरीय सौदर्य सर्वोत्तम सौंदर्य है अतः आत्मा लौकिक सौंदर्य की परिधि से ऊपर उठ कर सौंदर्य से प्रेम करती है। जहाँ सौंदर्य होता है वहां प्रेम स्वाभाविक रूप से हो जाता है। जितना ही अधिक सौंदर्य

१. मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम—निकल्सन, पृष्ठ ११२
२. आउट लाइन ऑफ इस्लामिक कल्चर—ए० एम० ए० शुस्त्री, पृष्ठ ३११
३. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, पृष्ठ १२ पर उद्धृत
४. कश्फुल महजूब—निकोल्सन, पृष्ठ ३०६-३०७

होगा उतना ही अधिक प्रेम होगा। पूर्ण सौंदर्य तो ईश्वर में है अतः वही सच्चे प्रेम का अधिकारी होता है।[1] इस तरह सूफी साधना का एकमात्र चरम लक्ष्य 'ईश्वरीय' प्रेम है।

प्रेम के लक्षणों का निरूपण करते हुये 'सुहरवर्दी' ने अपने 'अवारिफुलमारिफ' में स्पष्ट किया है कि सच्चा प्रेम एकनिष्ठ होना चाहिये। प्रेमी को छोडकर किसी अन्य के प्रति बिलकुल ही आसक्ति नहीं होनी चाहिये। प्रेमी के हृदय में आत्म-समर्पण की भावना होनी चाहिये। प्रेमी को निरन्तर प्रिय के प्रेम में डूबा रहना चाहिये। उसके विरह में तपते हुये निरन्तर उसी का स्मरण करते रहना चाहिये। प्रेमी को प्रिय के आदेशों और निषेधों में आस्था होनी है।[2]

प्रेम और विरह—यद्यपि सूफियों का परम लक्ष्य प्रिय मिलन है किन्तु वे 'विरह' को प्रिय मिलन का एक आवश्यक सोपान मानते हैं। विरह के कारण ही प्रेमी के हृदय में अपने प्रिय के प्रति सदैव उत्कण्ठा बनी रहती है। सूफियो की भाषा में उसे 'शौक' कहा जाता है। विरह मे प्रेमी सदैव प्रिय के लिये तडपता रहता है। प्रिय के सिवा उसके विरह का कोई दूसरा इलाज नहीं होता। आध्यात्मिक वेदना के क्षणों मे 'राबिया' ने कहा है—"मेरे रोग का निराकरण तब होगा जब प्रिय से मिलन होगा।"[3] प्रेम में विरह के महत्व को बतलाते हुये 'मंसूर हल्लाज' ने कहा है कि 'ईश्वरीय मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टों से गुजरें।'[4] सूफियो की दृष्टि मे प्रेमी का संबल दर्द, विरह और तडपन है। प्रेमी ईश्वरीय प्रेम में बराबर तडपता रहता है। अब्दुल कादिर जिलानी ने एक गजल मे कहा है—

"बे हेजबाना दर था. अज दरे काशानये मा।
के कसे नेस्त बजुज दर्दे तो दरखानये मा॥"[5]

"अर्थात् हमारे झोपडे के दवाखाने बे पर्दा दाखिल हो जा, क्योंकि मेरे घर मे दर्द के सिवा और कोई नहीं है।"

प्रेम मार्ग की कठिनाइयाँ—ईश्वरीय प्रेम के उदय होने से लेकर मिलन (फना) होने तक प्रेम पथ में साधक को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन्ही कठिनाइयो के बीच सच्चा प्रेम निखरता है। ये कठिनाइयां दो प्रकार

१. अलगजाली—दि मिस्टिक—मार्गरेट स्मिथ, पृष्ठ १०६
२. आवारिफुल मारिफ—एच० विल्डर फोर्सक्लार्क, पृष्ठ १०३-१०४
३. राबिया दि मिस्टिक—मार्गरेट स्मिथ, पृष्ठ ११०
४. आउट लाइन ऑफ इस्लामिक कल्चर—ए०एम०ए० शुस्त्री, पृष्ठ ३५०
५. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, पृष्ठ १५ पर उद्धृत

की होती हैं एक तो स्वाभाविक रूप से बीच में आ जाती हैं और दूसरी प्रकार की कठिनाइयां वे हैं जो प्रिय द्वारा उत्पन्न की जाती है। प्रिय द्वारा प्रस्तुत कठिनाइयों में प्रेमी को आनन्द की प्राप्ति होती है। प्रेमी अपने प्रेम के कारण प्रिय की कठोरता और उदारता को समान रूप से झेलता है। प्रेमी मृत्यु भय से कभी अपने प्रेम पथ से डिगता नहीं। मृत्यु को वह एक विश्राम-स्थल मान कर नव-जीवन के रूप में नयी यात्रा का प्रारम्भ मानता है। 'निजामी' अपने 'लैला मजनूं' नामक प्रेमाख्यान में लिखता है कि 'अगर मैं अक्ल के आंख से देखूं तो यह मौत, मौत नहीं, बल्कि एक जगह से दूसरी जगह का जाना है।'[1]

प्रेम का विकास-क्रम—लौकिक (मजाज) से अलौकिक (हकीकत) की ओर

सूफियो ने अपने प्रणय का विकास लौकिक कथाओ अथवा प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया है। ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति के लिये लौकिक प्रेम को भाषा अपनाई है। वे ईश्वरीय प्रेम (हकीकत) तक पहुँचने के लिये लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) को एक साधन मानते है। "अल मजाजो कंतरतुल हकीका" अर्थात् मजाज हकीकत का पुल है। इस तरह लौकिक प्रेम और उसकी भाषा को वे निस्संकोच अपनाकर चलते है।

गुरू का महत्व—सूफी अपने प्रेम साधना में गुरू को विशेष महत्व देते है। लौकिकता साधक को प्रिय तक पहुँचने मे बाधक होती है। इसीलिये प्रेम मार्ग मे सहायता के लिये सूफियों ने 'गुरू' की आवश्यकता पर बल दिया है। मंसूर हल्लाज' के कथनानुसार सूफी का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है कि वह एक आध्यात्मिक गुरू को चुनें। अपूर्ण गुरू शिष्य को बुराइयो की ओर ले जा सकता है।[2]

सूफी आध्यात्मिक ज्ञान के चार चरण—सूफी प्रेम साधना के चार चरण है : (१) शरीअत, (२) तरीकत, (३) हकीकत, (३) मारिफत। 'शरीअत' ईश्वरीय प्रेम साधना का प्रथम चरण है जिसमे मनुष्य ईश्वरीय सत्ता से भयभीत तथा उसके वैभव से विस्मित हो उसके प्रति आकर्षित होता है। द्वितीय चरण 'तरीकत' है। इस स्थिति मे आकर साधक को विवेक की प्राप्ति होती है जिससे मनुष्य भले-बुरे, ऊँच-नीच एवं कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को पहचानने की क्षमता रखने लगता है। तृतीय चरण 'हकीकत' मे साधक ईश्वरीय सत्ता की वास्तविकता को पहचानने लगता है। चतुर्थ और अन्तिम चरण 'मारिफत' है जहाँ पहुँच कर साधक को ईश्वर के सत्य रूप का ज्ञान हो जाता है।

---

१. गर बिन गरम आँचुना के रायेस्त।
आ मर्ग न मर्ग नकल जायेस्त॥
—लैला मजनू—निजामी नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८८० ई०

२. आउट लाइन ऑफ इस्लामिक कल्चर—ए० एम० ए०—शुस्त्री, पृष्ठ ३२४

निष्कर्ष

सूफी मत के संक्षिप्त इतिहास के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि यह मत भारत से बहुत दूर अरब के इस्लामी वातावरण मे उद्धृत हुआ फिर भी भारतीयता के तत्व इसमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से बहुत पहले से ही सन्निहित हो चुके थे। यही कारण था कि भारत मे आने पर इस मत को अपने अनुकूल वातावरण में पल्लवित होने का पूरा अवसर मिल गया। यहा के लिये इस मत के सिद्धान्त कोई नये नहीं थे अत उनको मान्यता मिलने मे कोई कठिनाई नही हुई। सूफीमत के उदारवादी दृष्टिकोण जिनके कारण इसने समय-समय पर देश-काल और परिस्थिति के अनुसार अपना अनुकूलन किया इसकी लोकप्रियता के मुख्य कारण थे। भारत में आकर इस मत ने भारतीयता के साथ ऐक्य स्थापित किया। अपनी प्रेम साधना के बल पर इस्लाम से पराजित भारतीय जनता के प्रतिक्रियावादी हृदयों पर अधिकार जमाया। भारतीय लोक-प्रचलित गाथाओं के आधार पर सूफी कवियो ने अपने मत के प्रचार और प्रसार के लिये प्रेमाख्यानो का प्रणयन किये, जिनके संबंध मे हम अगले अध्याय में प्रकाश डालेगे।

— — —

सूफी पाथ

सरला शुक्ल, पृ० १२८

.डी—भूमिका, पृ० ६४

अध्याय ४

मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य

हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि सूफीमत का उद्भव रूढ़िवादी इस्लाम की कट्टरता के प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ था। इसलिये प्रारम्भ में कुछ दिनों तक सूफी-मत के विकास में इस्लाम बाधक प्रतीत होता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि सूफियो का अलग अपना कोई साहित्य नहीं था जिसके कारण वे अपने मत का वास्तविक रूप प्रकट नही कर पाते थे। अत: उनकी अनेक बाते अस्पष्ट-सी प्रतीत होती थी और इससे इस विषय पर अनेक शंकाओं का उठना स्वाभाविक था जिसके निवारण के लिये सूफी साहित्य के प्रणयन की आवश्यकता प्रतीत हुई।

प्रारम्भिक सूफी साहित्य

सूफी साहित्य की प्रारम्भिक रचनाएँ 'अरबी' भाषा में हुई। कुछ ऐसी परम्परा थी कि प्रारम्भ में कोई भी 'सूफी' चाहे वह किसी भी देश का क्यों न हो जब वह अपनी पुस्तक या निबन्ध लिखना प्रारम्भ करता था तो वह 'कुरान' की भाषा मे ही लिखता था। सम्भवत: ऐसा इसलिये आवश्यक था कि 'सूफीमत' को सर्वप्रथम अपने ही घर मे प्रताड़ना मिली थी। अत: कुरान के वास्तविक रहस्य का उद्घाटन करना सूफियो का प्रथम उद्देश्य था। यह काम कुरान की भाषा में ही सम्भव था। बाद में जैसे-जैसे सूफीमत का प्रसार होता गया, देश-काल और परि-स्थितियो के अनुसार 'सूफी साहित्य' की भाषा में भी परिवर्तन होता गया। अरबी के बाद सर्वप्रथम फारसी लेखको ने सूफी साहित्य का सृजन किया। तदन्तर भारत [illegible]ण के बाद भारत की क्षेत्रीय भाषाओं मे भी सूफी साहित्य का निर्माण होने

साहित्य स्रष्टा दो प्रकार के हैं। प्रथम कोटि में तो वे लोग हैं जो [illegible] जिन्हे अपने मत का प्रचार ही साहित्य सृजन का उद्देश्य है। ऐसे भी रचनाकार है जो स्वयं तो सूफी नहीं हैं किन्तु वे [illegible]का समर्थन अथवा उसका खंडन-मंडन करना चाहते हैं।

'ब्राउन',[१] 'निकोल्सन',[२] 'आरबेरी',[3] 'मार्गरेट स्मिथ',[४] तथा 'गिब्ब'[५] आदि पाश्चात्य विद्वान् प्रायः द्वितीय कोटि के साहित्य स्रष्टा हैं। इनका साहित्य आलोचनात्मक सूफी साहित्य की कोटि मे आता है। मौलिक सूफी साहित्य तो प्रथम कोटि का वह साहित्य है जिसे स्वयं सूफियों ने लिखा है। यह साहित्य तीन प्रकार का है—

(१) निबन्ध साहित्य,
(२) जीवनी साहित्य,
(३) काव्य-साहित्य—प्रबन्ध और मुक्तक।

सूफी निबन्ध साहित्य के अन्तर्गत 'हल्लाज' का 'किताबुत्तवासीन', 'इब्नुल अरबी' का 'फतूहात मक्किया'[६] 'फुसुसुल हिकम', 'अलगजाली' का 'इहयाउल-उलूम', 'जिल्ली' का 'इन्सानुल कामिल', 'अब्दुल काशिम कुशेरी' का 'रिसालये कुशारिया', 'सुहरावर्दी' का 'अवारिफुल मारिफ', 'शबिस्तारी' का 'गुलशने राज', 'ईराकी' का 'लमात', 'अबुनसाज' का 'किताबुललुमा फित तसव्वुफ', 'मीरदर्द' का 'इल्मुल किताब', 'जामी' का 'लावेह', सदरुद्दीन कुनवी' का 'इनिआहुल गैब' आदि विशेष महत्वपूर्ण रचनायें हैं।[७] सूफियों के जीवनी-साहित्य में विशेषकर पौराणिक तथ्यों पर ही जोर दिया गया है। फिर भी इससे सूफीमत के इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता है।[८] सूफियो मे जीवन-वृत्त लिखने की परम्परा ठीक वैसे ही थी जैसे भारत में 'भक्त-माल' जैसे ग्रन्थो के लिखने की परम्परा। सूफियों के जीवनी-साहित्य मे 'हुज्वेरी' का 'कश्फुल महजूब', 'फरीदुद्दीन अत्तार' का 'तजकिरातुल औलिया', 'दौलत शाह' का 'तज किरातुल शुअरा', जामी' का 'नफहा तुलउन्स' आदि ग्रन्थ विशेष महत्व रखते है।

---

१ ए हिस्ट्री ऑफ पर्सियन—एडवर्ड ब्राउन
२. ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ अरब्स, दि मिस्टिक्स ऑफ इस्लाम, स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टीसिज्म—आर ए० निकोल्सन—लदन (१६२१)
३. सूफिज्म–(१६५६), क्लासिकल पर्सियन लिटरेचर—ए० जे० आरबेरी
४. राबिया दि मिस्टिक (१६२८) अलगजाली दि मिस्टिक (१६४४) सूफी पाथ ऑफ लव (१६५४)
५. मोहम्मदनिज्म (१६४६) गिब्ब
६. तसव्वुफ और सूफीमत—चन्द्रबली पाण्डेय, पृ० १६५
७. जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य—डॉ० सरला शुक्ल, पृ० १२८
८. सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—भूमिका, पृ० ६४

सूफी काव्य साहित्य सूफी साहित्य का प्राण है। सूफियों ने अपने काव्य के माध्यम से जन-साधारण को जिस सत्य का आभास दिया तथा काव्य में जिस तथ्य का निरूपण किया, इस्लामी साहित्य में वह कहीं भी उपलब्ध नहीं है। आज सूफियो की जो प्रतिष्ठा हम देख रहे है वह उनके काव्य और प्रेम पर ही प्रतिष्ठित है। इन सूफी प्रेम-काव्यों में शुद्ध व्यक्तिगत प्रेम या ईश्वरीय प्रेम का प्रतीकात्मक वर्णन सर्वप्रथम फारसी के माध्यम से प्रचलित हुआ। सूफी कवि हृदय पक्ष के पक्के समर्थक थे। उनके समक्ष प्रेम के आगे 'महजब' का कोई स्थान नही। इस तरह अरबी साहित्य में अब तक वीर-गाथा काव्य के साथ-साथ जो स्थूल सौन्दर्य का वर्णन होता आ रहा था, सूफियों ने उसमे नया मोड दे उसे आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख किया।

प्रारम्भिक सूफी काव्य साहित्य में मुक्तक और प्रबन्ध काव्यों मे दो धारायें प्रचलित हुईं। मुक्तक काव्यों मे गजलें और रूबाइयाँ लिखी गईं। जिनमे जलालुद्दीन 'रूमी' (१२०७-१२७३ ई०) की 'कुल्लियात शम्स तबरेज', 'हाफिज' (मृ० १३६० ई०) की 'लिसातुल गैब' (अदृश्य की वाणी) तथा 'तर्जमानुल असरार' विशेष महत्वपूर्ण रचनाएँ है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार हाफिज की गजलों के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया जाना उचित होगा क्योंकि उसके शृङ्गार का आध्यात्मिक अर्थ सुविधापूर्वक लगाया जा सकता है। 'हाफिज' के पश्चात् 'फारिज' ही अरबी का एक ऐसा कवि है जो अपनी भाव-पूर्ण गजलों के बल पर फारसी कवियों से टक्कर लेने मे समर्थ है। फारसी काव्य-साहित्य मे 'फिरदौसी' और सादी को छोडकर फारसी के लगभग सभी कवि सूफी है।[१] 'सादी' (११८४-१२९१ ई०) ने 'गुलिश्ता' और 'बोस्ता' तथा उमर खैय्याम (मृ० ११२३ ई०) ने अपनी रूबाइयो को लिखकर फारसी साहित्य में अपना अमिट स्थान बना लिया।

सूफी काव्य-साहित्य में जहाँ तक प्रबन्ध काव्य का सम्बन्ध है फारसी में 'लैला मजनू', 'शीरी खुसरो', 'युसूफ जुलेखा' तथा 'बामिक आजरा' की कथाओ को लेकर अनेक मसनवियाँ लिखी गईं। जिनमे से कुछ कथाओं को लेकर सर्वप्रथम 'निजामी' ने फारसी म सूफियाना रंग भरकर अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखलाया। निजामी की मखजनूल असरार (११७६ ई०), खुसरो शीरीं (११८० ई०), लैला मजनू (११८२ ई०), इस्कंदरनामा (११९१ ई०) तथा हफ्त पैकर (११९८ ई०)

---

१. डॉ० विमलकुमार जैन 'सादी' को सूफी ही मानते है।
—सूफीमत और हिन्दी साहित्य : डॉ० विमलकुमार जैन, परिशिष्ठ १, पृ० २६१

पाँच मसनबियाँ प्रसिद्ध हैं ।[1] भारतीय कवि 'अमीर खुसरो' निजामी से विशेष प्रभावित रहा । वह कहता है—

'निजामी चू सोखन ना गुफ्ता न गुजास्त ।
जे खूबी गौहरे न सुफ्ता न गुजास्त ।।'[2]

अर्थात् 'निजामी' ने जो कथनीय था उसे कहने से छोड़ा नही । किसी भी गौहर को उसने बिना बेधे नहीं छोड़ा है । 'निजामी' के आदर्शों पर ही अमीर खुसरो और जामी ने भी 'खम्सा' (पाँच मसनवियों का संग्रह) लिखा । जामी ने अलग से 'सिल सिलातुल जहब' और 'समानुल अबरार' नामक दो और भी मसनबियो का प्रणयन किया । इसके अतिरिक्त 'सनाई' का 'हदीका', 'अत्तार' का 'मन्तिक़ुत्तैर' आदि विशेष महत्वपूर्ण मसनबियाँ है ।

भारत में सूफी साहित्य का प्रणयन

अब तक जो सूफी साहित्य अरब और फारस मे प्रचलित था वह मुसलमानो के आक्रमण के साथ-साथ भारत मे प्रविष्ट हो गया । सूफी साहित्य यद्यपि अरबी और फारसी दोनो भाषाओ मे लिखा गया है किन्तु उसका वास्तविक सौंदर्य फारसी साहित्य मे ही दृष्टिगोचर हो रहा है । बाद मे तुर्की भाषा में भी सूफी साहित्य की रचना हुई । भारत में आने पर यहाँ की सभ्यता, संस्कृति, भाषा, जन-जीवन, आदि का प्रभाव सूफी साहित्य पर विशेष रूप से पड़ा जिससे सूफी साहित्य मे निम्नलिखित परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे—

(१) सूफी साहित्य के प्रचार और प्रसार के लिये अरबी, फारसी के अतिरिक्त सूफी साहित्य की रचनाये भारत की क्षेत्रीय भाषाओ मे होने लगी ।

(२) सूफी प्रेमाख्यानों के कथानक जो अब तक अरब और फारस से सम्बन्धित थे अब प्राय. शुद्ध भारतीय होने लगे ।

(३) भारत मे आने से पूर्व सूफीमत को केवल इस्लाम मे ही सामंजस्य स्थापित करना था, किन्तु भारत मे प्रविष्ट हो जाने पर उसे इस्लाम के साथ-साथ हिन्दू धर्म से भी समन्वय स्थापित करना पड़ा जिसका सूफी साहित्य पर भी विशेष प्रभाव पड़ा ।

(४) देश म शान्ति, ऐक्य और प्रेम की स्थापना के लिये भारतीय सूफी साहित्य का मुख्य उद्देश्य हिन्दू-मुस्लिम एकता पर विशेष जोर देना हो गया ।

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान —डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, पृ० २५

२. शीरीं खुसरो—अमीर खुसरो—भूमिका, पृ० २७; मुस्लिम यूनिवर्सिटी प्रेस, अलीगढ़ ।

(५) भारत में आने पर वे भारतीय परम्परा के अनुसार गुरू की महत्ता पर पहले की अपेक्षा अधिक जोर देने लगे।

(६) सूफी रचनाकारों ने अपने साहित्य में भारत के प्रति प्रेम जताना प्रारम्भ कर दिया। अमीर खुसरो ने तो भारत को स्वर्ग माना है। वह दिल्ली की प्रशंसा करते हुये लिखा है कि "इस चमन की कहानियाँ अगर 'मक्का' सुन ले तो वह भी श्रद्धा के साथ भारत की परिक्रमा करने लगेगा।"[1]

(७) सूफी प्रेमाख्यानो मे भारतीय लोक-गाथाओ की भाँति चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन, साक्षात् दर्शन तथा सौन्दर्य कथन के माध्यम से प्रेम की अभिव्यंजना की जाने लगी।

(८) सूफी काव्यो मे भारतीय जीवन और संस्कृति के चित्रण के साथ-साथ षट्ऋतु वर्णन, बारहमासा, भारतीय गार्हस्थ्य जीवन की समस्याओ का उल्लेख होने से उनकी लोकप्रियता मे विशेष वृद्धि हुई।

(९) भारतीय सूफी प्रेम गाथाओ मे ऐतिहासिक तथ्यो की अपेक्षा कल्पना और भावों को ही विशेष महत्व दिया गया।

भारत में आने के बाद जो सूफी साहित्य प्रणीत हुआ उन्हें हम भाषा की दृष्टि से दो श्रेणियो मे विभक्त कर सकते है—

(१) **भारतीय अहिन्दी सूफी साहित्य—**

(क) फारसी भाषा में लिखित सूफी साहित्य।

(ख) भारतीय अन्य भाषाओं में लिखित सूफी साहित्य।

(२) **हिन्दी सूफी साहित्य—**

(१) भारतीय अहिन्दी सूफी साहित्य

भारतीय अहिन्दी सूफी साहित्य मुख्य रूप से दो प्रकार का है एक तो शुद्ध फारसी मे लिखित तथा दूसरा भारतीय क्षेत्रीय बोलियो में लिखित।

(क) फारसी भाषा में लिखित सूफी साहित्य—मुगलो के शासन-काल में फारसी भारत की राज-भाषा एवं दरबारी-भाषा थी अत: कवि और लेखक फारसी में अपने विचारो की अभिव्यक्ति को श्रेयस्कर समझते थे। इस तरह 'दाराशिकोह' ने 'मजमा-उल-बहरैन' मे वेदान्त और सूफीमत का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। 'अब्दुल फजल', 'फैजी बदायूनी', 'अब्दुल कादिर', 'मुल्ला शीरीं' आदि फारसी विद्वानों ने महाभारत और रामायण आदि ग्रंथों का फारसी में अनुवाद किया। 'दाराशिकोह' ने 'सफीनातुल औलिया' नामक पुस्तक में सूफी सिद्धान्तों का विवेचन

१. संस्कृति के चार अध्याय—डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर', पृ० ३२७

तथा सूफियो की जीवनियां प्रस्तुत कीं। सूफी कवि 'सचल' ने फारसी में 'दीवान अश्कर', 'शाह इनायत कुरैशी' ने 'बेसिरनामा' तथा 'शाह लतीफ' ने फारसी में गजलें लिखी। ये सूफी कवि विचारो से पूर्ण स्वच्छंद थे। इन लोगो ने मुल्ला और मौलवियों की खुले-आम निर्भीकतापूर्वक आलोचना की जिसके कारण उन्हे मुसलमानो का कोप-भाजन बनना पड़ा। 'शाह इनायत' को तो 'सिंध का मंसूर' कहते है। कहते है कि मुगल सुल्तान फर्रुखसीयर के आदेशानुसार इनका सिर काट कर दिल्ली भेजा गया था। संभवत: इसी आधार पर इनकी रचना को 'बेसिरनामा' की संज्ञा मिली हो। इन फारसी कवियों की रचनाओं मे हृदय की निर्मलता प्रेम एवं गुरु कृपा के गीत भरे पडे है। इनके अतिरिक्त पंजाब के सूफी साधक 'सुल्तान बाहू' (१६३१-९१ ई०) ने अरबी और फारसी मे १४० ग्रंथो की रचना की।[1] 'अमीर खुसरो' ने जिसे प्रथम भारतीय सूफी कवि होने का गौरव प्राप्त है 'किरानुस्सादैन', मिफतोलफतह, देवलरानी, खिज्रनामा, नूह सिपहर और तुगलकनामा (ऐतिहासिक) मतलऊअल अनवार, शीरी खुसरो, आईनेसिकंदरी, लैला मजनूं, हस्त विहिश्त (रोमाण्टिक) मसनबियां लिखी। 'तुहफतुस सिगहर' तथा 'वास्तुल हयात खुसरो के दीवान' तथा 'एजाजे खुसरवी', खजाइनुल फतह, आदि गद्य रचनायें विशेष उल्लेखनीय है।[2]

(ख) **भारतीय अन्य भाषाओं में लिखित सूफी साहित्य**—भारतीय सूफी साहित्य का मुख्य अंग यहाँ की क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध होता है। सूफी साधक भारत में आकर सर्वप्रथम सिंध और पंजाब में अपना प्रचार कार्य प्रारम्भ किये। उस समय वहाँ सिंधी और पंजाबी भाषायें बोली जाती थीं। उत्तरी भारत मे हिन्दी साहित्य का रचना-काल प्रारम्भ हुआ था। सूफी साधको के लिये संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि साहित्यिक भाषायें अत्यन्त ही दुरूह थी। साथ ही ये साहित्यिक भाषायें जन-साधारण के लिये सहज ग्राह्य भी नही थी। इस तरह "सिंधी" भाषा मे 'अब्दुल वहाब' (सचल), बेदिल, बेकस तथा कुतुब आदि कवियों ने रचनायें की। पंजाबी मे सर्वप्रथम शेख इब्राहिम फरीद नामक सूफी ने लिखना प्रारम्भ किया था। तत्पश्चात् 'लाल हुसैन मियां,' 'सुल्तान बाहू,' 'बुल्लेशाह,' अली हैदर' तथा हाशिम शाह आदि कवियों ने इस दिशा की ओर कदम बढ़ाया। शेख इब्राहिम फरीद सानी (१४५०-१५१५ ई०) के पंजाबी भाषा में लिखे 'सलोक'

---

१. जायसी के परवर्ती—सूफी कवि और काव्य-डॉ० सरला शुक्ल, पृष्ठ १३६

२. हिन्दी साहित्य कोश-भाग २—माता बदल जायसवाल, पृष्ठ १८, १९

और काफिये काफी प्रचलित हैं। पंजाब विश्वविद्यालय में इनका एक ग्रंथ 'नसीहत-नामा' भी प्राप्त होता है। इनके सलोक आदि ग्रंथ में भी संग्रहीत है।[१] कादरिया सम्प्रदाय के सूफी 'सुल्तान बाहू' (१६३१-१६६१ ई०) की 'काफिया' 'उर्स' के समय गाई जाती है। चटगांव, रोसांग (अराकान), सिलहट, भुरसुटी आदि स्थानों में बंगला कवियों ने भी सूफी प्रेमाख्यानों की रचनाएँ कीं। रोसांग के राजा श्री सुधर्म (१६२२-२८ ई०) के वजीर अशरफ खाँ के अनुरोध पर वहाँ के 'दौलत काजी' नामक कवि ने अपनी 'सती मैना' और 'लोर चन्द्राणी' नामक रचना को बंगला मे लिखना प्रारम्भ किया था, किन्तु यह रचना अपूर्ण ही रह गई जिसे बाद के कवि 'अलाओल' ने पूरा किया। इसके अतिरिक्त 'सैयद हमजा' ने मधुमालती, 'बहराम' ने लैला मजनू, 'खलील' ने चन्द्रमुखी, 'मुहम्मद खातिन' ने मृगावती लिखी, किन्तु इनके प्रेमाख्यानों को हिन्दी प्रेमाख्यानों की भाँति लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई।[२] हमारे आलोच्य विषय की परिधि से बाहर होने के कारण इनके सम्बन्ध में विस्तार में जाना अनावश्यक है। आगे हम खड़ी बोली तथा दक्खिनी हिन्दी में लिखित सूफी काव्यों पर विशेष प्रकाश डालेंगे जो हमारे आलोच्य विषय से सम्बन्धित है।

(२) मध्यकालीन हिन्दी सूफी काव्य

मध्यकालीन हिन्दी सूफी काव्य को हम विशेषकर तीन श्रेणियों में विभक्त कर प्रस्तुत करना चाहेंगे :—

(क) फुटकर हिन्दी सूफी काव्य।

(ख) सूफी प्रेमाख्यान।

(ग) सूफी तत्व प्रभावित असूफी प्रेमाख्यान।

(क) फुटकर हिन्दी सूफी काव्य

इस कोटि में सूफी कवियों की छोटी-छोटी मुक्त रचनायें है जिनके माध्यम से उन लोगों ने अपने मत के सिद्धान्तों तथा साधना पक्षों का निरूपण किया है। भाषा की दृष्टि से इस प्रकार की रचनाओं को हम दो वर्गों में विभक्त कर सकते है :—

(१) उत्तरी भारत का फुटकर हिन्दी सूफी काव्य।

(२) दक्खिनी हिन्दी का फुटकर सूफी काव्य।

---

१. पंजाबी सूफी पोयट्स लाजवंती राम कृष्ण, पृष्ठ ८४

२. हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २४-२५

(१) **उत्तरी भारत का फुटकर हिन्दी सूफी काव्य**—हमारे आलोच्य काल की परिधि के भीतर निम्नलिखित प्रमुख सूफी फुटकर काव्यकार आते हैं :—

(१) अब्दुल कद्दूस गंगोही (अलखदास) (सन् १४५६-१५३७ ई०) मुर्शीद-नामा

(२) जायसी—अखरावट (१५०५ ई०), आखिरी कलाम (१५२६ ई०)

(३) शेखफरीद—सलोक फरीद (र० का० १५४३ ई०) आदि

(१) **अब्दुल कद्दूस गंगोही** (१४५६-१५३७ ई०)—अब्दुल कद्दूस गंगोही उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले के रुदौली नामक स्थान के निवासी थे। बाद में ये सहारनपुर जिले के 'गंगोह' नामक स्थान में रहने लगे। सिकन्दर लोदी, बाबर, हुमायूं जैसे बादशाह भी इनसे उपदेश ग्रहण करते थे।[1] अस्सी वर्ष की अवस्था मे सन् १५३७ ई० में इनका देहान्त हो गया।

इनकी अधिकांश रचनाये फारसी में है। हिन्दी रचनाओं का संग्रह 'मुर्शीद-नामा' नाम से संग्रहीत है। इनके दोहों से ही इनके चिंतन और अनुभव का मूल्यांकन किया जा सकता है। ईश्वरीय प्रेम की महत्ता का निरूपण करते हुये ये कहते हैं :—

'आप गंवाये पिउ मिले, पी खोवे सब जाय।
अकथ कथा यह प्रेम की, जो कोइ बूझे पाय॥'[2]

ये ईश्वर की एकमात्र सत्ता पर विश्वास करते है।[3] ईश्वरीय प्रेम के लिये 'विरह' को आवश्यक अंग मानते है। प्रियतम सेज पर हो तब भी नींद नहीं आती, परदेश मे हो तब भी विरह की बेचैनी रहती है। इस तरह दोनों दशाओं मे सुख का अभाव रहता है।[4] 'जगत्' इनके विचार से पानी का बुदबुदा है। जिस तरह बुदबुदा जल में उठता है और उसी मे विलीन हो जाता है ठीक उसी तरह यह संसार उस परम तत्व से ही पैदा हुआ है और अंत में उसी में उसका विलय हो जायगा।

'जल ते ओफन बुलबुला जल ही माहि बिलाइ।
तैसा यह संसार सम, मूलह जाइ समाइ॥'

---

१. सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २२६

२. वही; पृष्ठ २२६, दोहा ४

३. एक अकेला साइंया, दुइ दुइ कहो न कोइ।
बास फूल है एक ही, कह क्यों दूजा होइ॥
सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २२६, दोहा-१

४. वही, दोहा २, पृष्ठ २२६

परम-तत्व को ये सागर मानते हैं। जीवात्मा इनके लिये मछलियों के समान है जो जीवित अथवा मृत दोनों अवस्थाओं में समुद्र में ही रहेगी—

'साईं समुन्दर पार तहं, हम तहं मछलियाँ।
जलहर फिन जल रही, मरहिं तो जल ही माँ ॥ [1]

(२) **जायसी** (१४७६-१५४२ ई०)—मलिक मुहम्मद 'जायसी' उत्तर प्रदेश के रायबरेली जिले के अन्तर्गत 'जायस नगर' के रहने वाले थे। इनका जन्म हिजरी सन् की नवीं शताब्दी में हुआ होगा तथा ३० वर्ष की अवस्था मे इन्होंने 'आखिरी-कलाम' की रचना की होगी।[2] जायसी के जीवन-काल के सम्बन्ध में अभी तक विद्वानों मे काफी मत-भेद है। जिसके विस्तार में जाना हम अनावश्यक समझते है। डॉ० शिव सहायक पाठक ने इस विषय पर काफी विस्तार से विवेचना की है। हम उन्हीं के निष्कर्ष के आधार पर जायसी का जन्म-काल ८८१ हि० (स० १४७६ ई०) तथा मृत्यु-काल ४ रज्जब ६४६ हि० (१५४२ ई०) मान लते है।[3]

डॉ० शिव सहायक पाठक ने गार्सांद तासी, पं० रामचन्द्र शुक्ल, पं० चन्द्र बली पाण्डेय, सैयद आले मुहम्मद आदि विद्वानों का हवाला देते हुये जायसी को जिन १४ ग्रंथों के होने की संभावना व्यक्त की है[4] उनमें 'अखरावट' और 'आखिरी-कलाम' फुटकर काव्य की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं।

जायसी का अखरावट : रचनाकाल ६११ हि० (१५०५ ई०)[5]—'अखरावट' जायसी के शब्दों में ज्ञान का ककहरा है—'कहौं सौं ज्ञान ककहरा, सब आखर मंह लेखि।[6] 'अखरावट' में हिन्दी वर्णमाला के अनुसार एक-एक दोहे लिखे गये है। इसमें कवि ने ईश्वर, सृष्टि, रचना, जीव, जगत् तथा ईश्वरीय प्रेम एवं उसकी साधना के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला है। कवि 'पिंड' में ही 'ब्रह्माण्ड' का स्वरूप देखता है वह उसे अनन्त मानता है।[7] अखरावट मे उल्लिखित सृष्टि के उद्भव

१. सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २२७
२. मा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी ॥
—आखिरी कलाम-जायसी-दोहा ४।
३. मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य—डॉ० शिव सहायक पाठक, पृ० ५०-५७ तक
४. वही; पृष्ठ ६६
५. वही; पृष्ठ ७५
६. अखरावट-जायसी छन्द १
७. सातो दीप नवों खंड, आठों दिसा जो आहि।
जो ब्रह्माण्ड सो पिंड है हेरत अंत न जाहि ॥ —वही छंद ८

और विकास की कथा मूलतः इस्लामी धर्म ग्रन्थों के अनुसार है। कवि के अनुसार सृष्टि की रचना 'शून्य' से हुई है और शून्य में ही लय हो जायेगी। शून्य ही 'ब्रह्म' है और जीव उसका अंश है।[1] इस तरह जायसी के सृष्टि सम्बन्धी सारे सिद्धान्त, ब्रह्माण्ड का चित्रण आदि इस्लामी आस्था के अनुकूल होते हुये भी भारतीय वेदान्त तथा योग साधना से प्रभावित प्रतीत हो रहा है। वे शरीअत, तरीकत, हकीकत, और मारिफत नामक चार सोपानों से सात खण्डो पर चढ़ने के लिये इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ी रूप त्रिवेणी का बड़ा महत्व मानते हैं :

सात खण्ड और चार निसेनी। अगम चढ़ाव पन्थ तिरवेनी ॥[2]

जायसी ने सात खण्डो का वर्णन करते हुय सबसे नीचे शनि फिर क्रमशः ऊपर की ओर वृहस्पति, मंगल, आदित्य, शुक्र, बुद्ध और सबसे ऊपर सोम का स्थान मानते हैं।[3] संत कवियों का षट् चक्र भेदन क्रिया इससे बहुत कुछ साम्य रखती है। इस्लामी धर्म के तीर्थ आदि को भी कवि ने शरीर मे ही प्रदर्शित किया है वे ब्रह्म की साधना के लिये तीर्थादि में जाने की आवश्यकता नही मानते। जायसी ब्रह्म को सृष्टि का कर्त्ता, भर्त्ता, और संहर्त्ता मानते है।[4] जीव और ब्रह्म के अभेदत्व का स्पष्टीकरण करते हुये कवि कहता है कि जैसे दूध मे 'घी' और समुद्र मे 'मोती' स्थित है वैसे ही वह परम ज्योति भी इसी जगत् के भीतर-भीतर भासित हो रहा है।[5]

इस तरह 'अखरावट' मे जायसी ने उदारतापूर्वक इस्लामी भावनाओं के साथ-साथ भारतीय हिन्दू भावनाओ से सामंजस्य का प्रयत्न किया है जो उनकी उदार मानवतावादी दृष्टिकोण की परिचायिका है।

जायसी-कृत 'आखिरी कलाम' (१५३२ ई०) (हि० सन ९३६ ई०)[6]—जायसी के कथनानुसार 'आखिरी कलाम' की रचना ९३६ हिजरी मे हुई।[7] जिस

---

१. नेहि महं अस समानेउ जाई। सुन्न सहज मिलि आवे जाई। —वही छंद ३२

२. वही छंद २४

३ वही छंद १७

४ तुम करता बड सिरजन हारा। हरता-धरता सब संसारा ॥ —वही छंद ४

५ अखरावट छंद ३१

६ मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य —डॉ० शिव सहाय पाठक, पृष्ठ ९५

७. नौ सौ बरिस छत्तीस जो भये। तब एहि कथाक आखर कहे ॥

—आखिरी कलाम जायसी दोहा १३

तरह 'अखरावट' में कवि ने सृष्टि रचना की कथा का उल्लेख किया उसी तरह आखिरी कलाम में 'कयामत' का वर्णन है। इसमें प्रलय (कयामत) का जो चित्रण हुआ है वह कुरान सम्मत है। इसमें सूफी सिद्धान्तों और मतों का प्रतिपादन नाम-मात्र का ही है। मुहम्मद साहब की प्रशस्ति का गान ही मुख्य विषय है। 'आखिरी-कलाम' जायसी की सर्वप्रथम रचना होने के साथ-साथ उस समय की लिखी प्रतीत होती है जब कवि कट्टर इस्लाम का समर्थक था। अभी उस पर सूफियाना रंग नहीं चढ़ा था। फिर भी कवि भारतीय वेदान्त के अद्वैतवाद से कम प्रभावित नहीं है। अद्वैतवादी के अनुसार जहाँ 'ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैवना परः' अर्थात् ब्रह्म के अतिरिक्त समस्त संसार मिथ्या है। कहा गया है वहाँ जायसी भी यही मानते हैं—

झूठे सबहिं आप पुनि सांचे। सबहिं नबी के पाछे बांचे ॥[1]

'आखिरी कलाम' मूलतः एक कथा प्रधान रचना है इसमें इस्लाम धर्म के अनुसार अन्तिम दिन की कथा कही गई है।

(३) **शेख फरीद और उनके सलोक (मृत्यु सन् १५५३ ई०)**—शेख फरीद, शेख फरीदुद्दीन चिश्ती वा शंकरगंज (सं० १५३०-१६२२) के वंशधर थे जो फरीद बाबा के नाम से विख्यात थे। ये 'फरीदसानी', शेख ब्रह्म साहब, सलीम फरीद, शेख इब्राहम, आदि कई नामों से प्रख्यात् थे। इनका जन्म-स्थान 'दीपालपुर' का निकटवर्ती कोठीवाल नामक गाँव समझा जाता है। इनके जन्म के सम्बन्ध में अभी तक कोई प्रामाणिक सूत्र नहीं प्राप्त हो सका है। 'डॉ० मेकालिफ' ने 'खोलातुत्तवा-रीख' के आधार पर इनकी मृत्यु २१वीं रज्जब हि० ६६० (सन् १५५३ ई०) निश्चित किया है।

इनकी रचनाओं का कोई पृथक् संग्रह अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। कुछ सलोक (दोहे) और पद 'आदि ग्रन्थ' में सगृहीत मिलते है जिनमें इनके कोमल हृदय और गम्भीर अनुभव की स्पष्ट छाप मिलती है। इसके अनुसार आत्म-संयम से ही परम-तत्व की उपलब्धि होती है। जब जीवात्मा ईश्वरमय हो जाती है तो सारा विश्व ही अपना-सा दीखने लगता है।[2] कवि विरह को बुरा नहीं मानता। उसका विश्वास है कि जिसके शरीर में विरह नहीं है वह मृतक तुल्य है। ईश्वर को

---

१. वही छंद ४४

२. आप संवारहि मैं मिलहि, मैं मिलिया सुष होइ।
फरीदा जे तू मरा होइ रहे, सम जग तेरा होइ ॥
—सूफी काव्य-संग्रह–आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ २१५, दो० ७

रिझाने के लिये कवि अपना सर्वस्व समर्पित करने को तैयार है। वह परमात्मा जिस वेश धारण करने से प्राप्त हो सके उसे ग्रहण करने को तैयार है।[1] इनके दोहों में अन्य मतों का खंडन-मंडन नहीं है। उनमें शुद्ध आध्यात्मिकता का पुट है। कबीर के समकालीन होने के कारण इनके कुछ सलोक कबीर की साखियों से बिलकुल ही मिलते-जुलते है। बाबा फरीद परम तत्व को जगत् में ही व्याप्त मानते हैं—

फरीदा षालकु षलक महि, षलक बसै रब मांहि।
मन्दा किसनो आषिअै, तिस बिनु कोई नांहि॥[2]

(२) **दक्खिनी हिन्दी का फुटकर सूफी काव्य**—दक्खिनी हिन्दी के सूफी फुटकर काव्यों में आलोच्य काल की परिधि में आने वाले प्रमुख कवि 'ख्वाजा बन्दानेवाज', 'शाह मिराजी', 'बुरहानउद्दीन जानम', 'शाह अली', 'मुहम्मद कुल्ली', तथा 'गौवासी' की चर्चा प्रबन्ध के उद्देश्यपूर्ति के लिये पर्याप्त होगी।

(१) **ख्वाजा बन्दानेवाज** (१३१८ ई० १४२३ ई०)—इनका मूल नाम 'सैयद मुहम्मद हुसैनी' था जो दक्षिणी भारत के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (अजमेर) नाम से प्रख्यात हुये जिन्हें लोग 'ख्वाजा बन्दानेवाज' (भक्त-वत्सल) या लम्बे कशधारी होने के कारण 'ख्वाजा बन्दानेवाज गेसूदराज' नाम से पुकारते थे। इनके पिता सैयद यूसुफ शाह एक ख्याति प्राप्त संत थे। इनका जन्म सन् १३१८ ई० के आसपास दिल्ली में हुआ था जैसा कि पहले कहा गया है। ये बचपन में ही पिता के साथ दक्खिन चले आये थे। पाँच वर्ष की अवस्था में ही पिता का देहान्त हो गया था। पिता का देहान्त हो जाने के पश्चात् ये माता के साथ दिल्ली वापस आकर 'ख्वाजा नसीरुद्दीन' (चिरागे दिल्ली) के शिष्य हो गये। अस्सी वर्ष की अवस्था में जब सन् १३९८ में तैमूरलग ने दिल्ली को ध्वस्त किया ये सपरिवार गुजरात आदि होते हुये दक्खिन (दौलताबाद) आये। बहमनी राज्य के आठवें उत्तराधिकारी फिरोज शाह (१३९७-१४२२ ई०) ने ख्वाजा को सम्मान अपनी राजधानी में बुलवाया। जहाँ इनकी मृत्यु १०५ वर्ष की अवस्था म सन् १४२३ ई० मे ही गई।[3] यों तो ख्वाजा की फारसी की बहुत-सी रचनायें हैं किन्तु दक्खिनी हिन्दी में इनकी निम्नलिखित तीन पुस्तकें विशेष महत्वपूर्ण हैं :—

---

१ पाड़ि पटोला धजकरी, कंबलड़ी पहिरेउ।
जिन्ही वैसी सहु मिलै, सोई बेस करेउ॥
—वही पृष्ठ २३६, दोहा ८

२. वही दोहा ६ पृष्ठ २३६

३. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा—राहुल सांकृत्यायन पृष्ठ ३

(१) चक्कीनामा (पद्य), (२) मेराजनामा (गद्य), (३) शः पारा (गद्य)।

'चक्कीनामा' में कवि ने एक रूपक के आधार पर शरीर को चक्की माना है और जीवन की नाना गतिविधियों का उसमें समावेश किया है जिसका ईश्वरीय सम्बन्ध दिखलाकर उसमें आध्यात्मिक पुट दिया है। वह कहता है :—

देखो वाजिद तनकी चक्की। पीड चातुर होके सक्की॥
सौकन इब्लिस खिच-खिच थक्की। के या बिस्मिल्ला अल्ला हो॥
अलिफ अल्ला उसका दिसता। म्याने मुहम्मद होकर बसता॥
पंछी तलब योंकू दिसता। के या बिस्मिल्ला हो॥[१]

'मेराजनामा' और शः पारा गद्यबद्ध रचनाएँ है। 'मेराजनामा' मे ईश्वरीय रहस्य का उद्घाटन किया गया है और शः पारा अभी अप्रकाशित है। 'चक्कीनामा' और 'मेराजनामा' का उर्दू मे प्रकाशन हो चुका है। डॉ० मोरवलीउद्दीन ने ख्वाजा बन्दानेंवाज की सभी रचनाओं को अपने ग्रन्थ 'तसव्वुफ' और 'सलूक' मे स्थान दिया है जो दिल्ली से १६६६ में प्रकाशित हुआ है।[२]

(२) **शाह मीराजी (मृत्युकाल १४६६ ई०) की रचनाएँ**—'शाह मीराजी', ख्वाजा बन्दानेवाज' के दूसरे उत्तराधिकारी 'ख्वाजा कमालुद्दीन बयावानी' के शिष्य थे। इन्हें 'शम्शुल उश्शाक' (प्रेमियों का सूर्य, भक्त सूर्य) आदि नाम से भी पुकारते हैं। भक्त होने के साथ साथ ये उच्चकोटि के विद्वान् भी थे। इन्होने अपने जीवन के १२ वर्ष मदीना मे व्यतीत किये थे। वहाँ से वापस आने पर ये 'ख्वाजा कमालुद्दीन बयाबानी' के शिष्य हो गये और बीजापुर से बाहर जाकर रहने लगे। वहीं सन् १४६६ ई० में इनकी मृत्यु हो गई। इनकी पुस्तको मे (१) 'खुशनामा', (२) 'खुशनब्ज', (३) 'शहादतुल-हकीकत', (४) 'शाह मर्गबुल कुलब', (५) 'सबरस' विशेष महत्वपूर्ण है। इनमें से 'खुशनामा', 'खुशनब्ज' 'शहादतुल-हकीकत' पद्यबद्ध एवं 'शाह मार्गबुल कुलब' तथा 'सबरस' गद्यबद्ध रचनाएँ है। यद्यपि 'शाह मीराजी' ने 'सबरस' मे गद्य का प्रयोग किया है किन्तु उसमे पद्य ५.. ना तुकं और लय मिलता है। यथा :—

'मुहब्बत से बंधा अपने काम में मशगूल रह। किस सों न को झगड़। यहाँ आराम या काम, यां हाल, या बसाल, यां वो खसरे वाले। जो कुछ तू देखेगा, जो सुनेगा सो सब दर्द सर है।'

'शाह मीराजी' की रचनाओ में आध्यात्मिक उपदेश बड़े ही सरल ढंग से दिये गये है। इनकी अधिकाश रचनाएं अभी तक अप्रकाशित है।

---

१. चक्कीनामा —स० डॉ० सैयद मुहीउद्दीन कादिरी, पृष्ठ १६, २० के आधार पर
२. सूफी काव्य-विमर्श—डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, पृष्ठ २२६

(३) अशरफ कृत नौसिरहार (र० का० १५०३ ई०)—सूफी कवि अशरफ के सम्बन्ध मे बहुत ही कम जानकारी प्राप्त हुई है। ये सम्भवत: नानक और सूर के मध्य के काल मे हुये हैं। इनका पूरा नाम शेख शरफुद्दीन अशरफ है। उन्होंने सन् ६०६ हि० (१५०३ ई०) मे 'नौसिरहार' नामक काव्य की रचना की थी। यह एक कथा-काव्य है जिसमें 'इमाम हुसैन' की संकट घडियो का बड़ा ही मार्मिक चित्रण है। कवि ईश्वर को इस पृथ्वी, आसमान, चाँद, सूर्य, तारे, वृक्ष, बादल, बिजली, मेघ आदि सारे जगत् का स्रष्टा मानता है। अल्लाह को एकमात्र सत्य कहता है :—

> अल्ला वाहिद हक सुभान। जिन यह सिरज्या मुइ-असमान ।।
> चन्दा सूरज तारे रूख। बादल बिजली मेह अचूक ।।[1]

इस तरह यह 'बाशरा' कोटि का सूफी कवि है जो ईश्वर के प्रति कुरान के अनुकूल विचार रखता है। इनकी रचना 'नौसिरहार' अभी तक अप्रकाशित है जिस पर विशेष अनुसंधान की अपेक्षा है। 'खालिक बारी' जिसे भूल से खुसरो की कृति समझा जाता है की तरह अशरफ ने 'वाहिदबारी' नामक एक कोष ग्रन्थ का भी प्रणयन किया है।

(४) बुरहानुद्दीन जानम (जन्म १५४३ ई०) की रचनाएँ—इनका जन्म हि० स० ६५० (१५४३ ई०) मे, बीजापुर मे हुआ था। ये 'शाह मीराजी शमशुल उश्शाक' के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे। पिता की भाँति ही ये भी गम्भीर विचारक तथा ख्याति प्राप्त सन्त थे। इन्होने कलाम और सूफी ज्ञान पर कई पुस्तकों का प्रणयन किया जिनमे 'सुख सुहेला' और 'ईर्शादनामा' पद्यबद्ध रचनाएँ है। 'ईर्शादनामा' की रचना 'अशरफ' के 'नौसिरहार' से ८१ वर्ष पश्चात् अर्थात् ६६० हि० (१५८२ ई०) मे लिखी गई।[2] इस पुस्तक को कवि ने अन्त:प्रेरणा मे लिखी है।

'तज्किरा उर्दू मख्तूतात' मे इनके कुछ पद्य उद्धृत मिलते है, जिनका राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा' नामक पुस्तक मे उल्लेख किया है। 'ईर्शादनामा' को कवि 'सत्य मार्ग प्रदर्शिका' मानता है। वह कहता है—

> जे कोई पढ़कर करें संवाद। राहे हकीकत पर होय शाद ।।
> बनकी तू ना होवे बाड़। गफलत केरे खुले किवाड ।।
> इसमे कीता कर सकलाव। ल्या-ल्या रच-रच स्वालो-जवाब ।।

---

१. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ ६

२. हिजरत मुहू सह नकदमान। ईर्शादनामा लिख्या जाम। (६६० हि०)
ईर्शादनामा—बुरहान जानम (दक्खिनी हि० का० धारा के अनुसार)

बुरहानुद्दीन जानम के विचार से ईश्वर जगत् का कर्त्ता है। वही सृष्टि का रचयिता है। वही माया रूप में विद्यमान है। वह अनन्त और अपार है। वही अनेक रूपों में यहाँ विद्यमान है—

अल्लाह सिमरुं पहले आज। कोना जिन यह धौं जगकाज ॥
जगतर करो तूं करतार। ममूं केरा सिरजन हार ॥
अस्तुत औरुं करने चख। फुर्सत पाऊँ बोलने मुख ॥
कुदरत तूं तुज अंनत पार। अगनित कीना हो परकार ॥[१]

अन्य सूफियों की भाँति 'बुरहानुद्दीन जानम' ने भी अपने गुरु और पिता शाह मीराजी की प्रशस्तियाँ लिखी है :—

सिफत करूँ कुछ अपना पीर। जिससे रोशन होय जमीर ॥[२]

'ईर्शादनामा' के अतिरिक्त कवि ने 'कल्मतुल हकायक' (सत्यवाणी) नामक गद्यबद्ध रचना भी सन् १५८२ ई० में ही लिखी है जो गूजरी जबान में लिखी गई है जिसमें अरबी और फारसी के शब्दों का बाहुल्य है। इनकी रचनाओं में सूफी अध्यात्म सम्बन्धी अच्छी सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

(५) शाह अली (गाँवधनी) (मृत्यु १५६६ ई०) की रचनाएँ—इनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था। शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई। 'माशूक अल्ला' (भगवत प्रियतम) इनका उपनाम था। उन्हें एक गाँव की जागीर मिली थी इसीलिये इन्हें 'गाँवधनी' भी कहते हैं। इनकी रचनाएँ 'जवाहर-उल-इसरारे-अल्ला' (भगवत रहस्य सार) में संगृहीत हैं जिनका संकलन इनके शिष्यो ने किया है। इनकी रचनाओ में इनके उपदेश ही काव्यबद्ध रूप में सामने आते हैं। ये ईश्वर और जगत् की अभेद्यता के सिद्धान्त को मानते है। वे ईश्वर को सारे संसार में व्याप्त पाते हैं।

मुझ बिन कोई नही जग मांहा। चेरी सुहागन हूँ तिस नांहा ॥
आपन खेले आप खिलावे। आपन आपस ले कल लावे ॥[३]

कवि ने परम तत्व की प्राप्ति के लिए प्रेम साधना का उपदेश दिया है। प्रेम के निरूपण के लिए जहाँ अन्य सूफियों ने 'लैला मजनूं', 'शीरी फरहाद' के प्रेमाख्यानों की रचना की वहाँ शाह अली ने केवल उनका दृष्टान्त प्रस्तुत करके सीधे-सीधे अपने विचारों को व्यक्त कर दिया। ईश्वर के प्रति वे कहते हैं—

१. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा-राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ ६
२. तजकिरा–उर्दू–मख्तूतात, पृष्ठ १६
३. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा—राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १२ उद्धृत।

कभी सो मजनूं होइ बिरलावे । कभी लैला होय दिखलावे ॥
कभी सो खुसरो शाह कहावे । कभी सो शीरीं होकर आवे ॥[१]

इनके विचार कुरान के अनुकूल है । ये द्वैतवाद पर विश्वास नहीं करते । ये स्पष्ट कहते हैं कि सभी ज्ञान कुरान द्वारा उपलब्ध है । द्वैत भावना के भ्रम को दूर करके मुझे (परम तत्व को) पहचानो ।[२]

(६) **मुहम्मद कुल्ली (१५६४-१६१२ ई०) की रचनायें**—मुहम्मद कुल्ली का जन्म गोलकुंडा में सन् १५६४ ई० मे हुआ था । पिता इब्राहिम कुल्ली तथा माता रानी भागीरथी एक आन्ध्र महिला थीं । 'पिता इब्राहिम कुल्ली' को हिन्दुओ की सहायता से गोलकुंडा की गद्दी प्राप्त हुई थी । पिता की मृत्यु के पश्चात् १५ वर्ष की अवस्था मे सन् १५८० ई० मे 'सुलतान मुहम्मद कुल्ली' के रूप में यह गोलकुंडा का शासक बन गया । यह कला और साहित्य का बड़ा प्रेमी था । उसे संस्कृत और तेलगू भाषाओं का भी ज्ञान था । इसकी मृत्यु सन् १६१२ ई० में हुई ।

इसकी कविता पर सूफी विचारों की छाप है । अतः इसमे लौकिक और पारलौकिक प्रेम को पृथक्-पृथक् करना असम्भव है । 'पिया के चरना', 'साईं—मनभावना', 'चाँदनी और पिया', तथा नखशिख वर्णन मे सूफी विचारों का स्पष्ट दिग्दर्शन होता है । यह प्रेम पंथी कवि है । डॉ० सैयद मुहीउद्दीन कादिरी जोर ने दानिश महल लखनऊ से सन् १९४० ई० में 'कुल्लियात सुलतान मुहम्मद कुल्ली कुतुब नाम से इनके दीवान (काव्य-संग्रह) का सम्पादन करके दो भागों में प्रकाशित कराया है । इनकी सभी रचनाओं मे सूफियाना रंग मिलना असम्भव है । उत्सव, प्रकृति चित्रण, सुख विलास, जलवा (सोहाग) दरबार की सुन्दरियो के सौदर्य का चित्रण आदि इनको कविता के वर्ण्य-विषय हैं । प्रत्येक रचना के प्रारम्भ मे ये अल्लाह और पैगम्बर की वंदना करते है । इनके प्रेम गीतो में सूफियाना अध्यात्म देखिए :—

'तेरे मुख के नूर से होता मुनव्वर चाँद अजित,
दिल की दहकीकां सों देखने बीवातां बे बेरियाँ ।
तेरे मुख मस्हफ उपर खीचे सूके का जबर,
जख्म हो रहिया है दिल तशदीद ना कर आ पिया ॥[३]

---

१ वही; पृष्ठ १३

२. हासिल सब कुरान का है इतना जानो ।
वहम दुई का दूर करो होर मुझे पहचानो ॥—वही पृष्ठ १२

३. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा—श्री राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १०३

इस तरह कवि ईश्वरीय प्रकाश से ही सूर्य और चाँद का अस्तित्व मानता है तथा ईश्वर को प्रियतम मानकर उसका ऐक्य चाहता है। प्रेम साधना मे कवि बुद्धि को बिलकुल ही व्यर्थ मानता है। वह कहता है कि जब अक्ल के तख्त पर प्रेम विराजमान हो जाता है तो प्रेम अक्ल को मात कर देता है। न आशिक को बिना इश्क के एक क्षण अच्छा लगता है और न बुद्धिमान को जिसने अपने को प्रेम में खो दिया है।[१] प्रेम का निरूपण करते हुए कवि ने विरह आदि के भी बड़े सुन्दर वर्णन किये है।

(७) **गौवासी** (१६२० ई०)—मुल्ला गौवासी दक्खिनी हिन्दी के तीन महाकवियों में से एक है। इनकी तीन रचनायें 'शैफुल मलूक', व 'बद्दीउज्जमाल', 'मैना सतवंती', (प्रेमाख्यान) तथा 'तूतीनामा' (फुटकर) विशेष महत्वपूर्ण है। 'गौवासी' प्रारम्भ मे राजकीय सम्मान न पाने से क्षुब्ध था बाद में सुल्तान अब्दुल्ला कुतुब शाह के शासन-काल (१६२६-६२ ई०) मे उसके न्याय की माँग करने पर उसे राज कवि का सम्मान प्राप्त हुआ। प्रेमाख्यानो के सम्बन्ध में हम अलग विस्तार से प्रकाश डालेगे। 'गौवासी' की फुटकर रचना 'तूतीनामा' प्रेम कथाओ का एक संग्रह है जिसमे कथा के माध्यम से सूफी साधना के आत्म-संयम पक्ष की ओर विशेष बल दिया गया है। कवि की दृष्टि में औरत सांप मे भी भयंकर और घातक है।

"गौवासी यकी जान औरत है साप। फवे बल तो नलदे बिला उज्र जाप ॥
न जा उनकी जा हिरकी खूबी पो भूल। कि काटे ते है तेज गौ गचे फूल ॥"[२]

'तूतीनामा' की कहानी का मूल स्रोत संस्कृत की 'शुक सप्तति' के फारसी अनुवाद का दक्खिनी रूपान्तर है। 'तूतीनामा' में मूलकथा के साथ अप्रत्यक्ष संबंध रखने वाली अनेक पूरक कथायें भी आ जाती है जो दृष्टान्त स्वरूप वार्त्तालाप के बीच मे आती गई है। इससे मिलता-जुलता हिन्दी मे भी 'शुकबहत्तरी' नाम की एक रचना मिलती है।

'तूतीनामा' की कथा यो है कि एक ऐश्वर्य सम्पन्न सौदागर का लड़का बाजार से एक ऐसा तोता खरीद लाता है जो परीक्षा की बातो को बताने में समर्थ है। इसकी परीक्षा भी सौदागर का लड़का ले लेता है। तोते की राय मान लेने

---

१. अकल के तखत पर पेरेम तख्त बैठा। इश्क अक्ल के हात अपसे नचाया ॥
न आशिकक् कटना है बिन इश्क एक तिल। वो आकिल सदा जिन पिरित सों गंवाया ॥

—वही, पृष्ठ १२१

२. तूतीनामा गौवासी, छंद ११६२-६३

पर उसे 'अम्बर' (एक सुगन्धित पदार्थ) के व्यापार में विशेष लाभ हो जाता है। इस तरह तोते के प्रति उसकी विशेष रुचि पैदा हो जाती है। उसके दिल बहलाव के लिये वह एक मैना भी ला देता है। युवक सौदागर व्यापार करने के लिये कुछ दिनों के लिये बाहर चला जाता है। इसी बीच उसकी स्त्री किसी दूसरे युवक को देख उस पर आसक्त हो जाती है तथा उससे मिलने के सम्बन्ध में मैना से राय लेती है। मैना उसे सतीत्व के प्रतिकूल बताती है। स्त्री को क्रोध आ जाता है वह उसे मार डालती है। तोता सब कुछ देखकर मौन है। जब वह तोते से राय लेने के लिये जाती है तो परिस्थिति का अध्ययन कर तोता अपने विवेक से काम लेता है तथा उसे अनुमति प्रदान कर देता है। साथ में कोई उपदेश की बात कह कर उसके दृष्टान्त के रूप में एक लम्बी कहानी कहने लगता है और इस तरह रात बीत जाती है। दूसरी रात को फिर स्त्री अनुमति माँगती है और तोता स्वीकृति के उपदेश के रूप में दूसरी कहानी कह कर रात बिता देता है। इस तरह तोता नित्य ही अपनी कथा के जाल में डाल कर सेठानी के सतीत्व की रक्षा तब तक कर लेता है जब तक उसका पति विदेश से वापस नहीं आ जाता।"

यद्यपि 'तूतीनामा' में प्रत्यक्ष रूप में सूफी दर्शन की कोई झलक नहीं दीखती किन्तु विचार करने पर यह संकेत अवश्य मिल जाता है कि तोता (गुरु) यदि चाहे तो साधक को लौकिक प्रेम के माध्यम से बचाकर संयम द्वारा उसे पारलौकिक प्रेम की ओर उन्मुख कर सकता है।

(ख) हिन्दी सूफी प्रेमाख्यान

हिन्दी साहित्य सूफियों का जिस अर्थ में ऋणी है विशेषकर वे उनके प्रेमाख्यान ही है जिनके माध्यम से उन लोगों ने जन साधारण में अध्यात्म के नीरस तत्वों को सरस एवं लोक-प्रिय बना दिया। ये हिन्दी सूफी प्रेमाख्यान दक्षिणी भारत और उत्तरी भारत दोनों ओर अलग-अलग रूप में प्रणीत हुये। हम इन दोनों प्रकार के प्रेमाख्यानों को निम्नलिखित दो शीर्षकों के माध्यम से प्रस्तुत करेंगे--

(१) दक्षिणी हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान (खड़ी बोली)

(२) हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान (अवधी)

(१) दक्षिणी हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान

दक्खिनी हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानकारों में हम निजामी, वजही, अमीन, गौवासी और मुकीमी के सम्बन्ध में प्रकाश डालेंगे--

(१) निजामीकृत कदम राव और पदम रचना-काल—(सन् १४५७ ई० के

पश्चात्)—दक्खिनी हिन्दी का सर्वप्रथम प्रेमाख्यान होने का श्रेय 'कदम राव और पदम' को है। पं० परशुराम चतुर्वेदी के विचार से 'निजामी' ने 'कदम राव और पदम' की रचना सन् १४५७ ई० के बाद किसी समय की होगी।[१] इस प्रेमाख्यान की कोई भी प्रति अब तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। अत: उसके सम्बन्ध में कुछ विचार प्रस्तुत करना कठिन है और तो और अभी तक इस प्रेमाख्यान मे यह स्पष्ट नही हो सका है कि 'कदम राव और पदम' मे नायक कौन है और नायिका कौन। दकन के उर्दू लेखक की हाशमी साहब ने इस प्रेमाख्यान के सम्बन्ध मे जो पंक्तियाँ उद्धृत की हैं उससे भ्रम हो जाता है कि कदम राव नायक है अथवा पदम राव।

'कि तूं साच मेरा गुंसाईं कदम।
पदम राव तुंज पांव केरा पदम॥
जहां तू धरे पांव हों सर धरूँ।
जय स सार कि लक तराई करूँ॥'[२]

उपर्युक्त उद्धरण को देखते हुये इतना तो आभास निश्चय ही मिल जाता है कि निजामी ने इस प्रेमाख्यान को उत्तरी भारत के हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानो की भांति दोहे और चौपाइयों में छंदबद्ध नहीं किया है। उसकी शैली अरबी काव्य शैली के बहुत कुछ निकट की जान पडती है।

(२) **वजही**—दक्खिनी हिन्दी का दूसरा प्रेमाख्यानकार 'मुल्ला वजही' है जिसने 'कुतुब मुश्तरी' और 'सबरस' नामक प्रेमाख्यानों की रचना की है। 'सबरस' के सम्पादक श्री श्रीराम शर्मा ने अपनी प्रस्तावना में यह संभावना व्यक्त की है कि कवि गोलकुंडा के इब्राहिम कुतुब शाह के दरबार का एक कवि है।[३] कवि के इन दोनों प्रेमाख्यानों के कथानक इस प्रकार हैं—

कुतुब मुश्तरी (रचना-काल हि० १०१८, सन् १६१० ई०)[४]—'राजकुमार

१. दक्खिनी हिन्दी की सूफी प्रेम गाथायें—परशुराम चतुर्वेदी, ना० प्र० प० सं० २००५, अं० ३, ४
२. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान—डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, पृष्ठ ८२, ८३ के आधार पर।
३. सबरस-संपादक—श्रीराम शर्मा, प्रस्तावना, पृष्ठ १
४. तमाम इस किया दीस बारा मने।
सन इक हजार हौर अठारा मने॥
—कुतुब मुश्तरी पृष्ठ ५—दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद

कुली स्वप्न में एक सुन्दरी को देखकर मुग्ध हो जाता है और जगने पर उसे पाने के लिये बेचैन हो उठता है। उसके पिता इब्राहिम चित्रकार आतरिद से सुन्दरियों के चित्र बनवाता है जिनमें से एक चित्र स्वप्न सुन्दरी का भी है। राजकुमार उसे देख प्रसन्न हो उठता है। यह चित्र बंगाल के बादशाह की बेटी 'मुश्तरी' का है। राजकुमार 'मुश्तरी' के लिये चित्रकार को साथ ले चल पड़ता है। रास्ते मे उसे 'मिरिख खा' नामक राजकुमार से भेंट होती है जो 'मुश्तरी' की बहन 'जुहरा' पर आसक्त है और एक जिन द्वारा बंदी बना लिया गया है। राजकुमार उसे मुक्त करता है और उसे साथ ले आगे बढ़ता है। फिर राजकुमारी 'आफताब' मे भेंट होती है। सभी उसके यहाँ ठहरते हैं। चित्रकार अकेले बंगाल जाता है और राजमहल मे चित्रों की सजावट करते समय चित्रो के बीच 'राजकुमार कुली' का भी चित्र लगा देता है जिस पर राजकुमारी मुग्ध हो जाती है। फिर राजकुमार सूचना पाकर बंगाल जाता है और मुश्तरी से शादी करता है। 'मिरिख खा' की शादी 'जुहरा' से होती है। राजकुमार कुली स्वदेश वापस आ जाता है और मिरिख खा बंगाल में ही राज्य करता है।

सबरस (रचना-काल सन् १६३६ ई०)[1]—'सीस्तान' के बादशाह 'अक्ल' के लड़के का नाम 'दिल' है। 'अक्ल' का प्रताप संसार में विराजमान है उसका लड़का 'दिल' भी अद्वितीय वीर, साहसी और धनुर्धर है। अक्ल द्वारा उसे 'तन' नामक नगर का राज्य सौंप दिया जाता है। एक दिन मजलिस मे 'आबेहयात' की प्रशंसा सुनकर वह उसके लिये व्यग्र हो उठता है। वह अपने जासूस 'नजर' को 'आबेहयात' का पता लगाने के लिये भेजता है जो सर्वप्रथम 'आकफियत' नामक नगर में पहुँचता है। जहाँ के राजा 'नामूस' से 'आबेहयात' के सम्बन्ध मे कोई जानकारी न मिलने पर वह आगे बढ जाता है। उसे 'रिजक' नामक वृद्ध से ज्ञात होता है कि 'आबेहयात' स्वर्गीय वस्तु है। वह प्रेमियों के आँसू मे मिल सकती है।

वहाँ से निराश हो 'नजर हिदायत' के दुर्ग मे पहुँचता है जिसका स्वामी 'हिम्मत' है। 'हिम्मत नजर' को समझाता है कि वह आबेहयात को न ढूंढे। उसके पीछे 'मजनूँ', 'जुलेखा' और 'यूसुफ' को बहुत कष्ट उठाना पड़ा। किन्तु 'नजर' अपनी 'हिम्मत' पर दृढ है। वह 'सुबकसार' नगर में पहुँचता है फिर आगे 'दीदार नगर' पड़ता है जहाँ राजकुमारी 'हुस्न' को देखता है। हुस्न, इश्क की पुत्री है। वह 'नजर' को 'आबेहयात' दिलाने का वादा करती है। 'नजर' स्वदेश वापस

---

१ सबरस—सं० श्रीराम—दक्खिनी प्रकाशन समिति, हैदराबाद, भूमिका, पृ० २१

आता है। 'हुस्न' और 'दिल' की शादी हो जाती है। अक्ल और इश्क में समझौता होता है। इश्क, अक्ल को अपना मंत्री बना लेता है।

इस तरह हम देखते है कि 'वजही', 'सबरस' नामक प्रेमाख्यान में साधना के प्रत्येक अंग को ही प्रतीक पात्र मानकर कथा की सर्जना करता है। दोनों प्रेमाख्यानों के कथानक उद्देश्य परक है 'कुतुब मुश्तरी' में प्रेम और विरह का सफल चित्रण करके सूफी साधना की अभिव्यक्ति की गई है उसकी कथा समकालीन व्यक्ति को नायक बनाकर लिखी गई है। नायक कुतुब शाह कभी बंगाल गया था अथवा नही यह संदेहास्पद है। 'सबरस' की कथा का आधार मानवीय मनोभाव ही है जो प्रतीक रूप में कथा के पात्र है।

(३) **अमीन** (१६२० ई०) **कृत बहराम हुश्नबानू**—'अमीन' (बीजापुर), 'मुहम्मद कुली', 'वजही', और गौवासी का समकालीन था। उसने 'बहराम हुश्नबानू' नामक प्रेमाख्यान को लिखना प्रारम्भ किया था कि जिसे समाप्त नहीं कर सका था। इस प्रेमाख्यान को दूसरे कवि 'दौलत' ने १६३८ ई० मे पूरा किया।[1] 'अमीन' अपने समय के अन्य कवियो की भाँति दरबारी कवि नहीं था। वह 'शाह आलम' नामक पीर का अनुयायी था। वह ईश्वर को जगत् का स्रष्टा मानता है—

'इलाही जगत् का करन हार तूँ। गरीबां नबीया का उद्धार तूं।'[2]

बहराम हुश्नबानू का कथानक इस प्रकार है—फारस शहर के बाद शाह का नाम 'शाह बहराम' था। उसे पशुओ के शिकार का अत्यन्त ही शौक था इसीलिये उसे लोग 'शाह बहराम गौर' भी कहते थे। संसार मे उसकी तरह कोई दूसरा बादशाह नही था।

एक दिन प्रातःकाल के समय 'हुश्नबानू' अपनी तीन सहेलियों के साथ स्नान कर रही थी। उनमे 'बहराम शाह' की ही बात-चीत चल रही थी।

'सुना शहर फारस का है बादशाह। है खूबी मने खूब ज्यों मेहो माह ॥
कते है बहुत खूबसूरत है वो। फिरंग चीन की खूब सूरत है वो ॥
अगर्चे वही आदमी जाद है। चदा उसके आगे सो बो मात है ॥[3]

प्रशंसा करते हुये उन सहेलियो ने चलकर बादशाह को देखने का निश्चय

---

१. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा— राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १२८
२. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा—राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १२९ से उद्धृत।
३.. वही, पृष्ठ १३०

किया किन्तु 'हुश्नबानू' के यह कहने पर कि उसने आज रात में बुरा स्वप्न देख है यह कार्यक्रम स्थगित कर दिया गया। स्नानोपरान्त जब वे शहर आई तो उन कपड़े गायब थे। वे रोने लगीं। कपड़ों की तलाश करने लगीं। इतने में बगीचे छिपा 'शाह बहराम' मिल गया। सबने उससे कपड़े छिपाने का उद्देश्य पूछा त शाह बहराम ने अपने दिल के रहस्य को प्रकट किया—

'तुमारे जो साथ है बानू हुस्न। उने दिल मे मेरे किया है वतन॥
मेरा जीव उस पर हुआ है फिदा। खुदा उसमे मुजकू न राखे जुदा॥'

'हुश्नबानू' की सहेलियों ने पहले तो 'शाह बहराम' की इच्छापूर्ति व बड़ा ही कठिन ठहराया किन्तु जब शाह अपनी हठ पर अड़ा ही रह गया और उस कपड़े नही दिये तब सहेलियों ने प्रार्थना किया कि हम तो 'हुश्नबानू' की सहेलि है तुम हम सबों पर तो आसक्त नहीं हो अत. हमारे कपड़े दे दो। शाह ने सहेलि को कपड़े दे दिये। सहेलियाँ कपड़े पहन 'हुश्नबानू' को अकेली छोड़ घर च गईं। लज्जा के मारे हुश्नबानू जल में समा गई। इस तरह दोनो का प्रथम मिल हो गया।

यह कथा श्रीकृष्ण के 'चीर हरण' से बहुत कुछ साम्य रखती है। प्रेम उत्कट अभिलाषा का बड़ा ही सजीव चित्रण इस प्रेमाख्यान में हुआ है। उत्त भारत के सूफी प्रेमाख्यान 'मृगावती' मे भी प्रेयसी का साक्षात्कार इसी प्रेमाख्यान व भाँति कराया गया है।

(४) **गौवासी कृत शैफुल मलूक और बद्दीउज्जमाल**— जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके है। मुल्ला गौवासी के दो प्रमुख प्रेमाख्यान 'शैफुल मलूक बद्दीउज्जमाल' तथा 'मैना सतवंती' विशेष महत्वपूर्ण है। इनके कथानक इ प्रकार है—

शैफुल मलूक व बद्दीउज्जमाल (र० का० १०३५ हि०–१६२१ ई०)[1]– 'मिस्र' का बादशाह 'आसिम नरल' संतानहीन था। ज्योतिषियों की राय से उस यवन राजकुमारी से शादी की जिससे 'शैफुल मलूक' नामक पुत्र पैदा हुआ। उ दिन वजीर को भी 'साऊद' नामक पुत्र पैदा हुआ। एक दिन बादशाह ने दो बच्चों को बुलाकर 'शैफुल मलूक' को एक जरीदार कपड़ा तथा एक सुलेमान अंगूठी दी। कपड़े पर बने चित्र को देख राजकुमार उस पर मुग्ध हो गया बाद मे उसे मालूम हुआ कि यह चित्र 'गुलिस्ताने एरम' के बादशाह की बे 'बद्दीउज्जमाल' का है। वह 'साऊद' के साथ उसकी खोज मे चल पड़ा. स

---

१. बरस इक हजार पच तीस में। किया खत्म यो नजम दिन तीस मे।
—गौवासी कृत–शैफुल मलूक व बद्दीउज्जमाल–पंक्ति २२

को पार करता हुआ वह अपने साथियों सहित चीन पहुँचा। वहाँ एक ७० वर्षीय बूढ़े द्वारा ज्ञात हुआ कि 'कुस्तुनतुनियां' नगर में 'बद्दीउज्जमाल' का पता चलेगा राजकुमार आगे बढ़ा। समुद्र में तूफान आया। वह बहकर हब्शियों के देश में पहुँच गया जहाँ वह बन्दी बना लिया गया। हब्शी राजकुमारी उस पर आसक्त हो गई किन्तु राजकुमार का मन वहाँ नहीं लगा। वह 'कैसरिया नगर' पहुँचा। वहाँ से 'इस्फंद' नामक द्वीप में पहुँचा। वहाँ उसने 'बद्दीउज्जमाल' की सहेली को राक्षस के फंदे से मुक्त किया जिसकी सहायता से उसे 'बद्दीउज्जमाल' प्राप्त हो गई। उसे ले वह स्वदेश को लौट गया।

मैना सतवंती (र० का० सन् १६०८-१० ई०) **के बीच**—'चाँदा बालाकुंवर नामक राजा की रूपवती कन्या है। लोरक एक ग्वाला है, जिसका विवाह 'मैना' नामक सुन्दरी से हुआ है। एक दिन जब लोरक गाय चराकर वापस आता है तो उसे देख 'चांदा' उस पर आसक्त हो जाती है। फिर लोरक को बहुत समझा-बुझा कर उसके साथ दूसरे नगर मे भाग जाती है। जब यह समाचार राजा को मालूम होता है तो वह 'लोरक' की स्त्री 'मैना' पर डोरे डालने के लिये कूटनी को भेजता है। कूटनी अपने माया जाल से 'मैना' को उसके सतीत्व से च्युत करना चाहती है किन्तु वह अपने निश्चय पर दृढ़ है। हार मानकर ६ माह पश्चात् कूटनी वापस आ जाती है। पुनः राजा कूटनी को लेकर 'मैना' के घर जाता है। स्वयं कोने में छिप जाता है और कूटनी को 'मैना' को फुसलाने हेतु भेजता है। जब कूटनी किसी तरह 'मैना' को उसके सतीत्व से डिगा नहीं पाती तब राजा 'मैना' के चरित्र से विशेष प्रभावित होता है। वह प्रकट होता है और मैना से कहता है—'तू मेरी माँ है मै तेरा बेटा हूँ।'

राजा लोरक और चांदा को वापस बुलवा देता है। विधिवत् लोरक और चादा का विवाह होता है। लोरक मैना और चादा के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगता है। मैना कूटनी का सिर मुंड़वाकर नगर से निकलवा देती है।

कुछ लोगो को भ्रम है कि गोवासी की 'मैना सतवंती' दाऊद कृत 'चंदायन' का दक्खिनी रूप है किन्तु वास्तव मे विचार किया जाय तो यह कथा साधनकृत 'मैनासत' अथवा हमीदी के 'अस्मतनामा' का एक स्वतंत्र संस्करण है। इस प्रेमाख्यान में प्रेम की दृढ़ता, प्रेम की परीक्षा तथा सत की रक्षा का सुन्दर चित्रण मिलता है।

(५) मुकीमी कृत चंदर बदन और महियार—मुकीमी ईरान का निवासी फारसी का ख्याति प्राप्त कवि था किन्तु हिन्दी की महिमा से प्रभावित होकर इसने भी हिन्दी मे काव्य लिखना प्रारम्भ किया था। यह असमाबाद उत्तरी ईरान के

सैयद वंश से सम्बन्धित था। पिता के साथ तीर्थाटन करता हुआ दक्षिणी ईरान पहुँच गया। पिता के मरणोपरान्त यह दक्षिणी भारत से बीजापुर में आ गया तथा पढ़-लिख कर एक अच्छा कवि बन गया। इसने 'चंदर बदन और महियार' नामक प्रेमाख्यान लिखा है जिसकी प्रेरणा इसे 'गौवासी' के 'शैफुल मलूक व बद्दीउज्जमाल' से मिली है[1] जो इससे पहले गोलकुंडा में लिखा जा चुका था।

चंदर बदन और महियार (र० का० १६२७ ई०)—'चन्दर पटन' की हिन्दू राजकुमारी 'चंदर बदन' पर एक मुसलमान व्यापारी महियार (मुहीउद्दीन) आसक्त हो जाता है। वह उसकी तलाश में 'चंदन पटन' पहुँच जाता है तथा 'चंदर बदन' को देख उसके चरणों पर गिर जाता है किन्तु चंदर बदन उसे ठुकरा देती है। उसे इससे मार्मिक चोट पहुँचती है। वह पागल हो जाता है और नित्य 'चंदर बदन' के घर के पास चक्कर काटने लगता है। 'चंदर बदन' के पिता को यह बात बुरी लगती है। वह कड़ाई करता है। एक दिन 'महियार' चंदर बदन के प्रेम में अपने प्राण दे देता है। उसके जनाजे को लोग उठाते है तो वह दूसरे रास्ते से जाता ही नही। जब 'चंदर बदन' के घर की ओर जाने वाले रास्ते से वे लोग जनाजे को ले चलते हैं तो वह आगे बढ़ने लगता है। 'चंदर बदन' के दरवाजे के सामने जाकर 'जनाजा' अचानक रुक जाता है। एक लौंडी 'चंदर बदन' को 'महियार' की मृत्यु का समाचार सुनाती है। 'चंदन बदन' उसे देखने आती है और फिर—

'कफन बीच आकर ओ चंदर बदन। गले लग सोती है सो जो एक तन ॥
गले उस गले लग पिरित प्यार सूँ। पिरित मद मुहब्बत की महियार सूँ ॥
जुदा उनको हर चंद करने लगे। कि दोनो को दो ठोर धरने लगे ॥
तो यों लग अपस में ओ सोते अथे। जुदाई किये तो न होते अथे ॥[2]

इस तरह दोनों का महा-मिलन होता है। 'चंदर बदन' की मौत हो जाती है और दोनो एक साथ एक ही स्थान पर दफनाये जाते हैं।

मुकीमी इस प्रेमाख्यान में सूफी मसनवी परम्परा के अनुसार किसी शाहेवक्त की न तो प्रशस्ति गाता है और न 'वजही', 'गौवासी' आदि कवियो की भाँति आत्म-प्रशंसा ही करता है। उसका यह प्रेमाख्यान स्पष्ट करता है कि मजहब की दीवारें प्रेमी-प्रेमिका के मिलन मे कदापि बाधक नही हो सकतीं, इस दृष्टिकोण मे

---

१. चंदन बदन व महियार कथा—सं० मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी—एम० ए० (भूमिका)

२. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा—श्री राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ २२५ से उद्धृत

को राक्षस के चंगुल से छुड़ाया। 'निरमलदे' की सहायता से मेरा और राजकुमार का मिलन हो गया। माता को जब यह बात हुई तो उसने मुझे और मेरी बहन 'परमल' को खूब डाँटा। मै कुवर के विरह में तड़पने लगी। लोक-लज्जा के निवारण के लिये माँ ने मुझे पक्षी बना दिया। साल भर बीत गये। प्रियतम की खोज में मारी-मारी फिर रही हूँ।" 'पुरुषोत्तम' ने उसे धर्म की बहन मान उसकी सहायता का निश्चय किया। वह सिर पर पिंजडा लिये 'सुरपति' की खोज में निकल पड़ा। दो वर्ष पश्चात् 'प्रेमपुरी' पहुँचा। उसकी माँ उसे पाकर प्रसन्न हुई। उसने पुनः अप्सरा बना दिया तथा सुरपति से विवाह कर दिया। इसी समय 'पुरुषोत्तम' और 'निरमलदे' तथा 'महानन्द' एवं 'परमलदे' का भी विवाह सम्बन्ध हो गया।"

इस कथा मे परोपकार की महत्ता का वर्णन किया गया है। मंझन कृत मधुमालती मे भी इसी प्रकार 'मधुमालती' माँ के अभिशाप से पक्षी बन गई है। जिस तरह प्रेमा की सहायता से नायक-नायिका का मिलन हुआ था यहाँ भी मिलन होता है।

(११) **कथा रत्नावती सं० १६६१ वि० (१६३४)**[1]—"अमृतपुरी के राजा 'जगराइ' ने सन्तान के लिये ज्योतिषियों की राय पर 'उदयभान' राजा की पुत्री जगरानी से विवाह किया जिससे 'महिमोहन' नामक पुत्र पैदा हुआ। उसी समय मन्त्री 'जग जीवन' के यहाँ भी 'उत्तिम' नामक पुत्र पैदा हुआ। दोनो साथ साथ खेलते थे। १४ वर्ष का होने पर राजा ने दोनो को बुलवाया। राजकुमार को एक जामा और मुद्रिका तथा मन्त्री पुत्र 'उत्तिम' का सरपाव देकर विदा किया। जामे पर चित्रित चित देखकर कुंवर महिमोहन मुग्ध हो गया। वह विरह मे बेचैन रहने लगा। राजा ने राजकुमारी की खोज का बहुत प्रयास किया किन्तु सफलता नही मिली। बाद में स्वयं ही राजकुमार 'रत्नावती' की खोज मे निकल पड़ा, ५० लाख व्यक्तियो के साथ नौका द्वारा वह चीन पहुंचा। वहाँ से चित्रपुरी गया। फिर २७० वर्षीय वृद्ध से राय लेकर 'रूपदेश' के कष्टप्रद मार्ग पर चल पडा। रास्ते में तूफान आने से उसका साथ 'उत्तम' आदि सभी साथियों से छूट गया। एक जोगी उसे पकड़ कर अपने घर ले गया। जहाँ जोगी की स्त्री उस पर मोहित हो गई। किन्तु कुंवर राजी नहीं हुआ अतः वह उसे कष्ट देने लगी। एक दिन कुंवर वहाँ से भाग निकला अनेक कष्ट उठाने के बाद उसे ख्वाजा खिज्र से भेंट हुई जिनकी कृपा से

---

१. सोरह सै इक्यानवे बरष, रतनावति बांधी मैं हरषि।
अगहन वदि साते करिजान, कथा संपूरन कर्‌यो बखान॥
—जायसी के परवर्ती हिन्दी कवि और काव्य —डॉ० सरला शुक्ल, पृ० ३७८

कुंवर की दो भूपाल मित्रों से भेंट हुई। फिर कुंवर ने 'पद्मिनी' नामक राजकुमारी को दैत्य के चंगुल से छुड़ाया दोनों सिंहल की ओर जा रहे थे। रास्ते मे कुंवर का मित्र 'उत्तम' भी मिल गया। 'पद्मिनी के सहयोग से कुवर का 'रत्नावती' से मिलन हो गया।

इसके पश्चात् एक देव 'महिमोहन को उड़ाकर 'रूपपुरी' मे 'रूपरम्भा' के पास ले गया जिसने 'रत्नावती' के माता-पिता को 'महिमोहन से ब्याह कर देने को समझाया। इसी बीच 'पद्मिनी' को पकड़ने वाले दैत्य के भाई ने छल मे 'महिमोहन' को पकड़वा लिया। 'रत्नावती' के विरह मे दयार्द्र हो सूरज राजा ने दैत्यों को परास्त कर 'महिमोहन' और 'रत्नावती' का विवाह कर दिया। 'उत्तम' और 'पद्मिनी' का भी विवाह हुआ। दोनों खुशी-खुशी स्वदेश लौटे।"[1]

इस तरह हम देखते है कि रत्नावती और सैफुल मलूक व बदीउज्जमाल की कथा में बहुत कुछ साम्य दिखाई पड़ता है। कथा मे सर्वप्रथम निर्गुण ब्रह्म की वन्दना है।

(१२) **ग्रंथ बुधिसागर या कथा मधुकर मालती सं० १६९१ (१६३४ ई०)**[2] —'मधुकर' और 'मालती' का प्रेम एक चटसार मे प्रारम्भ होता है। बाद मे मधुकर पिता के साथ विदेश चला जाता है। इधर मालती बिलायत के एक बादशाह द्वारा खरीद ली जाती है. किन्तु वहाँ से मंत्री के यहाँ आकर विरहिणी का जीवन बिताने लगती है। मधुकर का पिता परदेश में ही मर जाता है। मधुकर घर आता है और 'मालती' को न पाकर बेचैन हो उठता है। वह मालती की खोज मे निकल पड़ता है। खोजते-खोजते वह तुर्किस्तान के बादशाह के यहाँ पहुँच जाता है जहाँ 'मालती' बादशाह और वजीर से परित्यक्त होकर आ गई है। वहां 'मालती' के सतीत्व नष्ट करने का प्रयास किया जाता है किन्तु असफलता मिलने पर वह संदूक में बंद करके समुद्र में फेंक दी जाती है। मधुकर उसकी रक्षा करता चलता है। फिर दोनों का साथ छूट जाता है। मालती के सतीत्व को नष्ट करने के अनेक प्रयास किये जाते है किन्तु वह अपने 'सत' से नहीं डिगती समय का थपेड़ा खाती हुई बेचारी बगदाद पहुँच जाती है। वहीं 'मधुकर' भी एक भगी जहाज के सहारे

---

१. जायसी के परवर्ती हिन्दी—सूफी कवि और काव्य—डॉ० सरला शुक्ल, पृ० ३८०-३८४ के आधार पर।

२. सोरह से इक्यानवें हु फिगन बद येक।
जानि कवि कीनी कथा करिके ग्यान विवेक ॥
—ग्रथ बुधिसागर (जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य-डॉ० सरला शुक्ल) पृष्ठ ३७८

पहुंच जाता है। दोनों प्रेमी एक साथ बगदाद की एक सराय में एक-दूसरे को बगैर पहचाने रात में ठहरते हैं। सबेरे बन्दी बनाकर संदिग्धावस्था में हारू ंरशीद के सामने पेश किये जाते हैं। जहाँ उनके प्रेम की परीक्षा होती है। परीक्षा में खरा उतरने पर दोनों की शादी करा दी जाती है और वे अयोध्या पहुँचा दिये जाते हैं।"

इस प्रेमाख्यान में प्रेम-साधना की कठिनाइयों का बड़ा ही विकट वर्णन हुआ है। जीवात्मा और परमात्मा के बीच भ्रम मान प्रेमी प्रेमिका के एक साथ सराय में ठहरने की कथा में प्रतीकात्मक संकेत प्रतीत होता है।

(१३) **छीता सं० १६६३ (१६३६ ई०)**[1]—'छीता' देवगिरि के राजा देव की अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। जिसकी 'सगाई' नाटकीय ढंग से राजा 'राम' के साथ तीन साल के लिये हो गई थी। 'छीता' और 'राम' दोनों एक-दूसरे पर आसक्त है। तीन साल की प्रतीक्षा का समय उन्हे एक युग के समान बीत रहा है। इधर चित्र-महल की सजावट के लिये आया हुआ अलाउद्दीन के दरबार का एक चित्रकार 'छीता' के सौदर्य की प्रशंसा अलाउद्दीन से करता है। अलाउद्दीन 'छीता' को देखने के लिये देवगिरि पहुँच जाता है। 'राजादेव' के विरोध करने पर युद्ध छिड जाता है। अलाउद्दीन छल से 'छीता' को पकड़ कर दिल्ली ले जाता है। उसके सतीत्व को नष्ट करने का बहुत प्रयास करता है; किन्तु 'छीता' अपने सत पर अडिग है। एक दिन 'छीता' अपनी सगाई की बात अलाउद्दीन से कह देती है। 'छीता' के अपहरण की बात सुनकर 'राजा राम' अत्यन्त दुःखी होता है। वह योगी वेश में दिल्ली पहुँच जाता है और अलाउद्दीन के दरबार में बीन बजाते समय पहचान लिया जाता है अलाउद्दीन 'छीता' और 'राम' के प्रेम की प्रगाढता को देख बड़ा प्रभावित होता है और 'छीता' को 'राम' के साथ पुत्रीवत् बिदा कर देता है।"

इस प्रेमाख्यान मे 'छीता' के सत की रक्षा को प्रधानता दी गई है। अलाउद्दीन के चरित्र का उत्कर्ष दिखलाया गया है। 'छीता' और 'राम' की कथा को 'सीता राम' की कथा से साम्य दिखाने का प्रयास किया गया है।

(१४) **कंवलावती हि० १०२७ (१६२७ ई०)**[2]—'रूपपुरी' के राजा 'रूपराइ' के पुत्र शशि और मदन नगरी के राजा 'मदनराइ' की परम सुन्दरी कन्या

---

१. सोरह सै जु तिरानबे। कथा कथी यह जान।
कातिग सुद छठ पूरम। छीता राम बखान॥

—कथा छीता का अंतिम अंश

२. द्वादस दिन में जान कवि, करी सुमिरि जगदीस।
तबहिं सन यो कहत हैं, येकस सन् सतईस॥ —कथा कंवलावती

कंवलावती एक-दूसरे के चित्रों को देख मुग्ध हो गये और उनका परस्पर विवाह कर दिया गया। सोते समय एक दिन ये नवदंपति परम सुन्दर होने के कारण इन्द्र सभा में मँगा लिये गये तथा सभा समाप्त होने पर इन्द्र के चर उन्हें 'धौराहर' पर छोड गये। दूर देखता हुआ एक देव 'कंवलावती' को उठा ले गया। नींद खुलने पर 'कवलावती' के विरह मे 'शशि' व्याकुल हो उठा। वह 'जोगी' बनकर हाथी, सर्प, भूत, पिशाच आदि कठिनाइयो का सामना करता हुआ कंवलावती की खोज में निकल पड़ा। गरुड की कृपा से गुरु के पास आने पर उसे 'कंवलावती' का पता चला। उसने जाकर 'कंवलावती' को 'देव' के चंगुल से मुक्त किया।

इसी बीच कंवलावती के रूप की प्रशंसा सुन 'बल सागर' नामक राजा ने कुंवर पर आक्रमण किया, किन्तु वह हार गया। एक दिन आनन्द विहार करते समय नौका डूब जाने से पति-पत्नी फिर अलग हो गये। 'कवलावती' बहते-बहते अपने 'श्वसुर' के देश मे पहुँच गई। पहले तो राजा पुत्रवधू को न पहचान सका, किन्तु बाद में वह पहचान गया। 'कवलावती' शशि के विरह मे दिन बिताने लगी। उधर कुवर बहते-बहते अप्सराओ के हाथ लग गया। कुवर के भेजे तोते ने कंवलावती से मिलकर फिर कुंवर को खोज निकाला। बाद म गरुड की कृपा से वह उन दोनो विरहियो को मिलाने मे समर्थ हुआ।

(५) **शेख नबी कृत ज्ञानदीप, १०२६ हि० (१६१६ ई०)**[1]—'नीमसार' मिस्रिष के राय सिरोमनि को शकर की कृपा से 'ज्ञानदीप' नामक पुत्र पैदा हुआ, बडा होने पर राजकुमार शिकार खेलते समय एक 'सिद्ध नाथ योगी' द्वारा फँसा लिया गया। कुवर का मन योग मे नही लगा। तब सिद्ध योगी ने कुवर को संगीत द्वारा वश में किया। एक दिन कुवर 'विद्याधर' के 'राजा सुखदेव' की संगीत सभा म गया था। उसकी विदुषी कन्या 'देवयानी' को उसकी सहेली सुरज्ञानी ने झरोखे से कुवर का दर्शन करा दिया। 'दवयानी' 'ज्ञानदीप' के रूप पर आसक्त हो गई। वह कुवर के विरह मे जलने लगी। एक दिन 'दवयानी' कुवर की कुटी मे जाकर मंत्रा-भिषिक्त एक कागज का घोडा दे आई जिस पर सवार हो राजकुमार आकाश मार्ग से 'देवयानी' से मिलने उसकी छत पर जाने लगा और दोनो प्रेम सूत्र मे बंध गये। जब राजा को इस बात का पता चला तो वह बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने राज-कुमार को पकड़वा सदूक मे बन्द करा नदी मे फेकवा दिया। वह बहता हुआ

---

१. एक हजार सन् रहे छबीसा। राज सुलही मनहु बरीसा॥
संवत सोरह सै छिहंतरा। उक्ति गरंत कीन्ह अनुसरा॥
—ज्ञानदीप—सं० श्री उदय शंकर शास्त्री, छंद १७

'भानराय' की राजधानी 'भानपुर' मे जा लगा। भानराम निस्संतान थे वहाँ कुंवर पुत्रवत् रहने लगा।

इधर कुंवर के विरह में 'देवयानी' चिता बनाकर जलने जा रही थी कि शंकर पार्वती ने उसे बचा लिया। उन्होंने 'राजा सुखदेव' ने यह सोचकर कि शायद 'ज्ञानदीप' जीवित हो 'देवयानी' के स्वयंबर का आयोजन किया। ज्ञानदीप राजा भानराय' के साथ स्वयबर मे आया। 'देवयानी' ने वरमाला 'ज्ञानदीप' को पहना दिया। इस तरह 'देवयानी' और 'ज्ञानदीप' का विवाह हो गया।

'ज्ञानदीप' का पिता 'सिद्धनाथ योगी' की सहायता से 'ज्ञानदीप' को लाने के लिये विद्याधर पहुँचे। संभावित विरह को सोच 'राजा भानराय' की मृत्यु हो गई। 'राजा भानराय' का दाह-संस्कार करने 'ज्ञानदीप' को भानपुर जाना पड़ा। इस तरह 'देवयानी' को पुनः विरह कष्ट सहना पडा, किन्तु सहेली 'सुरज्ञानी' की सहायता से 'ज्ञानदीप' और 'देवयानी' का मिलन हो गया। 'ज्ञानदीप' देवयानी को ले स्वदेश चला। रास्ते मे वह 'मुन्दर सेन' के कुचक्र को व्यर्थ सिद्ध करता हुआ। अपने देश मे आ गया और दत्तचित्त हो शासन करने लगा।

जानकृत रूप-मंजरी और शेखनबी के ज्ञानदीप में धर्मपुत्र अथवा धर्मपुत्री बना लेने के विचारों मे साम्य दिखाई पड़ता है। अन्य सूफी प्रेमाख्यानों की भाति इसमे भी प्रेमी-प्रेमिका के मिलन मे प्रस्तुत बाधाओ का चित्रण है।

(ग) सूफी तत्व प्रभावित हिन्दी असूफी प्रेमाख्यान

सूफी प्रेमाख्यानो के अतिरिक्त आलोच्य काल में कुछ ऐसे हिन्दी असूफी प्रेमाख्यान भी लिखे गये जिनमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सूफी तत्व विद्यमान है। फिर भी उनमें बहुत कुछ भिन्न भाव मिलते हे। सूफी प्रेमाख्यानों के रचनाकार जहाँ सूफी थे और जिनका मुख्य उद्देश्य सूफी प्रेमाख्यानों के माध्यम से सूफी सिद्धान्त और साधना का निरूपण करना था वहाँ असूफी प्रेमाख्यानों के रचनाकार न तो सूफी थे और न उनकी रचना का उद्देश्य ही सूफियाना प्रचार था। फिर भी सम-कालीन होने के कारण इन असूफी प्रेमाख्यानो पर सूफी छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इन असूफी प्रेमाख्यानो को संस्कृत, प्राकृत एव अपभ्रंश से काफी प्रेरणा मिली है। यहाँ पर असूफी प्रेमाख्यानों के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यही है कि इसके परिप्रेक्ष्य मे सूफी प्रेम गाथाओ की भाव-धारा स्पष्ट की जा सके।

ऐसी प्रेम-गाथाओं में मुख्यतः प्रद्युम्न चरित, ढोला मारूरा दूहा, मैनासत, लखम सेन पद्मावती कथा, सत्यवती, माधवानल काम कंदला, प्रेम-बिलास, प्रेमलता कथा, रूपमंजरी, छिताई वार्त्ता, बेलि क्रिसन रुकमणीरी, रसरतन तथा गोरा बादल आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं। यहाँ पर इन प्रेमाख्यानों के केवल उन्हीं अंशों पर

विचार किया जायेगा जिनके माध्यम से सूफी प्रेमाख्यानो की प्रमुख विशेषताओं के स्पष्टीकरण में सहायता मिल सके।

(१) **सधारू कृत प्रद्युम्न चरित** (र० का० १४११ वि०)[1]—प्रद्युम्न चरित पर संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी मे अनेक काव्य लिखे गये हैं जिसमें हिन्दी मे सर्वप्रथम रचना करने का श्रेय कवि सधारू को है।[2] इसमे नारद जी के षड्यंत्र से भगवान श्रीकृष्ण का सत्यभामा से भी सुन्दर स्त्री रुक्मिणी से शादी का वर्णन है। नारद जी सौंदर्य वर्णन द्वारा दोनों पक्षो मे प्रेम का उदय कराते हैं। श्रीकृष्ण बलराम की सहायता से 'रुक्मिणी' का हरण करते है तथा शिशुपाल का जिसके साथ रुक्मिणी की शादी निश्चित है बध कर देते है। रुक्मिणी के विवाह के पश्चात् बहुत दिनों तक श्रीकृष्ण अपनी पूर्व पत्नी 'सत्यभामा' की खबर तक नहीं लेते। बाद में 'बलराम' द्वारा दोनो रानियों में समझौता हो जाता है। 'रुक्मिणी' के पुत्र प्रद्युम्न को 'धूमकेतु' नामक राक्षस उठा ले जाता है जिसे 'काल संवर' नामक 'विद्याधर' बचा लेता है और अपना पुत्र घोषित कर देता है। प्रद्युम्न 'काल संवर' के शत्रु 'सिंघरथ' का बध करता है और युवराज बन जाता है। 'काल संवर' के ५०० अन्य पुत्र ईर्ष्या करते है। वह बन मे चला जाता है। बन म ही 'रती' नामक सुन्दरी से उसकी शादी हो जाती है। घर आने पर 'काल संवर' की पत्नी 'कंचन माला' के प्रेम प्रस्ताव को ठुकराने पर उसका कोपभाजन बनता है। फिर घर आता है और गृह-कलह मे श्रीकृष्ण से तथा भामा रूपचन्द से भी युद्ध करना पड़ता है। अंत मे विरक्त हो संन्यास ले लेता है तथा तपस्या मे सिद्धिपद प्राप्त कर लेता है।

इस तरह पूरे काव्य मे घात-प्रतिघात चक्र चलता है। विरह, मिलन मायावी विद्याओं के चमत्कार से पूरा काव्य भरा पड़ा है।

(२) **ढोला-मारूरा दूहा** (रचना-काल १४०० वि० के पश्चात्)—यह 'पिंगल' नरेश की कन्या 'मारवणी' और नरवर के राजकुमार 'नल' की प्रेम कथा है जिनकी शादी बचपन मे ही हो गई थी और परिस्थितियों वश उन्हे विरह यातना भुगतनी पड़ी थी। दोनों म प्रेम का उदय शादी के पश्चात् हुआ। 'ढोला मारवाणी' की यह प्रेम-कथा प्रेममार्गी सूफी प्रमाख्यानो से बहुत कुछ साम्य रखती है। नायक-नायिका के प्रेम की आतुरता, मिलन में भौतिक बाधाओं का प्रस्तुत होना, आदि

---

१. सरस कथा रस उपजइ घणउ, निसुणहु चरित पजूसह तणउ।
संवत चौदह सै हुइ गये, ऊपर अधिक ग्यारह भये।।
भादव दिन पंचइ सो सारू, स्वाति नक्षत्र सनीचर वारू।।

—प्रद्युम्न चरित, छंद ११, पृष्ठ ३

२. प्रद्युम्न चरित—कवि सधारू, प्रस्तावना १४

सभी विशेषताएँ जो सूफी प्रेमाख्यानों में मिलती हैं 'ढोला मारवणी' प्रेमगाथा में उपलब्ध हैं। कथा में प्रेमी-प्रेमिका का मिलन होना, माया लिप्त जीवात्मा का सांसारिक जीवन-यात्रा में भटकना तथा प्रेम-साधना द्वारा परमात्मा को प्राप्त कर लेना आदि आध्यात्मिक प्रतीक से प्रतीत हो रहे हैं।[1]

(३) **साधन कृत मैना संत (रचनाकाल सं० १५३७ वि० और १५५७ वि० के बीच)**—'मैना' बरनापुरी के अनुरूरि जाति के महाजनों में 'लालन' नामक महाजन की रूपवती पत्नी है। एक बार उसका पति व्यापार के लिए परदेश चला जाता है। प्रोषित पतिका 'मैना' आमोद-प्रमोदों को त्याग उदास रहने लगती है। एक दिन 'सातन' नामक लंपट राजकुमार की उस पर दृष्टि पड़ती है। वह 'मैना' पर आसक्त हो जाता है तथा 'मैना' को उसके सतीत्व से पथ-भ्रष्ट करने के लिए 'रतना' नामक कूटनी को भेजता है। किन्तु मैना पर पुरुष की ओर न देखने का निश्चय कर लेती है।[2] वह कहती है कि यदि मुझे मदन जलायेगा तो मेरी राख पवन उडा देगा। वह राख भी कहीं जायेगी तो वह लालन के ही घर जायेगी।[3] बाद में 'रचना' का प्रयास विफल हो जाता है। मैना का पति आ जाता है। 'रतना' कूटनी का सिर मुड़वा कर काले-पीले टीके कराकर गदहे पर चढ़ा नगर में उसे घुमवाती है और बाद में उसे गंगापार करा देती है।

यह सत परक एक असूफी प्रेमाख्यान है। इसमे मैना के आदर्श सतीत्व को दिखलाना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। इसका कथानक 'गौवासी' कृत 'मैना सतवंती' से साम्य रखता है।

(४) **दामो रचित लखमसेन पद्मावती कथा (रचना-काल सं० १५१६ वि०)**—'लखमसेन' 'पद्मावती' कथा मे कवि ने अपने समक्ष सूफी प्रेमाख्यानो मे

---

१. विशेष जानकारी के लिये ढोला मारूरा दूहा-प्रकाशक-नागरी प्रचारिणी सभा काशी देखा जाय।

२. एहतन जारूँ एमकर, रूप रेख सब कार।
पुरुष न देखू नैन सू, लालन बिन संसार।।
—साधन कृत मैनासत—सं० हरिनिवास द्विवेदी, पृष्ठ १७४

३. जो मोहि मदना जा रही, पवन उड़ावे खेह।
तौ उड़ि के रज जाइ है, लालन ही के गेह।। —वही; छंद ४०२

४. संवत पनरइ सोलोत्तरा, मझारि, ज्येष्ठ बदी नवमी बुधवार।
सप्त तारिका नक्षत्र दृढ़ जाणि, वीर कथा रस करूँ बखाण।।
—दामोरचित लखमसेन पद्मावती कथा—सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, चौ० ४, पृ० १७

भिन्न आदर्श रखा है। इसे प्रेम काव्य की अपेक्षा वीर काव्य कहना अधिक उपयुक्त होगा। कथा के बीच-बीच में 'सिद्धनाथ' जोगी के चमत्कारों का उल्लेख नाथ-सम्प्रदाय के प्रभावों का द्योतक है। 'सिद्धनाथ' जोगी का नाम 'शेखनबी' ने भी अपनी रचना 'ज्ञानदीप' में लिया है। सूफी प्रेमाख्यानो की भाँति इस गाथा में भी भाग्यवाद पर जोर दिया गया है।

'लिख्यो लिलाट मे निहचे होई।
दैव दोष न दीजै कोई ॥'[1]

पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। प्रथम खंड में पद्मावती स्वयंबर की कथा है और द्वितीय खंड में युद्ध का वर्णन है। सूफी कवियों की भाँति इस काव्य ग्रंथ में भी बहुज्ञता प्रदर्शन हेतु नायिका भेद-नीति आदि के वर्णन मिलते हैं।

(५) ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा (रचना-काल १५५८ वि०—सन् १५०१ ई०)[2] इस कथा में 'सत्यवती' के सतीत्व का निरूपण किया गया है। कथा का नायक 'ऋतुपर्ण' अभिशप्त हो कोढी हो जाता है जिसे 'सत्यवती' अपने सतीत्व के प्रभाव से अच्छा करती है। इसे कई विद्वानों ने प्रेमाख्यान कहा है।[3] किन्तु इसे प्रेमाख्यान मानना इसलिए उपयुक्त नहीं होता है कि इसमें प्रेम का उभार प्रदर्शित नहीं हुआ है बल्कि सत्य की महिमा का निरूपण हुआ है।[4] इसमे सूफी मसनवियो और पौराणिक संवादात्मक शैली का अनुसरण किया गया है। कथा-संगठन मे 'जैनियो' के कथा-संगठन की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। सती महात्म्य तथा प्रभावती तीर्थ के महत्व को दिखलाना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। स्थान-स्थान पर नीति, धर्म, भाग्य एवं प्रारब्ध पर भी चिंतन किया गया है। यथा –

'आपन कर्म सब भजु, जो विधि लिखा लिलार' अथवा
'जोग जतन तप कछु न होई। आप करम भजे सब कोई ॥'[5]

---

१. दामोरचित लखमसेन पद्मावती कथा—सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी, पृष्ठ २३, चौपाई ६३।

२ जाति एक पाण्डव के संगा। पाँच आतमा आठों अगा॥ (१५५८ वि०)
—ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियां–विद्या मन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर पृष्ठ ६८।

३ (क) हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य–डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ, पृष्ठ १२।
(ख) ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियाँ, भू०, पू० ३७।

४ मध्ययुगीन प्रेमाख्यान–डॉ० श्याममनोहर पाण्डेय, पृष्ठ ९९

५. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य–डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृष्ठ ४५६।

(६) **माधवानल काम कंदला की कथाएँ**—माधवानल कामकंदला की कथा पर आधारित अनेक प्रेम-गाथाएँ लिखी जा चुकी हैं उनमें से हमारे आलोच्य काल के अन्तर्गत लिखी गयी 'माधवानल काम कंदला' की कथाओं में हम केवल कुशल लाभ और कवि आलम कृत रचनाओं पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे।

वाचक कुशल लाभ कृत माधवानल काम कंदला चौपाई—वाचक कुशल लाभ कृत यह रचना पूरक कृतित्व के रूप में लिखी गई जान पड़ती है।[1] यह प्रेम काव्य होते हुये भी नीति एवं उपदेश प्रधान काव्य कहा जा सकता है।[2] कवि ने 'चौपाई' में कथा का वर्णन किया है। दोहों, सोरठों, गाहा एवं संस्कृत के श्लोकों तथा मालिनी छंदों मे नीति एवं उपदेशो का उल्लेख हुआ है। कवि ने काम कंदला के तीन-तीन जन्मो की घटनाओ का उल्लेख करके माधवानल तथा काम कंदला के पूर्व जन्म के प्रेम सम्बन्ध को जताने का प्रयास किया है। माधवानल को 'शिव' का अंश बतलाकर कवि ने इनके प्रेम को आदर्श प्रेम के रूप में प्रस्तुत किया है जिस पर आध्यात्मिक प्रेम की छाप दिखाई पडती है। प्रेमाख्यानों की सामान्य परम्परा में 'नखशिख वर्णन', संयोग और वियोग के चित्रण आदि काव्य में रसात्मकता की वृद्धि करते है।

आलम कृत माधवानल काम कंदला (रचना-काल ९९१ हि०)[3] —माधवानल काम कंदला की कथा से संबंधित हिन्दी प्रेमगाथाओं मे आलम कृत 'माधवानल काम कंदला' सर्वप्रथम प्रेमगाथा कही जा सकती है। 'आलम कृत माधवानल काम कंदला' की वृहद् प्रति में सूफी मसनवी परम्परा के अनुसार प्रारम्भ में खुदा और पैगम्बरों की वंदना भी मिलती है किन्तु छोटी प्रति मे यह बात नहीं है। 'आलम' ने नारी-सौंदर्य, नखशिख वर्णन, तथा संयोग-वियोग वर्णन बडे ही सजीव और आकर्षक ढंग से लिखे है। विरह मे एक तरफ काम कंदला तड़पती है—

'आलम मीत विदेसिया, लै गया सपत्ति सुख।
नैन प्रान विरह बस, रहे सहन को दु.ख॥'

तो दूसरी तरफ 'माधवानल' को भी विरह का कम कष्ट नही है—

'विरह स्वास हियरे जो बाढै। छिन-छिन आहि-आहि कर काढ़ै॥'

इस तरह यह कथा पूर्णरूप से स्वच्छंद प्रेम की एक रोमांचक कहानी है। इसमे एकान्ततः लौकिक प्रेम का ही वर्णन हुआ है जिसमें सूफी प्रेमवाद के धार्मिक और दार्शनिक तत्वो का प्राय: अभाव-सा है।

---

१. मध्ययुगीन प्रेमाख्यान–डॉ० श्याम मनोहर पाण्डेय, पृष्ठ १०५।
२. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य–डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृष्ठ ४५९।
३. भारतीय प्रेमाख्यान काव्य–डॉ० हरिकान्त श्रीवास्तव, पृष्ठ २२१।

(७) **जटमल नाहर कृत प्रेम विलास प्रेमलता कथा–(रचना-काल सं० १६१३ वि०)**—'मोतनपुर' नगर के राजा 'प्रेमविजय' की राजकुमारी 'प्रेमलता' तथा राज-मन्त्री 'मदन विलास' के पुत्र 'प्रेमविलास' के पारस्परिक प्रेम का उदय एक पाठशाला में होता है। एक कुशल वीणा वादिका योगिनी की सहायता से अमावस्या की रात्रि मे काली मन्दिर में उनका विवाह हो जाता है। दोनों उड़कर 'रतनपुर' पहुँचते हैं। जहाँ राजा की मृत्यु हो जाती है और हाथी द्वारा मंगल कलश उडेल दिये जाने पर 'प्रेमविलास' राजा बना दिया जाता है। प्रेमविलास विद्रोही एवं राजा चन्द्रपुरी का दमन करता है फिर सपत्नीक पिता के घर लौट आता है। बडा होने पर वह अपने पुत्र 'प्रेमसिंधु' को राज-भार सौप कर वानप्रस्थ ले लेता है।

कथा मे प्रेम की अलौकिकता का प्रतिपादन बडी ही कुशलता से हुआ है। योगिनी की सहायता, काली का आशीर्वाद आदि घटनाये उनके लौकिक प्रेम को अलौकिक बना देते हैं। जैन प्रेमाख्यानो मे इस प्रकार के लौकिक प्रेम मे अलौकिकता का आरोप सूफी प्रभाव का ही द्योतक है। फिर भी काव्य-प्रणयन की दृष्टि से दोनो मे भिन्नता है। सूफियों में जहाँ प्रेमी-प्रेमिका मिलन में कठिनाइयो और विपत्तियों का उल्लेख होता है। जैन प्रेमाख्यानो में संयोग सुख को ही महत्व दिया गया है। 'प्रेमलता' पति को ईश्वर का प्रतीक मानती है। वह कहती है कि जब से उसने 'प्रेमविलास' को देखा है उसका सारा ज्ञान, जप, ध्यान, भूख, नीद आदि सभी भूल गये हैं। वह निरन्तर योगिनी की भाँति उसी का ध्यान करती है।[1] जान कवि कृत बुद्धिसागर या मधुकर मालती प्रेम कथा में भी नायक-नायिका का प्रेमोदय पाठशाला मे ही हुआ है जो इसके बाद को सं० १६६१ की रचना है।

(८) **जटमल नाहर कृत गोरा बादल की बात (र० का० सं० १६८८ वि०-१६२८ ई०)**—यह जटमल नाहर की दूसरी प्रमुख रचना है। इसका कथानक इतिहास प्रसिद्ध पद्मिनी की कथा से सम्बन्धित है जो जायसी के पद्मावत के उत्तरार्द्ध की कथा से मिलती-जुलती है। फिर भी स्थान-स्थान पर कवि ने अपनी कल्पना का नया पुट दिया है। इस कथा मे गोरा बादल के शौर्य का वर्णन करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है। इसमे वीर और शृंगार रस की परिपक्वता हुई है।[2]

(९) **नंददास कृत रूप-मंजरी (र० का० सं० १६२५ वि०–सन् १५६८ ई०)**—

---

१. **जोगन ज्युं ध्यानूं तस ध्याना। बिसर गये सब मो सो ज्ञाना॥**
निसि दिन लउं मन ताकी लागी। भूख नीद सब मन से भागी॥
—प्रेमलता प्रेमविलास–जटमल नाहर।

२. **यह कृति तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय प्रयाग से प्रकाशित हुई है।**

'रूप-मंजरी' का एक छोटा-सा कथा-काव्य है जिसमें 'रूप मंजरी' नामक सुंदरी अपनी प्यारी सखी 'इंदुमती' की सहायता से अपने पति का परित्याग कर भगवान 'श्रीकृष्ण' से प्रेम करने लगती है। श्रीकृष्ण प्रेम में उन्मत्त हो प्यारी सखी 'इंदुमती' से छुपकर वह वृन्दावन चली जाती है। बाद में खोजते-खोजते 'इंदुमती' भी वहाँ पहुंच जाती है तथा 'रूप मंजरी' को 'श्रीकृष्ण के साथ रास करते देख प्रसन्न होती है। इस तरह दोनों अपने परस्पर प्रेम से मुक्त हो जाती है।"

काव्य की नायिका "रूप मंजरी" स्वयं "नंददास" की मित्र कही जा सकती है। सखी इंदुमती के रूप में स्वयं कवि "नंददास" जी हैं। यद्यपि "रूप मंजरी" का कथानक लौकिक शृंगार से सम्बन्धित है किन्तु कवि ने अपने आध्यात्मिक भावों तथा लक्षणा भक्ति के अन्तर्गत परकीया प्रेम का प्रदर्शन किया है। इस प्रेमाख्यान में अलौकिक प्रेम की व्यंजना करके सूफी धार्मिक परम्परा एवं विश्वास को प्रश्रय दिया गया है। काव्य में संयोग की अपेक्षा वियोग वर्णन काफी विस्तार के साथ किया गया है। "रूप मंजरी" नाम से ही जान कवि ने भी एक सूफी प्रेमाख्यान लिखा है जो कथानक में इससे बिलकुल ही भिन्न है।

(१०) **नारायणदास कृत छिताई-वार्ता**—(र० का सं० १५८३ वि०—१५२६ ई०)[1]—इस कथा में इतिहास और कल्पना का बड़ा सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है। सूफी कवि 'जान कवि' ने भी सन् १६३६ ई० में 'छीता' नाम से इसी कथा को दुहराया। दोनो कथाओं मे अलाउद्दीन जैसे क्रूर और निरंकुश बादशाह की कामुकता का चित्रण तथा क्षत्राणियों की कर्त्तव्यनिष्ठा का प्रदर्शन कवियों के उद्देश्य हैं किन्तु दोनों की कथाओ में भिन्नता है। नारायण दास की 'छिताई-वार्त्ता मे नायक सुरसी राज पुरोहित द्वारा वर रूप मे चुने जाते है जब कि जान कृत 'छीता' में नायक 'राम' स्वयं 'छीता' के लिये देवगिरि में आ जाता है। छिताई-वार्त्ता में कवि का उद्देश्य अलाउद्दीन के प्रति जनसाधारण मे सद्भावना पैदा करना है। कवि कथा के माध्यम से हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रयास करता है। संगीत तथा चित्रकला के महत्व को प्रदर्शित करता है। संगीत कला से अलाउद्दीन जैसे क्रूर बादशाह का हृदय परिवर्तित हो जाता है और वह 'छिताई' को उसके पति के साथ सद्भावना से पुन. लौटा देता है। 'छीता' में यही उद्देश्य रखा गया है। जहाँ तक सूफी प्रेमाख्यानों के प्रभाव का सम्बन्ध है इस प्रेमाख्यान मे 'छिताई' के मन को

---

१. पंद्रह सै संवत तेरासी माता। कछुबक सुनी पाछली बाता।
   सुदि अषाढ़ सात हुँ तिथि भई। कथा छिताई जंवन भई॥
   —माता प्रसाद गुप्त द्वारा संपादित छिताई-वार्त्ता की प्रस्तावना के पृष्ठ ११ के के आधार पर।

नष्ट करने का अलाउद्दीन का असफल प्रयास तथा सूफी नायकों की भांति 'छिताई' की खोज में 'सुरसी' का योगी वेश में दिल्ली जा पहुँचना प्रेम की सात्विकता एवं कठोरता के परिचायक हैं।

(११) **महाराजा पृथ्वीराज कृत बली किसन रुकमणोरी** (र० का० सं० १६३७ वि०) – भागवत पुराण और विष्णु पुराण के आधार पर इस प्रेमाख्यान मे 'श्रीकृष्ण' और 'रुक्मिणी' के प्रेम का वर्णन किया गया है। रुक्मिणी का प्रेम एकान्तिक प्रेम है। कृष्ण उसकी रक्षा करते है और फिर दोनो का विवाह हो जाता है इस कथा की मुख्य विशेषता यह है कि इसमे नायक नंददास की 'रूपमंजरी' की भाँति कोई लौकिक पुरुष न होकर स्वयं भगवान श्रीकृष्ण है यद्यपि इस कथा मे पौराणिकता की छाप अवश्य है फिर भी 'रुक्मिणी' की श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ प्रेम और उनकी प्राप्ति का दृढ़-संकल्प कथा मे सूफियाना रंग भर देता है।

(२) **पुहुकर कृत रस-रतन**–(र० का० सं० १६७३ वि—हि १०३५)[1]— "पुहुकर कृत रस-रतन" की रचना-शैली पर सूफी प्रभाव की स्पष्ट छाप दिखलाई पड़ती है। इस कथा मे ससार की सबसे रूपवती कन्या 'रंभा' और सबसे रूपवान् राजकुमार 'सोम' के प्रेम का वर्णन है। दोनों के हृदयों में प्रेमांकुर के विकास के लिये 'रंभा' को कामदेव ने 'सोम' के रूप में तथा 'सोम' को 'रति' ने रंभा के रूप मे दर्शन दिये। इस तरह दोनो एक-दूसरे की ओर आकृष्ट हो विरह मे तड़पने लगे। सहेली 'पूर्णिमा' के कहने पर 'रंभा' की मा के आदेशानुसार चित्रकार की सहायता से प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे का पता पा सकी। फिर 'रंभा' के स्वयंवर का आयोजन किया गया। 'सोम' चम्पावती मे आ गया किन्तु अप्सराओ के कुचक्र से वह 'कल्पलता' नामक एक अन्य सुन्दरी के प्रेमपाश मे फँस गया। राजकुमार 'रंभा' को भूल न सका। वह 'कल्पलता' को विरह मे छोड़ योगी वेश में फिर 'चम्पावती' मे आ 'मुदिता' दासी की सहायता से स्वयंवर मे रंभा को प्राप्त कर लिया। इसी बीच 'कल्पलता' द्वारा प्रेषित सदेश विद्यापति नामक सुग्गे से 'सोम' को प्राप्त हुआ।[2] सोम 'रंभा' को ले 'कल्पलता' से मिला और दोनो रानियो को

---

१. एक सहस ऊपर पैंतीसा। सन रसून सन तुरुक न दीसा॥ (१०३५ हि०)
 ३ ७ ६ १
अग्नि, सिन्धु, रस, इंदु प्रमाना। सौ विक्रम संवत् ठहराना॥ (१६७३ वि०)
—पुहुकर कृत रस-रतन—आदि खंड, चौ० २८, पृष्ठ ७

२ नाइक मधुप समान है, मन सुगन्ध रस प्रीति।
पीन सौहृ बिन स्वाति जल, त्रिय चात्रिक की रीति॥

बहु नाइक-नाइक जिते, ते न होंहि अनुकूल।
सो तज मधुकर मालती, बंधो कमल के मूल॥
—पुहुकर कृत रस रतन सं० डॉ० शिव प्रसाद सिंह युद्ध खण्ड दोहा १४६, १४७ पृ० २१४।

साथ ले अपने नगर 'बैरागर' आया। ३० वर्ष तक राज्य करने के पश्चात् अपने संचार पुत्रों को राज-पाट दे सन्यास ले लिया।'

यह प्रेमाख्यान मसनवी पद्धति में लिखा गया है। प्रारंभ में कवि द्वारा निर्गुण और सगुण दोनों ब्रह्म की उपासना की गई है। प्रेम के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है। चमत्कार प्रदर्शन एवं लोकोत्तर घटना के सन्निवेश के लिए कवि अभिशप्त अप्सरा कल्पलता की कहानी का आयोजन करता है। सूफी प्रेमाख्यानों की भाँति ही प्रेममार्ग की कठिनाइयाँ, सहेली का सहयोग, आदि के चित्रण इस प्रेमाख्यान में मिलते हैं।

निष्कर्ष

इस तरह मध्यकालीन सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य पर विहंगम दृष्टि डालने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उत्तरी भारत में जहाँ सूफियों ने अपने सिद्धान्त और साधनाओं के निरूपण के लिये भारतीय कथाओं और लोक कथाओं को आधार बनाया तो दक्षिणी भारत के सूफियों में से अधिकांश ने फारस की कहानियों पर भी नया रंग चढाया। इन सूफियों ने प्रेमाख्यानों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप में अपने उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयास तो किया ही प्रत्यक्ष रूप में भी कहने का लोभ वे संवरण न कर सके और फुटकर सूफी काव्यो की रचना की जिनका अनुसरण समकालीन संतों ने भी किया। प्रेमाख्यान परम्परा से प्रभावित हो समकालीन कुछ दूसरे असूफी प्रेमाख्यान भी लिख गये जिसमें शुद्ध लौकिक प्रेम का ही चित्रण हुआ। कहीं भी उनमें अलौकिक प्रेम का आभास नही मिलता। फिर भी यह कहना न्यायसंगत नहीं होगा कि ये असूफी प्रेमाख्यान बिलकुल ही सूफी तत्व विहीन है।

अध्याय ५

मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य का अध्यात्म-दर्शन

हमने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि सूफी साहित्यकार अपनी रचनाओं में सूफीमत के सिद्धान्त और साधना का निरूपण करना ही अपने साहित्य सृजन का परम उद्देश्य मानते रहे हैं। अपने इस उद्देश्य-पूर्ति के लिये तथा अपनी रचनाओं को लोकप्रिय एवं सर्वग्राही बनाने के लिए इन सूफियो ने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों मार्गों का अनुसरण किया। प्रत्यक्ष विधि के अन्तर्गत सूफियो ने अपनी फुटकर रचनाओ अथवा प्रेमाख्यानों में बिना किसी प्रतीकात्मक प्रयोजन के सरल और सीधी भाषा में अपने विचारों की अभिव्यक्ति की। किन्तु जहाँ वे इसमें कठिनाई का अनुभव करते है वहाँ प्रेमाख्यानो की प्रेम कथाओ के माध्यम से आध्यात्मिक प्रतीकों द्वारा अपने विचारों की अभिव्यंजना करने लगते है। सूफियो की इस प्रकार की प्रतीकात्मक विद्या पाठकों को एक ओर लौकिक प्रेम का आनन्द प्रदान करती है साथ ही साथ उसी पृष्ठभूमि में पारलौकिकता के भी दर्शन होने लगते हैं। सूफी प्रेमाख्यानों की यह प्रतीकात्मक विद्या अध्यात्म के नीरस और दुरूह विषय को अत्यन्त ही सरस, सरल एवं लोकप्रिय बना देती है। सूफियो ने अपने इन आध्यात्मिक प्रतीकों की व्याख्या कहीं-कहीं तो स्वयं अवसर प्राप्त होने पर कर दी है और कहीं-कहीं पाठको के विवेक पर उन्हें समझने के लिये छोड दिया है। उदाहरण के लिए हम जायसी के पद्मावत मे इन आध्यात्मिक प्रतीको की व्याख्या इस प्रकार पाते है :—

"चौदह भुवन जो तर उपराहीं। ते सब मानुष क घट माहीं।
तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल बुधि पद्मिनी चीन्हा॥
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरमल पावा॥"[1] आदि

सूफी प्रेमाख्यानो के साथ-साथ हमने इनके स्वरूप के स्पष्टीकरण के लिए कुछ असूफी प्रेमाख्यानों के भी परिचय दिये हैं जिनसे यह बात स्पष्ट हो गई कि जहाँ असूफी प्रेमाख्यानों में शुद्ध लौकिक प्रेम का ही निरूपण हो सका है। सूफी प्रेमाख्यानो में लौकिक प्रेम के साथ-साथ आध्यात्मिक प्रेम तत्व भी विद्यमान् हैं। अब

१. जायसी कृत पद्मावत— छंद ६६५

हम अपने आलोच्य काल की परिधि के अन्तर्गत रचित हिन्दी सूफी साहित्य में समाविष्ट आध्यात्मिक तत्वों की विवेचना करेंगे।

मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य और सूफी सिद्धान्त—मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य में जो सूफी तत्व मिलता है उसके पर्यालोचन से यह परिणाम स्पष्ट होता है कि अरब ईरान के प्रदेशों के सूफी सिद्धान्तों से यह बहुत कुछ भिन्न है। इसकी अपनी कुछ अलग विशेषताएँ हैं। भारतीय सूफीमत में एक सबसे बड़ा प्रभाव योगियों का है। सूफीमत के मूलभूत सिद्धान्तों में यद्यपि ध्यान आदि के लिए अनेक आसनों को महत्व दिया गया था किन्तु उनमें हठ-योग को कोई स्थान प्राप्त नहीं था; किन्तु भारतीय सूफीमत में हठयोग को भी महत्व दिया गया है। सूफी कवियों ने स्थान-स्थान पर इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियो तथा शून्य आदि का वर्णन कर हठयोग को प्रश्रय दिया है। उनकी रचनाओं में गोरखनाथ, गोपीचंद, भर्तृहरि, सिद्धनाथ योगी आदि के नाम बराबर आते हैं। वे राजसुख की अपेक्षा योग-साधना को श्रेष्ठ मानते है।

"जौ भल होत राज औ भोगू। गोपीचंद नहिं साधत योगू ।।"[१]

राजा भर्तृहरि जो बहुत ज्ञानी माना जाता था जिसके राजमहल में सोलह सौ रानियाँ रहा करती थीं जो अपने कुचो द्वारा राजा के तलवे सहलाया करती थी अन्त में वह भी योग को श्रेयस्कर मान कर योगी हो गया।[२] सूफी प्रेमाख्यानों म जब साधक के हृदय में प्रेम का उदय हो जाता है तो वह योगी वेश में ही घर से निकलता है। सूफी प्रेमाख्यानों के नायक योगियों के ही वेश-धारण करते हैं। कुतुबन कृत 'मृगावती' मे राजकुमार ने मृगावती के विरह में माता-पिता किसी का कुछ ध्यान नहीं रखा। उसने योगी की सारी सज्जा लाकर योगी बनने की तैयारी कर ली।[3] जायसी के पद्मावत में राजा रत्न सिंह ने पद्मावती के विरह में राज का त्याग कर दिया तथा योगी बन कर हाथ मे 'किंगरी' धारण कर लिया।[४] मंझन कृत 'मधुमालती' में राजकुमार ने माता-पिता आदि सबके समझाने

---

१. पद्मावत—जायसी, छंद १३३

२. राजा भरथरि सुना जो ज्ञानी। जेहि के घर सोरह सै रानी ।।
कुच लीन्हें सवा सहराई। भा जोगी कोउ संग न लाई ।।
—पद्मावत–जायसी, छंद १३५

३. माता पिता कोउ नहिं जाना। जोगी केर साज सब जाना ।।
—कुतुबन कृत मृगावती–पद १०५

४. पद्मावत जायसी—जोगी खंड छंद—१२६

पर भी कंथा (गुदड़ा), मेखली और चिरकुटा (चीथड़ा) सम्हाल लिया और सिर पर केशों की जटा पड़ गई। वज्र कोपीन बांध कर उसने गोरखनाथ (गोरखपंथी योगी) का वेश धारण कर लिया।

'कथा मेखलि चिरकुटा जटा परी सिर केस।
वज्र कछोटा बाँधि कै, किय गोरख का बेस ॥'[1]

योगियों के साथ-साथ भारतीय सूफीमत पर सिद्धों का भी प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। वे स्थान-स्थान पर महादेव आदि देवों के अतिरिक्त नौ नाथ और चौरासी सिद्धों का भी उल्लेख करते हैं। जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन हम अन्यत्र प्रस्तुत करेंगे। यहाँ इसका संकेत कर देना इसलिए आवश्यक था कि यह स्पष्ट हो जाय कि भारत मे सूफीमत आकर अपने मूल रूप मे ही नही पनपा, बल्कि उसे अपन विकास के लिये सिद्धान्त और साधना के विभिन्न अंगों पर भारतीय छाप लगानी पड़ी और इसी परिप्रेक्ष्य मे हमें मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य का अध्ययन करना होगा। सबसे पहले हम सूफीमत के सैद्धान्तिक पक्ष को लेंगे जिसमें परमतत्व, जीव, जगत्, सृष्टि और माया का स्पष्टीकरण किया जायेगा तत्पश्चात् सूफी साधना पर प्रकाश डालेंगे।

परम-तत्व--यद्यपि सूफी साधकों ने उपासना के लिए निराकार ब्रह्म को ही मान्यता दी है किन्तु उसकी उपासना प्रेम प्रधान होने के कारण उन्हें परम-ब्रह्म की अभिव्यक्ति के लिये साकार का आश्रय लेना पड़ा है। हिन्दी सूफी साहित्य मे परम तत्व के निरूपण का जो प्रयास किया गया है उनमें 'बाशरा' और 'बेशरा' दोनों विचारधाराओं की झलक मिलती है। जायसी के अनुसार ईश्वर एक है। उसके समान दूसरा नही है। अत वह अद्वितीय है। उसका कोई स्थान नही है और न कोई स्थान उससे रिक्त है। वह रूप-रेख से हीन तथा निर्मल है।[2] वह परमात्मा अलक्ष्य, निराकार और रंग-भेद रहित है। वही सारी सृष्टि का रचइता है। वह सबसे सम्बन्धित है। वह प्रकट या गुप्त सभी प्राणियों मे व्याप्त है। वह न तो किसी का पुत्र है, न किसी का माता-पिता। उसका किसी से नाता-रिश्ता भी नही है। न किसी ने उसे जन्म दिया है और न उसने ही किसी को जन्म दिया है। फिर भी सारी मृष्टि का रचइता वही है। वह पूर्ण स्वच्छंद है।

---

१ मंझन कृत मधुमालती–डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छंद १७२, पृष्ठ १४५

२. है नाहीं कोई तारक रूपा। ना ओहिसन कोइ आहि अनूपा ॥
ना ओहि ठाऊँ न ओहि बिन ठाऊँ। रूप रेख बिन निर्मल नाऊँ ॥
—जायसी ग्रंथावली पद्मावत छंद ८

उसने जो चाहा वह किया और जो चाहता है करता रहता है। उसे रोकने वाला कोई भी नहीं है। उसने अपनी इच्छा मात्र से सबको जीवन दिया है। वह सर्व-शक्तिमान् है।[१] 'चाँदायन' में दाऊद भी परमात्मा को एकमात्र सृष्टि कर्त्ता स्वीकार करके उसकी स्तुति करता है। वह कहता है कि जिसकी हुई यह समस्त पृथ्वी है उस एक परमात्मा का गुणगान मैंने किया है। उसके स्मरण से मन प्रसन्न होता है तथा अन्य कोई चित्त में नही समाता।

'जाकर समै पिरथमी सिर जसि, कह्यो येक सो गाई।
हीय गहवर मन हुल्ह से, दूसर चित न समाई॥'[२]

'मृगावती' के स्तुति खंड में 'कुतुबन' भी परम तत्व को अलक्ष्य और सृष्टि-कर्त्ता के रूप में सर्वव्यापी स्वीकार करता है। वह कहता है कि परम तत्व निरंजन (निर्लेप) है जो देखा नही जा सकता है। वह ज्योति स्वरूप है जिसे देखकर मनुष्य स्वयं अपने आपको भूल जाता है। वह सबसे श्रेष्ठ, सिद्ध और परमेश्वर है। वह न स्त्री वेश में है और न पुरुष वेश में। माता-पिता और बन्धु उसका कोई भी नहीं है। वह एक और अकेला है। दूसरा वैसा नही है।[3] परम तत्व का निरूपण करते हुये 'मंझन' ने 'मधुमालती' स्पष्ट किया है वह है एक और अकेला हैं। दूसरा वैसा नहीं वह परमेश्वर एक होते हुये भी अनेक होकर प्रकट हुआ है। वह बहुत से वेश धारण किये हुये भी एक रूप है। तीनों लोकों में जहाँ तक भी स्थान है वह स्वामी नाना प्रकार के रूप धारण करके भोग करता है। वह कर्त्ता जगत् मे जो कुछ चाहता है, करता है। वह सारे संसार का कर्त्ता अलख निरंजन कही भिखारी वेश मे और कही राजा के वेश मे विराजमान है।

'अलख निरंजन करता, एक रूप बहु भेस।
कतहू बान भिखारी, कतहूँ आदि नरेस॥'[४]

इस तरह मंझन के विचार इस्लामी परम्परा से बिलकुल ही भिन्न तथा भारतीय द्वैताद्वैतवाद से काफी मिलता-जुलता है। 'मंझन' की भाँति 'उसमान' भी परमात्मा को संसार का कर्त्ता और सबमें व्याप्त मानता है। इस तरह उसे न तो प्रकट ही माना जा सकता है और न उसे गुप्त ही कहा जा सकता है—

'सो करता सब मांह समाना। परगट गुपुत जाइ नहि जाना॥'[५]

---

१. वही छंद ७

२. दाऊद कृत चाँदायन—सं० माता प्रसाद गुप्त, छंद १, पृष्ठ ७३

३. कुतुबन कृत मृगावती—सं० वही, छंद १, पृष्ठ १

४. मंझन कृत मधुमालती—सं० वही, छंद २, पृष्ठ ४

५. चित्रावली—उसमान—पृष्ठ १, छंद २

'उसमान' भी अन्य सूफियों की भांति परमात्मा को अलख और अमूरत मानता है जिसे कोई देख नहीं सकता। वह परमात्मा जो चाहता है करता है।

'अलख अमूरत, सोइ विधिलखै न मूरति कोय।
सो सब कीन्ह जो चाहा, कीन्ह चहै सो होय ॥'[१]

ठीक इन्ही विचारों को 'शेखनबी' ने अपने 'ज्ञानदीप' में दुहराते हुये ईश्वर को पाक्, पवित्र, अलख, अमूर्त तथा पापों का हरण करने वाला बतलाया है।

पाक पवित्र एक ओह् करता। अलख अमूरत पालक हरता ॥[२]

इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी सूफी कवियों ने यथा-संभव कुरान और भारतीय विचारधाराओं में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। जायमी ने ईश्वर के प्रति जो विचार व्यक्त किये है वे बिलकुल ही कुरान के सूर : अखलाक के अनुवाद से प्रतीत हो रहे हैं।[३] दक्खिनी हिन्दी के सूफी कवियों ने भी विशेषकर पुरानी परम्परा का ही अनुसरण करने का प्रयास किया है। संभवतः इसका कारण यह रहा होगा कि दक्खिनी हिन्दी के अधिकांश सूफी कवियों को इस्लामी राजाश्रय का ही भरोसा था। उत्तरी भारत के सूफियों को राजाश्रय से कोई मतलब नहीं था। दक्खिनी हिन्दी का सूफी कवि 'अशरफ' जैसा कि हम पहले बता चुके हैं अल्लाह को एक और सत्य मानता है। वह उसे पृथ्वी और आकाश का रचइता मानता है। वह कहता है कि चांद, सूरज, वृक्ष, तारे, बादल, बिजली, वृष्टि आदि सभी उसी परमात्मा के बनाये हुये है :—

इसके विपरीत उत्तरी भारत के सूफी इस्लाम के एकेश्वरवाद से सहमत न होकर वे अद्वैतवाद की दुहाई देते है। उनके विचार से इस संसार में ईश्वर के सिवा और कुछ है ही नही। अग्नि, पवन, जल, धूल सभी मे वही परमात्मा नाना रूप मे व्याप्त है। उसका पता लगाना कठिन है :—

'अगिनि पवन रज पानि के, भाति भाँति व्यवहार।
आपु रहा सब माहि मिलि, को निगरावै पार ॥'[४]

वह सबके भीतर भी है वह सबमे भी है। सब कुछ वही है दूसरा और

---

१. चित्रावली–उसमान छंद ३, पृष्ठ २
२. ज्ञानदीप– शेखनबी-पृष्ठ १
३. कुल हो, अल्ला हो, अहद, अल्लाहु स्समद-लमयलिद, बलम यूलद, बलमय कुल्लहू कोफोवन अहद

—कुरान मजीद-सूर अखलाक-पृष्ठ ८६०

४. चित्रावली–उसमान, पृष्ठ १, छंद १

कोई कुछ नहीं है। जिस प्रकार समुद्र में लहरें उठती हैं किन्तु वे उससे किसी प्रकार भिन्न नहीं है उसी प्रकार यह जगत् भी उसी से उत्पन्न हुआ है अत: भिन्न नहीं है।

'सब वहि भीतर वह सब माहीं । सबै आप दूसर कोउ नाहीं ।।
सो सब आप रहा जग पूरी । तासों कहा नेर औ दूरी ।।
दूसर जगत नाम जिन पावा । जैसे लहरी उदधि कहावा ।।'[१]

परम-तत्व की महत्ता का निरूपण करते हुये जायसी लिखता है कि वह परमात्मा नितान्त ही अद्भुत कर्मा है। उसके प्राण नही हैं फिर भी वह जीवित रहता है। उसके हाथ नहीं है फिर भी वह सारे काम किया करता है। जीभ के न होते हुये भी सब कुछ बोलता है। शरीर न होते हुये भी सारे स्थानों मे डोलता-फिरता है। कान नही है किन्तु सब कुछ सुनता है। उसके हृदय नही है फिर भी सब कुछ विचार करता है। नेत्र नही है किन्तु सब कुछ देखता है। अतः इसको समझना कठिन है।

'जीउ नाहिं पै जियै गुसाईं । कर नाही, पै करै सबाई ।।
जीभ नाहिं पै सब किछु बोला । तन नाहीं सब बाहर डोला ।।
स्रवन नाहिं पै सब किछु सूना । हिया नाहिं पै सब किछु गूना ।।
नयन नाहिं पै सब किछु देखा । कौन भांति अस जाइ बिसेखा ।।''[२]

इस तरह सूफियों ने परम-तत्व के स्वरूप का जो निरूपण किया है उसके अनुसार परमात्मा सर्व-व्यापी है। संसार मे एक-मात्र है। सर्वशक्तिमान् है। वह निर्गुण और निराकार है। वह अत्यन्त ही उदार और क्षमाशील है। ईश्वर परम सौंदर्यशाली है अत: प्रेम का पात्र है। उसका सौंदर्य ही सूफियो की प्रेम-भावना का आधार है। सूफियो के परम-तत्व के निरूपण मे उपनिषदो द्वारा प्रतिपादित 'अद्वैतवाद' का आभास मिलता है किन्तु इसके साथ ही साथ ब्रह्मवाद की भाँति यहाँ शुष्क ब्रह्मवाद नही है। चित्-अचित् का विवेचन होते हुये भी पार्थक्य को कोई स्थान नही है। सृष्टि के सृजन का जो स्वरूप और क्रम इन सूफियों ने प्रदर्शित किया है उससे स्पष्ट होता है कि यह ईश्वरीय सत्ता से बिलकुल पृथक् है। इस तरह हम ईश्वर को एक प्रकाश-पुंज रूप मे अभिव्यक्त कर सकते हैं जिसकी अंशभूत रश्मियों के रूप में सारे संसार के पदार्थ हैं। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं यदि वह महान् व्यापक समुद्र है तो संसार के सभी पदार्थ उसकी तरंगें हैं।[३]

१. वही; छंद २, पृष्ठ १
२. जायसी ग्रंथावली (पद्मावत), छंद ८
३. सूफीमत और हिन्दी साहित्य–डॉ० विमल कुमार जैन, पृष्ठ १५६

परम-तत्व का निर्गुण और सगुण रूप—यद्यपि सूफियों ने परम-तत्व के निरूपण में उसे निर्गुण और निरंजन बतलाने का प्रयास किया है किन्तु जब वे उसकी प्रेमोपासना करने लगते हैं तो प्रेमी जीव ही अपनी प्रियतमा ईश्वर के लिए विकल नहीं रहता, बल्कि ईश्वर भी जीव से मिलने के लिये तड़पता रहता है। ऐसी दशा में हमे उसके साकार रूप की कल्पना अनिवार्य रूप से करनी पड़ती है। इस तरह सूफियों का अद्वैत उपनिषदों के विशिष्टाद्वैत से अधिक मेल खाता है। बिना इसके प्रेमी और प्रिय के मध्य प्रेम व्यापार संभव हो ही नहीं सकता।

परम-तत्व का सौंदर्य-बोध—सूफियो ने परम-तत्व को अत्यन्त ही सुन्दर रूप मे चित्रित किया है। सौदर्य के कारण ही जीवात्मा उसकी ओर आकर्षित होती है। प्रायः सभी सूफी प्रेमाख्यानो में परम-तत्व के प्रतीक स्वरूप नायक अथवा नायिकाओ के नखशिख वर्णन मे परम-सौंदर्य का उल्लेख मिलता है। 'दाऊद' कृत 'चांदायन' में वृहस्पति चंदा से लोरिक के सौदर्य का वर्णन करते हुये कहती है हे चंदा लोरिक की ज्योति सूर्य की है। उसके कानो मे जो सोने के कुंडल है उनमे गज-मुक्ता चमकते है। उसके ललाट पर मानो चन्द्रमा चमक रहा है। उसकी दंत पंक्तियाँ अत्यन्त ही शोभा दे रही है। उसके सिर के बाल पीठ पर लहरा रहे हैं। सिंह की भाँति उसकी कमर अत्यन्त ही क्षीण है। उसके नेत्र दूध से भरे कच्चोलों की भाँति हैं जिनमें उनकी कनीनिकाये भीतर रखे गये भ्रमरा की भाँति प्रतीत हो रही है। उसका कंचन वर्ण का शरीर झलक रहा है। उसकी मदन मूर्ति पर थोडी धूल तक नहीं लग सकी है। अर्थात् वह अत्यन्त ही निर्मल है।[1] नायक का ऐसा अद्वितीय सौदर्य उसकी अलौकिकता की ओर इंगित करता है। कुतुबन कृत मृगावती में मृगावती के सौदर्य वर्णन मे भी यही अलौकिकता चित्रित की गई है :—

दिपइ लिलार दुइजि ससि रेखा। उएउ मयंक 'मीन' जग देखा ॥
देखत नैनन दिष्टि खुटाई। भानु सरग जनु उझिलत आई ॥
बदन पसेजे बुंद जस तारा। चाँद नखत लै उग्उ अकारा ॥

---

१. लोरहिं चाँद सुरुज कइ जोती। कुंडल सोवन दिपहिं गजमोती ॥
चंदु लिलार धरा जनु लाई। चमक 'बतीसी' अतिइ सोहाई ॥
झोंपा केस पीठि लहराये। लंक झीनि हरि गही न जाये ॥
नयन कचोरा दूधइ भरे। जनु छपया किन्ह भीतरि धरे।
कनक बरन झरकति हइदेहा। मदन मुरति उडि लागिन सेहा ॥
—दाऊद कृत चाँदायन—सं० माता प्रसाद गुप्त, छंद १३७, पृष्ठ १३४

कर ही की जा सकती है जो उसकी खोज करते हैं उन्हें वह शीघ्र ही मिल जाता है।

"फुनि यह रचि कै चरित पसारा। सो कहत मंह जो संभारा।
चित्र देखि के खोजि चितेरा। खोज करहिं तो मिलइ सबेरा॥"[१]

कुतुबन भी सर्वप्रथम हजरत मुहम्मद के नूर के निर्माण की बात मानते हैं। बाद में उसकी चिन्ता मे संसार की अन्य वस्तुओं का निर्माण किया जाना कहते हैं। उस मुहम्मद के लिए ही उसने स्वयं अपने आपको भी प्रकट किया तथा शिव और शक्ति (पुरुष और स्त्री) के द्विधा घट (शरीर) किये।

"पहिले नूर मुहम्मद कीन्हा। पाछे तेहि चिंता सब लीन्हा।
औ तेहि लगि आपुहि परगटा। सीउ सकंति कीतसि दुइ घाटा॥"[२]

'जायसी' भी अपने 'पद्मावत' में दाऊद और कुतुबन की भांति ही विचार व्यक्त करता है। वह कहता है कि ईश्वर ने एक निर्मल ज्योतिधारी पुरुष की रचना की, जिसका नाम मुहम्मद था। वह पूर्ण चन्द्र की भाँति पूर्ण और सौन्दर्यवान् था। विधाता ने प्रथम ज्योति के रूप में उसे पैदा किया और उसी के प्रेम के लिए सृष्टि की रचना की।[३] सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे 'जायसी' अपने 'अखरावट' में लिखता है कि ईश्वर ने शून्य से इस विश्व की रचना की। सर्वप्रथम न तो आकाश था और न पृथ्वी थी, न चन्द्रमा था और न सूर्य। चारों तरफ केवल शून्य ही था। ऐसे अन्ध कूप मे परमात्मा ने मुहम्मद रूपी प्रकाश की रचना की।

'गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहि सूर।
ऐसइ अन्ध कूप मंह, रचा मुहम्मद नूर॥'[४]

इस तरह सृष्टि से पूर्व वह एकमात्र ईश्वर ही था। उसने इस सृष्टि की रचना क्रीड़ा मात्र में ही की। समस्त महाशून्य में उसी की एकमात्र व्यापक सत्ता थी, कोई दूसरा पदार्थ न था। आदि पुरुष (हजरत मुहम्मद) के हितार्थ ही उसने अट्ठारह सहस्र जीव योनियो की सृष्टि की।[५] 'जायसी' ने अट्ठारह सहस्र योनियों

१. कुतुबन कृत मृगावती—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द ३, पृष्ठ २
२. वही; पृष्ठ ३, छन्द ४
३. कीन्हेसि एक पुरुष निरमरा, नाम मुहम्मद पुनो करा॥
प्रथम जोति विधि तारक साजी, औ तिहि प्रीति सिहिटि उपराजी॥
—जायसी ग्रन्थावली—पद्मावत, छन्द ११
४. अखरावट—जायसी, दोहा १
५. आदिहु ते जो आदि गुसाईं। जे सब खेल रचा दुनियाईं।
एक अकेल न दूसर जाती। उपजे सहस अठारह भाँती॥ वही, दोहा १

का सिद्धान्त इस्लामी परम्परा से ग्रहण किया है। हिन्दुओं में चौरासी लक्ष योनियों की कल्पना की कई है। 'उसमान' भी सृष्टि का कारण मुहम्मद को ही मानता है। उसके अनुसार भी परमात्मा ने अपने अंश को दो भागो में विभक्त किया। एक अंश का नाम 'मुहम्मद' रखा। फिर उनके हृदय में प्रेम की ज्योति उठी। उसी प्रेम की ज्योति के दीपक की किरण के प्रसार से सारी सृष्टि की रचना हुई।

"आपन अंश कीन्ह दुई ठाऊँ, एक क धरा मुहम्मद नाऊँ ॥
पहिले उठा प्रेम विधि हिये, उपजी ज्योति प्रेम के दिये ॥
वही जोति पुनि किरिन पसारी, किरिन-किरिन सब सृष्टि संवारी ॥"[1]

इस प्रकार 'उसमान' मुहम्मद साहब को ईश्वर का अंश मानते है तथा विश्व को उसकी किरण मानते हैं। 'कुतुबन' और 'उसमान' की दृष्टि से परमात्मा और सृष्टि दो पृथक्-पृथक् तत्व है। एक कर्त्ता है और एक कार्य। 'कुतुबन' की भाँति 'उसमान' भी ईश्वर को चित्रकार रूप में मानकर उसकी स्तुति कहते हैं :—

"आदि बखानौं सोइ चितेरा। यह जग चित्त केहि जिन्ह केरा।।"[2]

'उसमान' 'चित्रावली' में अन्यत्र ईश्वर को सूर्य, सृष्टि को किरण, ईश्वर को उदधि और सृष्टि को लहर मानते है।'[3] जायसी की भाँति ही 'शेखनबी' का भी दृष्टिकाण 'शरीअत' के अनुकूल है। स्रष्टा और सृष्टि में किसी प्रकार की एकता स्थापित नहीं की गई है। 'शेखनबी' कहता है कि उसी के स्वरूप से सभी साकार होते है किन्तु वह निराकार है किसी का रूप नही। वह अपने रूप का स्वय कर्त्ता है। उसके रूप का कौन बखान करे वह अनूप है। उसके रूप की कोई उपमा नहीं।

दक्खिनी के कवि 'मुल्ला वजही' ने भी अपने 'कुतुब मुश्तरी' में परमात्मा को अव्वल और कादिर कहा है। उसे मालिक मानकर अपने को उसका बन्दा माना है उसको वाहिद अहद, मुक्कसित और समद आदि विशेषणों से सम्बोधित किया है। यथा :—

'तूँ अव्वल तूँ आखिर, तूँ कादिर अहै, तूँ मालिक तूँ बातिन तूँ जाहिर अहै।
तूँ ही वाहद है और तूँ ही अहद, तूँ मुक्कसित है तूँ ही समद ॥'[4]

---

१. चित्रावली—उसमान, पृष्ठ ५, दोहा १०

२. वही, दोहा १

३. वह सूरज वह किरन संवाई। वह दधि यह सब लहरि उपाई ॥
—चित्रावली-उसमान, छंद १०

४. कुतुब मुश्तरी–मुल्ला वजही, पृष्ठ १

दक्खिनी के प्रायः सभी कवियों ने हम्द (ईश स्तुति) में कुरान के अनुसार तौहीद (एकेश्वरवाद) का समर्थन किया है।

मंझन के सृष्टि सम्बन्धी विचार—मंझन के सृष्टि सम्बन्धी विचार उपर्युक्त सूफी कवियो से भिन्न हैं। उसके अनुसार सारी सृष्टि में ईश्वर गुप्त होते हुये भी विलास करता है। वह सर्व-व्यापी है उसके समान न कोई दूसरा है न हुआ है और न भविष्य में ही होगा।

> 'गुपुत रहे परगत जग, बेरसै सरव व्यापक सोइ।
> दूजा कोइ न आहै, और भवा नहिं कोइ ॥'[1]

'मंझन' के अनुसार मुहम्मद परमात्मा से पृथक् हो गये और उन्हीं के विरह में स्वयं सृष्टि के रूप में उत्पन्न हुए। मुहम्मद दीपक रूप में पैदा हुए और उसी का प्रकाश सर्वत्र व्याप्त हुआ।[2] इस तरह मंझन ब्रह्म और सृष्टि के सम्बन्ध में अभेद की स्थिति मानते है। सारी सृष्टि को वे ईश्वर रूप मानते हैं। वे मुहम्मद साहब को भी ईश्वर का ही रूप मानते है।

> 'ऊँचे कहौं पुकारि कै, जगत सुनै सम कोइ।
> परगट नाउँ मुहम्मद, गुपुत जो जानिय सोइ ॥'[3]

किन्तु दाऊद, कुतुबन, जायसी, उसमान, शेखनबी आदि सूफियों का सृष्टि सम्बन्धी दर्शन इससे मेल नहीं खाता। उनके विचार से परमात्मा और सृष्टि का सम्बन्ध अंशी और अंश का है। अतः दोनों एक दूसरे से पृथक् है। 'जायसी' ने 'अखरावट' में इस द्वित्व सत्ता के कार्य संचालन का उदाहरण देते हुये लिखा है कि जिस तरह लेखनी का मुख चीर कर जब दो भाग कर दिये जाते हैं तभी वह कार्य करती है उसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति के आरंभ में ही द्वित्व सत्ता से सृष्टि क्रम गतिशील हुआ :—

> 'चलि सो लेखनि मइ दुइ फारा। विरिछ एक अपनी दुइ डारा ॥'[4]

इस प्रकार सूफियों ने सृष्टि का जो निरूपण अपने ग्रंथों में किया है वह

---

१. मंझन कृत मधुमालती—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छंद ४, पृष्ठ ६

२. सुनहूँ अब तेही के बाता। परगट मा जेहि बिरह विधाता ॥
सइहिं सरीर सिस्ट जो आवा। औरि सिस्टि सम ओहि कर भावा ॥
उदई जोति प्रगट सम ठाऊँ। दीपक सिस्टि मुहम्मद नाऊँ ॥
—मंझन कृत मधुमालती—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ ८, छंद ७

३. वही; छंद ८, पृष्ठ ६

४. अखरावट—जायसी, दोहा ३

प्राय: यहूदी तथा इस्लामी परम्परा से प्रभावित है। सूफीमत में भारतीय परम्परा के अनुसार व्यावहारिक सत्ता निराधार नही, पारमार्थिक सत्ता पर आश्रित है। इसीलिये सूफियो ने लोक-व्यवहार को शाश्वत् धर्म मानकर लौकिक प्रेम को विशेष महत्व दिया है जिसके सहारे आध्यात्मिक प्रेम की प्राप्ति करते हैं।

जीव—जीव के विषय में सूफी कवियों ने प्राय· अद्वैत को ही मान्यता दी है। जीव और ब्रह्म में वस्तुत: वे कोई भेद नहीं मानते उनके विचार से जीव ब्रह्म का ही अंश है :—

'रहा जो एक जल गुपुत समुन्दा। बरसा सहस अठारह बुन्दा।
सोई अंश घटे घट मेला। ओसोइ बरन बरन होइ खेला।।'[1]

यही बात 'श्वेताश्वतरोपनिषद'[2] तथा 'गीता'[3] में भी दुहराई गई है। परमात्मा भिन्न-भिन्न प्राणियों में तरह-तरह के शरीर धारण करके वही क्रीड़ा कर रहा है। वास्तव मे जीवात्मा परमात्मा से बिलकुल अभिन्न है। अपने इसी अभिन्न रूप को न पहचानने के कारण जीव इस ससार में दुःख भोगता है 'चित्रावली' में 'उसमान' ने भी 'एक जोत परगट सबठाऊँ'[4] कह कर ब्रह्म और जीव की एकरूपता व्यक्त करने का प्रयास किया है। 'वजही' ने 'कुतुब मुश्तरी' के मंगला-चरण में ईश्वर स्तुति करते समय स्पष्ट किया है कि वह परमात्मा आप ही फूल है, आप ही फल है, आप ही चाँद, सूर्य, और मेघ हैं। वह एक होते हुये भी सभी स्थान पर विद्यमान है। उसी के प्रकाश की झलक सभी प्राणियो में दिखाई पड़ती है।

'अपै फूल अपै फल, बन अहै। अपै चंद अपै सूर अपै घन अहै।
गरज एक आपच सबै ठार है। उसी नूर का सब में झलकार है।।'[5]

---

१. अखरावट—जायसी, दोहा ४
२ त्वं स्त्री, त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुख: ।।
—श्वेताश्वतरोपनिषद—अध्याय ४, मंत्र ३
३. ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन: ।
मन: षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।
—गीता अध्याय १५, श्लोक ७
४. चित्रावली—उसमान, पृष्ठ ४, दोहा ६
५. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १२

माया—जैसा कि पहले कहा जा चुका है सूफियों के मूलभूत सिद्धान्तों में 'माया' नाम की कोई अलग से वस्तु नहीं आती। वे पंच विकारों में ही माया को भी समेट लेते है, यथा :—

एहि विधि काम घटावहु काया। काम क्रोध तिसना मद माया ॥[1]

चूकि सूफी इस्लामी परम्परा से विशेष प्रभावित हैं अत: इनके यहाँ माया को 'शैतान' की संज्ञा दी गई है। जायसी 'पद्मावत' के प्रतीकों का स्पष्टीकरण करते हुये विघ्न कारक तत्व 'राघव चेतन' को शैतान का दूत और अलाउद्दीन को स्वयं (शैतान) माना है। यथा :—

'राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउद्दीन सुलतानू ॥'[2]

'संसार' ईश्वर का अचित पक्ष है। इसमें जीवात्मा उसका चित्त पक्ष है। अत: जीव का संसार से जातीय सम्बन्ध नहीं है। यहाँ वह भ्रम वश प्रपंच में पड़ा है और अपने को ईश्वर से पृथक् समझ रहा है। भ्रम ही उसका बंधन है। इस भ्रम के निवारण होने पर ही जीवात्मा शरीर बंधन से मुक्ति पा सकता है। इसी भ्रम को माया कहा गया है। सूफियों का यह मायावाद शंकर के 'मायावाद' से प्रभावित है। सूफी कवियो ने 'माया' का निरूपण अलग से सिद्धान्त रूप में न करके प्रेमाख्यानों में प्रेममार्ग की कठिनाइयों और प्रलोभनों के रूप मे अभिव्यक्त कर उसको व्यावहारिक रूप दिया है जिसका हम आगे उल्लेख करेंगे। यह माया जीव को तब तक सताती रहेगी जब तक पावक, पवन, धूल और पानी से निर्मित यह शरीर रहेगा।

'काम क्रोध तिस्ना मद माया, पंच बियापहि कत्त।
पावक पवन धूरिऔ पानी, जब लगि हहि एक सत्य ॥'[3]

इसी माया के भ्रम में पड़कर जीव ईश्वर अंश होते हुये भी पाप कर्म भी करता है। दु:ख भी भोगता है किन्तु वास्तव में पाप-पुण्य, दु:ख-सुख ये सभी व्यावहारिक सत्ता के लक्षण हैं और वे माया जनित हैं अत: मिथ्या और भ्रमात्मक हैं।

मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य में साधना पक्ष—परम तत्व, सृष्टि, जगत्, जीव और माया आदि तत्वो के निरूपण के पश्चात् अब परम-तत्व की प्राप्ति के लिए मनुष्य को अनेक प्रकार की साधना करनी पड़ती है जिससे वह अपने हृदय को

---

१. अखरावट–जायसी छंद ३१।
२. जायसी ग्रन्थावली–पद्मावत छंद ६५५ (उपसंहार)।
३. कुतुबन कृत मृगावती–डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ २, छंद ३।

"अब नाड़िका माहि नहिं पीरा। प्रगट पियर मुख षीन सरीरा ॥
कहि न आव हम हिये बिचारा। ई जस विरह घाउ कर मारा ॥"[1]

सूफियों का विश्वास है कि जिस स्थान पर जगत् में दुःख होता है प्रीति भी उसी स्थान पर होती है। वह बेचारा प्रेम की बात क्या जाने जिसके शरीर मे दुःख नहीं होता।[2]

(२) **एकनिष्ठा**—सूफी प्रेम का दूसरा लक्षण एकनिष्ठा है। प्रेमी अपने प्रिय के सिवा किसी दूसरे को कभी भी स्मरण नही करता। 'मंझन' कृत 'मधु-मालती' में 'मनोहर' कहता है कि जब से वह मधुमालती पर अनुरक्त हुआ तब से उसने किसी अन्य को न तो देखा और न सुना। जिस किसी से परिचय हुआ वह उसी के देश का रहा।

"कहा कुवर सुन प्रेमा बाता। जब सो जिउ मधुमालती राता ॥
सुना न देखा यहि कलि कोई। जेहि परिचै वोहि देस क होई ॥"[3]

ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि किसी को एक मन और एक चित्त करके खोजा जाय तो वह अत्यन्त ही दूर होते हुये भी निकट आकर मिल जाता है।

"जेहि काहू खोजै कोऊ, एक मन एक चित्त लाइ ॥
होइ दूरि जो अति तऊ, नियरहिं मिलै सो आइ ॥"[4]

इसी तरह पद्मावत, मृगावती, मधुमालती, आदि प्रायः सभी प्रेमाख्यानों में बहुत प्रयास किया जाता है कि प्रेमी प्रिय से विमुख हो जाय किन्तु प्रेमी एक-निष्ठ हो अपने प्रेम मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। वह किसी की बातों से रंच-मात्र भी प्रभावित नहीं होता।

सूफी प्रेम-साधना

सूफी प्रेम-साधना के लिये साधक को निम्नलिखित क्रियायें करनी होती हैं :—

(१) **आत्म-शुद्धि**—सूफी प्रेमाख्यानो में शुद्ध प्रेम के लिये हृदय की पवित्रता और आत्म-शुद्धि पर विशेष बल दिया गया है। जब तक प्रेमी का हृदय शुद्ध नहीं

---

१. वही; छन्द ९५, पृष्ठ ३८

२. जेहि ठां दुख होइ जग भीतर, प्रीति होइ बस ताहि।
प्रीति बात का जानै बपुरा, जेहि सरीर दुख नाहि ॥
—मंझन कृत मधुमालती—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द ११६, पृ० ९७

३. वही, छन्द २४३, पृष्ठ २०६

४. चित्रावली उसमान, छन्द १४२, पृष्ठ ५६

होता तब तक उसे प्रिय के दर्शन नहीं होते। 'चित्रावली' में 'उसमान' ने योगी के मुख से कहलवाया है कि चित्र में चितेरा निवास करता है किन्तु जिसकी दृष्टि निर्मल होती है वही उसे देख सकता है।[१] पद्मावत में राजा रतनसेन तप करते-करते सूख कर इतना कृशकाय हो जाता है कि विरहाग्नि में जलकर राख की ढेर-सा दिखाई पडने लगता है।[२]

(२) **अहंकार का दमन**—सूफी आस्था के अनुसार प्रेमी साधक को प्रिय की प्राप्ति के लिये अपने अहंकार पर विजय प्राप्त करनी होती हैं। जिन्हें गर्व होता है उन्हें प्रिय की प्राप्ति नहीं होती। दाऊद कृत 'चाँदायन' मे जब 'रूप चंद' को अपने बल पर गर्व होता है और वह एक क्षण में ही 'गोबर' को जला डालने की घोषणा कर देता है तथा दूतों के सिर काट कर नगर में घूमाने और खाल को पेड़ में टंगवा देने की डिग हांकता है। यथा :—

"अबही ढीठ तिहिमार पियारू। खिन एक भीतर गोबर जारू।
मूड़ काटि के गंवइ फिराऊ। खाल टांग के रूख टंगाऊ॥"[३]

तब रूप चंद के गर्व का परिणाम यह होता है कि लड़ाई में उसकी बुरी तरह हार होती है। 'लोरिक' बांठ का सिर काट कर ले चलता है और उसे देख राजा रूप चंद का दल भाग निकलता है।

"धरेसि तारि तरवारि कंठ महि, काटि चला लइ मुड।
भाजि चला दर राउ रूप चंद, देखि परा धर रुण्ड॥"[४]

जायसी के पद्मावत मे भी 'पद्मावती' यह चेतावनी देती है कि जहाँ गर्व रहता है, वहाँ पीड़ा होती है। जहाँ हँसी होती है वहाँ दुःख भी होता है। गर्व के समुद्र मे कितने लोग डूब गये जिनका खोजने पर भी पता नही चलता। यथा :—

"बहु तक परे समुन्द्र मंह, परत न पावा खोज।
जहाँ गरव तह पीरा, जहाँ हंसी तह रोज॥"[५]

(३) **क्रोध और ईर्ष्या की समाप्ति**—सूफी प्रेमाख्यानों मे प्रेमी साधकों को

---

१. चित्रहिं मंह सो आहि चितेरा। निर्मल दृष्टि पाउ सो हेरा॥
—चित्रावली—उसमान, छन्द १६७, पृष्ठ ६५

२. राजा इहां ऐस तप झूरा। मा जरि विरह छार कर कूरा।
— जायसी ग्रंथावली—पद्मावत, छन्द २४०

३. दाऊद कृत चाँदायन—सं० डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त; छन्द १०७, पृष्ठ १३६

४. दाऊद कृत चाँदायन—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द १३३, पृष्ठ १३०

५. जायसी ग्रंथावली—पद्मावत, छन्द २८०

तब तक प्रिय का मिलन नहीं होता जब तक उसमें क्रोध और ईर्ष्या नाम-मात्र के लिये भी शेष रह जाती है। जब उसके लिए भले-बुरे सभी एक से हो जाते हैं वह सबको एक समान देखने लगता है, मार, गाली और क्रोध को अपने भीतर नहीं रखता। उसके भीतर कोई गोपनीय रहस्य शेष नहीं रह जाता और न वह किसी के प्रति मोहासक्त ही होता है तब उसे प्रिय के दर्शन होते हैं—

"मल औ मंद दोउ एक लेखा। दुइ न जान सब एकै लेखा।
मारि गारि जिय राख न कोहू। रहस न होउ कि ए कछु छोहू॥"[१]

प्रेम और विरह

सूफी प्रेमाख्यानों में प्रेम के साथ-साथ विरह का अनिवार्य सम्बन्ध दिखलाया गया है जिसके हृदय में प्रेम होता है उसे विरह की पीड़ा निश्चय ही होती है और जिन्हे विरह सुख झेलने को मिलता है उन्ही को प्रेम भी अच्छा लगता है।

"जेहि रे पिरम तिहि बिरह सतावइ, विरह जे तिहि पिरम सुहावइ।"[२]

प्रेमी को प्रिय का संयोग तब तक नही होता जब तक वह अपने को विरह की आग में तपा नही लेता। जायसी का कहना है कि प्रेम की चिनगारी का नाम सुनते ही धरती और आकाश भय से कापने लगते है। वह विरही और उसका वह हृदय धन्य है जिसमे ऐसी विरह की अग्नि समाई रहती है।

"मुहम्मद चिनगी प्रेम के, सुनि महि गगन डेराइ।
धन विरही औ धन हिया, तहं अस अगिनि समाइ॥"[३]

विरह मे तप कर साधक की सारी कलुषतायें नष्ट हो जाती है और वह प्रिय (परमात्मा) को प्राप्त करने मे सक्षम हो जाता है। 'मंझन' तो विरह से साक्षात् ईश्वर का ही दर्शन करता है। वह कहता है कि जब विधाता स्वयं उसके विरह में सृष्टि रूप में आया तो सारी सृष्टि ही उसी के भाव में परिवर्तित हो गई।

"सुनहु अब तेही के बाता। परगट भा जेहि बिरह बिधाता।
सइहि सरीर सिस्टि जो आवा। और सिस्टि सम ओहिकर भावा॥"[४]

विरह सृष्टि के मूल में ही इस संसार में आया किन्तु बिना पूर्व-जन्म के

१. चित्रावली—उसमान, छन्द २११
२. दाऊद कृत चांदायन—डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त, छन्द ३५४, पृष्ठ २८२
३. जायसी ग्रंथावली-पद्मावत, छन्द २१०
४. मंझन कृत—मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द ७, पृष्ठ ८

पुण्य के वह किसी को प्राप्त नहीं होता। जिसके शरीर में विरह रहता है, वह प्राणी अमर हो जाता है, मरता नहीं।

"सिस्टि मूल विरहा जग आवा। पै बिनु पुन्व पुनि को पावा।
विरह जीउ जेहि के घट होई। सदा अमर रहे मरै न सोई॥"[१]

विरह की भावना और सिद्धि किसी शास्त्र के पढ़ने से नहीं प्राप्त होती। जिसको दयालु और दयानिधि ईश्वर दया कर इसे देता है वही यह निधि प्राप्त करता है—

"कौनों पाठ पढ़ें नहि पाइअ बिरह बुद्धि औ सिद्धि।
जा कहं देइ दयाल दया करि सो पावै यह निद्धि॥"[२]

सूफी कवि 'उसमान' अपनी 'चित्रावली' में विरह का निरूपण करते हुये कहता है कि विरह की अग्नि हृदय के भीतर जला करती है जिसका अनुभव यह शरीर ही कर सकता है। वह भीतर ही भीतर बिलूत की भांति जला करता है। उसका धुंआ भी नही उठता।

"विरह अग्नि उर मंह बरै, एहितन जानै सोइ।
सुलगै काठ बिलूत ज्यौ, धुंआ न परगट होइ॥"[३]

जायसी का विश्वास है कि प्रेम के साथ विरह रस उसी प्रकार छिपा है जैसे मोम के घर मधु और अमृत के साथ-साथ डंक मारने वाली शहद की मक्खी। यथा :—

"प्रेमहि मांह विरह रस रसा। मैन के घर मधु अमृत बसा॥"[४]

विरह की अग्नि शरीर में इस प्रकार प्रज्ज्वलित होती है कि उससे शरीर की सारी शीतलता (अचेतनता) भाग खड़ी होती है और बसन्त ऋतु के आगमन की भाति जैसे पृथ्वी हरी-भरी हो जाती है वैसे सर्वत्र हरियाली छा जाती है। रावण की लंका तो जल कर बुझ गई थी किन्तु यह विरह की अग्नि किसी प्रकार तब तक नहीं बुझ सकती जब तक प्रिय न मिल जाय जिसके कारण से यह लगी हो।

"विरह आगि ऐसी परजरी। सीउ परान पुहुमि सब हरी॥
रावन लंका जरि बुझी, यह कैसेहुं न बुझाइ।

---

१. वही; छन्द २६, पृष्ठ २५
२. मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द २६, पृष्ठ २५
३. चित्रावली—उसमान, छन्द ४२६
४. जायसी ग्रंथावली—पद्मावत, छन्द १७०

जेहि कारन यह लागी, तेइ भेंटइ तौ रे जाइ ॥''[1]

'गौवासी' ने अपने 'शैफुल मलूक व बद्दीउज्जमाल' मे प्रेम को असाध्य रोग बतलाते हुये लिखा है कि इस संसार में हर रोग की दवा है किन्तु प्रेम के दर्द (विरह) की कोई दवा नही है।

'सभी हर दरद कू है हर कै दवा। बलै इश्क के दर्द कू नै दवा॥'[2]

अब्दुल कद्दूस गंगोही का कथन है कि प्रेम की पीड़ा ऐसी होती है जो संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में चैन से नहीं रहने देती। जब प्रियतम सेज पर रहते है तब भी नींद नहीं आती। बराबर इस बात की चिन्ता लगी रहती है कि पता नही कब प्रियतम हममे अलग हो जायं और जब अलग रहते हैं तब तो विरह सताता ही है। वे कहते हैं :—

'जे पिउ सेज त नींद कस, जे पर देश तो यो।
विरह विरोधी कामिनी, ना सुख यो ना यों॥'[3]

इस तरह विरह साधक रूपी नायिका के लिए कभी भी सुखप्रद नहीं होने पाता।

सूफियों के विचार से विरह ही इस जीवन का बादशाह है। जिसके शरीर में विरह नहीं उत्पन्न होता वह मृतक के समान है।[4] विरह की यह महत्ता केवल भारतीय प्रेमाख्यानो में ही नही, बल्कि फारसी के प्रेमाख्यानो में भी चित्रित की गई है। निजामी के 'लैला मजनू' में 'खुसरो शीरी' 'यूसुफ जुलेखा' में प्रेमी-प्रेमिका के विरह की तड़पन का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है। भारतीय प्रेमाख्यानो में विरह के चित्रण प्रायः बारहमासे और षट्ऋतु वर्णन के माध्यम से किये गये है।

प्रेममार्ग की कठिनाइयाँ—सूफियों के विचार से साधना का प्रेममार्ग अत्यन्त ही कठोर है। इसमें साधक को अपना सब कुछ त्याग कर देना पड़ता है। ममता का त्याग कर देने के पश्चात् ही प्रियतम के दर्शन हो सकते हैं। यदि साधक ने प्रियतम को खो दिया तो उसका सब कुछ नष्ट हो गया। यह प्रेम की कथा अकथनीय है जो कोई इसके रहस्य को समझता है वही इसे प्राप्त कर सकता है।[5]

---

१. कुतुबन कृत मृगावती–डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द ४०, पृष्ठ ३२
२. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा—राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १४१।
३. सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २२६।
४ सूफी काव्य-संग्रह—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, शेख फरीद, पृष्ठ २३५।
५. वही; पृष्ठ २२६, दोहा ४ (अब्दुल कद्दूस गंगोही)।

जायसी के 'पद्मावत' में हीरामन तोता प्रेममार्ग की कठिनाइयों का वर्णन करते हुये कहता है कि विधाता ने प्रेम के पहाड़ को बड़ा ही कठिन बनाया है। इस पर वही चढ़ सकता है जो सिर के बल चढ़ता। यह प्रेम-पंथ शूली का मार्ग है जिस पर शूली की नोकें जगह-जगह ऊपर उठी हुई है इस पर या तो चोर ही चढ़ सकता है या मंसूर ही चढ़ा था।

'प्रेम पहार कठिन बिधि गढ़ा। सो पै चढ़ै जो सिर सौ चढ़ा।
पंथ सूरि कै उठा अंकूरू। चोर चढ़ै कि चढ़ मंसूरू॥'[1]

'उसमान' ने भी अपनी 'चित्रावली' में प्रेममार्ग की दुरूहता का वर्णन करते हुये कहा है कि 'प्रेममार्ग' अत्यन्त ही दुर्गम है। यह हँसी और खेल नहीं होता। प्रेम का पहाड़ अगम्य है। इसमें विषम गढ़ और घाटियाँ है। इस पर न तो पक्षी जा सकता है, न चींटी ही जा सकती है। इसमें इतने भयंकर खंदक है कि पाताल पुरी दीखती है और लाँघने के नाम पर पुरुषो की जाँघे काँपने लगती है। इसे वही पार कर सकता है जिसने अपने प्राण का त्याग कर दिया है और जिसका कलेजा लोह के समान है :—

'कहेसि कुंवर यह पंथ दुहेला। अस जनि जानु हँसी औ खेला॥
अगम पहार विषम गढ़ घाटी। पंखन जाइ चढ़ै नहिं चीटी॥
खोह खराट जाइ नहि लांघी। देखि पतार काँप नर जाँघी॥
जाइ सोइ जो जिउ पर तेजा। सार पाँसुली लोह करेजा॥'[2]

प्रेममार्ग की ये कठिनाइयाँ साधक के लिए आनन्दप्रद होती हैं। प्रियतम के लिए जो कष्ट उठाता है तो उस कष्ठ में भी प्रेमी को सुख की ही अनुभूति होती है :—

'प्रीतम लागि जौ रे दुख सहई। दुख के मिलै तो रे सुख लहई॥'[3]

हृदय मे प्रेम का उदय हो जाने पर संसार की सारी वस्तुओं का त्याग कर देना पड़ता है। 'मंझन' ने 'मधुमालती' में लिखा है कि जब हृदय में प्रेम का उदय होता है तो प्रियतम को छोड़कर सभी जल जाते हैं। प्रेम का कष्ट सभी कष्टों से भारी होता है क्योंकि इसमें दिन में सहस्त्रों बार तिल-तिल करके मरना होता है[4] इस तरह हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानों में 'मृगावती' में 'राजकुंवर' को, चाँदायन में

१. जायसी ग्रन्थावली—पद्मावत, छंद १२६।
२. चित्रावली—उसमान, छंद २०३।
३. कुतुबनकृत मृगावती—सं० डॉ० शिवगोपाल मिश्र, छंद ८१।
४. मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माताप्रसाद गुप्त, छंद १५१, पृष्ठ १२६।

'लोरिक' को पद्मावत में 'रतनसिंह' को, मधुमालती में 'मनोहर' को, चित्रावली में 'सुजान' को, ज्ञानदीप में ज्ञानदीप को, 'कनकावती' मे 'परम रूप' को, 'रूप-मंजरी' में 'ज्ञानसिंह' को, 'रत्नावती' में 'महिमोहन' को, ग्रंथ बुद्धिसागर मे 'मधुकर' को, 'कुतुब मुश्तरी' मे 'राजकुमार मुहम्मद कुल्ली' को 'सबरस' मे 'दिल' को, 'शैफुल मलूक व बद्दीउज्जमाल, मे 'शैफुल मलूक' को, 'चन्दर बदन व महियार' मे 'महियार' को अपने साध्य की प्राप्ति के लिए नाना प्रकार के कष्टो को झेलना पडता है मुकीमी के 'चन्दर बदन व महियार' में तो प्रेमी-प्रेमिका का मिलन फारसी प्रेमाख्यानो की भाँति मरणोपरांत ही हो पाता है।

प्रेम-साधना की आध्यात्मिक मन्जिलें—सूफी प्रेम साधना मे नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत ये चार आध्यात्मिक मंजिले मानी गई है। उसमान ने चित्रावली मे नासूत को भोगनगर, मलकुत (देवलोक) को गोरखपुर, जबरूत को नेहनगरा तथा लाहूत को रूपनगर मानकर चित्रण किया है।[1] इसमें 'नासूत' मनुष्य की सामान्य स्थिति है। मलकूत (देवलोक) के लिए तरीकत के मार्ग का अनुसरण करना होता है। तरीकत के मार्ग में तोबा, फक्र, जुहद (संयम), सब्र, रिजा (प्रसन्नतापूर्वक सन्तोष), तव्वकुल (ईश्वरेच्छा के आधीन होना), कनायत (सन्तोष) आदि विभिन्न मुकाम बतलाये गये है।[2] मलकूत (देवलोक) मे मनुष्य का चित्त भौतिक जगत् की तुच्छताओ के ऊपर उठ जाता है। तीसरी मंजिल 'जबरूत' मे साधक आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करता है। यह मंजिल 'मारिफ' (ईश्वरीय ज्ञान) की होती है। इस दशा में प्रेममार्ग की सारी कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं। जब साधक राग विराग मे ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो वह चौथी मंजिल लाहूत (हकीक) को प्राप्त करता है।[3] साधना की इन्हीं चार मंजिलो को कुछ लोग 'शरीअत' 'तरीकत', 'हकीकत' और 'मारिफत' नाम से पुकारते है। 'अल हुज्बीरी' सूफी साधना की तीन ही अवस्थायें मानता है—(१) मुकामात, (२) अहवाल, (३) तमकीन।[4] 'मुकामात साधना की प्रथम मंजिल है। इसमे साधक को काफी कष्ट सहना पडता है जिसमें परमात्मा उसका सहायक होता है। इसमें साधक अपने अहं भावों को खोकर उन गुणों को प्राप्त करता है जिनके द्वारा वह अपनी आखिरी मंजिल तक पहुँचने में

---

१. चित्रावली—उसमान, छंद २०५ से २१३ तक।
२. हकायके हिन्दी—प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा काशी, पृष्ठ १२।
३. सूफीमत साधना और साहित्य—डॉ० रामपूजन तिवारी पृष्ठ ३३०।
४. कश्फ—अल-महजूब-अल हुज्बेरी-अनु० निकोलसन, पृष्ठ ३७१।

सफल होता है। साधना की दूसरी मंजिल 'अहवाल' (भावाविष्ठावस्था) अर्थात् उल्लास और भावातिरेक की अवस्था है। यह दूसरी मंजिल बिलकुल ईश्वरीय कृपा पर आश्रित है। अंतिम मंजिल 'तमकीन' की है जब साधक परम सत्य को पा जाता है। साधक इस अवस्था में पहुँच कर पूर्णावस्था को प्राप्त कर लेता है। वह अपने सारे अच्छे या बुरे गुणों से परे हो परम प्रियतम में रमण करने लगता है। 'अलहुज्वेरी' के मत से मिलते-जुलते कुछ अन्य सूफी साधक भी सूफी मार्ग की चर्चा करते हुये तीन ही प्रकार की यात्राओ का वर्णन करते है :—

सैर इलल्लाह (परमात्मा की ओर यात्रा)—इसमें साधक इस संसार से ऊपर उठकर उस संसार में पहुँचता है जो परमात्मा के आदेश मात्र से हुआ है। इसमे साधक 'वाहिदियत' और 'वहदत' की मंजिलों को पार करता है। इस यात्रा का अन्त 'हकीकते मुहम्मदिया' में होता है।

(२) **सैर फील्लाह** (परमात्मा में यात्रा)—यह अहदियत की मजिल है। इसमें साधक परमात्मा मे अपने को लय कर देता है।

(३) **सैर अनील्लाह**—यह 'फना' के बाद 'बका' की अवस्था है। इसमें साधक ईश्वरीय गुणों से विभूषित होकर इस अभिव्यक्त होने वाले ससार में लौट आता है।

हिन्दी के सूफी कवियों ने इन्हो आध्यात्मिक मंजिलों का उल्लेख अपने प्रेमाख्यानो मे विभिन्न रूपको और प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है।

सूफी प्रेम साधना के सहायक अंग

यद्यपि सूफियों ने अपनी साधना में प्रेम को ही सर्वोपरि माना किन्तु उसके साथ-साथ वे उस समय तक प्रचलित साधना को अन्य मार्गो से कदापि अपने को अलग न रख सके है इनकी साधना मे ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति सभी का सम्बन्ध विद्यमान है। जहाँ तक ज्ञान का सम्बन्ध है इनका ज्ञान विशेषकर कुरान पर अवलम्बित है। बेशरा सम्प्रदाय के सूफी अनुभूति जन्य ज्ञान पर विशेष जोर देते है। सूफी साधना में 'लतायफो सित्ता' के सिद्धान्त बहुत कुछ कुडलिनी चक्रो के सिद्धान्तों से साम्य रखता है जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। 'लतायफी सित्ता' के सिद्धान्त के प्रवर्त्तक नक्शबदिया सम्प्रदाय के 'शेख अहमद' शरीर के अन्दर ६ अवस्थानो का उल्लेख करते है :—

(१) नफ्स (नाभि के नीचे) (२) कल्ब (छाती के बायीं ओर)
(३) रूह (छाती के दाहिनी ओर) (४) सिर्र (कल्ब और रूह के मध्य)
(५) खफी (ललाट) (६) अख्फा (मस्तिष्क)

इन सभी अवस्थानों के अलग-अलग रंग होते हैं। साधक जिस अवस्था को प्राप्त करता है उस रंग का शिरस्त्राण धारण करता है। आखिरी मंजिल तक पहुँचते-पहुँचते उसमें वर्णहीनता के भाव आ जाते हैं। साधक उस समय 'फना' की अवस्था को प्राप्त करता है। सूफी इसे 'आलमे हैरत' कहते हैं। जिक्र (स्मरण), मुराकबा (ध्यान), समा (श्रवण) आदि क्रियाओं द्वारा इन अवस्थाओं को पार कर साधक परम ज्योति के दर्शन करने में सफल होता है। इस तरह सूफी प्रेम साधना मे ज्ञान, कर्म, योग और भक्ति द्वारा शरीअत, तरीकत, की मंजिलों को पार कर हकीकत तक पहुँचते है। यद्यपि हिन्दी सूफी काव्यों में इन मंजिलों का उल्लेख स्पष्ट रूप मे नही मिलता, फिर भी यदि थोड़ा उनके प्रतीकों पर ध्यान दिया जाय तो ये बातें स्पष्ट हो जायेंगी। अलग-अलग प्रेमाख्यानों के कथानकों को लेकर हम इन मंजिलों को ढूंढ़ निकालना आवश्यक नहीं समझते।[1]

सूफी अध्यात्म पथ में गुरू का स्थान

सूफी अध्यात्म पथ की प्रेम साधना के लिये एक गुरू की नितान्त आवश्यकता होती है। गुरू से सूफी साधक ईश्वरीय प्रेम के लिये विरह की चिनगारी प्राप्त करता है। मलिक मुहम्मद जायसी के शब्दों में गुरू वह है जो शिष्य के हृदय के विरह की चिनगारी उत्पन्न कर दे।

'गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिन गुरु जगत को निरगुन पावा।।[2]

'चित्रावली' मे 'उसमान' ने लिखा है कि जल की बूंद में ही समुद्र छिपा है यदि गुरू दिखा दे तो सभी लोग जान जायं। जिसे गुरू ने रास्ता नही दिखाया वह अंधे की भांति चारों ओर दौड़ता फिरता है।

'जैसे बूंद माँह दधि होई। गुरू लखाय तो जानै कोई।
जाकह गुरू न पथ देखावा। सो अंधा चारिहुँ दिसि धावा।।'[3]

इसी प्रकार अन्य हिन्दी सूफी कवियो ने अपने प्रेमाख्यानों में गुरूओं की प्रशस्ति करके उनके प्रति अटूट श्रद्धा प्रदर्शित की है।

निष्कर्ष

मध्यकालीन हिन्दी सूफी कवियों की रचनाओं में सूफियों के आध्यात्मिक

---

१. सूफीमत साधना और साहित्य—डॉ० राम पूजन तिवारी, पृष्ठ ३३२-३३६ के आधार पर।

२. जायसी ग्रन्थावली —पद्मावत, उपसंहार, छन्द ६६५

३. चित्रावली—उसमान—छन्द १६७, पृष्ठ ६५

तत्वों की छानबीन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सूफियों का ईश्वर एक व्यापक शक्ति है जो एक होते हुये भी सबमें व्याप्त है। उसकी प्राप्ति के लिये एक मात्र प्रेम ही सुलभ साधन है। यद्यपि सूफियों का यह सिद्धान्त कुरान की इस्लामी लीक के ही इर्द-गिर्द चक्कर काटता दिखाई पड़ता है फिर भी उसमे किसी प्रकार की साम्प्रदायिक संकीर्णता का अभाव है। मध्यकालीन हिन्दी सूफी साहित्य इस्लामी शरीअत का प्रतिनिधित्व करता हुआ कही भी दिखाई नही पड़ता। वह मनुष्य मात्र की एकता का प्रतिपादन करता है। सूफियों का यह साहित्य भारत की एक विशिष्ट संस्कृति का निर्मल दर्पण है जिसमे इस्लामी शरीअत के स्थान पर भारतीय के प्रतिबिम्ब स्पष्ट दृष्टिगोचर होते है। यह साहित्य निरतर सकीर्णता से उदारता की ओर उन्मुख होता दिखाई देता है जिसका अत्यन्त व्यापक स्वरूप हमे सन्तों के साहित्य में देखने को मिलेगा।

अध्याय ६

मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवि और उनका काव्य

'सन्त शब्द का अर्थ बड़ा ही व्यापक है। भारतीय साहित्य के अन्तर्गत सन्त शब्द का अर्थ सज्जन, परोपकारी, विवेकशील, साधु स्वभाव वाले पुरुषों के लिये किया गया है। 'सन्त' शब्द की व्युत्पत्ति सस्कृत के 'अस्' धातु के वर्तमान कृदन्त रूप 'सन्त' के पुल्लिग एकवचन 'सन्' का बहुवचन 'सन्तः' से प्रतीत होती है। ऋग्वेद में 'सत्' का प्रयोग' 'ब्रह्म' के लिए हुआ है। किन्तु तैत्तरीयोपनिषद् में 'ब्रह्मविद' के लिये भी इसका प्रयोग मिलता है।[1] सम्भव है 'सत्' का यही बहुवचन रूप 'सन्त' हिन्दी मे 'ब्रह्म ज्ञानियो' के लिये प्रयुक्त हो गया हो। इस विषय पर आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने बडे ही विस्तारपूर्वक विवेचना की है।[2] अतः हम इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विशेष विस्तार में जाना अनावश्यक समझते है। डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल उक्त अनुमान के अतिरिक्त एक और भी अनुमान यह करते है कि सम्भवतः 'सन्त' शब्द पालि भाषा के उस 'शांत' शब्द से निकला हो जिसका अर्थ निवृत्तिमार्गी या वैरागी है।[3] ये दोनों अनुमान ठीक वैसे ही हैं जैसे 'सन्त' शब्द का अंग्रजी के सेन्ट का समान अर्था मान लेना। इस शब्द की व्युत्पत्ति के लिये अभी अन्यत्र शोध की आवश्यकता है।

सन्त कवियों ने भी 'सन्त' की परिभाषा देते हुये लिखा है कि सन्त निर्वैरी, निष्काम, प्रभु का प्रेमी, और विषयो से विरक्त होता है।[4] वह उस वृक्ष की भाँति है जो दूसरो के लिये फलते है। पत्थर मारने पर भी फल प्रदान करते है।[5] वे समदर्शी होते है उन्हें कोई इच्छा नही होती। उनके मन में हर्ष, शोक अथवा भय नहीं होता।[6]

---

१ अस्तिब्रह्मेति चेद्वेद। सन्तमेनं ततो विदुरिति।—(तैत्तिरीयोपनिषद् २/१/६)

२. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ १-७

३. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल प्र० पृ० ६

४ कबीर ग्रथावली—साखी १, पृष्ठ ३६ (२६) साध साषीभूत की अंग)

५. तुलसी सन्त सुअंक तरु, फूल फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हने उतते वे फल देत।।—दोहावली गोस्वामी तुलसीदास

६. समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मनमाहीं।।
—रामचरित मानस—सुन्दरकाण्ड, दोहा ४८

संत और राम में कोई भेद नहीं मानना चाहिये।[1] इस तरह सन्त शब्द उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने 'ब्रह्मतत्व' की अनुमति कर ली हो तथा अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठकर उसके साथ तद्रूप हो गया हो और जिसने सत्य का साक्षात्कार कर लिया हो।

संत शब्द का रूढ़िगत प्रयोग—'सन्त' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार कर लेने के साथ-साथ यह भी पता चलता है कि किसी समय 'सन्त' शब्द का प्रयोग विट्ठल या बारकरी सम्प्रदाय के प्रधान निर्गुण भक्ति साधकों के लिये हुआ था। इन लोगों में ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, जैसे महाराष्ट्र के भक्तो के नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'सन्त' शब्द एक विशिष्ठ अर्थ रखता है। यह उस व्यक्ति से सम्बन्धित है जो विट्ठल सम्प्रदाय का अनुयायी है।[2] बाद मे विट्ठल सम्प्रदाय से बहुत-सी बातो मे समानता होने के कारण उत्तरी भारत के 'कबीर' तथा अन्य ऐसे लोग भी 'सन्त' कहे जाने लगे। इन लोगों ने अपने सिद्धान्त को 'सन्तमत' नाम दिया। इस प्रकार दक्षिणी भारत की सन्त-परम्परा में जैसे ज्ञानदेव आदि के नाम आते है वैसे ही उत्तरी भारत को सन्त परम्परा में कबीर, रैदास, नानक, दादू आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

सन्तों की कोटि मे हम उन लोगो की गणना नहीं करते जो सगुणोपासक है और जिन्हें साधारणतः 'भक्त' की संज्ञा दी गई है। एक विशेष प्रकार और कोटि की भक्ति तथा रहनी का द्योतक होते हुये भी उपास्य भेद से भक्तों के एक विशेष वर्ग को ही 'सन्त' कहने की परम्परा चल गई। ये सन्त निर्गुणोपासक हैं। हमारे अध्ययन का विषय केवल इन्हीं मध्यकालीन सन्तों से सम्बन्धित है जिन्होने अपनी बानियाँ हिन्दी में कही हैं और जो हमारे आलोच्य काल की परिधि के अन्तर्गत आते हैं।

अध्ययन के हेतु मध्यकालीन सन्तों का चयन करते समय इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि सूफी अध्यात्म दर्शन से प्रभावित संतों के साथ-साथ कुछ उन सन्तों का भी अध्ययन प्रस्तुत कर दिया जाय जो सूफियों से या तो बिलकुल ही प्रभावित नहीं है या प्रभावित है भी तो नाम-मात्र के लिये। सूफियो के साथ तुलनात्मक अध्ययन के लिये इस अध्याय मे सन्तों के जीवन-वृत्तों पर भी एक विहंगम दृष्टि डाल लेना इसलिये आवश्यक है, ताकि हमे यह स्पष्ट करने में सुविधा हो जाय कि मध्यकालीन सन्तों को भी सूफियों की भाँति ही नीच कुल और समाज

---

१. सन्त औ राम को एक कै जानिये, दूसरा भेद ना तनिक आनै।
—पल्टू साहब की बानी (बेलबेडियर प्रेस, प्रयाग, भाग २, पृ० ८)

२. मिस्टीसिज्म इन महाराष्ट्र—प्रो० आर० डी० रानाडे (पूना १९३३), पृ० ३२

से उद्भूत होने के कारण अपने मूल धर्म और हिन्दू समाज से प्रताड़ित एवं उपेक्षित रहकर जीवनयापन करना पड़ा था।

सन्त कवियों का वर्गीकरण—यद्यपि निर्गुण सन्त साधना को कबीर के द्वारा ही पूर्णत्व प्राप्त हुआ किन्तु उसका बीजारोपण पहले से ही हो चुका था। कबीर से पहले भी कई सन्त ऐसे हो चुके है जो पथ-प्रदर्शक के रूप में मान्य हैं। ऐसे सन्तों में जयदेव, साधना, वेणी, नामदेव, त्रिलोचना आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। दूसरी ओर कबीर के बाद भी कई पीढ़ियों तक इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। इस तरह हम अपने अध्ययन की सुविधा के लिये मध्यकालीन सन्त कवियों को तीन काल-क्रमों मे विभक्त करेंगे :—

(क) कबीर के पूर्ववर्ती तथा पथ-प्रदर्शक सन्त।

(ख) कबीर और उनके समकालीन सन्त।

(ग) कबीर के परवर्ती सन्त और सन्त सम्प्रदाय।

आगे हम संक्षेप मे प्रत्येक वर्ग क कुछ प्रतिनिधि सन्तो का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे जिससे प्रत्येक युग की सन्त विचारधारा की एक रूपरेखा तथा उनका पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हो सके।

(क) कबीर के पूर्ववर्ती तथा पथ-प्रदर्शक सन्त

सन्त-परम्परा का पथ-प्रदर्शन करने वाले सन्तो मे सर्वप्रथम नाम 'जयदेव' और 'नामदेव' का आता है। कबीर ने अपनी रचनाओं मे इनका नाम बड़ी ही श्रद्धा से लिया है।[1] जयदेव, नामदेव से १०० वर्ष पूर्व राजा लक्ष्मण सेन के यहाँ वर्तमान थे। अतः वे हमारे आलोच्यकाल की परिधि क अन्तर्गत नही आते। कबीर के पूर्ववर्ती तथा पथ-प्रदर्शक सन्तो में 'नामदेव' और स्वामी रामानन्द' के नाम ही विशेष उल्लेखनीय है। हम आगे इनके-जीवन वृत्त एवं साहित्य पर संक्षेप में प्रकाश डालेंगे :—

(१) नामदेव (जन्म सं० १३२७ वि०, मृत्यु सं० १४०७ वि०)—नामदेव का जन्म 'सतारा' जिले के 'नरसी बमनी' गाँव में एक शैव परिवार में हुआ था।[2] इनके पिता का नाम 'दामाशेट' तथा माता का नाम 'गोनाबाई' था।[3] ये प्रसिद्ध

---

१. जागे सुक उधव अकूर, हणवन्त जागे लै लंगूर ॥
   संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नांमा जैदेव ॥
   — कबीर ग्रंथावली (का० सं० पद सं० ३८७), पृष्ठ १६३

२. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ ६५

३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग ४, ना० प्र० स० काशी, पृष्ठ १११

महाराष्ट्रीय सन्त 'ज्ञानदेव' के समकालीन थे। आठ वर्ष की अवस्था मे ही इनका विवाह हो गया था जिससे आगे चलकर इनको पाँच सन्तानें पैदा हुईं। बचपन से ही इनकी रुझान भगवद्‌भक्ति और सत्संग की ओर थी। ये महाराष्ट्र मे नीच समझी जाने वाली छीपी जाति में पैदा हुये थे। सन्त रैदास ने गुरु महिमा तथा सत्संग का प्रभाव जताते हुये इस तथ्य का उल्लेख किया है।[1] अन्य सन्तों की भाँति चमत्कार प्रदर्शन के लिये इनके जीवन से जुड़ी हुई बहुत-सी चमत्कारपूर्ण घटनाओं का उल्लेख गुरू ग्रंथ साहब में मिलता है जैसे ठाकुर जी को प्रत्यक्ष रूप से दूध पिलाना, भगवान का आकर स्वयं इनका छप्पर छाना, ब्राह्मणो द्वारा मन्दिर मे निष्कासित किये जाने पर मन्दिर का द्वार पिछवाडे की ओर हो जाना। आदि-आदि

कहा जाता है कि युवावस्था में कुसंगति में पड़कर 'नामदेव' डाकू बन गये थे किन्तु एक दस्यु पीड़ित विधवा के रुदन से इतना द्रवित हुए कि डकैती का दुष्कर्म छोड़ अपना सर्वस्व लुटाकर 'पंढरपुर' आ 'बिठोवा' अर्थात् 'बिट्ठल जी' के भजन कीर्तन मे समय बिताने लगे। पहले ये सगुणोपासक थे किन्तु बाद में सर्व-व्यापी, निराकार, अन्तर्यामी, अलख निरंजन भगवान के भक्त हो गये। इनके 'गुरू विसोबा खेचर' नामक एक महाराष्ट्रीय सन्त थे।

अपने जीवन का अधिक समय उन्होने 'पंढरपुर' में बिठोवा (विष्णु) के मन्दिर मे ही बिताया। फिर अन्त मे तीर्थाटन करते हुये ये उत्तरी भारत का भ्रमण किये तथा पजाब में आकर इन्होंने अपने बहुत से शिष्य बनाये। 'गुरुदासपुर' जिले में 'धूमन' नामक गाँव में अब तक 'नामदेव' का मन्दिर है। मन्दिर के लेखों से पता चलता है कि 'नामदेव' का निधन यही पर सम्भवत: सं० १४०७ वि० में हो गया। जिस समय ये पजाब मे पहुँचे थे उस समय इनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी।[2] इस तरह पजाब में इन्होंने अपने जीवन के अन्तिम १५ वर्ष बिताये और ८० वर्ष की अवस्था मे ये गोलोकवासी हुये। आज भी गुरुदासपुर, जालंधर और हिसार जिलों में इनके अनुयायी मिलते है। 'पढरपुर' में भी सन्त नामदेव की समाधि मिलती है। मालूम होता है कि उनके भक्त उनके फूल को 'पढरपुर' लाकर 'बिठोवा' के मन्दिर के आगे गाड़ दिये थे।[3]

रचनायें

सन्त नामदेव की रचनायें मराठी और हिन्दी दोनो भाषाओं में मिलती हैं।

---

१. नामदेव कहिये जाति के ओछ, जाको जस गावै लोक।

रैदास जी की बानी (बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, पृ० ३२

२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग ४, पृष्ठ ११४, ना० प्र० स० काशी

३. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ ६७

उनकी हिन्दी रचनाएँ कुछ तो मराठी संग्रहों में प्रकाशित हुई हैं और कुछ 'गुरू ग्रंथ साहब' में संगृहीत है। ग्रंथ साहब में संगृहीत इनके पदों की संख्या ६१ है। मराठी संग्रहों में हिन्दी रचनाएँ छाट कर निकालने पर सम्पूर्ण प्राप्य पदों की संख्या १२० के लगभग हो जाती है। अभी हाल ही मे डॉ० भागीरथ मिश्र ने इनकी प्रायः सभी उपलब्ध रचनाओ का एक संग्रह 'संत नामदेव की हिन्दी पदावली' नाम से संपादित कर सन् १९६४ मे पूना विश्व विद्यालय से प्रकाशित कराया है जिसमें कुल मिलाकर २३० पद एव १३ साखियाँ है।

'नामदेव' की रचनाओ मे सरसता और सुबोधता का अद्भुत सम्मिश्रण है। उन्होने ऐसे अभगो और गीतो की रचना की कि उनके जीवन-काल मे ही उनका यश भारत मे सर्वत्र व्याप्त हो गया। उनकी कविता उनके जीवन-काल की दृष्टि से तीन प्रकार की है .—

(१) **प्रथम उन्मेष की रचनाएँ**—ये उनकी प्रारम्भिक रचनायें हैं जब वे बाल्यावस्था एव किशोरावस्था मे कट्टर मूर्ति पूजक थे।

(२) **मध्यकालीन रचनाएं**—इनमे इनकी युवावस्था की रचनायें हैं जब वे अपनी पूर्व परम्परा से पृथक् हो उत्तरदायी दृष्टिकोण अपना रहे थे। इनकी मराठी रचनाये अधिकतर इनकी युवावस्था तक की ही बतलाई जाती हैं।[1]

(३) **उत्तरकालीन रचनाएँ**—ये उस समय की रचनाएँ हैं जब वृद्धावस्था मे ईश्वर का व्यापक रूप देखने लगे थे। इनकी उत्तरकालीन रचनाएँ ही निर्गुण मार्ग की संपोषिका है। इनकी हिन्दी रचनाएँ उत्तरकालीन रचनाओं के ही अन्तर्गत आती है, जो विचारो की परिपक्वता के साथ-साथ पूर्वकालीन रचनाओं से सर्वथा भिन्न हो गई है और पाठको को उन्हे किसी अन्य कवि की रचना समझने के लिये विवश करने लगती है। ये अपने विचारो को समान रूप से मराठी और हिन्दी दोनो भाषाओ मे व्यक्त करने मे समर्थ थे। यथा . —

'गजेन्द्र गणिके ची, गज्रिलो तुवा लाज, उद्धरिला द्विज अजामिला।' (मराठी)
'तारिले गनिका बिन रूप कुबजा, बिआध अजामिलु तारिअले।' (हिन्दी)

जहाँ तक आध्यात्मिक तत्व का सम्बन्ध है इनकी रचनाओ मे 'बारकरी-सम्प्रदाय' का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है कारण इनके जीवन का अधिकाश समय 'बारकरी सम्प्रदाय' के अनुयायियों के साथ ही बीता है। इसीलिये ये एक तरफ जहाँ ईश्वर के सर्वोत्तम स्वरूप, अद्वैत ब्रह्म मे निष्ठा रखते है विट्ठल की सगुण मूर्ति के समक्ष कीर्तन भी करते हैं। एक तरफ जहाँ ये दशरथ नन्दन राजा रामचन्द्र

1. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी (द्वि० सं०) पृ० ११६

को अपना उपास्य मानकर उनको प्रणाम करते हैं[1] वहीं आगे चलकर वे एक सर्व व्यापी निराकार घट-घटवासी भगवान की भाव भक्ति की साधना करने लगते है और 'रामचन्द्र' को एक सामान्य पुरुष मान बैठते है जिनको रावण से शत्रुता होने पर अपनी स्त्री से हाथ धोना पड़ा था।[2] उनके व्यापक राम शत सहस्र मणियो में एक सूत की भाँति सबमें ओत-प्रोत हैं जिस तरह तरंग फेन और बुदाबुदा जल से भिन्न नहीं है उसी प्रकार संसार के नाना रूप भी उसी एक के ही रूप हैं जो सबमें समाया हुआ है। वस्तुतः सब कुछ गोविन्द मय है। (ग्रन्थ साहब राग आशा, पृष्ठ ४२७)। सन्त नामदेव में ऊँच-नीच, धनी-गरीब, स्त्री-पुरुष आदि किसी प्रकार के भेद-भाव का दर्शन नही होता। ये सारी सृष्टि को ईश्वरमय मानते है।

(२) **रामानन्द (जन्म सं० १४०० वि०, मृत्यु सं० १५०५ वि०) अनुमानत** -- उत्तर भारत मे सन्त मत के व्यापक प्रचार मे स्वामी रामानन्द का बड़ा हाथ था। इनके अनेक शिष्यों और प्रशिष्यो अनन्तानन्द, कबीर, सुखा, सुरसुरा, पद्मावती, नरहरि, पीपा, भावानन्द, रैदास, धनासेन तथा सुरसुर के धरहरि मे ये बारह के नाम विशेष उल्लेखनीय है।[3] इनका जन्म प्रयाग मे माघ कृष्ण सप्तमी स० १३५६ और मृत्यु वैशाख शुक्ल ३ स० १४६७ वि० को हुई बताई जाती है।[4] किन्तु ये तिथियाँ असंदिग्ध रूप से सत्य है ऐसा नही कहा जा सकता। इसके विरुद्ध कुछ ऐसे उल्लेख मिलते है जो निश्चित रूप से इन संवतो से मेल नही खाते। इस विषय पर श्री श्रीकृष्ण लाल ने रामानन्द जी का जीवन-चरित्र लिखते समय बहुत ही विस्तारपूर्वक तर्क-वितर्क प्रस्तुत किया है।[5] इन सबके अध्ययन के पश्चात् हम

---

१. दसरथ राय नन्द राजा मेरा रामचन्द्र।
प्रणवे नामा तत्व रस अमृत पीजै ॥—ग्रन्थ साहब रामकली २, पृ० ९७३

२. पाडे तेरा रामचन्द्र सो भी आवत देख्या था।
रावन सेती सरवर होई, घर की जोय गँवाई थी ॥
—ग्रन्थ साहब गौड, पृष्ठ ८७५।

३. अनन्तानन्द कबीर सुखा, सुरसुरा पद्मावत नरहरि।
पीपा भावानन्द रैदास धना सेन, सुर-सुर की धरहरि ॥
—नाभादास का भक्तमाल, छन्द ३७।

४. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी अपनी पुस्तक उत्तरी भारत की सन्त परम्परा में 'अगस्त्य संहिता' के आधार पर स्वामी रामानन्द का जन्म सं० १३४६ वि० ही मानते हैं। दे० पृ० २२५।

५. रामानन्द की हिन्दी रचनायें—सं० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी भू० पृ० ३३-५०

इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि रामानन्द का जन्म सं० १४०० के आस-पास और मृत्यु सं० १५०५ के आस-पास मानने के पक्ष में अधिकांश विद्वान् हैं। यदि यह तिथि ठीक मान ली जाय तो नाभादास के भक्तमाल में उल्लिखित उनके दीर्घायु, होने की बात भी सत्य ठहरती है।[१] सत्य क्या है अभी इस पर शोध की आवश्यकता है।

स्वामी 'रामानन्द' जी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये बाल्यावस्था में जब विद्याध्ययन के लिये काशी भेजे गये तो वहाँ शांकराद्वैत मत के प्रभाव में अपनी शिक्षा समाप्त कर अन्त में विशिष्टाद्वैती स्वामी राघवानन्द के शिष्य हो गये। किन्तु तीर्थाटन से लौटने के पश्चात् अपने कुछ उदारवादी आचरणों के अपनाने के कारण गुरु की अनुमति से इन्हें उक्त मत से पृथक् हो एक स्वतन्त्र मत चलाना पड़ा जो 'रामावत' अथवा 'रामानन्दी सम्प्रदाय' नाम से प्रसिद्ध हुआ। ये काशी में पंच-गंगा घाट पर किसी गुफा के भीतर रहा करते थे और केवल ब्राह्मवेला में कुछ समय के लिये बाहर निकला करते थे।[२] उनके शिष्यों की संख्या ५०० से भी अधिक बताई जाती है।

जैसा कि कुछ लोगों का कथन है स्वामी रामानन्द ने दक्षिण से आकर उत्तर-भारत में भक्ति का प्रचार नहीं किया, बल्कि वे उत्तर भारत में ही पैदा हुये थे वे प्रयाग के 'पुण्यसदन' शर्मा और सुशीला देवी नामक कान्यकुब्ज ब्राह्मण दम्पत्ति की सन्तान थे और काशी के स्वामी राघवानन्द जी के शिष्य थे। जहाँ तक दक्षिण की रामोपासना का सम्बन्ध है उसे स्वामी रामानन्द ने नहीं, बल्कि उनके गुरु स्वामी राघवानन्द ने उसे उत्तर भारत में प्रचारित किया।[३]

रचनायें--पहले स्वामी रामानन्द का एक हिन्दी पद सिक्खों के आदि ग्रन्थ में संग्रहीत मिला,[४] जिसमें उन्होंने अध्यात्म सिद्धि के लिये बाह्य साधनों को व्यर्थ

१ बहुत काल वपु धारि कै प्रणत जनन को पीर दियो।
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों, दुतिय सेतु जग तरण कियो।
—नाभादास का भक्तमाल (छन्द ३७)

२. रामानन्द और उनकी हिन्दी रचनायें—सपादक डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २६।

३. वंदे श्री राघवाचार्य रामानुज कुलोद्भवम्।
याम्यादुत्तरभागत्य, राम मन्त्र प्रचारकम्॥
—हरि भक्ति सिंधुवेला—अनन्त स्वामी

४. रामानन्द और उनकी हिन्दी रचनायें—सं० डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पद सं० ५, पृ० ८।

बताया है और अन्तस्थ ब्रह्म की उपासना पर जोर दिया है। उनके दो पद रज्जब जी ने अपने 'सरवंगी' नामक ग्रन्थ में दिये हैं। डॉ० ग्रियर्सन ने भी एक पद डॉ० श्यामसुन्दर दास के पास भेजा था जिसको उन्होंने अपने लेख 'रामावत सम्प्रदाय' में (नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ४, पृष्ठ ३२७) प्रकाशित कराया था। पुरोहित हरिनारायण के संग्रह मे भी स्वामी रामानन्द के कुछ पद उपलब्ध हुये है। इसके अतिरिक्त जोधपुर दरबार पुस्तकालय से 'ज्ञान लीला' नामक एक छोटी रचना तथा नागरी प्रचारिणी सभा काशी की खोज में 'ज्ञान तिलक' नामक एक छोटी-सी पुस्तक मिली है। स्वामी रामानन्द की रचनाओं मे विशेषकर रामरक्षा, योग चिन्तामणि, ज्ञान तिलक आदि विशेष उल्लेखनीय है। राघवानन्द के शिष्य होने के कारण इनमे निर्गुणोपासना एवं योग-साधना का विशेष प्रभाव पड़ा दिखाई पड़ता है।

स्वामी रामानन्द का महत्व सन्त कवियो में इस दृष्टि से विशेष है कि रामानन्द ने भक्ति का द्वार स्त्री और सभी वर्ग एवं जाति के लिये खोल दिया। इनकी उदार विचारधारा का प्रभाव तुलसी और कबीर दोनो पर पड़ा। सन्त-साहित्य की अधिकाश उदार चेतना रामानन्द के ही कारण है। रामानन्द की यह उदार भावना हिन्दू मुसलमानों को समीप लाने की भूमिका थी। हिन्दी के अधिकांश सन्त जिनकी प्रेरणा के स्रोत स्वामी रामानन्द थे, मुसलमान थे।

(ख) कबीर और उनके समकालीन सन्त

जैसा कि हम पहले ही कह चुके है कि हिन्दी सन्त कवियों की अविच्छिन्न परम्परा कबीर से ही प्रारम्भ होती है। विद्वानो अथवा सामान्य जन-समुदाय में जितनी ख्याति और चर्चा कबीर की हुई उतनी गोस्वामी तुलसी दास के अतिरिक्त किसी अन्य भक्त की नही हुई। उनका प्रभाव उनके समकालीन तथा परवर्ती सन्तो पर बहुत अधिक पड़ा है। यों तो कबीर के समकालीन सन्तो में सेन, रैदास, पीपा, धन्ना और कमाल आदि कई के नाम उल्लेखनीय है किन्तु सामान्य प्रवृत्ति और परस्पर प्रभावो के अवलोकन के लिये हम यहाँ पर कबीर के साथ-साथ केवल 'रैदास' का ही अध्ययन पर्याप्त समझेंगे।

(१) **कबीर (जीवन काल सं० १४५६ वि०-१५७५ वि०)**—कबीर का जन्म सम्भवत. १४५६ वि० के आस-पास हुआ था जिसके सम्बन्ध में कबीर पंथियों की मान्यता अभी तक चली आ रही है और इसी प्रकार इनकी मृत्यु को भी साधारणतः सं० १५७५ वि० में होना बतलाया जाता है।

जहाँ तक कबीर के जन्म-स्थान का प्रश्न है ये अपने को काशी का जुलाहा

मानते हैं ।[1] अतः इन्हें काशी निवासी मान लेने में कोई सन्देह नहीं होना चाहिये किन्तु इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध मे एक निश्चित मत नही है । कबीर पंथ के अनुसार इनका जन्म-स्थान काशी माना गया है । कबीर का यह कथन कि 'पहले दरसन मगहर पायो पुनि काशी बसे आई ।' पाठकों को इनका जन्म-स्थान 'मगहर' मान लेने के लिये संकेत करता है किन्तु 'दरसन पायो' से जन्म लिया अर्थ मान लेना उचित नही जान पडता । इसके अतिरिक्त कबीर पंथियो मे भी प्रचलित है कि वे काशी के निकट वर्तमान लहरतारा में बालक रूप मे पाये गये थे जिससे भी उक्त मत की पुष्टि होती जान पडती है । जहाँ तक उनके वश और जाति के सम्बन्ध में कहा जाता है यह प्रसिद्ध है कि उनके पिता नीरू थे और माता का नाम नीमा था । ये दोनों ही जाति के जुलाहे थे । कबीर पथियो के मतानुसार ये उनके औरस पुत्र न होकर उन्हे लहरतारा मे प्राप्त हुये थे जिनका उन्होने पोष्य पुत्र के रूप में पालन-पोषण किया था । कबीर की पत्नी का नाम लोई और उनके पुत्र का नाम कमाल बताया जाता है । इस प्रकार स्पष्ट है कि उन्होने पारिवारिक जीवन भी व्यतीत किया होगा । इसके अतिरिक्त उनकी वाणियो मे भी इस बात का कुछ सकेत मिलता है कि उन्होने अपनी जीविका के रूप मे करघे को अपनाया था । इस तरह उन्हें अपनी जाति जुलाहे की वृत्ति स्वीकार करते हुये अपना जीवनयापन करना पड़ा था । इनकी मृत्यु मगहर नामक स्थान मे हुई थी जहां पर इस समय भी एक समाधि है । कबीर के सम्बन्ध से भी अन्य सन्तो की भाँति बहुत से चमत्कारो का उल्लेख किया जाता है जिनमें से एकाध की ओर किये गये स्वयं कुछ सकेत इनकी वाणियो में भी दीख पड़ते है ।

अधिकाश विद्वानो के मतानुसार प्रसिद्ध स्वामी रामानन्द कबीर के गुरु थे यद्यपि इसके लिये कोई पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नही है । कभी-कभी इनके गुरु या पीर होने का श्रेय सूफी फकीर शेख तकी को दिया जाता है जो सम्भवतः झूँसी के निवासी थे ।

रचनायें

कबीर के सम्बन्ध मे प्रसिद्ध है कि वे पढे-लिखे नही थे किन्तु उनकी अनेक रचनायें इस समय हमें उपलब्ध होती हैं जिनमें से अधिकांश की प्रामाणिकता संदिग्ध भी समझी जा सकती है ।

कबीर की प्रामाणिक रचनाओं और उनके शुद्ध पाठ का पता लगाना एक

---

१. तू ब्राह्मन मैं काशी क जोलहा, चीन्हि न मोर गियाना ।
कबीर ग्रन्थावली—सं० डॉ० पारसनाथ तिवारी, प्रयाग संस्करण, पद १८८, पृ० १०६ ।

कठिन कार्य है क्योंकि उनकी जितनी भी रचनायें सुनने या देखने को मिलती हैं व गायकों के मुख से ही सुनी गई हैं उनका कोई लेखबद्ध संकलन अप्राप्य है। सैकड़ों पद और पुस्तकें अन्य लोगों ने भी कबीर के नाम से रचकर प्रसिद्ध कर दी है जिसमे कठिनाई और भी बढ गई है। अब तक उनकी रचनाओ के अनेक सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनमे निम्नलिखित मुख्य है :—

(१) **बीजक**—यह कबीर पंथ का धर्म ग्रन्थ है। किसी मूल प्राचीन प्रति के अभाव में इनके संकलन की तिथि का कोई पता नही है। बीजक के कई संस्करण है जिनकी रचनाओ की संख्या और क्रम मे विभिन्नता है। प्राय सर्वप्रथम रमैनी, फिर शब्द और अन्त में साखियों का संकलन हुआ है। सर्वाधिक प्रचलित बीजक मे रमैनी ८४, शब्द ११५, चौतीसी १, साखी ३५३ है।

(२) **ग्रन्थ साहब**—सिक्खो के ग्रन्थ साहब में कबीर के नाम से २२८ पद तथा २३८ साखियाँ संगृहीत है। ग्रन्थ साहब में संगृहीत रचनाओ मे आज तक एक-रूपता सुरक्षित है। इन पदों और साखियो को अलग संगृहीत करके डॉ० रामकुमार वर्मा ने अपनी पुस्तक 'सन्त कबीर' मे सानुवाद प्रकाशित कराया है।

(३) **कबीर ग्रन्थावली**—डॉ० श्यामसुन्दर दास द्वारा सम्पादित यह प्राचीन संग्रह काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सं० १९८५ मे प्रकाशित हुआ जो 'कबीर जी की बानी' नामक हस्तलिखित प्रति के आधार पर तैयार किया गया है। कबीर ग्रन्थावली में ८०८ साखियाँ, फिर ४०३ पद और अन्त में ७ रमैनियाँ हैं। कबीर ग्रन्थावली नाम का ही एक नवीन संग्रह सन् १९६१ मे हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्व-विद्यालय द्वारा प्रकाशित हुआ है जिसे डॉ० पारसनाथ तिवारी ने बड़े ही वैज्ञानिक विधि से सम्पादित करने का प्रयास किया है। इस संग्रह में अब तक प्राप्त कबीर सम्बन्धी सभी प्रकाशित एवं अप्रकाशित संग्रहों का उपयोग किया गया है। इस संग्रह में २०० पद, २० रमैनी, १ चौतीसी रमैनी, ७४४ साखियाँ संकलित है किन्तु दोनों कबीर ग्रन्थावली की रचनाओ के पाठादि में पर्याप्त भिन्नता है। कबीर ग्रन्था-वली के ही नाम से एक तीसरा संस्करण भी डॉ० माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित होकर सानुवाद आगरा से प्रकाशित हुआ है किन्तु यह काशी वाले संस्करण के अनेक विकृत पाठकों को ही सुधार कर प्रस्तुत किया गया है।

(४) **अन्य संग्रह**---उपरोक्त संग्रहों के अतिरिक्त 'बेलवेडियर प्रेस प्रयाग' से प्रकाशित शब्दावली और साखी संग्रह 'साधु युगलानन्द' की सत्य कबीर की साखी, 'विचारदास' का साखी संग्रह तथा 'हनुमान दास' जी का 'साखी ग्रन्थ' आदि विशेष महत्वपूर्ण है किन्तु इनमें से किसी का आधार कोई प्राचीन प्रति नहीं है। कबीर साहब की रचनाओं से सम्बन्धित उपलब्ध प्राचीन सामग्रियों का विश्लेषण

डॉ० पारसनाथ तिवारी ने अपनी पुस्तक 'कबीर ग्रन्थावली' की भूमिका में बड़े ही विस्तार से किया है।[1] अन्य संग्रहों में वह संग्रह भी विशेष उल्लेखनीय कहा जा सकता है जिसके पदो के मौखिक प्रचलित रूपो को आचार्य क्षिति मोहन सेन ने प्रकाशित किया था तथा जिनमें से १०० पदों का अंग्रेजी अनुवाद डॉ० रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने 'वन हन्ड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर' नाम से प्रकाशित कराया है। आचार्य सेन द्वारा संगृहीत उक्त पदो को डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने 'कबीर' नामक पुस्तक मे भी प्रकाशित कर दिया है।

(२) रैदास (सं० १४७१ वि०-१५०७ वि० अनुमानतः)—कबीर के समकालीन सन्तो मे रैदास का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इनके जन्म और मृत्यु-काल के सम्बन्ध मे अभी तक कुछ भी अन्तिम रूप से नही कहा जा सकता। 'श्री रामचरण कुरील' के मतानुसार इनकी जन्मतिथि माघी पूर्णिमा रविवार सं० १४७१ तथा मृत्यु तिथि चैत वदी चतुर्दशी सं० १५०७ है। किन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता।[2] अन्त.साक्ष्य के आधार पर ये जाति के चमार थे।[3] जूते बनाने का काम किया करते थे। इनका स्वभाव अत्यन्त ही नम्र एवं उदार था। कबीर की ही भाँति इन्हे भी रामानन्द के प्रमुख शिष्यो मे स्थान दिया गया मिलता है। परन्तु इसकी कोई स्पष्ट चर्चा इनकी उपलब्ध रचनाओ में की गई नही पाई जाती। ये भी कबीर की भाँति पढे-लिखे नही जान पडते किन्तु इनकी बहुत-सी रचनाएँ मिलती है, जिनसे इनकी विचारधारा एवं गम्भीर साधना का हमे बहुत कुछ पता चलता है। अन्य सन्तो की भाँति सन्त रैदास के सम्बन्ध मे भी अनेक चमत्कारो की चर्चा की जाती है।

सन्त कबीर की विचारधारा निर्गुण सन्तमत का पूर्णत अनुसरण करती है। यहाँ तक कि यह कहा जाय कि वही उक्त मत की आदर्श भाव-धारा भी है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

रचनायें

सन्त रैदास की जितनी भी रचनाएं उपलब्ध है उसके आधार पर यह सहज

---

१ कबीर ग्रन्थावली–सं० पारसनाथ तिवारी —हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्व विद्यालय सस्करण भूमिका, पृष्ठ १-५५

२. उत्तर भारत की सन्त परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—पृष्ठ २४३ (द्वि० सं०)

३. कहु रैदास खलास चमारा। जो उस सहर सो मीत हमारा॥
रैदास जी की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, पद सं० ३१

निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये अत्यन्त ही विनम्र, आडम्बरहीन, समन्वित तथा सन्तुलित विचार वाले सच्चे सन्त थे। इनकी बानियों का एक संग्रह बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से निकलता है जिसमें कुल ६ साखियाँ और ८१ पद संगृहीत हैं। गुरू ग्रन्थ साहब में भी लगभग ३० पद रैदास जी के नाम से लिखे मिलते है। शोध होने पर इससे भी अधिक उनकी बानियों के मिलने की सम्भावना है। कहा जाता है कि इनकी बहुत-सी रचनाएँ हस्तलिखित रूप में राजस्थान की ओर पड़ी हुई हैं। सन्त रैदास की एक रचना 'प्रह्लाद लीला' नाम से प्रसिद्ध है किन्तु अभी तक अप्रकाशित रूप में ही है।[1] गुरू ग्रन्थ साहब और बेलवेडियर प्रेस की प्रति मे अनेक पद एक से मिलते है किन्तु सावधानी से विचार करने पर कई रचनाओ मे बहुत कुछ अन्तर दिखाई पड़ने लगता है। सम्भव है लिपिकर्त्ता की भूल के कारण ऐसा हुआ हो। प्राचीनता की दृष्टि से ग्रन्थ साहब की रचनाओ को ही प्रामाणिक मानना उपयुक्त होगा। रैदास के कुछ पदो में फारसी भाषा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है[2] जो उनके बहुश्रुत होने के परिणामस्वरूप हुआ प्रतीत होता है। कुछ दिन हुये पंजाब से इनकी रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है जिसमें संग्रहीत रचनाओं के पाठादि को भरसक शुद्ध और सुव्यवस्थित रूप देने की चेष्टा की गई है। किन्तु उनकी प्रामाणिकता के विषय मे भी अन्तिम रूप से कुछ नही कहा जा सकता।

रैदास की विचारधारा सन्तमत की परम्परा के बिलकुल अनुरूप है। वे सत्यपूर्ण ज्ञान में विश्वास रखते हैं। भक्ति के लिये वैराग्य को अनिवार्य मानते हैं। परम-तत्व को सत्य एवं निर्वचनीय कहते है।[3] विवेचकों ने सन्त रैदास की साधना में 'अष्टांग योग' आदि की खोज की है जिसके अनुसार—(१) गृह, (२) सेवा, (३) सन्त के वाह्य अंग हैं, (४) नाम, (५) ध्यान, (६) प्रणति भीतरी अंग है तथा (७) प्रेम, (८) विलय अथवा समाधि अन्तिम स्थिति है।[4]

भक्तमाल के रचयिता नाभादास के अनुसार इन्होंने भगवत्-कृपा से अपनी

---

१. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—पृष्ठ २४४ (द्वि० सं०)

२. रैदास जी की बानी—बेलविडियर प्रेस, प्रयाग, छन्द ३० व ६० देखें।

३. अखिल खिलै नहिं का कहि पण्डित कोइ न कहै समुझाई।
अबरन बरन रूप नहिं जाके कंह लौ लाइ समाई ॥

—वही, छन्द ११

४. विश्व-भारती पत्रिका—कार्तिक पौष सं० २००२ पृष्ठ २१५ उ० भा० सन्त-परम्परा के पृष्ठ २४७ की पाद टिप्पणी के आधार पर।

पन्थ' नाम से विख्यात हुआ। 'सांभर' में ६ वर्ष रहने के पश्चात् ये 'आमेर' चले आये। यहाँ ये १४ वर्ष तक रहे। सं० १६४३ (सन् १५८६ ई०) में ये मुगल सम्राट अकबर से भी ४० दिनों तक सत्सङ्ग किये जिसमें बादशाह अकबर काफी प्रभावित हुआ। 'साभर' और 'आमेर' में रहकर आपने बहुत-सी रचनाएँ की। ५८ वर्ष की अवस्था में इनकी मृत्यु साभर के निकट नराणे की एक गुफा में जेठ वदी ८ सं० १६६० को हो गई। जहाँ उनके बाल, तूंबा, चोला और खड़ाऊँ अभी तक सुरक्षित हैं।

सन्त दादू स्वभाव के इतने कोमल थे कि लोग उनके नाम के साथ 'दयाल' विशेषण भी जोड़ दिये। सन्त दादू के गुरू का नाम 'वृद्धानन्द' अथवा बुड्ढन था। सम्भव है जैसा कि डॉ० डब्ल्यू० जी० आर० का मत है। यह बुड्ढन अकबर के समकालीन कादरिया शाखा के सूफी सन्त ही हो।[1] कुछ लोग बुड्ढन को कबीर की शिष्यपरम्परा में मानते हैं। जो भी हो इस विषय में अन्तिम निर्णय देना कठिन है। इनके शिष्यों की संख्या ५२ बतलाई जाती है, जिनमें रज्जब जी, सुन्दरदास जी आदि सन्तों के नाम इनकी शिष्य-परम्परा में विशेष उल्लेखनीय हैं।

रचनाएँ

सन्त दादू दयाल की रचनाओं के दो संग्रह उनके शिष्यों द्वारा प्रस्तुत किये गये थे :—

(१) हरडे वाणी—सन्तदास तथा जगन्नाथ दास द्वारा संकलित (बिना वर्गीकरण के)

(२) अग बधू—सन्त रज्जब जी द्वारा सकलित ३७ भिन्न अङ्गो (प्रकरणों) में विभक्त।

उक्त संकलनों के आधार पर अब तक नागरी प्रचारिणी सभा काशी, जयपुर, अजमेर, बेलविडियर प्रेस प्रयाग से पाँच संकलन प्रकाशित हुये हैं जिनमें सबसे अधिक प्रामाणिक संग्रह पं० चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी का कहा जा सकता है इसमें ३७ अङ्गों के अन्तर्गत २६५२ साखियाँ तथा २७ रागों के अन्तर्गत ४४५ पद संगृहीत हैं।

दादू पंथ—यद्यपि स्वयं संत दादू दयाल तथा उनके जीवन-काल में उनके शिष्य अपने को किसी वर्ग-विशेष का सदस्य नहीं मानते थे किन्तु उनके देहान्त के पश्चात् स्थिति वैसी नहीं रह गई। उनके शिष्य उनके अभाव में उनकी बानियों' को विशेष

---

१. डॉ० डब्ल्यू० जी० आर०, ए सिक्सटीन्थ सेंचुरी इण्डियन मिस्टिक लंदन १९४७, पृ० ५४

श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे और ऐसा करते करते वे एक विशिष्ट पंथ के अनुयायी बन गये जो दादू पंथ के नाम से प्रख्यात हो गया। धीरे-धीरे उनके शिष्यों में पारस्परिक मतभेद के कारण दादू पंथ का स्वरूप विकृत हो गया और उसमें खालसा, विरक्त, तपस्वी, स्थानधारी, खाकी और नागा नाम के पाँच उप-सम्प्रदाय बन गये। इस तरह संत रज्जब जी और सुन्दर दास जी के समय तक ही इस पंथ का वास्तविक रूप किसी तरह स्थिर रह पाया था।

संत दादू और कबीर—दादू की वाणी संत कबीर की वाणी की टक्कर की मानी जाती है। संत दादू ने भी कबीर की ही भांति अपने उपास्य परम तत्व को अलख, अनादि, गुणातीत, अप्रमेय, पूर्ण निश्चल, एक रस निरंजन और निराकार माना है। उनकी साधना में भी वैष्णवों की अहिंसा, योगियों की चित्त-वृत्ति निरोध, सूफियों की प्रेम-साधना और पूर्ववर्ती संतों के शब्द योग का समन्वित उत्कर्ष देखा जा सकता है। दादू और कबीर दोनों संत की परिभाषा एक सी करते हैं।[1] फिर भी कबीर और दादू मे काफी अन्तर है जो उनके युग-जीवन के अन्तर से स्पष्ट हो जायेगा। कबीर का युग जहाँ राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संघर्ष का युग है, मानवीय मूल्यों के संक्रमण का युग है दादू का युग दो महान् संस्कृतियो के क्रमशः संघर्ष को लांघकर समन्वयोन्मुख होने का युग है। इसीलिये कबीर जहाँ उग्र, प्रचंड, उद्धत, तीखे, निर्मम तथा बेलौस है। दादू सहज, सरल, विनम्र, निर्वैर, दयालु तथा सर्वभूत हित रत है। दादू वह नवनीत है जो इस्लामी संस्कृति के कठोर मदराचल द्वारा मथित होकर भारतीय संस्कृति के महान् सागर की अतल गहराई से सहज ही ऊपर उठ आया है। दादू की वाणी का एक-एक शब्द पाठक के हृदय पर सीधे चोट करता है। इसमें सन्देह नही कि हिन्दी साहित्य के निर्गुण भक्ति सम्प्रदाय मे कबीर के बाद दादू का स्थान सभी दृष्टियो से अन्यतम है।[2]

---

१. निरबेरी निहकांमता, सांई सेती नेह। विषिया सूं न्यारा रहे, संतनि का अङ्ग एह॥ —कबीर ग्रथावली अंग २६, साखी १, पृष्ठ ३६
आपा मेटे हरि भजै, तन मन मजै विकार निरबेरी सब जीव सौं, दादू का मत सार॥
— दादू दयाल—नागरी प्रचारणी सभा–दयानुवैरता को अंग २६, पृ० २७० साखी १

२. हिन्दी साहित्य कोश भाग २, ज्ञान-मण्डल वाराणसी—रामचन्द्र तिवारी, पृ० २३३।

रज्जब जी (जीवन-काल सं० १६२४-१७४६ वि०)—रज्जब जी (रज्जब अली खाँ) का जन्म सांगानेर में सं० १६२४ में एक पठान कुल में हुआ था। इनके पिता जयपुर राज्य में एक प्रतिष्ठित पद पर नियुक्त थे। कुल की मर्यादा तथा पिता के पद के अनुरूप ही इनके पढ़ने-लिखने तथा सैनिक शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। बचपन से ही इनका झुकाव धर्म और सत्संग की ओर विशेष रूप से था। बीस वर्ष की अवस्था में जब सं० १६४४ में ये विवाह के लिये दूल्हा बन कर बारात लेकर 'आमेर' की ओर जा रहे थे तो रास्ते में 'संत दादू दयाल जी' अपने शिष्यों के साथ बैठे मिल गये। रज्जब जी घोड़े से उतर कर 'संत दादू दयाल' के दर्शनार्थ उनके सम्मुख जा उपस्थित हुये। उस समय संत दादू ध्यान-मग्न थे। ध्यान टूटने पर उन्होने रज्जब जी से निम्नलिखित दोहा कहा :—

'कीया था कुछ काज की, सेवा सुमिरण साज।
दादू भूल्या बन्दगी, सर्या न एको काज॥'

दोहे को सुनकर रज्जब जी के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे दूल्हे के सभी वस्त्र उतार दिये। दादू दयाल जी ने रज्जब जी को अपना शिष्य बना लिया। गुरू की आज्ञा से वे आजीवन दूल्हे के वेश में ही रहे। गुरू के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी रचनाओं में बराबर किया है। वे बराबर गुरू सेवा में ही लीन रहते थे। उनका वियोग उन्हें एक क्षण के लिये भी असह्य था। अतः वे बराबर अपने गुरू संत दादू की मृत्यु (सं० १६६० वि०) तक उनके साथ रहे। उनकी मृत्यु पर इन्हें महान् कष्ट हुआ। गुरू के वियोग में उन्होंने लिखा :—

'दीन दयाल दयो दुख दीननि दादू सी दौलत हाथ सों लीन्हीं।
रोस अतीतनि सौज कियो हरि रोजी जो रंकन की जग छीनी॥'[1]

रज्जब जी शरीर से स्वस्थ सुन्दर तथा स्वभाव, में बड़े ही मृदु एवं निरभिमान थे। इनके सम्पर्क में आने वाले सभी लोग इनकी योग्यता एवं प्रतिभा से प्रभावित हो जाते थे। दादू दयाल के जीवन-काल में ही इनकी इतनी प्रसिद्धि हो गई कि अनेक व्यक्ति इनके शिष्य बन गये। ये दोनों के प्रति काफी उदार रहे। सं० १७४६ वि० में १२२ वर्ष की आयु में इनकी मृत्यु हुई। सागानेर में इनकी प्रधान गद्दी है। जहाँ इनके स्मारक रूप में बहुत सी वस्तुएँ रखी हुई हैं।

रचनाएँ

उच्चकोटि के संत होने के साथ-साथ रज्जब जी एक प्रतिभाशाली संत

---

१. रज्जब बानी—सवैया भाग निरपषि निज का अंग २१, पृष्ठ ४३४

कवि भी थे इन्होंने स्वयं रचना करने के साथ-साथ अन्य संतों की बानियों का भी अध्ययन और संकलन किया। इनकी तीन कृत्तियाँ विशेष प्रसिद्ध है—(१) अंगबधू, (२) सब्बंगी, (३) वाणी। इनमें इनकी निजी रचनाओं के साथ-साथ अनेक संतों की चुनी हुई रचनाएँ भी हैं। 'अंगबधू' नामक रचना में इनके गुरू 'दादू दयाल' की कृतियों का संकलन है। 'सब्बंगी' में दादू दयाल की रचनाओं के अतिरिक्त 'नामदेव', 'कबीर', 'रैदास', 'पीपा', और 'नानक' आदि संतों की बानियों का संकलन है। इन्होंने साखी, पद, सवैया, अरिल्ल, छप्पय आदि विविध छंदों का प्रयोग किया है।

साधना और विचारो की दृष्टि से ये अपने गुरू संत दादू के पक्के अनुयायी थे। इन्होने अपनी उक्तियो मे दृष्टान्तो का विशेष रूप से प्रयोग किया है। 'सब्बंगी' में इन्होने ही अपने पंथ से बाहर के संत कवियो की रचनाओं का संकलन करके सर्व प्रथम एक उदार आदर्श प्रस्तुत किया जिसका अनुकरण सिक्ख सम्प्रदाय और निरंजनी सम्प्रदाय ने आगे चलकर किया और जिसके परिणाम-स्वरूप हमे आज सन्तों के साहित्यिक अध्ययन के लिये प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है।

'रज्जब जी की वाणियो का प्रकाशन' 'रज्जब वाणी' नाम से डॉ० ब्रजलाल वर्मा के सम्पादन मे उसका प्रकाशन कानपुर से हो चुका है। इनमे इनकी प्रायः सभी रचनाएँ आ गई हैं। रज्जब जी ने कबीर और अपने गुरु दादू की विचार-परम्परा में ही वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद, कुरान कलाम, आयत मे प्रतिपादित धार्मिक जटिलता को उसे शास्त्रीय परम्परा से बिना च्युत किये ही सहज और सर्व सुलभ बना दिया है। पूर्ववर्ती संतो की भाति ये भी निराकार, निर्विकार, निखिल ब्रह्मांड मे व्याप्त एक ब्रह्म की उपासना पर जोर देते है जो हमारे प्राचीन उपनिषद् साहित्य की देन है। रज्जब जी की भक्ति के अंगो को हम ६ श्रेणियो मे विभक्त कर सकते हैं :—

(१) सद्गुरु और सबद।
(२) सेवा मे सत्संग।
(३) प्रेम और विरह।
(४) नाम जप और ध्यान।
(५) ज्ञान और वैराग्य।
(६) समर्पण और अनन्यता।

संक्षेप मे दादू सम्प्रदाय के अन्तर्गत महात्मा रज्जब एक ऐसे साधक हैं जिन्होंने अपने तपःपूत आचार एवं पवित्र 'बानी' द्वारा समस्त संत साधना को

धन्य कर दिया। वे साधना व्योम के उन नक्षत्रों मे हैं जो दीर्घ कालावधि पर्यन्त अप्रकट रहकर भी घोर अविद्यान्धकार में भूले पथिकों को दिशा प्रदान करते है।[1]

सुन्दर दास (जीवन-काल सं० १६५३ वि०—सं० १७४६ वि०)—सुन्दर-दास जी दादू दयाल के सबसे पिछले और अल्प वयस्क योग्य शिष्य थे। ये बूसर गोत के खंडेलवाल वैश्य थे। इनका जन्म जयपुर राज्य के 'धोसा' नगर में चैत्र शुक्ल ६ सं० १६५३ को हुआ था। इनके पिता का नाम 'परमानंद' और माता का नाम 'सती' था। इनके जन्म के सम्बन्ध में कहा जाता है कि संत दादू के 'आमेर' आवास काल के समय उनका 'जग्गा' नामक शिष्य रोटी और सूत मांगता हुआ शहर मे घूम रहा था और 'दे माई सूत ले माई पूत' कह रहा था। लड़की सती ने जो घर में सूत कात रही थी, लाकर 'सूत' जग्गा को दे दिया और 'जग्गा' ने बदले मे 'हो माई तेर पूत' कह दिया। जब 'जग्गा' लौटा तो संत दादू ने कहा कि आज तुम ठगा गये जिसके भाग्य मे सन्तान है ही नहीं तुम उसको पुत्र होने का वचन दे आये। अब वचन को सत्य करने के लिये तुम्ही जाओ। कहा जाता है 'सती' के विवाहो-परान्त यही 'जग्गा' सुन्दर दास के रूप में पैदा हुआ।[2] ६ वर्ष की अवस्था में जब सं० १६५६ में संत दादू धोसा पहुँचे तो उन्होने 'सुन्दर दास' को अपना शिष्य बना लिया। दादू दयाल के शिष्यो में 'सुन्दर दास' नामक दो शिष्य हुये थे। ये छोटे 'सुन्दर दास' नाम से प्रसिद्ध हुये। सन्त रज्जब जी तथा जगजीवन जी जैसे गुरु भाइयो की कृपा से इन्होंने सन्त दादू दयाल की 'बानियों' का अध्ययन किया। वे इन्हें होनहार और प्रतिभावान् समझ कर इन्हें विशेष विद्याध्ययन के लिये काशी ले गये जहाँ उन्होने सं० १६६३ से १६८२ तक रह कर शास्त्रो का विशेष कर दर्शन और साहित्य का अध्ययन किया। काशी मे ये अस्सी घाट पर रहते थे।[3]

काशी मे विद्याध्ययन के पश्चात् ये फतेहपुर मे आकर एक गुफा में १२ वर्ष तक योगाभ्यास करते रहे। फिर पूरब, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण चारो तरफ दिल्ली, पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, गुजरात, मालवा, मध्य प्रदेश का भ्रमण

---

१. रज्जब बानी—सं० डॉ० ब्रज लाल वर्मा—महात्मा रज्जब का परिचय, पृष्ठ ६।

२. सुन्दरसार—सं० पुरोहित हरिनारायण बी० ए० संक्षिप्त जीवनी, पृ० ११, १२ के आधार पर

३. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास—सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १६६ खण्ड ४

करके अपने प्रिय स्थान 'कुरसाने' में आकर रहने लगे ।[1] देश भ्रमण-काल में इन्होंने कितने ही सन्त, महात्माओं तथा कवियो एवं विद्वानों से भेंट की जिसका प्रभाव इनके व्यक्तित्व पर पड़ा ।

सं० १७४६ विक्रमी में जब ये रज्जब जी से मिलने 'सागानेर' गये तो वहीं बीमार पड़ गये और वहीं ६३ वर्ष की अवस्था मे[2] कार्तिक सुदी ८ सं० १७४६ वि० को परम-पद प्राप्त किये ।[3]

रचनाएँ

सुन्दर दास ने सब मिलाकर कुल ४२ ग्रंथ रचे जो दो भागों में 'सुन्दर-ग्रंथावली' के रूप में पुरोहित हरिनारायण शर्मा द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हो चुके है । इनकी रचनाओ में 'ज्ञान समुद्र' और 'सुन्दर विलास' दो प्रमुख ग्रन्थ है । 'सुन्दर विलास' मे कवित्त और सवैये है । इनकी रचनाएँ एक शिक्षित कवि की भाति प्रौढ़ हैं । इनके 'ज्ञान समुद्र' का रचना-काल भादों सु० ११ गुरुवार स १७१० है ।[4] इस ग्रंथ मे गुरू शिष्य सवाद के रूप में साधना पद्धति का विश्लेषण किया गया है । 'ज्ञान समुद्र' में सन्त साधना पद्धति का बड़ा ही व्यवस्थित वर्णन है । इसमें सन्तो की वाणियो मे उल्लिखित हठयोग एवं दर्शन सम्बन्धी अनेक गुत्थियों का हल एक ही साथ मिल जाता है ।

---

१. पूरब पच्छिम, उत्तर दच्छिन, देश विदेश फिरे सब जाने ।
केतक घौस फतेपुर माहि, सुकेतन घौस रहे डिडवाने ।।
केतक घौस रहे गुजरात, उहा हूँ कछू नहि आन्यौ है ठाने ।
सोच विचारी के सुन्दर दास जु याहितै आन रहे कुरसाने ।।
—सुन्दरसार–सं० हरिनारायण पुरोहित, पृष्ठ १७ भूमिका

२. सात वरष सौ में घटैं, इतने दिन की देह ।
सुन्दर आतम अमर है, देह षेह की देह ।।
—वही; पृष्ठ १६

३. सवत् सत्रा सै छीआला । कातिक सुदी अष्टमी उजाला ।
तीजे पहर भरसपतिवार । सुन्दर मिलिया सुन्दर सार ।।
—वही; पृष्ठ २०

४. संवत् सत्रह सै गये, वर्ष दसोत्तर और ।
भाद्रव सुदि एकादशी, गुरूवासर शिरमौर ।।
ता दिन सम्पूरण भयो, ज्ञान समुद्र सु ग्रंथ ।
सुन्दर भव गहन करै, लहै मुक्ति को पंथ ।।
—सुन्दर सार–सं० हरिनारायण पुरोहित; पृष्ठ ४७

दादू रज्जब और सुन्दरदास की बानियां—दादू रज्जब और सुन्दरदास की बानियो का यदि तुलनात्मक विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि दादूदयाल की बानी जहाँ सहज, सरस तथा अयत्नज है उसमे किसी प्रकार की काव्यगत चेष्टा का अभाव है वहीं रज्जब बानी मे हृदय की भाव-विभूति के साथ-साथ कविता का प्रयत्न साध्य गौरव भी दिखाई पडता है, रचना करते समय रज्जब जी के अध्यात्मनिष्ठ सन्त के साथ ही उनका कवि हृदय भी जागृत और सचेष्ट है। उनके आध्यात्मिक विचारों में साहित्यिक अभिव्यंजना का पुट स्पष्ट परिलक्षित होता है। 'सुन्दर दास' की बानी मे भाव-ज्ञान तथा अध्यात्म तीनो का योग है। वे महात्मा, वेदान्ती और कवि तीनो है इसे स्पष्ट करने के लिये हम तीनों महात्माओं की एक-एक साखी एक ही विषय पर प्रस्तुत करते हैं:—

दादू : दादू सतगुरू सहज मे कीया कुछ उपकार।
निर्धन धनवंत कर लिया, गुरू मिलिया दातार॥

(सहजता)

रज्जब : तन मन सक्ति समन्दगति, निर्मल नांव जहाज।
बाद बान, बुधिथम्भ चढ़ि, गुरु सारे सब काज॥

(अभिव्यजना की साहित्यिकता)

सुन्दरदास : सुन्दर समुझे एक है अन समझे को ईति।
उभय रहित सतगुरु कहै, सो है वचनातीति॥

(अभिव्यक्ति की दार्शनिकता)

सन्त सुन्दर दास जी वेदान्त साख्य तथा साहित्यिक प्रवीणता में रज्जब जी से किसी प्रकार कम नही है उनसे बढ़कर ही हैं किन्तु रज्जब जी उक्तियो मे सूफियों का मस्तानापन है वे सन्त दादू दयाल के अधिक अनुरूप कही जा सकती हैं। इस तरह रज्जब जी और सुन्दर दास जी दोनो ही वास्तव मे दादू शिष्यो में सर्वश्रेष्ठ समझे जाने योग्य है।[1]

(३) निरंजनी सम्प्रदाय

'निरंजन पंथ' का उल्लेख सर्वप्रथम डॉ० बडथ्वाल ने ओरियंटल कान्फरेंस के अवसर पर दिये गये भाषण मे किया है।[2] कबीर पंथियो के अनुसार निरंजन ब्रह्म उस परमात्म निरंजन से निम्न श्रेणी का है। कबीर पंथियो का कथन है:—

१. सुन्दर ग्रन्थावली—प्रथम खड सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, जीवन-चरित्र, पृ० ५६-६०

२. सन्त तुलसी दास निरंजनी—डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ७

अछय पुरुष एक पेड़ है, निरंजन बाकी डार।
तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार॥

उत्पत्ति के सम्बन्ध मे कबीर पंथियों का विश्वास है कि सर्वप्रथम संसार में आत्मा की सत्ता थी। उसकी सृष्टि इच्छा के परिणामस्वरूप पाँच ब्रह्मा उत्पन्न हुये किन्तु वे सृष्टि उत्पत्ति का कार्य-सम्पादन न कर सके। अक्षर नामक ब्रह्मा ने निद्रा से उठकर देखा तो उन्हें एक अन्डा मिला जिसके फूटने पर 'निरन्जन' का प्रादुर्भाव हुआ। यह 'निरन्जन' भी जब सृष्टि रचना मे असमर्थ रहा तो समर्थ आत्मा ने 'माया' रूपी एक 'स्त्री' की सृष्टि की जिससे ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन पुत्र पैदा हुये। तत्पश्चात् निरजन अन्तर्धान हो गये। मायावाद में अपने पुत्र ब्रह्मा पर आसक्त हो गई और सृष्टि का क्रम चला। इस कथा से स्पष्ट है कि 'निरंजन' पूर्ण ब्रह्म न होकर उसका एक अंश-मात्र है। किन्तु 'निरंजन पंथ' मे 'निरंजन' पूर्ण ब्रह्म और समर्थ आत्मा के लिए ही आया है। निरंजनी सन्त निरंजन को सर्वोपरि समझ कर अन्य देवताओं को उससे नीचे समझते है और उनकी उपासना अनावश्यक समझते है। कबीर स्वयं निरंजन पंथ से प्रभावित है किन्तु कबीर के बाद निरंजन पंथ पर कबीर के सिद्धान्तों पर प्रभाव विशेष रूप से पड़ा और उसकी उपासना पद्धति निर्गुण पंथ की भाँति हो गई। निर्गुणियों की भाँति निरंजनी भी राम-नाम की उपासना का उपदेश देते है। उनके 'राम' भी कबीर के निर्गुण राम' ही है। निरंजनी, संसार की वस्तुओं को माया मानकर परमात्मा से लगन लगाने का उपदेश देते है। इस तरह निरंजन पंथ निर्गुण धारा की एक उपधारा है जिसके १२ महन्तों का वर्णन दादू पंथी सन्त राघवदास ने अपने भक्तमाल में (र० का० सं० १७७० वि०) मे किया है जो निम्नलिखित है :—

(१) हरिदास, (२) तुरसीदास, (३) खेमजी, (४) कान्हड़ दास, (५) मोहन दास, (६) जगन्नाथ दास, (७) ध्यान दास, (८) नाथ, (९) श्याम दास, (१०) पूरण, (११) आनदास, (१२) जगजीवन दास।[1]

उक्त सभी सन्त राजस्थानी है। हम अपने आलोच्य विषय की परिधि के

---

१. लपट्यो सु जगन्नाथ, श्याम कन्हड़ अनुरागी।
ध्यानदास अरु षेम, नाम जगजीवन त्यागी॥
तुरसी पायो तत्व, आन सो भयो उदासा।
पूरण मोहनदास, जान हरिदास निरासा॥
राघो समर्थ राम भजि माया अंजन भंजनी।
—राघवदास कृत भक्तमाल, छन्द १४३

भीतर केवल हरिदास तथा तुरसी दास दो निरंजनी सन्तों का ही अध्ययन प्रस्तुत करेंगे।

हरिदास निरंजनी (जीवन काल सं० १५१२ वि०-१६०० वि०)—हरिराम जी द्वारा लिखित हरिदास जी की परचई के अनुसार इनका जन्म सं० १५१२ वि० मे हुआ था।[1] ये डीडवाना के पश्चिमोत्तर नागौर जिले के कापडोद' ग्राम के निवासी थे। इनके बचपन का नाम 'हरिसिंह जी' है। ये 'शाखल राजपूत' जाति के थे। प्यारे रामजी ने अपने भक्तमाल मे किसी 'चौधरण' के थन चूंगने का उल्लेख किया है।[2] सम्भव है माता के पर्याप्त दूध न होने पर चौधरण (जाटनी) को धाय के रूप मे रखा गया हो। इनके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि इनका प्रारम्भिक जीवन किसी लुटेरे के जैसा था किन्तु किसी महात्मा के द्वारा प्रभावित होकर उन्होंने अपने हथियारों को कुए मे डाल दिया और 'तीखी डुगरी' में पहुँच कर ईश्वर-चिन्तन मे लीन रहने लगे तथा अन्त मे उन्होंने सिद्धि भी प्राप्त कर ली।[3] बाद में इन्होंने नागौर, अजमेर, टोडा, जयपुर तथा शेरवाबाटी आदि कई स्थानों का भ्रमण किया। परचई के अनुसार इनका महाप्रस्थान काल फाल्गुन सुदी ६ सं० १६०० वि० माना गया है।[4] स्वामी हरिदास गोरखनाथ और सन्त कबीर से विशेष प्रभावित है।

---

१. पन्द्रह सौ बारोत्तरे फागुन सुदि छठ सार।
वैराग्य ज्ञान भगति कूं लीयो हरि औतार॥
—सूर पूर्व ब्रज-भाषा—डॉ० शिव प्रसाद सिंह सन् १९५८-पृष्ठ १६६ पर उद्धृत।

२. कापडोद गाँव माँहि, हरिदास अवतरे।
महिमा कौन बार पार, कहाँ लग गाइये॥
शांखला के कुल माँहि, आप जो अवतार लिया।
चौधरण चुगाये, थना, वंस जो कहाइये॥
—श्री महाराज हरिदास जी की वाणी—भूमिका पृष्ठ चार से उद्धृत प्यारे रामजी के भक्तमाल का उद्धरण।

३. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ ३४५ द्वि० सं०।

४. सम्वत् सौलै जु सई का। रुति बसन्त अनन्द लई का।
फागुन सुदि अष्टमी जामा। जन हरिदास हरिमाह समाना॥
—हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, खण्ड ४, स० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २१६ से उद्धृत।

मारवाड़ में इनके कई मठ और गद्दियाँ हैं। डीडवाणा में इनका प्रमुख मठ है। जहाँ प्रतिवर्ष मेला लगता है।

रचनायें

स्वामी हरिदास के नाम पर कई एक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। जिनमें से निम्न-लिखित विशेष उल्लेखनीय है :—

(१) अष्टपदी योग ग्रन्थ, (२) ब्रह्म स्तुति, (३) हरिदास ग्रन्थमाला, (४) हंस प्रबोध ग्रन्थ, (५) निरपरवमूल ग्रन्थ, (६) राज गुड (७) पूजा जोग ग्रन्थ, (८) समाधि जोग ग्रन्थ (९) संग्राम जोग ग्रन्थ।

इसके अतिरिक्त डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल को साखी और पदों के दो और ग्रन्थ भी प्राप्त हुये है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार 'श्री हरि-पुरुष की वाणी' में ये सभी रचनाएँ संगृहीत है। इस तरह स्वामी हरिदास जी उपासना की अपनी विशेष-शैली के कारण सर्वप्रथम 'निरंजनी' बतलाने का गौरव प्राप्त करते हैं। इनकी शिष्य परम्परा में ५२ शिष्यों का उल्लेख मिलता है।[१] ऊपर जहाँ हमने निरंजनी सम्प्रदाय के १२ महन्तों का उल्लेख किया है वहाँ शेष तुरसी आदि निरंजनी सन्त भी स्वामी हरिदास जी के प्रति गुरुभाव रखते थे।

संत तुरसी दास निरंजनी--जीवन-काल स० सत्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध एव १८वीं शती का पूर्वार्द्ध—निरंजनी पन्थ के सन्तों मे 'सेवादास' को छोड़कर सन्त तुरसी दास की ही रचना बहुत अधिक है। तुरसी दास का निवास-स्थान शेरपुर था। डॉ० बड़थ्वाल के मतानुसार ये गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में 'तुलसीदास की वाणी' नामक हस्तलिपि प्रति का उल्लेख हुआ है जिसमें 'इतिहास समुच्चय' की प्रतिलिपि भी है। 'इतिहास-सामुच्चय' के अन्त मे उसका लेख काल सं० १७४५ (१६८८ ई०) अंकित है।[२] इस तरह सन्त तुरसी दास की सं० १७४५ वि० तक की उपस्थिति निश्चित हो जाती है। इस अनुमान के आधार पर तथा किसी अन्य पुष्ट प्रमाण के अभाव में हम 'तुरसीदास' का जीवन-काल विक्रम संवत् की सत्रहवी' शती के उत्तरार्द्ध और अठारहवी शती का पूर्वार्द्ध मान लेते है। इस अनुमान से गोस्वामी तुलसी दास भी

---

१. महरवान मन की गति जानी। बावन शिष्य भये परवाणी ॥
— महाराज हरिदास जी की वाणी—सं० मंगलदास स्वामी, भूमिका, पृष्ठ १०१
नामो के विवरण के लिये देखें उक्त ग्रन्थ पृष्ठ ३९, ४०

२. निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसीदास निरंजनी—डॉ० भागीरथ मिश्र, पृ० २० पर उद्धृत।

(मृत्युकाल सं० १६८०) के सम-सामयिक होने की बात भी सम्भव हो जाती है यद्यपि ये उनके कुछ पश्चात् अवतरित हुये थे।

'इतिहास समुच्चय' के अन्त में लिखित नगर गान्धार सुथाने समगस्तु लिषते स्वामी जी श्री श्री श्री श्री १०८ ऊधो दास जी को शिष्य स्वामी जी श्री श्री श्री श्री १०८ श्री श्री लाल दास जी को शिष्य तुरसी दास वाचे जिसको राम राम।' उद्धरण के आधार पर इनके गुरु स्वामी लाल दास जी ठहरते हैं। मौलिक रूप से तुरसी का गुरु चाहे कोई भी हो किन्तु सैद्धान्तिक रूप से 'तुरसी' अन्य निरंजनी सन्त 'कबीर' को ही अपने गुरु से श्रेष्ठ मानते हैं। तुरसी का कथन है :—

कर सूँ कर गहि, कृपा करि, दिखलाये निज ठाउँ।
कृपा सिन्धु कबीर की, तुरसी मैं बलि जाउँ॥

सन्त तुरसी दास उच्चकोटि के योगी, ब्रह्म जिज्ञासु, तथा संयम, शील सन्त थे। ये बड़े समर्थ विचारक तथा कवि थे।

रचनायें

डॉ० बड़थ्वाल के मतानुसार इन्होंने ४२०२ साखियाँ, ४६१ पद, ४ लघु रचनाये, तथा बहुत से श्लोक और शब्दों का सग्रह किया था। इनकी लघु रचनाओं के नाम हैं—(१) ग्रन्थ चौ अक्षरी, (२) करणी सारजोग, (३) साध सुलच्छिन ग्रन्थ (४) ग्रन्थ तत्व गुण भेद।[1] साखी ग्रन्थ सबसे महत्व का ग्रन्थ है। इसमें विशाल ज्ञान का समावेश है। इनकी साखियों में भागवत पुराण, वेदान्त, तथा अनेक प्रकार के भक्ति मार्ग एवं भिन्न-भिन्न गुरुओं की वाणियों का प्रभाव परिलक्षित होता है। ये साखियाँ २०० प्रकरणों में विभक्त हैं। 'तुरसी' के चार लघु ग्रन्थों में 'चौ अक्षरी' चौपाइयों में है। इसमें साधक के कर्त्तव्यों और अकर्त्तव्यों का निरुपण है। 'करणीसार जोग' रोला छन्दों में लिखा गया है इसमे 'अवधूत' वर्णन तथा उनकी क्रियाओं का वर्णन है। 'साध सुलच्छन जोग' साखी के एक प्रकरण के समान है। १८ दोहों में साधुओं के लक्षणों का वर्णन है। चौथे लघुग्रन्थ—'ग्रन्थ तत्व गुण-भेद' में संसार की असारता, एकरसता निरीहता, समता, षट् विकारों तथा आत्म-शुद्धि तथा अन्तःसाधना आदि विषयो पर रोला छन्द में वर्णन है। तुरसी के पदों मे संगीत की प्रधानता है।

तुरसी दास प्रेमाभक्ति के उपदेशक है। वे कहते हैं :—

'प्रेम भगति उतपन भई, पूरन ससि लौं सोह।
तुरसी जहाँ त्रिय तापकी, ज्वाला रही न कोइ॥'[2]

---

१. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग ४, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २१६।
२. निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसी दास—डॉ० भागीरथ मिश्र, पृ० १३४ साखी २३।

तुरसी की रचनाओं में इनकी बहुज्ञता परिलक्षित होती है। यद्यपि ये सुशिक्षित नहीं जान पड़ते किन्तु इनका ज्ञान-भंडार बहुत ही विशाल जान पड़ता है। इनकी विचारधारा निर्गुणी सम्प्रदाय के दार्शनिक विचारों से ओत-प्रोत हैं। इनके सम्बन्ध में हम अगले अध्याय में विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

(४) सन्त सिंगा जी और उनकी परम्परा

संत सिंगा जी (जीवन काल सं० १५७६ वि०—१६१६ वि०)—संत सिंगा जी का जन्म वैशाख शुक्ल ११ गुरुवार सं० १५७६ वि० को मध्य भारत की रियासत 'बडवानी' के खजूर गांव (खजूरी में ग्वाल जाति के 'मीमा गौली की पत्नी 'गडरबाई' के गर्भ से हुआ था।[१] 'वाणी' नामक पुस्तक में स्वामी घासी दास ने सिंगा जी का जन्म वैशाख शुक्ल ६ सं० १५७६ बुधवार को माना है।[२] जब ये ६ वर्ष के थे तो इनके पिता अपनी सारी सम्पत्ति के साथ खजूरी से निमाड जिले के हरसूद नामक गाँव में आकर बस गये। यहीं पर सं० १५९८ में 'सिंगा जी' ने मामगढ (निमाड़) के राजा लखमे सिंह के यहाँ एक रुपया मासिक वेतन पर डाकिये की नौकरी कर ली। इनकी ईमानदारी और सच्चाई के कारण बाद में राजा ने इनका वेतन साढ़े तीन रुपया कर दिया था और पाँचो हथियार बांध कर घोड़ी पर चढ़कर चलने की छूट दे दी थी।

एक बार जब ये घोड़ी पर सवार होकर कहीं जा रहे थे उस समय रास्ते में 'मैंसांवा' ग्राम में महाराज 'ब्रह्मगीर' के शिष्य 'मनरंगीर' भजन गा रहे थे :—

समुझि ले ओरे मना भई, अन्त न होय कोई अपणा।
यही माया के फन्दे में, तर आन भुलाणा॥

भजन से प्रभावित होकर ये उसी समय 'मनरंगीर' के चरणों पर गिर पड़े और उन्हें अपना आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक स्वीकार कर लिये। तदन्तर 'मामगढ़' आकर नौकरी से त्याग-पत्र दे 'पिपल्या' के जंगलो मे आकर एकान्तवास करने लगे। नौकरी छोड़ने और गुरु दीक्षा लेने के समय इनकी अवस्था ३६ वर्ष की थी।

---

१. जन्म खजूरी में भयो, गौली घर अवतार।
मात। गौरा को पय पियो, हरो भूमि को भार॥
—निमाड़ के सन्त कवि सिंगा जी—डॉ० रमेश चंद गंगराडे, पृष्ठ ३५ पर उद्धृत।

२. संवत् पन्द्रह सौ छिहत्तर जानी। जन्म भयो खजूर बड़वानी।
वैसाष सुदी नौमी सारा। परगट भये दिन बुधवारा॥
—निमाड़ के सन्त कवि सिंगा जी—डॉ० रमेश चन्द गंगराडे, पृष्ठ ३५

सिंगा जी की स्त्री का नाम जसोदा था। इनके भाई का नाम 'लिम्बा जी' और बहन का नाम 'किस्नाबाई' था। कालू, भोलू, मन्दू, दीपू इनके चार पुत्र थे। 'कालू' का पुत्र 'दलू दास' सिंगा जी के पौत्र थे। परिवार के सदस्यो की नामावली 'परचुरी' में उनमें समाधिस्थ होने पर परिवार के शोकातुर होने के प्रसंग में आता है :—

'बडो जेठो लिम्बा जी भाई। जीन सिंगा जी कुंठहेल फुरभाई।
जननी जसोदा सिंगा जी की नार ॥
कालू भोलू चारू सुन्त। संदू दीपू नान्हा पूत।
ढुल ढुल ढुल मुल, नारायण रोवे, कीसनाबाई के आंस न आवे॥'

गुरु दीक्षा के पश्चात् इनका सच्चा सन्त जीवन प्रारम्भ हो गया। इनके सन्त जीवन के ११ महीने के अवधि के भीतर ही अनेक शिष्य हो गये। ये परम साधक और उच्च-कोटि के विचारक थे। इनकी निर्गुण ब्रह्म विषयक धारणा सन्त कबीर के निराकार, निर्विकार, अव्यय और अनादि ब्रह्म विषयक कल्पना से बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इनके ब्रह्म निराकार, अदृश्य, कुल, गोत्र विहीन एक ज्योति पुत्र मात्र है[1] जो कबीर से बहुत कुछ साम्य रखते है।

सत्यानुभूति एवं माधुर्य से पूर्ण सिंगा जी के गीत एवं पद निमाड़ प्रदेश की जनता के हृदय पर स्थायी प्रभाव स्थापित किये हुये है। सिंगा जी ने ४० वर्ष की अल्पायु मे ही श्रावण शुक्ल ६ स० १६१६ वि० को किकण नदी के तट पर जीवित समाधि ले ली थी। इस तरह उनका आध्यात्मिक या सन्त जीवन केवल १ वर्ष का ही रहा।

रचनाएँ

सिंगा जी द्वारा विरचित पदो की संख्या लगभग ८०० बतलाई जाती है किन्तु वे सभी उपलब्ध नहीं हो सकी है। अब तक के शोध के अनुसार इनकी ११ रचनाओ का पता चला है जो निम्नलिखित है :-

(१) सिंगा जी का दृढ उपदेश (२) सिंगा जी का आत्मध्यान
(३) सिंगा जी का दोष बोध (४) सिंगा जी का नरद
(५) सिंगा जी का शरद (६) सिंगा जी की देश की वाणी
(७) सिंगा जी की बाणावली (८) सिंगा जी का सातवार
(९) सिंगा जी की पद्रह तिथि (१०) सिंगा जी की बारहमासी।

१. रूप नाही देखा नाही, नाहीं है कुल गोत रे।
बिन देही को साहब मेरा, झिलमिल देखू जोत रे॥
—हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास भाग ४, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २३० पर उद्धृत

(११) सिंगा जी के भजन ।

इनकी उक्त सारी रचनाएँ 'निमाड़ के सन्त कवि सिंगा जी' नामक पुस्तक में डॉ० रमेश चन्द्र गंगराडे द्वारा संगृहीत हो चुकी है। 'दृढ़ उपदेश' चौपाई और दोहों में लिखित रचना है। इसमें उनके आध्यात्मिक विचारों का प्रकाशन हुआ है साधु-सन्तों की पहचान भी बतलाई गई है। 'आत्म-ध्यान' मे योग, प्राणायाम और समाधि का विशद् वर्णन है। 'दोष-बोध' मानव समाज में व्याप्त बुराइयों और कमजोरियों का चित्रण हुआ है। 'नरद' में ब्रह्म और सद्गुरु का गुणगान हुआ है 'शरद' मे देह की नश्वरता का वर्णन है। 'देश को वाणी' मे सन्तो के निराले देश का वर्णन है जहाँ न जीवन है, न मृत्यु, न कुल है, न जाति। 'बाणावली' में जीवन सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण परिस्थितियों और भावनाओं पर विचार व्यक्त किया गया है। 'सातवार' नामक रचना में सन्त सिंगा जी ने प्रत्येक बार के माध्यम से जीवन की क्षण-भंगुरता, ज्ञान की गहनता और ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग की महत्ता पर विचार किया है। सिंगा जी की पंद्रह तिथि में जीव, ब्रह्म, माया सृष्टि की बड़ी सुन्दर व्याख्या मिलती है। 'बारहमासी' मे जीवन की गहन अनुभूतियों का दिग्दर्शन कराया गया है। 'सिंगा जी के भजन' में उनका जीवन-दर्शन है जो पूर्ववर्ती रहस्यवादी निर्गुण पंथी सन्तों के दर्शन पर आधारित है।

यद्यपि सिंगा जी ने किसी पंथ या सम्प्रदाय की स्थापना नही की फिर भी उनके पश्चात् उनके शिष्य वा प्रशिष्य खेमदास, घन जी दास, एवं दनुदास की भी कुछ रचनाएँ मिलती है। ये लोग अपने को 'सिंगा पंथी' कहते है। इस पंथ द्वारा निर्मित साहित्य बहुत अधिक है। प्रायः सभी संतों ने कुछ न कुछ रचनाएँ की है जिनको प्रकाश मे लाना आवश्यक है।

(५) मलूक दास और मलूक पंथ

मलूक दास (जीवन काल सं० १६३१—१७३६ वि०)—मलूक दास के जीवन से सम्बन्धित प्रामाणिक ग्रंथ 'परिचयी' के आधार पर इनका जन्म-काल सं० १६३१ तथा मृत्यु-काल सं० १७३६ माना जाता है। इनका जन्म इलाहाबाद जिले के 'कड़ा' नामक गाँव में वैशाख वदी ५ सं० १६३१ वि० में लाला सुंदर दास खत्री कक्कड़ के यहाँ हुआ था। ये बचपन से ही उदार, परोपकारी तथा धर्म-परायण थे पाँच वर्ष की अवस्था होने पर ये गाँव की पाठशाला मे पढ़ने के लिये भेजे गये किन्तु यहाँ ये अधिक समय तक पढ़ नहीं सके। ग्यारह वर्ष की अवस्था में पिता ने उन्हे व्यापार में लगाना चाहा किन्तु अपनी उदारता और साधु सेवा के प्रति अटूट रुचि होने के कारण ये उस कार्य में भी दक्ष नहीं हो पाये। 'परिचय' में अन्य महा-

त्माओं के जीवन से सम्बन्धित चमत्कारिक घटनाओ के वर्णन की भाँति इनके जीवन से भी सम्बन्धित अनेक चमत्कारिक घटनाओं का चित्रण है ।[1]

मलूक दास जी के दीक्षा गुरु के सम्बन्ध में हिन्दी के इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है । कुछ लोग द्राविड़ बिट्ठल को उनका गुरु मानते हैं । मलूक दास जी के शिष्य एवं भांजे मथुरा दास जी ने जो 'मलूक परिचयी' लिखी है उसके अनुसार इनके गुरु 'देवनाथ' के पुत्र 'पुरुषोत्तम' थे । इनके अन्तस्साक्ष्य मे 'सुखसागर' में लिखित मलूक दास का एक पद भी उद्धृत किया गया है ।[2] 'मलूक परिचयी' में मलूक दास के विवाह, पत्नी और एक कन्या संतान का भी उल्लेख मिलता है । ये आजीवन अपने पैतृक व्यवसाय में लगे रहकर परिवार का भरण-पोषण करते रहे ।

मलूक दास भ्रमण-शील साधक थे । उन्होंने जगन्नाथ पुरी, कालपी, दिल्ली तथा अन्य स्थानो की पैदल यात्रा की थी । अन्य संतो की अपेक्षा इनमे सेवा-भावना की प्रधानता थी । दीन-हीनों की सेवा करना इनका धर्म था । वे सदैव परोपकार मे रत रहा करते थे । वैशाख कृष्ण १४ बुधवार सं० १७३६ को 'कड़ा' में ही इनका देहावसान हो गया ।[3]

रचनायें

संत मलूक दास के प्रामाणिक ग्रंथों की सूची निम्नलिखित है—

(१) ज्ञान बोध, (२) रतन खान, (३) भक्त बच्छावली, (४) भक्ति विवेक, (५) ज्ञान परोछि, (६) बारह खड़ी, (७) राम अवतार लीला, (८) ध्रुवचरित,

---

१. मलूक दास जी की बानी-बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, जीवन-चरित्र, पृष्ठ १ से ५ तक ।

२. दच्छिन ते प्रकटी भये, द्राविड़ के देस ।
गोकुल गांव विदित भये, प्रकटे विट्ठल नाथ ।।
भावनाथ तिन ते भये, देवनाथ सुत तास ।
तेन ते परसोत्तम, तह सिख मलूक दास ।।
—परिचयी साहित्य, डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० १३८ पर उद्धृत ।

३. संवत सत्रह सौ उन्तालिस, बुद्धवार तिथि आय ।
चतुर्दशी बैशाख वदी, सिंह लगन बिताय ।।
समाधान सबको किया, ना ना रूप दिखाय ।
गुरु मलूक निज धाम को चले निसान बजाय ।।
—हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भाग ४, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २४६ पर उद्धृत ।

(९) ब्रज लीला, (१०) विभय विभूति, (११) सुख सागर, (१२) विविध शब्द-संग्रह, पद-संग्रह तथा पदावली।

'ज्ञान बोध', 'ज्ञानपरोछि', 'विभय विभूति' तथा 'रतन खान' ग्रंथों में ज्ञान, योग तथा आध्यात्मिक विषयों की विवेचना है। 'भक्ति विवेक' और 'सुख सागर' में कथानकों के माध्यम से सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। 'राम अवतार लीला', 'ब्रजलीला', 'ध्रुवचरित' में राम, कृष्ण और ध्रुव के जीवन चरित्र का वर्णन है। 'भक्त बच्छावली', 'बारह खड़ी' में इनकी फुटकर रचनायें हैं। 'ज्ञान बोध' ही मलूक दास की सबसे महत्वपूर्ण रचना है।

आध्यात्मिक विचार—दार्शनिक चिंतन एवं आध्यात्मिक विचारधारा में मलूक दास बड़े मौलिक हैं। मलूक दास का ब्रह्म निर्गण और गुणातीत है। वही एक ब्रह्म सबका निर्माता, अनादि, अनन्त और असीम महिमा वाला है। वही सृष्टि का कर्त्ता, भर्त्ता और संहर्त्ता है। हिन्दू-मुसलमान का भेद-भाव उनके यहाँ नहीं है।[1] ईश्वर के प्रति इनकी असीम आस्था है। अपने को वे उसका असंदिग्ध रूप से आत्मीय मानते है। वे भगवान् से प्रार्थना करते हुये कहते है कि यदि तूने मेरे प्रति कृपा नहीं की तो मैं पुकार कर कहता हूं कि इसमें मेरी हँसी नही तुम्हारी हँसी होगी[2] ये ईश्वर के प्रति अपने को पूर्ण समर्पित कर देते हैं। इनके ईश्वर आत्म-चिन्तन में ही प्राप्त हो सकते है इसीलिये ये कहते है :—

आपा खोज रे जिय भाई।
आपा खोजे त्रिभुवन सूझे, अंधकार मिट जाई ॥१॥
जोई मन सोई परमेसु, कोई बिरला अवधू जाने।
जौन जोगी सुर सब घट व्यापक, सो यह रूप बखाने ॥२॥
शब्द अनाहद होत जहाँ तें, तहाँ ब्रह्म कर बासा।
गगन मंडल में करत कलोलै, परम जोति परगासा ॥३॥

---

१. सर्व व्यापी एक कुहारा। जाकी महिमा आर न पारा।
हिन्दू तुरक का एके करता। एकै ब्रह्म सबन का भरता ॥
—शब्द संग्रह

२. दीन दयाल सुनी जब तैं, तब तै हिया में कुछ ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाऊँ कहाँ, मैं तेरे हित की पट खैंच कसी है ॥
तेरोइ एक भरोस मलूक को, तेरे समान न दूजो जसी है।
एहो मुरारि पुकारि कहौं, अब मेरी हँसी नहि तेरी हँसी है ॥
—मलूक दास जी की बानी बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृ० १२

कहत मलूका निरगुन के गुन, कोइ बड़भागी पावै।
क्या गिरही औ क्या वैरागी, जेइ हरि देइ सो पावै ॥४॥[1]

संत मलूक दास एक पहुँचे हुये महात्मा थे। ये विश्व-कल्याण के पोषक थे। इनकी ख्याति इनके जीवन-काल में ही फैल चुकी थी। सिक्खों के नवें गुरु तेग बहादुर सिंह ने भी इनसे कड़ा गाँव में भेंट की थी। मुगल सम्राट् और औरंगजेब से भी इन्हें सम्मान मिला था।

मलूक पंथ और शिष्य-परम्परा—संत मलूक दास द्वारा कहीं अपने मत के प्रचार करने अथवा मठ स्थापित करने का उल्लेख नहीं मिलता फिर भी उनके मतानुयायियों की संख्या बहुत ही अधिक है। जो पूर्व में पुरी, पटना से लेकर पश्चिम में काबुल और मुल्तान तक मिला करते हैं। मलूक दास के १२ शिष्यों में लाल दास, रामदास, उदय राय, प्रभु दास, सुदामा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। मलूक पंथ के प्रवर्तक संत मलूक दास है। संभवत: ७० वर्ष की अवस्था में जब वे जगन्नाथ पुरी से वापस आये तब से उन्होने शिष्य बनाने प्रारम्भ किये और इस तरह सं० १७०१ वि० से मलूक पंथ का जन्म हुआ। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इस सम्प्रदाय में दीक्षित हुये। मलूक दास के बाद 'रामसनेही' महन्त हुये। आठवें महंत 'गंगा प्रसाद' के समय में इस सम्प्रदाय की बड़ी उन्नति हुई। इस सम्प्रदाय मे भी अन्य संत सम्प्रदाय की भाँति गुरु को बड़ी प्रतिष्ठा दी जाती है।

निष्कर्ष

इस तरह मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियों के जीवन-वृत्त पर विहंगम दृष्टि डालने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि प्राय: सभी सन्त समाज के निम्न वर्ग से उद्भूत हुये थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा सामान्यतया बहुत ही कम हुई थी प्राय: सभी संतों ने अपने गुरु की प्रेरणा से साधना मे सफलता प्राप्त की थी। इन सभी सन्तों का जीवन प्रवृत्तिमार्गी रहा और उन्होने जीवन-भर कथनी और करनी में पूर्ण सामंजस्य लाने की चेष्टा करते हुये अपने मत का प्रचार किया। इनमें से पिछले सन्तों ने अपने यहाँ अपनी शिष्य परम्परा स्थापित कर उसके अनुसार अपना कोई न कोई सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। इनकी विशेषताओं का वर्णन हम अगले अध्याय में प्रस्तुत करेंगे।

———

१. मलूक दास जी की बानी बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, पृ० १७

अध्याय ७

मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियों की अपनी विशेषतायें

पिछले अध्यायों में मध्यकालीन हिन्दी सन्तों तथा सूफियों के साहित्यों का अलग अध्ययन करने के पश्चात् अब हमारे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि आखिर सन्तों में सूफियों के अतिरिक्त वे कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर उन्हें सूफियों से अलग कोटि में रखा जाय, क्योंकि दोनो की आध्यात्मिक विचार-धाराओं में बहुत कुछ साम्य दिखाई पड़ता है। दोनो परम-तत्व की एक मात्रा सत्ता को निराकार, निर्गुण, सर्वव्यापी, सर्वशक्तिमान् मानते है। दोनो के साधना-मार्गों में भी साम्य दृष्टिगोचर होता है। फिर भी सूक्ष्मता से विचार करने पर हमें इनका पारस्परिक अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। इस अध्याय के अन्तर्गत इसी तथ्य का स्पष्टीकरण करना हमारा मुख्य उद्देश्य है। इससे पूर्व कि हम अपने उद्देश्य पर सीधे आ जायँ हमें सन्तों की दार्शनिक विचारधाराओ पर भी थोड़ा मोटे तौर पर विचार कर लेना आवश्यक होगा।

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है मध्यकालीन हिन्दी सन्त साहित्य की भूमिका प्रस्तुत करने का श्रेय महाराष्ट्र के विट्ठल सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त 'नामदेव' को है। 'आचार्य विनय मोहन शर्मा' ने स्वानुभूतिजन्य सत्यान्वेषण, सद्गुरु के महत्व का प्रतिपादन, नाम स्मरण, (सुमिरन) का आग्रह एवं वाह्याडम्बर की व्यर्थता आदि के उद्धरण देकर 'नामदेव' को सन्तमत का प्रवर्त्तक माना है।[1] 'नामदेव' और 'कबीर की विचारधारा एक ही भूमि पर प्रवाहित हुई है। पूर्ववर्ती होने के कारण 'नामदेव' कबीर की प्रेरक शक्ति रहे।[2] परवर्ती सन्तों ने अपनी रचनाओं में बराबर नामदेव की इस महत्ता को स्वीकार किया है। 'नामदेव' का निर्गुण मत महाराष्ट्र का 'बारकरी' पंथ था जिसके अनुसार वेद की प्रामाणिकता तथा वर्ण-व्यवस्था से प्रभावित होते हुये वाह्याडम्बरों से विमुख होकर जन-साधारण

१. हिन्दी को मराठी सन्तो की देन—आचार्य विनय मोहम शर्मा प्र० सं० पृष्ठ १२६।

२. सनक सनन्दन जै देव नामा। भगति करि मनि उनहुँ न जाना॥
—कबीर ग्रन्थावली—डॉ० श्यामसुन्दर दास, पदावली सं० ३३, पृष्ठ ७७।

के लिए भक्ति मार्ग का प्रचार किया जा रहा था। वाह्य कर्मकाण्ड की अपेक्षा इसमें आन्तरिक तन्मयता मूलक भावना की प्रधानता दी जाती थी। इस पन्थ की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी सर्वतोमुखी व्यापकता थी जिसमें धनी, गरीब, गृहस्थ, विरक्त, ब्राह्मण, चाण्डाल सब के लिए द्वार खुला हुआ था। 'नामदेव' के समकालीन प्राय: सभी सन्त निम्न कुल में उत्पन्न हुये थे। जैसा कि पूर्व उल्लेख से स्पष्ट है।

'नामदेव' की विचारधारा और उनके आराध्य 'विट्ठल' की स्पष्ट छाप 'कबीर' पर दिखलाई पड़ती है। प्रवृत्ति में निवृत्ति का समन्वय, जाति भेद का बहिष्कार, ब्रह्म की निर्गुणता, अनन्य प्रेम-भावना, निर्गुण और नाम साधना आदि सभी तत्व 'नामदेव' और 'कबीर' दोनों में समान रूप से मिलते हैं। आगे चलकर कबीर ने वेद, उपनिषद्, कुरान आदि धर्म-ग्रन्थो की उपेक्षा करते हुये मानसिक पवित्रता को आधार मानकर अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, नाथ, सिद्ध एवं सूफी सम्प्रदायों से क्रमशः तत्वज्ञान, भक्ति, योग, हठयोग और प्रेम की पीर को ग्रहण कर एक ऐसे मत का प्रवर्तन किया जिसमें सम्पूर्ण भारतीय आध्यात्मिक प्रणालियों का रस निचुड़ कर आ गया है। इन सन्तों की मुख्य विशेषता यह रही कि ये बराबर वाह्याडम्बरों का विरोध करते रहे। आत्म-चिन्तन और आत्म-शुद्धि पर विशेष जोर देते थे। वे किसी सम्प्रदाय की सीमित परिधि के भीतर रहना आवश्यक नही मानते थे। उनका विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति के भीतर आध्यात्मिक तत्व विद्यमान है और व्यक्तिगत चिन्तन द्वारा उस परम तत्व के चरम-सौन्दर्य का दर्शन किया जा सकता है। सन्तों ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से सरल और सदाचारपूर्ण जीवनयापन का उपदेश दिया। उन्होने स्वयं भी उसे अपने आचरण मे ढाला और इस प्रकार वे जन-साधारण के लिए श्रद्धा के पात्र बन गये। इन सन्त कवियों ने भाग्यवादी निराशा का बहिष्कार किया और सत्य के दर्शन के लिये अन्तरात्मा की शुद्धि को आवश्यक बताया।

सन्त साहित्य की दार्शनिक विचारधारा—सन्त साहित्य की सबसे प्रमुख विशेषता यह थी कि इसकी दार्शनिक विचारधारा किसी विशेष शास्त्र पर आधारित नही थी। चाहे वे वेद की बातें हों, चाहे कुरान अथवा बाइबिल की, सन्तो के लिये वे कोरे विश्वास पर मान्य नही हो सकती थी। वे शास्त्रों की अपेक्षा स्वानुभूति पर विशेष बल देते हैं। इस तरह वे विश्व की सीमित और स्थायी भौतिक उपलब्धियों के प्रति पूर्ण रूप से उदासीन हैं। साथ ही अनन्त रहस्यमय सत्ता की खोज के प्रति विशेष जागरूक हैं। यद्यपि सन्त साहित्य की यह दार्शनिक विचारधारा उपनिषदों, नाथों, सिद्धों और सूफियों की चिन्तनशीलता का समन्वित रूप है किन्तु सन्त मत में ये दार्शनिक तत्व सीधे सम्बन्धित शास्त्रों से नहीं लिये गये, बल्कि

शताब्दियों अनुभूति की तुला पर तुलकर महात्माओं की व्यावहारिक ज्ञान की कसौटी पर कसे जाने के पश्चात् सत्संग और गुरू उपदेश के माध्यम से समाहृत हुये।

जहाँ तक सत्यान्वेषण का प्रश्न है इन सन्तों ने किसी भी धर्म ग्रन्थ का प्रामाणिक मानकर कभी भी उसका आश्रय नहीं लिया और न कभी उसकी दुहाई दी। उनका विश्वास है कि वेद, पुराण, कुरान, हदीस आदि धार्मिक ग्रन्थो के आधार पर जन-साधारण अपने मतो का प्रचार किया करते है किन्तु वास्तव मे गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो वे शास्त्र भी स्वयं अस्पष्ट हैं। इनमे परस्पर विरोधी बातों का उल्लेख मिलता है। इनमें भ्रमात्मक तथ्यो की भरमार है। जब ये शास्त्र भाष्यकारों के हाथों में पड़े तो उन लोगों ने अपने तर्क और बुद्धि से उन्हें और भी पेचीदा बना दिया। इस तरह चारो वेदों के अभिज्ञ पंडित भी उसके भीतरी रहस्यो से अनभिज्ञ रहकर वेदाध्ययन मे भरते पचते रहते हैं।[1] सत्य की प्राप्ति के लिये वास्तव में स्वानुभूति की आवश्यकता है। बराबर चिन्तन के परिणामस्वरूप यह सत्य 'सहज-भाव' से उत्पन्न होता है। कहीं आने जाने की आवश्यकता नही है चिन्तन से ही मन के सारे सशय दूर हो जाते हैं।[2]

सन्त साहित्य का आध्यात्मिक सिद्धान्त—सन्तो की दार्शनिक विचारधारा मुख्य रूप से मानवीय प्रतिष्ठा, आन्तरिक सद्भावना एवं सात्विक वृत्ति मे आस्था, इन तीन लक्ष्यों को लेकर चलती है। मानवीय एकता, प्रेम और सद्भावना के कारण ही स्थापित हो सकती है। परमात्म तत्व की एकता स्थापित करके व्यक्ति की सामाजिक असमानता का निराकरण सम्भव हो सकता है। इस तरह सन्तो की दार्शनिक विचारधारा परम तत्व (ईश्वर), जीव, माया, जगत् सम्बन्धी विचारो पर अवलम्बित है। इन चार तत्वों के निरूपण मे सन्त कवियों ने शास्त्रीय ज्ञान पर आस्था न रखकर अपने अनुभूत ज्ञान को ही प्रामाणिक माना है। शास्त्रों को अनावश्यक ठहराया है। यही कारण है कि उनके ये अनुभूत ज्ञान स्वभाव से परस्पर समानता रखते हैं। जहाँ वे परम-तत्व (ईश्वर) के स्वरूप का निरूपण करने लगते

---

१. ब्राह्मण गुरू जगत् का, साधू का गुरू नाँहि।
उरझि पुरझि कर मरि रह्या, चारों वेदा माँहि॥
—कबीर ग्रन्थावली—डॉ० श्यामसुन्दर दास, चाणक कौ अंग साखी १०, पृ० २८।

२. करत विचार मनहि मन उपजी, न कहिं गया न आया।
कहै कबीर संसा सब छूटा, राम रतन धन पाया॥
—कबीर ग्रन्थावली—डॉ० श्यामसुन्दर दास, पदावली सं० २३, पृष्ठ ७५।

हैं प्रायः सभी सन्त एक से जान पड़ते हैं। वैयक्तिक चेतना एवं दीक्षा के कारण यदि उनमें परस्पर थोड़ी विभिन्नता भी आ गई है तो भी वे सब कुछ मिलाकर एक ही पथ के पथिक हैं।

आचार्य 'क्षितिमोहन सेन' ने कबीर साहित्य में आध्यात्मिक स्वरूप का निरूपण करते हुये लिखा है—"कबीर की आध्यात्मिक क्षुधा और आकाक्षा विश्व-ग्रासी है। यह कुछ भी छोडना नहीं चाहती। इसीलिये वह ग्रहणशील है, वर्जनशील नही। इसीलिये उन्होंने हिन्दू, मुसलमान, सूफी, वैष्णव, योगी, प्रभृति आदि सभी साधनाओं को जोर से पकड रखा है।[1] आचार्य जी का यह कथन केवल कबीर पर ही नहीं सभी सन्त कवियो पर लागू होता है। उसका ब्रह्म निरूपण उनकी निजी अनुभूतियों का परिणाम है। सन्तो की दार्शनिक सिद्धान्त सम्बन्धी समानताओं के स्पष्टीकरण के लिये हम आगे अलग-अलग विस्तार से विचार करना आवश्यक समझते हैं।

सन्त साहित्य में परम-तत्व और उसका स्वरूप—जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है सन्त कवियों के अनुसार परम-तत्व के वास्तविक स्वरूप का निरूपण सामूहिक साधना से न होकर व्यक्तिगत साधना से ही सम्भव हो सकता है जो व्यक्ति की पृथक्-पृथक् क्षमता पर निर्भर करता है। हिन्दी के सन्त कवियो ने कही भी कभी भी यह दावा नही किया है कि वे पूर्ण सत्य को पूर्ण रूप से जान चुके है। जब उनसे परम तत्व के निरूपण के लिये कहा जाता है तो उसे वे झट अकथनीय कह कर टाल देते है। वे कथन को अनावश्यक मान आँखो देखी पर ही विश्वास करते हैं।[2] उनका ब्रह्म तो ऐसा विचित्र है जिसका वर्णन किया नही जा सकता। वह अकथनीय है। कागज पर उसका वर्णन लिखा भी नही जा सकता। वह सारे विश्व का स्वामी सहज रूप से ही प्राप्त हो सकता है।[3] 'सन्त कबीर' उसकी गति का उल्लेख करने मे असमर्थ है। उसके गाँव और स्थान का भी पता नहीं बता पाते। उसे गुण विहीन बताकर उसका नामकरण भी नहीं कर सकते।

'अविगति की गति क्या कहूँ, जिसकर गाउँ न ठाउँ।
गुन विहीन क्या पेखिये, का कहि धरिये नाउँ॥'[4]

---

१. कल्याण—योगांक, पृष्ठ २६६।

२. परम ब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे को सोभा नहीं, देख्या ही परवान॥
—कबीर ग्रन्थावली—काशी सं० पृष्ठ १०, पद ३।

३. अकथ कथ्यो न जाइ। कागद लिख्यो न गाइ।
सकल भुवन परि मिल्यौ है, सहज भाइ॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, सं० डॉ० भागीरथ मिश्र, पद ६, पृष्ठ ४।

४. कबीर ग्रन्थावली—प्रयाग सस्करण, रमैनी पद ४, पृष्ठ ११६।

'सन्त रैदास' सत्य का निरूपण करते समय उसे अनादि, अनन्त कह कर अपनी शंकाओं का निराकरण करते हैं। वे कहते हैं कि जैसा उसे कहा जाता है वास्तव में वह वैसा है नहीं। वह निरन्तर चिन्तन करने से ही जाना जा सकता है।

'मन मेरो सत्त स्वरूप बिचारं।
आदि अन्त अनन्त परम पद, संसा सकल निवारं॥
जस हरि कहिये तस हरि नाहीं, है अस जस कछु तैसा।
जानत जानत जान रह्यों सब, मरम कह्यो निज कैसा॥[1]

सिक्ख गुरू नानकदेव परमात्मा के सम्बन्ध में कहते हैं कि तूं ही कलम है, तूं ही पट्टी है, तू ही उस पट्टी के ऊपर का लेख भी है। तू अकेला ही है दूसरा कोई और है नहीं। तू अपने आप वर्तता है। तू स्वयंभू है। तुम्हारे सिवा अन्य दूसरा है ही नहीं। तू सबमे समान रूप से व्याप्त है। तू अपनी अपनी गति मिति स्वयं जानता है। तूं अलख है, अगोचर है और अगम्य है। गुरू-कृपा से ही तुझे जाना जा सकता है।

'आपे पटी, कलम आपि, उपरि लेख भी हूँ।
एको कहिये नानका, दूजा काहे कू॥ पउड़ी
तू आपै आप वरतदा, आपि वणत बणाई।
तुध बिन दूजा को नहीं, तू रहिया समाई॥
तेरी गति मिति तू है, जाणदा तुधु कीमति पाई॥
तूं अलख अगोचरु अगम है, गुरमति दिखाई॥ २८॥ पउड़ी॥[2]

इस तरह 'नानकदेव' उस परम तत्व का निरूपण करते हुये भी नही कर पा रहे है। वे सारे विश्व मे उसी परम तत्व को विद्यमान पाते है। उसके अतिरिक्त इस ससार मे किसी दूसरे के अस्तित्व पर उनका बिलकुल ही विश्वास नही। 'सन्त दादू दयाल' उसे अविनाशी तेजपुंज के रूप मे देखते है। उसमे उन्हे अनूप तत्व के दर्शन होते हैं। वे उसके सहज सुन्दर स्वरूप को अपनी आँखो से देखते है।

'दादू अविनाशी अंग तेज का, ऐसा तत्त अनूप।
सो हम देख्या नैन भरि, सुन्दर सहज सरूप॥'[3]

सन्त दादू दयाल इस्लामी दर्शन के अनुसार ईश्वर की ज्योति स्वरूप (नूर) की कल्पना तो अवश्य करते हैं किन्तु जब उनसे पूछा जाता है कि वह स्वरूप कैसा है तो वह उसे बता नही पाते। अब इतना मात्र संकेत दे पाते है कि वह आत्मा

---

१. रैदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग, पद ५४, पृष्ठ २५।
२. श्री गुरू ग्रन्थ दर्शन—डॉ० जयराम मिश्र, पृष्ठ ६५ से उद्धृत।
३. दादू दयाल-सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, परचा का अंग, साखी ८५, पृ० ५२

के अन्तर्गत निवास करता है उसी का प्रकाश नेत्रों के समक्ष सर्वत्र दीप्तिमान् हो रहा है।[1] इसी तरह रज्जब जी, सुन्दर दास, हरिदास निरंजनी, तुरसीदास निरंजनी, सन्त सिंगा जी तथा मलूकदास आदि सन्तों ने भी अपनी-अपनी अनुभूतियों के आधार पर परम-तत्व के निरूपण का यथा-सम्भव प्रयास किया है। यद्यपि परम-तत्व के सम्बन्ध में इनके विचार परस्पर विभिन्न से प्रतीत हो रहे हैं किन्तु यदि गम्भीरता से उन पर विचार किया जाय तो उनमें एक अद्भुत साम्य भी दृष्टिगोचर हो रहा है। परम तत्व की आस्तिकता के सम्बन्ध में सन्तों की किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। 'सन्त दादू दयाल' ने स्वयं स्वीकार किया है कि जो कबीर का कत है वही दादू का भी और वे मनसा वाचा कर्मणा उसी को वरण करते हैं। आगे चलकर वे उस परम-तत्व को केवल अपना ही स्वामी नहीं मानते, बल्कि सब का स्वामी स्वीकार करते है। यथा :—

'जो था कन्त कबीर का, सोई बर बरे हूँ।
मनसा वाचा क्रमना, और न करे हूँ॥
सबका स्वामी एक है, जाका प्रगट नाउँ।
दादू साहिब सोधि लै, ताकी मैं बलि जाउँ॥[2]

परम-तत्व के स्वरूप का निरूपण करते हुये मलूकदास जी, नामदेव, कबीर, नानक, गोरखनाथ आदि सभी सन्तो को अपने तथ्य के परिणामस्वरूप साक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं :—

हमारा सत गुरु बिरलै जानै।
सुई के नोक सुमेर चलावै, सो यह रूप बखानै॥
की तो जानै दास कबीरा, की हरिनाकस पूता॥
की तौ नामदेव औ नानक, की गोरख अवधूता॥[3]

इस तरह हम देखते है कि संत कवियों द्वारा 'परम तत्व' का जो निरूपण किया गया है उसमें बिलकुल ही वैज्ञानिकता एवं तार्किकता का अभाव है तथा स्वानुभूति की प्रचुरता है। वे परम तत्व को राम, रहीम, खालिक, खुदा, अलख, निरंजन, केशव, करीम, बीठुलराय, सत्त, सतनाम, अपरम्पार, निरगुन, निराकार,

---

१. दादू नैनहु आगे देषिये, आतम अन्तरि सोइ।
तेज पुंज सब भरि रह्या, झिलमिल झिलमिल होइ॥
—वही साखी ६१ पृष्ठ ५२।

२. वही २०. पीव पिछाणण कौ अंग साखी ६, १०, पृष्ठ २१७।

३. मलूकदास जी की बानी-बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद, पृ० १, शब्द २

आदि, अनंत, आदि अनेक नाम दिये हैं। इनका परम तत्व न तो हिन्दुओं के राम और कृष्ण के अवतारी रूप का पर्याय है और न सूफियो के इस्लामी 'अल्लाह' के ही इर्द-गिर्द चक्कर काटता है। वह एक ऐसी उन्मुक्त, सर्वशक्ति सम्पन्न, परम सत्ता है जो स्वतः अथवा अंश रूप में विश्व के कण-कण मे व्याप्त है। वह किसी धर्म या सम्प्रदाय के घेरे से बिलकुल ही बाहर है। संतों ने सत्य को परम-तत्व का बोधक माना है। इनके परम-तत्व (ब्रह्म) में सर्व-व्यापकता है। वह अनादि है। उसमें सीमा और परिमाण नाम की कोई वस्तु नहीं। वह अलख और निरंजन (निः + अंजन अर्थात् माया से मुक्त) है। इस संसार में उसके सिवा कोई दूसरा नहीं है। वह निर्गुण है, निराकार है।

संत साहित्य में सृष्टि तत्व (जीव, जगत् और माया)—दार्शनिकों ने सृष्टि तत्व के सम्बन्ध में अपने भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किये है। 'नासदीय सूक्त' में सृष्टि रचना की पूर्वावस्था का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानी नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥[1]

'अर्थात् प्रलयकाल में असत् नही था। सत्य भी उस समय नहीं था। पृथ्वी और आकाश भी नही थे। आकाश में स्थित सप्तलोक भी नहीं थे। तब कौन कहाँ रहता था? ब्रह्माण्ड कहां था? गम्भीर जल भी कहां था? उस समय अमरत्व और मृतत्व भी नहीं था। रात्रि और दिवस भी नहीं थे। वायु से शून्य और आत्मा के अवलम्ब से श्वास-प्रश्वास वाले एक ब्रह्ममात्र ही थे। उनके अतिरिक्त सब शून्य थे।'

ऋग्वेद के इन्ही कथनो के आधार पर आगे चलकर उपनिषदों मे सृष्टि की उत्पत्ति को भिन्न-भिन्न रूप से वर्णन किया गया। मनुस्मृति मे सृष्टि प्रारम्भ का वर्णन करते हुये लिखा गया है कि 'यह सबसे पहले तम से यानी अंधकार से व्याप्त था। भेदाभेद का ज्ञान नही हो सकता था। सब कुछ अगम्य और निद्रित-सा था।'

'आसीदिद, तमोभूतम् प्रज्ञातम् लक्षणम्।
अ प्रतक्यम् विज्ञेयं, प्रसुप्तमिव सर्वतः॥[2]

फिर उसमें परमेश्वर ने प्रवृष्ट होकर पहले पानी उत्पन्न किया। आदि-आदि।

---

१. ऋग्वेद मण्डल १०, अनुवाक् ११, सूक्त १२६ (ऋचा १,२), पृष्ठ १८३६

२. मनुस्मृति, अध्याय १, श्लोक ५

खैर वास्तविकता चाहे जो कुछ भी हो हमें इसके चक्कर में विशेष रूप से पड़ने की आवश्यकता नहीं है। सृष्टि तत्व पर विचार करते समय हमें मुख्य रूप से तीन बातो पर ही विचार करना है :—

(१) इस सृष्टि का मूल तत्व क्या है ?

(२) इस सृष्टि का कर्त्ता कौन है ?

(३) इसकी रचना किस क्रम और किस प्रकार हुई है ?

सृष्टि का मूल तत्व—जैसा कि हम ऊपर सकेत कर चुके है उपनिषदों के अनुसार जल (वृहदा०), वायु (छान्दोग्य०), अग्नि (कठ०), आकाश (छान्दोग्य०), असत् (तैत्तरीय०), सत् (छान्दोग्य०) सृष्टि के मूल तत्व माने गये है। कौन सा तत्व पहले हुआ और कौन सा बाद मे, सतो ने इस तथ्य पर विशेष जोर नही दिया है। कबीर इस सम्बन्ध मे केवल शका उठाकर मौन हो जाते है :—

प्रथमे गगन कि पुहमि प्रथमे प्रभु, प्रथमे पवन की पाणी।
प्रथमे चद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनाणी ॥
प्रथमे प्राण कि प्यंड प्रथमे प्रभू, प्रथमे रकत कि रेत।
प्रथमे पुरिष कि नारि प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज कि खेत ॥
प्रथमे दिवस की रैंण प्रथमे प्रभू, प्रथमे पाप कि पुन्य।
कहै कबीर जहाँ बसहु निरजन, तहा कुछ आदि कि सुन्य ॥[१]

सृष्टि का कर्त्ता—जहाँ तक सृष्टि के कर्ता का प्रश्न है सत कवियो ने एक स्वर से सृष्टि का कर्त्ता उस परम-तत्व को ही स्वीकार किया है। हा, इस सिद्धान्त पर संतो में मतभेद अवश्य है कि परम-तत्व इस सृष्टि मे स्वय भी व्याप्त है अथवा यह सृष्टि उसका अश मात्र है। सत कबीर' के अनुसार उस प्रभु ने केवल कहने सुनने के लिये ससार की रचना की। ससार उसकी इस माया मे भूल गया। कोई उसकी इस वास्तविकता को पहचान नही पाया। उस परम-तत्व ने सत, रज और तम तीन गुणो के आधार पर माया की सृष्टि की और अपने को उसी मे छिपा लिया।

'कहन सुनन को जिहि जग कीन्हा। जग भुलान सो किन्ह हूँ न चीन्हा।
सत रज तम थे कीन्ही माया। आपण मामै आप छिपाया ॥[२]

सृष्टि के लक्षणों का उल्लेख करते हुये संत कबीर ने बतलाया है कि सृष्टि जल की बूद की भाति नश्वर है। इसे पैदा होते और विनष्ट होते देर नहीं

१. कबीर ग्रथावली काशी सस्करण नवा, पृष्ठ १०७, पद १६४

२. वही रमैणी –पृष्ठ १७०

लगती ।[1] यदि इस सृष्टि में कुछ अमर तत्व है तो वह 'सत्' रूप 'परम ब्रह्म' ही है। जिस तरह कस्तूरी मृग की नाभि में विद्यमान रहती है और मृग उसे खोजने के लिये वन-वन घूमता-फिरता है, वैसे ही परमात्मा सृष्टि से घट-घट में विद्यमान है किन्तु दुनियां उसे देख नहीं पाती ।[2] 'संत रैदास' के अनुसार बट के बीज की भांति सूक्ष्म रूप में वह परम तत्व तीनो लोको में व्याप्त है । यह सृष्टि जहा से उत्पन्न हुई है नष्ट होकर फिर उसी रूप को प्राप्त होगी और यह जीव 'सहज शून्य' में विलीन हो जायेगा । जिस तरह जल में तुम्बा तैरता रहता है और उस पर कोई प्रभाव जल का नही पडने पाता, उसी प्रकार इस नश्वर पिंड में 'जीव' अमर है ।

'बट क बोज जैसा आकार । पसर्यो तीन लोक पासार ।।
जहं का उपजा तहां बिलाइ । सहज सुन्नि में रह्यो लुकाइ ।।
जल मे जैसे तुबा तिरै । परिचै पिउ जीव नहिं मरै ।।[3]

'कबीर' और 'रैदास' के विचार 'शकराचार्य' के अद्वैतवाद से बहुत कुछ साम्य रखते है जिनमें आत्मा 'अंश' और परमात्मा 'अंशी' रूप मे एक ही है । बीच मे माया के आ जाने से अज्ञान पैदा हो जाता है । जीव परमात्मा के महत्व को कम कर देता है और दुनियां को महत्व देने लगता है । वह माया के आधीन अपने को मान लेता है ।[4]

सिक्ख गुरुओ के मतानुसार सृष्टि की उत्पत्ति 'शून्य' (परम-तत्व) से ही हुई है फिर भी वह स्वयं निर्लिप्त है । उस प्रभु ने वायु और जल की रचना 'शून्य' से ही की है । अग्नि, जल, जीव, आदि उसी की ज्योति है ।

'सुंन कला अपरंपारधारी । आपि निरालमु अपर अपारी ।
आपे कुदरत करि करि देखे । सुनहुं सुंनु उपाइंदा ।।
पउन पाणी सुंने ते साजै । सृसटि उपाइ काइआ गड़ राजे ।।
अगिनि पाणी जीउ जोति तुमारी, सुनै कला रहाइदा ।।[5]

---

१. ज्यों जल बूंद तैसा संसारा । उपजत विनसत लगै न वारा ।।
—वही रमैणी पद १०४, पृष्ठ ६३

२. कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढै बन माहि । ऐसे घटि घटि राम है, दुनियां देखे नाहि ।। —वही कस्तूरियां मृग को अंग—साखी १ पृष्ठ ६४

३. रैदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग, पद १, पृष्ठ १, २

४. रामहिं थोड़ा जाणिकरि, दुनियां आगै दीन ।
जीवा को राजा कहैं, माया के आधीन ।।
—कबीर ग्रथावली काशी संस्करण—माया को अंग साखी १८, पृष्ठ २६

५. श्री गुरु ग्रंथ साहिब—मारु महला १, पृष्ठ १०३७

इसी 'शून्य' पृथ्वी और आकाश की उत्पत्ति हुई है। त्रिभुवन की उत्पत्ति भी इसी शून्य से हुई है। माया की रस्सी भी इसी 'शून्य' से हुई और फिर इसी शून्य में विलीन हो जाती है।[1] गुरु 'नानकदेव' के अनुसार वह प्रभु स्वयं ही देखता है। स्वयं ही सुनता है। स्वयं ही अपनी कुदरत (शक्ति-माया) सृष्टि रची है जो इसे अच्छे लगते हैं वही हुक्म प्रामाणिक हैं।

'आपै देखै, सुणै आपै ही, कुदरत करे जहानो।
जो तिस भावै नानका, हुकुम सोई परवानो ॥[2]

इस तरह गुरु नानक देव सृष्टि रचना का आधार परमात्मा का हुक्म मानते हैं। वे उसे सृष्टिकर्त्ता मानते हुये कहते हैं कि वह मालिक जिसने जगत् को प्रफुल्लित किया है और संसार को हरा-भरा बनाया है, सृष्टि रचना मे जिसने जल और पृथ्वी को बांधकर रखा है, धन्य है।

'सोई मउला जिनि लगि मउलिया हरिआ कीआ ससारो।
आब खाकु जिनि बधि रहाई धनुं सिरजण हारो ॥'[3]

सिक्ख गुरुओं ने परमात्मा को ही सृष्टि का कर्त्ता मानते हुये साथ ही साथ उसे कारण भी माना है। उनका विश्वास है कि उन्ही के अस्तित्व से सारी सृष्टि दृश्य रूप में प्रकट हुई है :—

'करण कारण प्रभु एक है दूसर नाही कोई ॥'
(गु० ग्र० सा० गउड़ी सुखमनी महला ५, पृष्ठ २७६)

तीसरे 'गुरु अमरदास' भी इसी मत की पुष्टि करते हुये उस परम-तत्व को ही सृष्टि का कर्त्ता और कारण मानते हैं। वे कहते है कि वही सृष्टि की रचना करता है और सृष्टि उत्पन्न करके उसे देखता रहता है। इस तरह एक परमात्मा ही सबमें रमण करता है। फिर भी वह अलक्ष्य है दिखाई नही पड़ता।

आपै कारण करता करे, सृसटि देखै आपि उपाई।
सम एको इकु बरतदा, अलखु न लखिआ जाई ॥[4]

अनेक स्थानों पर जो कहा गया है कि परमात्मा स्वय ही सृष्टि बना हुआ

---

१. सुंनहु धरति अकास उपाए। ..
त्रिभवण साजि मेखुली माइआ, आपि उपाइ खपाइदा ॥
—श्री गुरु ग्रंथ साहिब

२. नानक बाणी—सं० डा० जयराम मिश्र—पृष्ठ १२९, पद ३१

३. वही पद २७, पृष्ठ १२६

४. श्री गुरु ग्रंथ साहिब सिरी रागु महला ३, पृष्ठ ३७

है। वह आप ही अंडज, जरायुज, स्वेदज, और उद्भिज बना हुआ है। आप ही सृष्टि के खण्ड और सारे लोक बना हुआ है।[1] सिक्ख गुरुओं के सृष्टि उत्पत्ति और लय सम्बन्धी विचार उपनिषदो में वर्णित सृष्टि उत्पत्ति और लय के नियमो से बहुत कुछ साम्य रखते है।[2]

'सत दादूदयाल' भी सृष्टि का मूल स्रोत उसी परम-तत्व को ही मानते है। उनका कथन है कि 'जहाँ से चन्द्रमा, सूर्य, आकाश, पानी, पवन, अग्नि और पृथ्वी का प्रकाश पैदा हुआ, जहाँ से जीव, कर्म, मृत्यु, माया, और सशय की उत्पत्ति हुई वहाँ सबसे निर्लिप्त रहते हुये भी सबमे रमण करने वाला 'राम' सहज 'शून्य' रूप में विद्यमान है।'

दादू जहां थै सब ऊपजै, चद सूर आकास।
पाणी पवन पावक किये, धरती का प्रकास॥
काल करम जीव उपजै, माया मन घट सास।
तहां रहिता रमिता राम है, सहज सुनि सब पास॥[3]

सृष्टि रचना के सबध मे 'सत दादू दयाल' का कथन है कि वह सब कुछ समर्थ सृष्टिकर्त्ता प्रभु पाखण्ड रूप से पृथ्वी और माया (परपच) रूप में इस ससार (सृष्टि) की रचना की।

दादू साचे का साहिब घणी, समरथ सिरजन हार।
पाषंड कीयहु पृथ्वी, परपच का ससार॥[4]

'सन्त कवि रज्जब जी' के विचार 'कबीर' और 'दादू' के विचारो मे सर्वथा भिन्न है। वे परम-तत्व को सृष्टि रूप में नही देखते। वे उस 'अकल पुरुष को सृष्टि से परे मानते है। उनका विश्वास है कि सृष्टि सब गुण रहित 'राम' का ही सर्जना है जिसमे उन्ही की माया काम कर रही है।

तन कन बाइक हू बिना, माया करै सुकाम।
रज्जब सिरजी सिष्टि यू, सब गुण रहती राम॥[5]

'रज्जब' जी ने ब्रह्म को चेतन रूप माना है जिसने जड और जीव क

---

१. आपै अउज, जेरज, सेतज, उतभुज, आपै खड आपै सम लोइ।
—गुरु ग्रथ साहिब—सोरठि महला ४, पृष्ठ ६०५
२. श्री गुरु ग्रथ दर्शन—डा० जयराम मिश्र, पृष्ठ १११
३. दादू दयाल-स० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—पृष्ठ ४८, पद ४६
४. वही, साखी १३६, पृष्ठ १६५
५. रज्जब बाणी — डॉ० ब्रजलाल वर्मा, साखी भाग, पृष्ठ १२१, पद ५

जागृत किया। भ्रम से सृष्टि की इसी चैतन्यावस्था को लोग परमेश्वर मान बैठते हैं किन्तु वास्तव में यह उस परम-ब्रह्म की कला मात्र है। यह चेतनता स्वयं ब्रह्म नहीं है। 'अकल पुरुष' तो इन सबसे परे है। उसमें 'कला' नाम की कोई वस्तु नहीं है।

चेतन नै जड जीव जगाया, लोग कहै परमेस्वर आया।
रज्जब देखि कला यह उरै, अकल पुरषि याहूँ ते परै ॥[1]

'सन्त सुंदरदास' तो ब्रह्म की अखण्ड सत्ता स्वीकार करते हुये जगत् (सृष्टि) को भी उसी का रूप मानते हैं।

सुंदर कहत यह एकई अखण्ड ब्रह्म,
ताही को पलटि कै, जगत नाम धरयो है।

संसार को ब्रह्ममय मानने वाले 'सुंदरदास' जी का कहना है कि जिस तरह मृत्तिका से बने बर्तन को देखकर बर्तन का ही ज्ञान होता है कोई उसे मृत्तिका नही कहता। सोने से बने हुये आभूषण को देखकर कोई उसे मात्र सोना नही कहता उसे आभूषण नाम से ही पुकारता है। वृक्ष की मूल स्थिति बीज है फिर भी कोई बीज की ओर ध्यान नहीं देता। सभी वृक्ष को ही देखते है। ठीक उसी प्रकार ब्रह्म ही जगत् (सृष्टि रूप) में व्याप्त है फिर भी वह दूर जान पड़ रहा है :—

मृत्तिका समाइ रही भाजन के रूप मांहि,
मृत्तिका कौ नाम मिटि भाजन ई गह्यो है।
कनक समाइ त्यौंही होइ रह्यो आभूषन,
कनक न कहै कोऊ आभूषन न कह्यो है॥
बीज ऊ समाइ करि वृक्ष होई रह्यो पुनि
वृक्ष ई को देखियत बीज नहिं लह्यो है।
सुन्दर कहत यह यौंही करि जानौ सब,
ब्रह्म ई जगत होइ, ब्रह्म दूर रह्यो है ॥[2]

निरंजनी सत हरिदास' जी भी सृष्टि कर्त्ता सर्वज्ञ विश्वेश्वर को विश्व से ऊपर मानते हुये सर्वत्र उन्हीं का एकमात्र विस्तार मानते है। उनका कहना है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, अशेष, वनस्पति, चौदह भुवन, आकाश, पाताल, मृत्युलोक, सातों समुद्र. आठो पर्वत, और सभी नदियो मे वही कभी लुप्त न होने वाला परम ब्रह्म निवास करता है।

आलभ पलक ऊपरैं षालिक, कर्त्ता करण वरण विस्तार।
बसुधा वुया, अगिन तसवाई, रवि ससि सोभा भार ऊठार॥

---

१. वही, पृष्ठ ११३, पद ४३

२. सुन्दर दर्शन—डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, पृष्ठ २२७

चौदा भवण भवण गुण ग्रामी, ताश मण्डल रचण त्रिय लोक।
सागर सपत, अष्ट गिरिपरवत, नदी निवासै वही अलोप ॥[1]

निरंजनी संत 'तुरसीदास' भी सिद्धान्ततः 'कबीर' की भांति अद्वैतवादी होने के कारण परमात्मा, जीव, और माया के अस्तित्व को मानते हैं। जीव परमात्मा का अंश है। सन्त 'तुरसीदास' के मत से परमात्मा और जीव में भद इतना ही है कि परमात्मा प्रकृति अथवा माया से परे है किन्तु जीव प्रकृति या माया में लिप्त है।

आतम परमातम को, यतनोई भेद विचार।
प्रमातम प्रकृति परे, आतम प्रकृति मंझार ॥[2]

जीव की उत्पत्ति प्रकृति (माया) और पुरुष (ब्रह्म) के संयोग से इच्छा न रहते हुये भी ठीक उसी प्रकार हो जाती है जिस प्रकार वृक्ष की इच्छा नहीं होती फिर भी बीज जब भूमि पर गिरता है तो वह अपने आप उग आता है।

तरिवर के अंछा नहीं, बीज पर्यो में मीर।
तुरसी उगि उदै जु करी, होइ तरवर एक ठौर ॥

सृष्टि का क्रम—सन्त काव्य मे सृष्टि विकास क्रम का व्यवस्थित रूप उपलब्ध नहीं है। कबीर के सृष्टि सम्बन्धी विभिन्न तंतुओं को क्रमबद्ध करके सृष्टि क्रम का आभास मात्र प्राप्त किया जा सकता है। कबीर ने सृष्टि के पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुये कहा है कि उस समय नाम रूप हीन अविगत तत्व विद्यमान था। इसी अविगत तत्व से पंच भूतों की उत्पत्ति हुई।

पंच तत अविगत थें उत्पना एकै लिया निवासा।
बिछुरे तत फिर सहज समाना, रेख रही नहिं आसा ॥[3]

संत कवि दादू ने ब्रह्म से ओंकार एवं ओंकार रूपी ब्रह्म से पंच तत्व की उत्पत्ति मानी है :—

पहले कीया आप थै, उत्पत्ती ऊंकार।
ऊँकार थ उपजै, पंच तत्त आकार ॥[4]

सुन्दर दास ने ब्रह्म से पुरुष एवं प्रकृति के उत्पन्न होने की चर्चा की है तथा प्रकृति से क्रमशः महतत्व एवं अहकार की उत्पत्ति मानी है।[5] इस तरह हम

---

१. श्री महाराज हरिदास जी की बानी–सं० श्री मगलदास स्वामी परम विधुस जोग ग्रथ, पृष्ठ ८०
२. निरंजनी सम्प्रदाय और सत तुरसीदास निरजनी–डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ५०
३. पदावली—४४, पृष्ठ ८०।
४. सन्त बानी सग्रह— भाग १, पृष्ठ ७७।
५. सुन्दर ग्रंथावली खन्ड २, पृष्ठ ५६०।

देखते हैं कि सन्तों की दृष्टि में सृष्टि का यह क्रम उपनिषदों से प्रभावित है। केवल 'सुन्दरदास' ने सांख्य के मतानुसार प्रकृति से महत्त एवं अहंकार की उत्पत्ति का उल्लेख किया है किन्तु वे भी सृष्टि का मूलाधार पर ब्रह्म ही मानते हैं। इस तरह सन्तों का सृष्टि क्रम परम्परानुकूल ही है किन्तु साम्प्रदायिक सन्तमत के सृष्टि विज्ञान के अनुसार सत्य पुरुष के षोड़स पुत्र एवं निरंजन ज्योति की कथा से सम्बन्धित सृष्टि क्रम की चर्चा भी कबीर के परवर्ती सन्तों ने की है। बाद के सन्तों ने और औपनिषदीय सृष्टि क्रम की अपेक्षा साम्प्रदायिक सृष्टि क्रम को ही अधिक मान्यता दी है।

परमात्मा माया से उत्पन्न रज, सत, तम इन त्रिगुणों से क्रमशः सृष्टि पैदा करता है तथा उसका पालन-पोषण और संहार करता है फिर भी वह इन त्रिगुणों से अलिप्त रहता है।[१] वास्तव में सृष्टि का क्रम यही है। जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके है सृष्टि के तत्वों में कौन-सा तत्व पहले हुआ और कौन-सा तत्व बाद में इसके चक्कर में पड़ना अनावश्यक है। 'सन्त कबीर' की भाँति ही सन्त सिंगा जी भी संसार को नश्वर मानकर कहते है कि यह संसार बिल्कुल असार है। जिस तरह प्रातःकालीन दुर्वादल पर पड़ा हुआ ओस की मोती अत्यन्त ही आकर्षक होते हुये भी क्षण-भंगुर होता है ठीक उसी प्रकार यह संसार क्षण में ही होने वाला है।

ये संसार असार है, बहै जो मत भाई।
जैसा मोती ओस का, गल में घुल जाई ॥[२]

'सन्त सिंगा जी' के विचार शंकराचार्य के मायावाद से भिन्न है। जहां शंकराचार्य 'ब्रह्म' को माया मय सृष्टि का आधार मानते हैं। सन्त सिंगा जी' सब कुछ ब्रह्ममय ही मानते है। वे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म के पूर्णत अनुयायी हैं। उनके मतानुसार सारी सृष्टि का रचयिता एकमात्र वह परब्रह्म ही है। उसके सिवा दूसरा कोई सृष्टिकर्त्ता नहीं है। यह प्रकृति रूप सारा शरीर उसी जीव रूप ब्रह्म में है। प्राण अमर है और शरीर सब नश्वर है।

---

१. रजगुन करि संसार उपावै, सतगुरु करि पोषे पल्हरावै।
तुरसी तम गुन करि संहार, आपन रहे तिहूँ से न्यार ॥
—निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसी दास निरंजनी—डॉ० भगीरथ मिश्र पृ० ५०।

२. निमाड़ के सन्त सिंगा जी—डॉ० रमेशचन्द्र गंगराडे, पृष्ठ १२१।

सिंघा एक पुरुष की रचना सारी। किया नान्ह विस्तार।
ग्यान द्रष्टि देखिया, दूजा नहिं सिरजन हार ।।
प्राण भीतर तन है सारा। प्राण अमर तन सब छारा ।।[1]

'सन्त मलूकदास जी' भी ब्रह्म को सारी सृष्टि का कर्त्ता, भर्ता और संहर्त्ता मानते हैं तथा सारी सृष्टि को चाहे वह स्त्री हो, चाहे पुरुष ब्रह्ममय ही मानते हैं :—

हमहीं जियावै हमही मारैं, हमही बोरे-हमही तारैं।
जहाँ जहाँ सब जोति हमारी, हमहीं पुरुष हमहिं है नारी ।।[2]

अर्थात् हम ही सृष्टि को जिलाते हैं, हम ही उसका संहार करते हैं। हम ही उसे डुबो देते है, हम ही उसका उद्धार करते है। जहाँ-जहाँ प्रकाश है वह हम ही है। हम ही पुरुष और स्त्री रूप में सर्वत्र व्याप्त है। इस तरह मलूकदास जी की दृष्टि में भी सृष्टि परमात्मा की इच्छा का परिणाम है साथ ही साथ वह उसका अंश भी है जो माया से लिप्त होकर ब्रह्म से पृथक् हो चुका है।

सन्त साहित्य में माया-तत्व—यद्यपि ब्रह्म और जीव में अभेद भावना का समावेश है, दोनो एक ही सत्ता के द्योतक है फिर भी व्यावहारिक रूप मे दोनो पृथक्-पृथक् से जान पड़ते है। ब्रह्म और जीव के बीच भेद उत्पन्न करने वाली शक्ति का नाम ही 'माया' है। 'माया' ही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण है। वेदान्त शास्त्र मे माया परमात्मा द्वारा निर्मित और उसके आधीन मानी गई है।[3] जिस तरह उष्णता अग्नि के कारण होती है उसी तरह माया परमात्मा द्वारा उत्पन्न की गई है। इसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है।[4] सन्त साहित्य मे 'माया' का मानवीकरण ठगिनी, डाकिनी, सबको खाने वाली नागिन देवता मुनि, पीर, जैन, जोगी, दिगम्बर आदि सबका शिकार करने वाली अहेरिन के रूप मे किया गया है। इस माया को सारी सृष्टि मे व्याप्त माना गया है। पाँच इन्द्रियों और पच्चीस प्रकृतियों के बल पर यह सारे ससार के जीवों का सहार करती है। सन्त कवियो के लिये यह माया ब्रह्म की ही भाँति अनिर्वचनीय और निराकार है। 'सन्त कबीर' ने माया का निरूपण 'सद्' और 'असद्' दोनों रूपो में किया है। एक तरफ यदि वह 'आंगणि बेलि' बन कर सारे संसार मे फैली हुई है तो दूसरी ओर उसका फल 'आकाश' में है। तात्पर्य यह कि माया निस्सार है। उससे कोई भी प्रयोजन

---

१. निमाड़ के सन्त सिंगा जी—डॉ० रमेशचन्द गंगराडे, पृ० १३, पद १३५, १३६
२. मलूकदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग २४ शब्द (मिश्रित)
३. गीता रहस्य अथवा कर्मयोग शास्त्र, बाल गंगाधर तिलक, पृ० २६२-६५
४. इण्डियन फिलासफी—डॉ० राधाकृष्ण भाग २, पृ० ५७२

सिद्ध होने को नहीं। वह बिना ब्यायी गाय के दूध, शशक की सींग का धनुष और बन्ध्यापुत्र की काल्पनिक क्रीड़ा की भांति अस्तित्व विहीन और काल्पनिक है।

'आंगणि बेलि अकासिफल, अण ब्यावर का दूध।
ससा सींग की धूनहड़ी, रमै बाझ का पूत।।'[1]

इस माया रूपी लता का परिणाम भी विचित्र है। काटने पर लहलहा उठती है किन्तु सींचने पर मुरझा जाती है अर्थात् जो माया से बच निकलने की सोचते हैं उन्हें माया किसी न किसी रूप में निश्चय ही दबोच लेती है किन्तु इसके विरुद्ध यदि भगवद्-भक्ति रूपी जल से सिंचन किया जाय तो यह अपने आप मुरझा जाती है। ऐसी गुणशीला माया का वर्णन अकथनीय है।

'जो काटो तो डहडही, सींचो तो कुमिलाइ।
इस गुणवन्ती बेलि का, कुछ गुण कहा न जाइ।।'[2]

'सन्त कबीर' ने अन्यत्र माया को पापिनी, मोहिनी, सर्पिणी, डाकिनी, ठगिनी आदि अनेक नामों से सम्बोधित किया है। इसे सत, रज, तम तीनों गुणों से सम्पन्न एक वृक्ष माना गया है जिसकी दुःख और सन्ताप नाम की दो शाखायें मानी गई है। इसका फल फीका है जिससे रंच-मात्र भी शीतलता नहीं प्राप्त होती।

माया तरुवर त्रिविध की, साखा दुख सन्ताप।
सीतलता सपुनै नही, फल फीको तनि ताप।।[3]

कबीर से पूर्व सन्त कवि 'नामदेव' ने भी माया को शक्तिशालिनी और भ्रामक माना है। वे इस माया को उसी ब्रह्म द्वारा निर्मित मानते हैं तथा उनका विश्वास है कि माया के भीतर ब्रह्म की सत्ता विद्यमान है किन्तु ब्रह्म स्वयं इससे परे है।[4] 'नामदेव' कहते हैं कि हे प्रभु माया तुम्हारी दासी है। उसने कपट करके जड, चेतन सभी को अपने वश में कर लिया है किन्तु माया का प्रभाव ऐसा है कि वह आपसे हमें परिचित नही होने देता।

रामदेव तेरी दासी माया, नाटी कपट कीन्हा।
थावर जङ्गम जीति लिया है, आपा पर नांहि चीन्हा।।[5]

---

१. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण—बेलि को अङ्ग—साखी ४, पृ० ६८
२. वही, पृ० ६७, साखी ३
३. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण—माया को अङ्ग—साखी २०, पृ० २६
४. बीहो बीहो तेरी सबल माया। आगे इनि अनेक भरमाया।
माया अन्तर ब्रह्म दीसै। ब्रह्म के अन्तर माया नहिं दीसै।।
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली—डॉ० भगीरथ मिश्र, पद ३६, पृ० १६
५. वही; पृ० २२, पद ५२

'सन्त रैदास' भी माया को ब्रह्म द्वारा निर्मित मानते हुये उसकी विकटता, 'विकरालता आदि को स्वीकार करत हैं। वे कहते हैं कि माया सर्पमुखी सुविषांगना, (विषकन्या) की भांति सबको ग्रस रही है। यह जीवरूपी बगुला, मोह, माया और लोभ-रूपी मछली को देखकर व्याकुल हो रहा है। माया के कारण ही जीव इन्द्रिय जनित नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है। असंख्य पापों को करता है। जो प्रभु को याद करते हैं उन्हें किसी प्रकार का सन्ताप या त्रास नहीं होता।

केसवे विकट माया तोर, ताते विकल गति मति मोर।
सुविषङ्ग सन कराल अहि मुख, ग्रसति सुटल सुमेष ॥
निरखि माखी वकै व्याकुल, लोभ कालर देख।
इन्द्रियादिक दारुन असंख्यादिक पाप ॥
तोहि भजन रघुनाथ अन्तर ताहि त्रास न ताप ॥[1]

वेदान्तियों और कबीर आदि अन्य सन्त कवियों की भांति सिक्ख गुरुओं को भी माया का स्वतन्त्र अस्तित्व मान्य नहीं है। वे माया की रचना परमात्मा के 'हुकुम' से मानते है :—

'निरंकार आकास उपाइया। माइआ मोह हुकुम बणाइआ ॥'[2]

सिक्ख गुरू 'नानकदेव' परम-तत्व का निरूपण करते समय उसे निरंजन (माया रहित) नाम देते हैं और कहते है कि उसी न अपने आपको सृष्टि के रूप में उत्पन्न किया है। उसी ने सृष्टि रूपी खेल की रचना की है। सारा जगत् उसी की रचना है। उसी ने सत, रज, तम त्रिगुणों को पैदा किया जिसके द्वारा माया के मोह की वृद्धि हुई।

आपै आप निरंजना, जिनि आपु उपाइआ।
आपै खेल रचाइओन, समु जगत समाइआ ॥
त्रैगुण आपि सिरिजिअनु, माइआ मोह वधाइआ ॥[3]

माया का विस्तार— माया के विस्तार की चर्चा करते हुये सिक्ख गुरुओं ने बतलाया है कि माया ने ही अपने त्रिगुणों से तीन पुत्रों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) को जन्म दिया। जिसमें एक संसार का निर्माता है, एक पोषक है और एक संहार-कर्त्ता है। वह परम-तत्व अपनी इच्छानुसार विश्व का संचालन करता रहता है।

---

१. रैदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग पद ३२ पृ० १६
२. श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन—डॉ० जयराम मिश्र, पृ० १४६
३. नानक बाणी—सं० डॉ० जयराम मिश्र, पृ० ७२६ सारङ्ग की वार महला १ पउड़ी

त्रिगुणातीत होने के कारण परम-तत्व तो सबको देखता है किन्तु स्वयं वह किसी को दिखाई नहीं देता।

एका माई जुगति बिआई तिनि चेले परवाणु।
इकु संसारी, इकु भण्डारी, इकु लाये दीवाणु।
जिव तिस भावै तिवै चलावै, जिव होवै फुरमाणु।
ओहु देखै ओ ना नदरिन आवै बहुता एतु विडाणु॥[1]

माया को सिक्ख गुरुओ ने 'स्त्री' शक्ति 'कुदरत' दासी आदि कई नामों से पुकारा है।[2] शंकराचार्य ने भी माया को शक्ति और प्रकृति की संज्ञा दी है।

माया का स्वरूप—माया की दो शक्तियां मानी गई हैं :—

(१) आवरण शक्ति (भ्रम मे डालना)

(२) विच्छेप शक्ति (उत्पन्न करके दिखलाना)

माया के स्वरूप का निरुपण करते हुये सिक्ख गुरु 'अर्जुनदेव' ने कहा है कि मायारूपी स्त्री के मत्थे मे त्रिकुटी है। इसकी दृष्टि बड़ी क्रूर है। जिह्वा की फूहड होने के कारण सदैव कटु बचन बोला करती है। वह सदा भूखी रहती है और प्रिय को अपने से दूर समझती है। राम ने माया रूपी ऐसी स्त्री की रचना की है जिसने सारे संसार को खा डाला। किन्तु गुरु ने मेरी रक्षा की है—

माथै त्रिकुटि, दृसटि करूरि। बोलै कउड़ा जिह्वा की फूड़ि॥
सदा भूखी पिरु जानै दूरि॥
ऐसी इसत्री इक रामि उपाई।
उनि समु जगु खाइआ हम गुरि राखे मेरे भाई॥[3]

माया का रूप असीम बतलाया गया है। वह नाना प्रकार के रूप धारण करके संसार को ठगा करती है।[4] सिक्ख गुरूओं ने भी माया को 'भ्रम की दीवाल', अज्ञान का जंगल, सास, जाल, सर्पिणी आदि अनेक रूपको के माध्यम से अभिव्यक्त करके उसकी प्रबलता एवं सर्व-व्यापकता का परिचय दिया है। इसी माया की प्रबलता के कारण दादू के विचार से जीव को अहंकार हो जाता है जिससे वह

१. वही जपु जी ३०, पृ० ६४

२. सिवि सकति मिटाइआ चूका अंधिआरा।
—श्री गुरू ग्रन्थ साहिब—गउड़ी वैरागिन महला ३, पृ० १६३

३. वही आसा महला ५, पृ० ३६४

४. तृसना माइआ मोहणी सुत बन्धप घर नारि।
धनि जोबन जगु ठगिया, लबि लोभी अहंकारि॥
—वही, सिरी रागु महला १, पृ० ६१

अन्धा हो जाता है उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। सृष्टिकर्त्ता (परम ब्रह्म) कर ही क्या सकता है ?

दादू माया का बम देषि के, आया अति अहंकार।
अंध भया सूझै नहीं, का करिहै सिरजन हार॥[1]

'सन्त दादू दयाल' माया को 'बाजीगर की पुतली' मानते है जिसे देखकर बन्दर रूपी जीव मोहित हो जाता है। वे कहते हैं कि यह 'राम' की ही माया है जिसने सारे संसार को भ्रम मे डाल रखा है[2] इस माया का विनाश तब तक नहीं होता जब तक ब्रह्म ज्ञान का प्रकाश प्रकट नही होता। जब तक घट मे 'ब्रह्म' प्रकट नहीं होता तब तक माया मंगल-गान करती रहती है।

जिहिं घट ब्रह्म न प्रकटै, तहां माया मंगल गाइ।
दादू जागे जोति जब, तब माया भ्रम बिलाइ॥[3]

माया का निरूपण करते हुये सन्त कवि 'रज्जब' जी कहते हैं कि मन माया के बन्धन में आकर ठीक उसी प्रकार स्थिर नहीं रह सकता जिस प्रकार कुम्हार के चाक पर मिट्टी का लोंदा स्थिर नही रहता। माया के मिलने पर भी दुःख होता है और बिछुड जाने पर भी प्राणो से उसी प्रकार हाथ धोना पड़ता है जिस प्रकार धार तेज करने वाली रेती के आने और जाने दोनो मे आरे की क्षति ही होती है।

मन माया सों अंधिकरि, निहचल कदे न होइ।
रज्जब पीडा चाक पर, अस्थिर सुणा न कोइ॥
रज्जब माया मिलत दुख, बिछुरत बिरहै प्रान।
करवत रेती साण कै, आवण-जावण जान॥[4]

कवि 'सुन्दरदास' तो माया को ब्रह्म का ही स्वरूप मानते है। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है यह सारा संसार माया रूप मे उसी अखंड ब्रह्म का ही पर्यायवाची है।[5] निरंजनी सन्त हरिदास जी माया को एक 'विष वृक्ष'

---

१. दादू दयाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० १२६, माया कौ अंग साखी—१५

२. बाजीगर की पूतली, ज्यों मरकट मोह्या।
दादू माया राम की, सब जगत विगोया॥
—वही पृष्ठ १४० माया कौ अंग साखी—१०८

३. वही साखी १०६, पृष्ठ १४०

४. रज्जब वाणी, सं० डॉ० ब्रजलाल वर्मा, माया का अंग, साखी ४, ५, पृष्ठ २२८

५. सुन्दर सार, सं० पुरोहित हरिनारायण बी० ए०, पृष्ठ २५१, जगन्मिथ्या को अंग, पद ५

मानते है जिसे अगम और असीम कहते हैं। इसे पाकर चारों प्रकार के जीव (अंडज, पिंडज, स्वेदज और उद्भिज) अपने को सुखी मानते हैं। जहाँ असीम सुख वाले प्रभु रहते हैं वहाँ तक नही पहुँच पाते। इस विषय पर नाना प्रकार के धर्म पंथों द्वारा शोध किये गये किन्तु कोई सफलता नही मिली।

माया दरषत जहर फल, अगम बार नहिं पार।
च्यारि षाणिका जीवन सब, गरक-फरक विस्तार॥
गरक-फरक विस्तार, षुसी षैले ता माहि।
जनु हरीदास हरि सुष अगम, तहां तै पहुँचै नाहि॥
षट दरसण उड़ि-उड़ि थक्या, विविध पंष उरिभार।
माया दरषत जहरफल, अगम बार नहिं पार॥[1]

'सन्त तुलसीदास जी निरंजनी' माया को अनादि मानते हैं जो अपने सहज स्वभाव से ही जगत् को परम पुरुष का सम्पर्क प्राप्त करके उत्पन्न करती है।

अनादि माया ब्रह्म की अपने सहज सुभाय।
उपजावै संसार कू, पुरुष संपरक पाय॥[2]

सन्त कवि सिंगा जी ने माया को सारे संसार का फंदा माना है। इसी माया के फंदे मे पड़कर जीव अंधा हो जाता है और कनक तथा कामिनी के पीछे वह लट्टू हो जाता है। इस माया ठगिनी ने सारे विश्व को खा डाला है। देवता, ब्रह्मा, आदि सभी को इसने नाच नचा दिया है—

और सकल सब माया को फंदा। कनक कामिनी से वे नर अन्धा।
माया ठगोरी ने सब जुग खाया। देव ब्रह्मा सबही नचाया॥[3]

सन्त कबीर ने भी माया को 'फंदा' नाम से सम्बोधित किया है।[4] कबीर की भाँति 'सन्त सिंगा जी' ने भी आत्मा और परमात्मा के मिलन मे माया

---

१. श्री महाराज हरिदास जी की वाणी, सं० मंगलदास स्वामी, पृ० ३१४, माया कौ अंग, पद २

२. निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसीदास निरंजनी, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ५१

३. निमाड के सन्त सिंगा जी, डॉ० रमेशचन्द गंगराडे, सिंगाजी की परचुरी, पृ० ८१, पद ११

४. कबीर माया पापणी, फंदा ले बैठी हाटि।
सब जग तो फंदै पड़्या, गया कबीरा काटि॥
—कबीर ग्रन्थावली-काशी संस्करण–माया कौ अंग, साखी २, पृष्ठ २५

के आवरण को ही बाधक माना है। माया में फँसे संसार को 'सिंगा जी' ने उस हिरणी का रूपक माना है जो बकरी (माया) को ही माँ समझ बैठा है।

भूली हरणी बात न जाणी। बकरी कूं माये न मानी ॥[1]

सन्त मलूक दास' भी माया को काली नागिन मानते हैं जिसने सारे मय का दर्शन कर लिया है। इन्द्र, ब्रह्मा, नारद, व्यास, शिव आदि जिसके नाम ... भी घड़ी यह बैठ गई सबको अपने वश में कर लिया।

माया काली नागिनी, जिन डसिया सब संसार हो।
इन्द्र डसा ब्रह्मा डसा, डसिया नारद व्यास हो॥
बात कहत शिव को डसा, जेहि धरि एव. बैठे पास हो॥[2]

इस तरह सन्तों का मायावाद शंकर के मायावाद से प्रभावित तो है ही साथ ही साथ उस पर सूफी प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। जहा तक माया को अनिर्वचनीय और भ्रममूलक मानने का सम्बन्ध है यह शंकराचार्य के मायावाद का प्रभाव है। माया का त्रिगुणात्मक रूप सांख्य प्रभाव का द्योतक है किन्तु जहा माया शैतान की भांति जीव को उसकी साधना से विरत कर कुमार्ग पर ले जाती है यह भारतीय प्रभाव का द्योतक नहीं है। इस विषय पर हम आगे विस्तार से प्रकाश डालेगे।

संत साहित्य में साधना का स्वरूप—परम तत्व जीव, जगत् और माया के निरूपण के पश्चात् परम तत्व की उपलब्धि के लिये संतो ने जो व्यावहारिक मार्ग अपनाया उसे 'साधना' नाम दिया गया। 'साधना' शब्द से तात्पर्य उस क्रिया से है जो किसी उद्देश्य विशेष की सिद्धि के लिये स्थिर भाव से पूर्ण आस्थापूर्वक, अविच्छिन्न रूप से की जाय। साधना की क्रियाओ के माध्यम से ही व्यक्ति आत्मानुसंधान के मार्ग में अग्रसर होता है जो आगे चलकर आत्मा को परमात्मा से साक्षात्कार कराने में समर्थता प्रदान करती है। साधारणतः मनुष्य की चेतनाएँ बहिर्मुखी होती हैं। समुचित मनोनिग्रह द्वारा चारों ओर से बिखरी चेतनाओं को अन्तर्मुखी बनाकर एक लक्ष्य की ओर केन्द्रित कर देना ही साधना का मुख्य उद्देश्य होता है। संतों की यह साधना अत्यंत ही विषम और विकराल है। इसके लिए सन्तों को पृथक्-पृथक और एक साथ कई मार्गों का अनुसरण करना पड़ता है।

सन्त-साधना के विविध मार्ग—ऋषि प्रार्थना के अनुसार वेद मार्ग, सांख्य

---

१. निमाड़ के संत कवि सिंगा जी—डॉ० रमेशचन्द गंगराडे-सिंगा जी महाराज के दृढ़ उपदेश, पृ० १८, पद १६३

२. मलूकदास जी की बाणी—बे० प्रे० प्रयाग—मन और माया के चरित्र शब्द, १, पृ० ६

...ग, पाशुपत मत, वैष्णव मत आदि सभी भगवत्-प्राप्ति के मार्ग बतलाये गये हैं। ...स वैचित्र्य के कारण ही यह श्रेष्ठ है, वह श्रेष्ठ है इस प्रकार का उनमें परस्पर ...क्य प्रतीत होता है। जैसे समस्त नदी-नालों का जल समुद्र में ही जाता है वैसे ...धे टेढे सभी साधना मार्गों से यात्रा करने वाले मनुष्यों के गंतव्य स्थान एकमात्र ... परम पद ही है।[1] मुख्य रूप से परम पद की प्राप्ति के लिये जो साधना मार्ग ...ताये गए है उनका समाहार किसी न किसी रूप मे जैसा कि पहले कहा जा चुका ... इन निम्नलिखित मार्गों द्वारा हो जाता है :—

(१) ज्ञान मार्ग।

(२) कर्म मार्ग।

(३) योग मार्ग।

(४) भक्ति मार्ग—(क) दास्य भाव, (ख) सख्य भाव, (ग) वात्सल्य भाव, दाम्पत्य भाव

समय-समय पर किसी एक मार्ग को प्रधानता और शेष को गौण स्थान मिलता रहा। कभी-कभी इन सभी मार्गों मे परस्पर समन्वय भी स्थापित करने की चेष्टा की गई, किन्तु कभी भी इन मार्गो मे पारस्परिक विच्छिन्नता नही आने पाई। ये परस्पर एक-दूसरे के पूरक समझे जाते रहे। भले ही इनका विकास स्वाभाविक ढंग पर हुआ हो। साधना के उपरोक्त विभिन्न मार्गों का पृथक-पृथक् अस्तित्व होते हुये भी इनका पारस्परिक सम्बन्ध नीर-क्षीर की भाँति इतना अविच्छिन्न हो गया है कि किसी एक मार्ग की विवेचना करते समय किसी दूसरे मार्ग को उससे पृथक् दिखला पाना कठिन है। अतः साधना के उपरोक्त मार्ग साधना के अंग भी कहे जा सकते है। जिनका विकास भी ज्ञान, कर्म, योग, भक्ति और प्रेम इसी क्रम से साधना मार्ग में हुआ करता है। आगे हम इन्ही तत्वो पर पृथक्-पृथक् विचार करेगे :—

(१) **ज्ञान तत्व**—ज्ञान मार्ग से तात्पर्य साधारणत. उपनिषदों के 'ब्रह्मवाद' या अद्वैतवाद से है इसके अनुसार जीव-मुक्ति ज्ञान द्वारा ही सम्भव मानी गई है। जैसा कि हम पहले बता चुके है इस अद्वैतवाद के प्रमुख प्रचारक आदि गुरु शंकराचार्य (आठवीं शताब्दी) थे। हमारे हिन्दी सन्त कवि भी इसी 'ज्ञान मार्ग' से प्रभावित हैं किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि हमारे मध्ययुगीन हिन्दी सन्त कवियो ने वेदों और उपनिषदो का सांगोपांग अध्ययन किया था। वे तो पहले ही उद्घोषित कर चुके है कि · "मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहि हाथ।" नीच कुल में

---

१. कल्याण का साधना अंक—मुख्य पृष्ठ से उद्धृत।

उत्पन्न अपढ़ हिन्दी सन्त कवियों को वेदों और उपनिषदों के पठन, चिंतन और मनन का अवसर ही कहाँ मिला जो उपनिषदों के ज्ञान-तत्व का अनुसरण करते। फिर भी जहाँ तक सम्भव हो सका ये उपनिषदों के उस ज्ञान-तत्व को समझने और उस पर चिंतन करने का प्रयास करते रहे। ज्ञान मार्ग के इस प्रभाव का सम्भवतः यह कारण था कि मध्ययुगीन आचार्यों के कारण सम्पूर्ण धार्मिक वातावरण वेदान्त से ओत-प्रोत हो गया था। इसी वातावरण में रहने के कारण हमारे अपढ़ हिन्दी सन्त कवि भी 'वेदान्त' के इस प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। आगे चलकर भागवत की मधुरा-भक्ति मे ज्ञान, वैराग्य, कर्म, योग तथा प्रेम इन सबका एक ही स्थान पर समन्वय हो गया है, जहाँ ज्ञान और प्रेम की रस-धारा मधुर भक्ति साधना के अन्तर्गत प्रवाहित हो रही है। ज्ञान से परिपल्लवित होने के कारण ही सन्तो की इस निर्गुण भक्ति को 'ज्ञानाश्रयी' नाम भी दिया गया है। सन्तो की वाणियों का ध्यान से विवेचन किया जाय तो उनमे कहीं भी ज्ञान और भक्ति का परस्पर विरोध नहीं दिखाई पडेगा। सन्तो ने वास्तव में ज्ञान को भक्ति की पृष्ठ-भूमि माना है।[1] ज्ञान के प्रादुर्भाव से माया-ग्रस्त अज्ञान के अन्धकार का नाश होता है किन्तु जैसा कि हम पहले ही स्पष्ट कर चुके है सन्तों का यह ज्ञान शास्त्रीय तर्क-वितर्क जन्य ज्ञान नहीं है। वे प्रत्यक्ष रूप से शास्त्रो का विरोध करते है। इनका ज्ञान गुरु और सत्संग से प्राप्त हुआ है।

ज्ञान के सहायक उपादान–गुरु और सत्संग—हिन्दी के सन्त कवियो ने जिस तात्विक ज्ञान को अपनी साधना का मुख्य अंग माना है उसकी प्राप्ति वे गुरु कृपा और सत्संग महिमा मे मानते है। न तो वे शास्त्रों के अध्येता है और न विचारों के स्वयं प्रणेता। वे जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त करते है उसका मूल कारण उनकी गुरु-भक्ति और सन्त समागम है। सन्त कवि इस तथ्य को बडे ही स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते है।[2]

(२) **कर्म तत्व**—व्यष्टि एवं समष्टि के समस्त क्रिया-कलाप कर्म के अन्तर्गत आ सकते हैं। 'व्यष्टि कर्म' से तात्पर्य मनुष्य के व्यक्तिगत कर्म से है। ये तीन प्रकार के होते है :—

(१) शारीरिक कर्म, (२) मानसिक कर्म, (३) आध्यात्मिक कर्म।

---

१. मध्यकालीन हिन्दी सन्त–विचार और साधना–डॉ० केशनी प्रसाद चौरसिया, पृष्ठ २३७

२. सतगुरु महिमा अनन्त, अनन्त किया उपगार।
लाचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावण हार॥
—कबीर ग्रन्थावली काशी संस्करण–गुरुदेव कौ अंग-साखी ३, पृष्ठ १

हँसना, बोलना, खाना, पीना आदि शरीर के सम्बन्ध रखने वाले सभी कर्म शारीरिक कर्म के अन्तर्गत आते हैं। मस्तिष्क सम्बन्धी कर्म जैसे सोचना, तर्क-वितर्क करना, कल्पना करना, आदि मानसिक कर्म हैं। आध्यात्मिक कर्म इन दोनों प्रकार के कर्मों से अत्यन्त ही सूक्ष्म है। इसे परिभाषा की सीमा के अन्तर्गत नहीं बांधा जा सकता। मोटे तौर पर समस्त जड़-चेतन के अन्तर्गत एक ही अविनाशी सत्ता अथवा सत् चित् आनन्द की अनुभूति के निमित्त किये गये कर्म आध्यात्मिक कर्म कहलाते हैं। इस तरह आध्यात्मिक कर्म का क्षेत्र इतना व्यापक हो जाता है कि साधना के अन्य मार्ग जैसे ज्ञान, योग, भक्ति और प्रेम सभी इसी कर्म के अन्तर्गत आ जाते है। समष्टि कर्म से तात्पर्य 'सामूहिक कर्म' से होता है। दिन-रात का होना, चन्द्र-सूर्य का उगना, आदि समष्टि कर्म के अन्तर्गत आते हैं। सन्त साधना का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यष्टि कर्म से और उसमे भी विशेष रूप से आध्यात्मिक कर्म से है।[1] समष्टि कर्म तो व्यक्ति के कर्म से परे है। उसे तो परमात्मा ही कर सकता है।

कर्मवाद का उल्लेख वेद, उपनिषद, गीता, जैन और बौद्ध दर्शनो मे भिन्न-भिन्न रूपो मे मिलता है। कहीं यज्ञ आदि ही कर्म है तो कहीं ज्ञान ही शुभ कर्म है। कहीं 'योग' को ही 'कर्म' माना गया है। इस तरह साधना द्वारा सुखी जीवन तथा मुक्ति की प्राप्ति के लिये किये गये भिन्न-भिन्न व्यापार एव कार्य-कलापों को ही कर्म की संज्ञा दी गई है। भारतीय दार्शनिकों के अनुसार जन्मान्तर व्यवस्था अर्थात् जीवात्मा को अपने कर्मों के फल का उपभोग करने के लिये बार-बार जन्म लेना पडता है को स्वीकार किया गया है। इस तरह 'कर्मवाद' और जन्मान्तर व्यवस्था का बडा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। हमारे हिन्दी सन्त कवियो ने भी जन्मान्तर व्यवस्था और कर्मवाद के इस अकाट्य सम्बन्ध को स्वीकार किया है।

प्रायः हिन्दी सन्त कवियो ने व्यष्टिगत शुभ कर्मों का ही आध्यात्मिक कर्म माना है जिसका वे पृथक्-पृथक् बड़े ही विस्तार से वर्णन करते हैं। इन्ही सभी शुभ कर्मों को दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है :—

(क) वाह्याडम्बर का त्याग और अतःकरण की शुद्धि।

(ख) सदाचरण तथा नैतिक संयम।

हमारे हिन्दी सन्त कवि वाह्य कर्मों पर विश्वास नहीं रखते उसे वे निरा ढोंग मानते हैं तथा उसके त्याग का सदैव उपदेश दिया करते हैं फिर भी आत्म शुद्धि के लिये नैतिक संयम आदि से सम्बन्धित सदाचरण मूलक कर्मों के लिये सभी सन्त एक स्वर से उपदेश देते है।

---

१. गुरु ग्रन्थ दर्शन—डॉ० जयराम मिश्र, पृष्ठ २०६।

(३) **योग-तत्व**—*योग-साधना* का प्रचलन विशेष रूप से ईसवी सन् की द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ में ध्यान, योग और तपश्चर्या के सम्मिश्रण से हुआ जो आगे चलकर 'हठयोग' के रूप में विकसित हुआ। 'हठयोग' नामक अंग के अन्तर्गत यम, नियम, आसन और प्राणायाम तथा 'राजयोग' में प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि का विवेचन किया गया है। किसी भी साधना की सिद्धि के लिये चित्त की एकाग्रता आवश्यक है। बिना मन को अन्तर्मखी बनाये परमात्म तत्व की प्राप्ति असम्भव है। योग सर्वप्रथम चित्त-वृत्तियों के निरोध का उपदेश देता है। यह कह सकते हैं भक्ति-साधना के लिये भी योग एक आवश्यक अंग है। यद्यपि हिन्दी सन्तों की साधना का मूल तत्व भक्ति है फिर भी चित्त की एकाग्रता के लिये 'योग' को विशेष महत्व दिया गया है। इतना होते हुये भी हमारे हिन्दी सन्त कवियों ने योग-साधना की विविध क्रियाओं—षट चक्र भेदन, अनहद का श्रवण, और ब्रह्मरंध्र मे स्थित अमृत के पान करने को ही योग की उत्तम सिद्धि नही माना है। यद्यपि वे अपनी रचनाओं में अपनी व्यावहारिक कुशलता के परिणामस्वरूप योग-साधना से सम्बन्धित अपने अनेक विचार व्यक्त किये है फिर भी उनकी दृष्टि में योग की एकमात्र सिद्धि तभी सम्भव है जब अपने भीतर उस परम-तत्व का साक्षात्कार हो जाय।

मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवि नाथ-पंथियो के उत्तराधिकारी ठहरते है। योग की दीक्षा उन्हे इन्हीं नाथ पंथियों से मिली है किन्तु आगे चलकर सन्तों ने ज्ञान और योग को गौण स्थान प्रदान किया तथा भक्ति और प्रेम को प्रमुख स्थान दिया। यही कारण था कि सन्तों की इस नई साधना ने उन्हें नाथ पंथियों की अपेक्षा अधिक जन-जीवन के निकट ला दिया। इतना होते हुये भी सन्तों की साधना मे योग का स्थान सुरक्षित है। प्रायः सभी सन्तो ने कुछ न कुछ योगपरक पदों की रचना की जिनमें कुडलिनी जागरण, षट चक्र भेदन, अजपा जाप, अनहद नाद, एवं गगन गुफा से रस स्रवण की चर्चा की गई है।

कबीर के पूर्ववर्ती 'नामदेव' ने 'बिसोवा खेचर' नामक किसी नाथ पंथी योगी से दीक्षा ली थी और उन्होने आचार्य 'विनय मोहन शर्मा' के अनुसार 'नाथ मत की अभ्यन्तर-धारा को अपनाकर गृहस्थाश्रम में ही भक्ति की सहज साधना का प्रचार किया।'[1] कबीर के दीक्षा गुरु रामानन्द ने भी स्वयं योग और भक्ति का समन्वय स्थापित किया। वे योग मार्ग को भक्ति का विरोधी कदापि नहीं मानते।

---

१. मध्यकालीन हिन्दी सन्त और साधना—डॉ० केशनी प्रसाद चौरसिया, पृ० २४० से उद्धृत।

(४) **भक्ति-तत्व**—भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति 'भज्' धातु से है जिसका अर्थ 'भाग लेना' व स्मरण करना दोनों प्रकार से किया जा सकता है। महामुनि शांडिल्य के मतानुसार 'सा परानुरक्तरीश्वरे' अर्थात् ईश्वर में परानुरक्ति का नाम 'भक्ति' है। देवर्षि नारद ने 'भक्ति' को परम प्रेम रूपा माना है। उनके अनुसार भगवान में परम प्रेम का हो जाना ही 'भक्ति' है।[1] जब साधक ज्ञान, कर्म आदि साधनो से रहित होकर सब ओर से स्पृहा शून्य हो अपनी चित्तवृत्तियो का अनन्य भाव से भगवान मे केन्द्रित कर देता है तो उसकी इस क्रिया को 'भक्ति' की सज्ञा दी जाती है। 'भक्ति' का उद्भव और विकास कैसे हुआ हम इसके विस्तार में न जाकर यहाँ केवल मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियो की भक्ति-साधना का अध्ययन करेगे। इन सन्त कवियों की साधना मुख्य रूप से 'भक्ति' पर ही अवलम्बित है जिसकी प्रेरणा मूलत: उन्हें दक्षिण के आड्वार भक्तो से मिली थी जिनमे न तो ऊँच-नीच का भेद-भाव था और न किसी प्रकार के जाति-भेद का विचार। न तो वे स्त्री-पुरुष के भेद-भाव को मानते थे और न ब्राह्मण शूद्र का। 'जाति-पाति पूछे नहि कोई। हरि को भजै सो हरि के होई॥' वाले रामानन्दी सिद्धान्त में इन्ही आड्वार सन्तो की वाणियाँ मुखरित होती है।

सन्तों की भक्ति-भावना का स्वरूप—

जैसा कि हम पहले बता चुके है मध्यकालीन हिन्दी संत कवियों ने ज्ञान-कर्म और योग की अपेक्षा अपनी साधना मे 'भक्ति' तत्व को विशेष महत्व दिया। इनकी भक्ति-भावना पर दृष्टिपात करने से उसके मुख्यत: चार रूप सामने आते है :—

(१) दास्य भाव।

(२) सख्य भाव।

(३) वात्सल्य भाव।

(४) दाम्पत्य भाव।

(१) **दास्य भाव**—इस प्रकार की भक्ति में भक्त अपने 'अहं' और अस्तित्व को विनम्र-भाव से भगवान के चरणों मे समर्पित कर देता है। वह समझने लगता है कि वह जैसा भी है भगवान का है। सर्वप्रथम भक्त के हृदय में इसी प्रकार की भावना का उदय होता है। वे आचार, व्यवहार, जप, पूजा आदि सभी का त्याग कर भगवान की शरण में आ जाते है। भक्त का विश्वास है कि भगवान निश्चय ही दुर्बल और गरीबों के सहायक है।

---

१. सा त्वस्मिन परम रूपा—नारद भक्ति सूत्र २, पृष्ठ २०, गीता प्रेस गोरखपुर।

(२) **सख्य भाव**—दास्य भाव का अवसान सख्य भाव में होता है। दास्य भाव में जहाँ दैन्य और विनम्रता का बाहुल्य रहता है सख्य भाव में विश्रब्धता और आत्म-विश्वास की भावना आ जाती है। दास्य भाव में स्वामी की इच्छा से पृथक् भक्त की कोई इच्छा नहीं होती किन्तु सख्य भाव में भक्त ईश्वर से आत्म-निवेदन के स्थान पर उपालम्भ देने और आग्रह करने का भी साहस करने लगता है। यह भक्ति-साधना का द्वितीय चरण होता है जहाँ भक्त और ईश्वर के परस्पर घनिष्ठता बढती जाती है।

(३) **वात्सल्य भाव**—वात्सल्य भाव के अन्तर्गत भक्त भगवान को पिता, माता के रूप में देखता है। इसमे दास्य भाव तथा सख्य भाव की अपेक्षा ममत्व का आधिक्य होता है। सन्त कवियो ने भक्ति-साधना मे वात्सल्य भावना का भी सुन्दर चित्रण किया है।

(४) **दाम्पत्य भाव**—प्रेम और ममत्व की पराकाष्ठा दाम्पत्य भाव की भक्ति में ही सम्भव है। अत: सन्त कवियो ने परमात्मा के प्रति अपने अनन्य अनुराग को जताने के लिये दाम्पत्य भाव की भक्ति का प्रश्रय लिया जिसके माध्यम से भगवान के प्रति उन्होने अपने मधुरतम भावों को व्यक्त किया है। इस कोटि की भक्ति-भावना को 'मधुरा भक्ति' की भी संज्ञा दी गई है। इसके अनुसार भक्त अपने सभी कर्मों को भगवान के प्रति अर्पित कर देता है तथा भगवान का थोड़ा भी विस्मरण होने पर परम व्याकुलता का अनुभव करने लगता है। दास्य, सख्य और वात्सल्य कोटि की भक्ति मे एक प्रकार की मर्यादित शिष्टता और मंथरता सम्भाव्य है किन्तु दाम्पत्य भाव की भक्ति वह सर्व-भक्षी अग्नि है जिसमें प्रेमी अपनी सारी मर्यादाओ को होम कर देता है। न तो लोक-लज्जा का ध्यान रखना है और न कुल के मान-अपमान का ध्यान। जो इस प्रेम-रस का पान कर लेता है, वह संसार की दृष्टि मे पागल मान लिया जाता है। 'डाक्टर पीताम्बर दत्त बडथ्वाल' का कथन है कि 'दाम्पत्य प्रेम जो ईश्वरीय प्रेम का रूप ग्रहण करता है हमारे इन ज्ञानी कवियों को बहुत पसन्द है। प्रेमात्मक रूपकों के गीतों में उनके हृदय अपने को पूर्ण रूप से व्यक्त करते हुये जान पड़ते है। ईश्वरीय प्रेम का प्रतीक बनकर दाम्पत्य प्रेम आत्मद्रष्टा कवियों मे सब कही अपनाया जाता आया है।"[1]

उपासना में प्रेम की अपेक्षा श्रद्धा और भय की मात्रा अधिक होती है तथा यम-नियम की कठोर साधना का पालन करना पड़ता है। दूसरी ओर भक्ति की निष्पत्ति श्रद्धा और प्रेम के योग से होती है। सन्तों में अपने आराध्य के प्रति उपासना तत्व कम, किन्तु भक्ति तत्व अधिक है वे अपने प्रियतम के लिये अपना सर्वस्व

१. हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृ० ३६२

अध्याय ८

सूफी और सन्त कवियों के आध्यात्मिक सिद्धांत

(तुलनात्मक अध्ययन)

सूफी और सन्तो की पारस्परिक भिन्नता का जो विवेचन पिछले अध्याय मे किया गया है उसका मुख्य उद्देश्य उनके वास्तविक स्वरूप का निरूपण करना मात्र था। वास्तव में ये दोनों मत सिद्धान्त रूप मे एक दूसरे के इतने निकट हैं कि यदि उनकी कुछ निजी विशेषताओ को उनमे से निकाल दिया जाय तो उन्हे एक दूसरे से पृथक् करना नीर क्षीर के पृथक् की समस्या हो जायेगी। एक तरफ सूफी मत भारत की मिट्टी से पैदा न होकर अरब मे अंकुरित हुआ तथा ईरान मे विकसित हो विश्व के अन्य भू-खण्डो मे जाकर पल्लवित हुआ अत. उसकी सारी भावनाओ मे ईरानी संस्कृति की छाप लगी है। भले ही वह ईरानी सस्कृति तत्कालीन अन्य संस्कृतियो से प्रभावित रही हो फिर भी उसका इस्लामी आवरण उसे अत तक सवष्ठित किये रहेगा। दूसरी ओर 'सन्त मत' भारतीय मिट्टी मे वेदान्त और उपनिषदों की ब्राह्मणवादी कठोरता के प्रतिक्रियास्वरूप अकुरित तथा पल्लवित हुआ। इसकी सर्वग्राही प्रवृत्ति ने इसे दक्षिण भारत से उत्तरी भारत मे लाकर अनुकूल वातावरण मे पूर्ण रूप से प्रसरण का अवसर दिया। अतः सन्त मत पर भी भारतीय वेदान्त का जो संवेष्ठन चढ़ा है उसे भी अलग कर पाना कठिन है। दोनो मतो का उद्भव धार्मिक कठोरता के प्रतिक्रियास्वरूप ही हुआ है। अत. उनमें उदारता एवं मानवीय प्रेम का होना इसलिए सभव हो सका है कि इन मतो के अनुयायी युगो-युगों तक वर्ग-विशेष द्वारा उपेक्षित और प्रताडित होते रहे हैं। प्रायः देखा गया है कि जब व्यक्ति अपने सीमित घेरे से ऊपर उठकर पारस्परिक भेद-भाव को भुलाकर परम सत्य का चिन्तन करने लगता है तो उसके विचार विश्व के किसी भी कोने के मानव हृदय के अनुकूल जान पडने लगते हैं। सूफियों और सन्तों की विचारधाराओ में साम्य और परस्पर अनुकूलता का एक यह भी कारण हो सकता है। भारत में हिन्दी के मध्यकालीन युग मे सूफी और संत दोनो प्रकार के कवियों ने एक ही समय में अपनी रचनाये की। अतः उन पर परस्पर प्रभाव का पड़ना इस तरह भी स्वाभाविक ही है। हम यहाँ पर सूफियो और सन्तो के आध्यात्मिक

सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करके यह स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे कि मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवि सूफियों की आध्यात्मिक विचारधाराओं से किस अंश तक प्रभावित है। दोनों मतों में ईश्वर की आस्तिकता पर जोर दिया गया है अत: सर्वप्रथम 'परम तत्व' के निरूपण सम्बन्धी विचारों की विवेचना आवश्यक है।

(क) परम ब्रह्म को एकेश्वरता एवं सर्वात्मवादिता

सूफी कवियों का दृष्टिकोण— इस्लाम में 'एकेश्वरवाद' को मान्यता दी गई है किन्तु सूफीमत में इस तथ्य पर मतभेद है। 'बा-शरा' मतावलम्बी तो 'एकेश्वरवाद' को मानते है किन्तु 'बे-शरा' मतावलम्बी अद्वैतवादी हैं। 'एकेश्वरवाद' में ईश्वर की एकमात्र सर्वोपरि सत्ता को स्वीकार किया गया है, उसे विश्वात्मा, परमदेव, जीव और प्रकृति का निर्माणकर्त्ता, भर्त्ता और संहर्त्ता माना गया है। उसकी इच्छा स ही विश्व की उत्पत्ति हुई है। प्रलय के पश्चात् भले-बुरे कर्मों के अनुसार निर्णय देने का वही एकमात्र अधिकारी है। जब कि 'अद्वैतवाद' मे इस संसार में 'ईश्वर' के अतिरिक्त दूसरा कोई है ही नहीं ऐसा माना गया है। 'एकेश्वरवाद' में दृश्य जगत् की सत्ता के साथ-साथ अदृश्य जगत् की सत्ता को भी माना गया है। 'एकेश्वरवादी' लाग संसार को माया जन्य नही मानते, बल्कि उसे ईश्वरीय इच्छा से उत्पन्न मानते है। 'अद्वैतवादी' संसार और ईश्वर मे कोई भेद नही मानते। वे संसार के कण-कण में उसी सत्ता के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं जो माया के कारण जीवात्मा को दृष्टिगोचर नहीं होता। मध्यकालीन हिन्दी सूफी कवियों में 'परम तत्व' के अस्तित्व के सम्बन्ध मे 'एकेश्वरवादी' और 'अद्वैतवादी' दोनों विचारधारायें काम करती हैं। साधना के क्षेत्र में वे प्राय: आत्मा और परमात्मा की एकता को स्वीकार करते है किन्तु 'भावना' के क्षेत्र में आकर वे सारी प्रकृति मे उसी ब्रह्म की छवि का दर्शन करने लगते हैं।

इहै रूप परगट बहु रूपा। इहै रूप बहु भाव अनूपा॥
इहै रूप सब नैनन जोती। इहै रूप सब सायर मोती॥
इहै रूप सम फूलन्ह वासा। इहै रूप रस भंवर बेरासा॥
इहै रूप ससिहर औ सूरा। इहै रूप जग पूरि अपूरा॥
इहै रूप अंत आदि निदाना। इहै रूप धरि धरसो धियानां॥
इहै रूप जल धर औ महिअर, भाउ अनेग देखाउं।
आप गंवाइ जो रे कोइ, देखै, सो किछु देखै पाउं॥[1]

'अर्थात् यही रूप बहुत से रूपों में प्रकट हुआ है। यही रूप बहुत से

1. मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पद १२०, पृष्ठ १००

अनुपम भावों में व्यक्त हुआ है। यही रूप सभी नेत्रों की ज्योति और सभी सागरों मे मोती बनकर समाया हुआ है। यही रूप फूलों में सुगन्ध रूप में और भ्रमरों में विलास के रस के रूप में व्याप्त है। यही रूप चन्द्रमा और सूर्य है तथा विश्व में पूरित होकर उसे आपूर्ण कर रहा है। यही रूप सृष्टि के आदि तथा अंत में रहेगा और निदान में भी रहेगा। इसी रूप का ध्यान किया जाता है। यही रूप जल, थल और महीतल मे अनेक भाव दिखलाता है जो कोई अपने को गंवा कर उसको देखता है वही उसे कुछ अंशों मे देखता है।'

सूफी कवि 'मंझन' जहा परम तत्व के निरूपण में अद्वैतवादी विचारधारा का प्रतिपादन करते है, 'मौलाना दाऊद' के विचार इससे सर्वथा भिन्न 'एकेश्वरवाद' को मान्यता देते है। वे उस परमात्मा को ससार मे व्याप्त न देखकर उसको सृष्टि कर्त्ता मानते है। वे 'चाँदायन' के स्तुति खंड मे परम तत्व की वंदना करते हुये कहते है कि मै सर्वप्रथम सृष्टिकर्त्ता का गुणगान करता हूँ जिसने इस देश प्रदेश की सृष्टि की। जिसने पृथ्वी और आकाश को पैदा किया। जिसने मरु, मंदर, और कैलाश को बनाया, जिसने प्रकाशयुक्त चन्द्रमा और सूर्य की रचना की। जिसने स्वर्ग नक्षत्र मालाओं का निर्माण किया। जिसन छाया, शीत, और धूप की रचना की। जिसने शरीर और सौन्दर्य को बनाया। जिसने मेघ, पवन, अन्धकार तथा चमत्कारपूर्ण बिजली को पैदा किया। सारी पृथ्वी जिसकी रचना है उस एक परम-ब्रह्म की प्रशस्ति मैने गाकर की है।[1] सूफी कवि 'कुतुबन' भी परमात्मा को सृष्टि कर्त्ता रूप मे मानता है किन्तु 'दाऊद' की भाति वह उसे सृष्टि मे पृथक् नही मानता वह उसे सृष्टि मे रमण करता हुआ मानता है।

···अलख करतारू। रमि कै रहेव सबं संमारू॥[2]

इस तरह 'कुतुबन' निरा एकेश्वरवादी ही नहीं, बल्कि अद्वैतवादी भी प्रतीत होता है। 'जायसी' के परम तत्व निरूपण मे इस्लामी 'एकेश्वरवाद' की स्पष्ट छाप

१. पहिले गाउ सिरजन हारू। जिन सिरज्या यह दोस बियारू॥
सिरजसि धरती और अगासू। सिरजसि मेर मंदर कबिलासू॥
सिरजसि चाद सुरुज उजियारा। सिरजसि सरग नषत कौ मारा॥
सिरजसि छाह सीव और धूपा। सिरजसि किरतन और सरूपा॥
सिरजसि मेघ पवन अंधियारा। सिरजसि बीज करै चमकारा॥
जाकर सबै पिरथमी सिरजसि, कह्यो एक येक सो गाई॥
हीय मझार मन हुलहसै, दूसर चित न समाई॥
—दाऊद कृत चांदायन—सं० डा० माता प्रसाद गुप्त, छंद १, पृष्ठ १

२. कुतुबन कृत मृगावती—सं० वही०—स्तुति खण्ड पद १, पृष्ठ १

मिलती है। एकेश्वरवाद में अपनी दृढ़-आस्था को उसने 'एक करतारू' अर्थात् 'एक ही ईश्वर' कहकर प्रकट करता है।[1] किन्तु इस्लामी एकेश्वरवाद के साथ-साथ हिन्दू पुराणों की सृष्टि विषयक मान्यताओ के अनुसार ब्रह्माण्ड सप्त द्वीप-चौदह भुवन आदि का भी उल्लेख करता है[2] जो सूफियो के उदार और समन्वय-वादी दृष्टिकोण का द्योतक है।

संत कवियों का दृष्टिकोण—जिस समय निर्गुणवादी संत कवियों का आविर्भाव हुआ। एक ओर हिन्दू वेदान्त के अद्वैतवादी सिद्धान्त से पूर्ण परिचित होने पर भी बहुदेववादी हो गये थे, दूसरी ओर इस्लाम के 'अल्लाह' एकमात्र परमेश्वर के रूप में संकुचित होकर विधर्मियों के भगवान नही हो सकते थे। ऐसी परिस्थिति में संत कवियों ने युग की आवश्यकता के अनुसार हिन्दू और मुसलमान दोनों को अपना एकेश्वरवाद का सिद्धान्त सुनाया तथा हिन्दुओ के बहुदेववाद का खडन किया। संत 'नामदेव' ने एकमात्र 'गोपाल' को अपना स्वामी माना। उन्हीं के एक-मात्र कमलवत् चरणों में मन लगाने को वेद, पुराण और स्मृति का सार तत्व माना। लक्ष्मी के कोटि भंडारो को भगवान के नाम के आगे तुच्छ समझा। उन्होने स्पष्ट कहा कि किसी की हाथी, घोड़े और पैदल सेनाएं रक्षक है किन्तु 'नामदेव' के लिए भगवान का एकमात्र नाम ही रक्षक है।

हमारे गोपाल राजा गोपाल राजा। और देव सू नाहिन काजा॥
काहू सुमृत वेद पुराना। चरन कंवल मेरे मन माना॥
काहू के लछिमी कोटि भंडारा। मेरे राम को नाम अधारा॥
काहू को हय गै पाइक हाथी। मेरे राम नाव संघाती॥
सरब लोक जाको जस गाजा। नामा का चित हरि सू लागा॥[3]

संत 'नामदेव' के मत से 'बहुदेवोपासना' व्यर्थ है। वे आजीवन एकमात्र 'राम' की उपासना का निश्चय करते हैं। अन्य देवताओ के समक्ष उन्हे झुकना स्वीकार नहीं। वे राम रसायन का ही आनन्द लेना चाहते है। राम ही उनके एक-मात्र जीवन है अन्य देवता तो सभी व्यर्थ और 'फोकट' है। उनके राम जड़, चेतन, कीट, पतंग सबके साथी है।

राम जुहारित और जुहारौ। जीवन जाइ जनम कत हारौ॥
आनदेव सौ दीन भाषौ। राम रसाइन रसना चाषौं॥

---

१. सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥
—जायसी ग्रंथावली—पद्मावत छंद १

२. कीन्हे सप्त मही बरम्हंडा। कीन्हे भुवन चौदहो खंडा॥ —वही छंद १

३. संत नामदेव की हिन्दी पदावली—सं० डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ३७, पद ८३

थावर जंगम कीट पतंगा। सत्य राम सबहिन के संगा ।।
मणत नामदेव जीव निरामा। आनदेव फोकट बेकामा ।।[1]

सन्त मत के प्रवर्त्तक 'सन्त कबीर' भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पार्वती पुत्र गणेश, चाँद, सूर्य, शेषनाग, सेतुबन्ध के निर्माता हनुमान, कृष्ण और ब्रह्मा सबको मरणशील और एकमात्र ईश्वर (सृष्टिकर्त्ता) को ही अमर मानते हैं। अतः बहुदेववाद को व्यर्थ बतलाकर अमर ईश्वर की उपासना की ओर संकेत करते हैं :—

मूए ब्रह्मा बिस्नु महेसा। पारवती सुत मुए गनेसा ।।
मूए चन्द मूए रवि सेसा। मूए हनुमत जिन्ह बान्हल सेता ।।
मूए कृस्न मुए करतारा। एक न मुआ जो सिरजन हारा ।।
कहै कबीर मुआ नहिं सोई। जाके आवागमन न होई ।।[2]

कबीर हिन्दू मुसलमान दोनों के लिये एक ही ईश्वर के अस्तित्व पर आस्था रखते हैं। चाहे राम कहा जाय चाहे रहीम तात्पर्य दोनो का एक ही है। हिन्दू माला लेकर उसे 'राम' नाम से और मुसलमान तसबीह लेकर 'रहीम' नाम से जपा करते है किन्तु दोनों मे व्याप्त आत्मा न तो हिन्दू है और न मुसलमान वह तो ईश्वर का एक रूप है।[3] कबीर के शब्दों में राम, रहीम, केशव, करीम, मन्ध, राम, अल्लाह, विश्वम्भर और बिसमिल्लाह सभी एक ही है। उस परम ब्रह्म के अतिरिक्त इस ससार मे कोई दूसरा नही है।

हमारे राम रहीम करीमा केसो, अल्लह राम सति सोई।
बिस्मिल मेटि बिसम्भर एके, और न दूजा कोई ।।

सन्त कबीर की ही भाँति 'गुरु नानक देव' भी अनुभूति और श्रद्धा के बल पर अपने मूल-मन्त्र अथवा बीज-मन्त्र में परम-तत्त्व की इस प्रकार व्याख्या करते है :—

'१ ओ "सति नाम करता पुरखु निरमउ, निरवैरु, अकाल मूरति, अजूनी सै मे गुरु प्रसादि।"[4]

जिसका तात्पर्य है कि वह एक है वह सत्य नाम है, शेष जितने नाम हैं

---

१. वही, पृष्ठ १३, पद ३०

२. कबीर ग्रंथावली, प्रयाग संस्करण, पृ० ६० पद १०३

३. राम रहीम जपत सुधिगई। उन माला उन तसवी लई।
कहै कबीर चेतहु रे मोंदू। बोलनहारा तुरक न हिन्दू ।।
—कबीर ग्रंथावली, काशी संस्करण, पृ० ८२ पद ५६

४. सिक्ख मत का मूल-मन्त्र, नानक वाणी, सं० डॉ० जयराम मिश्र, पृ० ७६

उनके गुणों के वाचक है। वह कर्त्तार है, वह महान् शक्ति-सम्पन्न पुरुष है। वह भय वैर काल से रहित मूर्तिमान् है। योनि के अन्तर्गत नही आता। वह त्रिकुटी से परे है। गुरु नानक ने सर्वत्र अपने पदों में इसी बीज-मन्त्र की व्याख्या करने की चेष्टा की है। वे एकेश्वरवाद और सर्वात्मवाद का समर्थन करते हुये बराबर जोरदार शब्दो में कहते है– "हे प्रभु जितने भी इस संसार के शब्द हैं वे सभी तेरी चित्त-वृत्ति की ध्वनि है, दूसरा कोई नहीं है। संसार में कितने भी रूप हैं सब तेरी काया है। तू ही जीभ है, तू ही गन्ध लेने वाली नासिका है। तू मेरा स्वामी एकमात्र है अरे भाई वह एकमात्र है।"[1] इस तरह संसार में 'माया' को भी सिक्ख गुरुओ ने परमात्मा से पृथक् नहीं माना है। 'और न दूजा कहउ भाई' से इसी तात्पर्य की ध्वनि मिलती है। परमात्मा के अमरत्व के सम्बन्ध मे सिक्ख गुरु नानकदेव कहते है :—

'दिन रवि चले, निमि ससि चलै, तारिका लखि पलोई।
मुकाम वोही एक है नानका सच बुगोई।।'

अर्थात् "दिन मे सूर्य और रात में चन्द्रमा तथा लाखों तारागण चले जायेंगे। बस रहने वाला तो एक वही है। उसे सत्य कहा जाता है।" अल्लाह, अलख, अगम्य, कादिर (शक्तिमान्), सब कुछ करने वाला, करीम (कृपालु) है। सारी दुनियाँ आने जाने वाली है। एक 'रहीम' ही निश्चल है :—

"अलाहु अलख अगम कादरु करणहार करीम।
सभी दुनी आवण जावणी, मुकाम एक रहीम।।"[3]

सन्त दादूदयाल भी एकेश्वरवाद के साथ-साथ सर्वात्मवाद पर विश्वास करते है। वे ईश्वर से प्रार्थना करते हुये उसके सिवा किसी दूसरे की सत्ता को स्वीकार नही करते। वह कहते है :—

बाबा दूसर नाहीं कोई।
येक अनेक नाव तुम्हारे, मो पै और न कोई।।

---

१. जेत सबद सुरति धुनि तेती, जेता रूप काइआ तेरी।
तूं आपै रसना आपै वसना, और न दूजा कहउ भाई।।
साहिब मेरा एको है—एको है—भाई एको है।
—नानक वाणी—सं० डॉ० जयराम मिश्र, पृ० २४६-२५० पद ५ चउपदे घरु २।

२. वही, पृ० १६० महला १ घरु २ अष्टपदी १७।८

३. वही, महला १ घरु २ अष्टपदी १७।६

अलख इलाही एक तूं, तूं ही राम रहीम।
तूं ही मालिक मोहना, केसो नांव करीम॥
साईं सिरजन हार तू, तू पावन तूं पाक।
तू काइम करतार तू, तू हरि हाजिर आप॥
रमता राजिक एक तू, तूं सारंग सुबहान।
कादिर करता येक तू, तूं साहिब सुलतान॥
अविगत अजह येक तू, गनी गुसाई येक।
अजब अनूप आप है, दादू नाव अनेक॥[१]

अर्थात् "अलख, इलाही, राम, रहीम, मालिक, मोहन, केशव, करीम, स्वामी, सृष्टिकर्त्ता, कईम, कर्त्तार, हरि, रमता, सारंग, सुबहान, कादर, साहब, सुलतान, अविगत, अल्लाह, गनी, गोस्वामी आदि अनेक नामो से एकमात्र तू ही विद्यमान है। तुम्हारे सिवा दूसरा कोई नहीं है।" ठीक इसी प्रकार के विचार संत कवि रज्जब जी के भी हैं। वे कहते है कि उस एकमात्र अविनाशी परमात्मा ने अनेक जीवों की रचना की।

एक अविगत नै किये, पैदा प्रान अनेक।
रज्जब जीवहु जोरि घट, सबते होइ न एक॥[२]

सन्त 'सुन्दरदास' राम और अल्लाह के साक्षात्कार को तभी सम्भव बतलाते है जब हिन्दू और मुसलमान अपनी धार्मिक संकीर्णताओं को त्याग कर सच्चे मन से उसकी खोज करे। वास्तविकता तो यह है कि राम और अल्लाह एक ही है।

हिन्दू की हदि छाडि कै तजी तुरक की राह।
सुन्दर सहजै चीन्हिया, एकै राम अल्लाह॥[३]

सन्त कवियों पर सूफी प्रभाव—सूफी और सन्त कवियों के परम तत्व के एकेश्वर तथा सर्वात्मवादी दृष्टिकोणों का पृथक्-पृथक् विवेचन करने के पश्चात् यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे हिन्दी सन्त कवि भारतीय वेदान्त के 'अद्वैतवाद' से उतर कर ईश्वर के प्रति जो एकेश्वर तथा सर्वात्मवादी दृष्टिकोण अपनाते हैं वह इस्लामी परम्परा मे जनित सूफी सिद्धान्त की देन जान पड़ती है। सूफी कवि 'अल्लाह' को एकमात्र ईश्वर मानते तो हैं किन्तु उनका एकेश्वरवाद केवल 'अल्लाह' तक ही सीमित रह जाता है। हमारे हिन्दी सन्त कवि उनके विचारो से सहमत

---

१. दादू दयाल. सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४०६ राग असावरी पद २०
२. रज्जब बानी —स० डॉ० ब्रजलाल वर्मा—पीव पिछाण का अंग, पृष्ठ १३४ साखी ५३
३. सन्त सुधा सार पृ० ५६७

होकर एक सोपान आगे बढ़ जाते हैं। वे राम और रहीम, केशव और करीम दोनों को एक ही मान लेते हैं। उनके लिये हिन्दू मुस्लिम नाम की कोई साम्प्रदायिक परिधि का बन्धन नहीं है। वे एकेश्वरवादी मुसलमान और बहुदेवतावादी हिन्दुओं से समन्वय स्थापित करने के लिये एक ही ब्रह्म की मान्यता को प्रतिष्ठित करते हैं।

ईश्वर एक और नहिं कोई।
ईश शीश पर राखहु सोई ॥ (सुन्दरदास)[1]

सूफी कवियों के पक्ष मे यह तर्क प्रस्तुत करना कि सूफी सिद्धान्त कुरानी कट्टरता का ही विरोध करता आ रहा था उसके समक्ष इस्लाम से ही समन्वय स्थापित करने की समस्या प्रमुख थी अत: उन्होंने अपने परम-तत्व को 'अल्लाह' तक ही सीमित रखा। यह न्याय-संगत नहीं होगा क्योंकि आलोच्य काल के सभी सूफी कवि भारतीय है और भारत मे सूफियों को केवल कट्टर इस्लाम से ही समन्वय स्थापित करना नही रह गया था, बल्कि उनके सामने तो इस्लाम के शब्दो में 'काफिर' नाम का एक विशाल हिन्दू जन-सम्प्रदाय भी था। सूफियो का एकेश्वरवाद उदार समन्वयवादी तब कहा जाता जब वे इस्लामी लीक को छोडकर 'राम' और 'रहीम' मे कोई अन्तर नही मानते। सम्भवत: किसी हिन्दी सूफी कवि ने अपने 'अल्लाह' को हिन्दुओं के कृष्ण और राम के रूप मे देखने की चेष्टा नही की। हिन्दी के सन्त कवि उनके एकेश्वरवाद तथा सर्वात्मवाद के मूल सिद्धान्त से प्रभावित अवश्य हुये किन्तु साम्प्रदायिक उदारता मे वे उनसे एक कदम आगे बढ़ गये। उनके 'अल्लाह' इस्लामी जगत् के ही 'अल्लाह' नहीं रह गये, बल्कि सारी सृष्टि के रचयिता हो गये चाहे वह हिन्दू जगत् हो चाहे मुस्लिम जगत्। वे ब्रह्म की एकता मे विश्व की मानवीय एकता का दर्शन करते है। 'सन्त सिंगा जी' के शब्दों मे सारे ब्रह्माण्ड के स्त्री-पुरुष के प्रत्येक घट में वही एकमात्र ब्रह्म विराजमान है।

नर नारी मे देखिले, सब घट मे एक सारा।
कहै सिंगा पहिचान ले, एक ब्रह्म है सारा ॥[2]

ठीक यही बात सूफी कवि मंझन भी कहता है "वह परम तत्व आदि का भी आदि और अन्त का भी अन्त है। वह एक ही पदार्थ है उसके जो रूप है वे अनंत है। वही एकमात्र है दूसरा कोई नही। उसी के मुख में सृष्टि के सारे रूप चले

---

१. सुन्दर दर्शन—डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, पृ० १५० से उद्धृत।
२. निमाड़ के सन्त कवि सिंगा जी—डॉ० रमेशचन्द गंगराडे, पृ० १५५

जाते है।"[१] 'कबीर' इस संसार मे नाना रूपों के दर्शन की कामना लेकर आते हैं किन्तु जब उन्हें परम तत्व का ज्ञान हो जाता है तो उस अनूप ब्रह्म के सिवा इस संसार में अन्य कोई वस्तु दृष्टिगोचर ही नही होती।[२] 'कबीर' पर यह निश्चय ही सूफी सर्वात्मवाद का ही प्रभाव जान पड़ता है। इसी एकेश्वरता और सर्वात्मवादिता का समर्थन 'सन्त दादूदयाल' इस प्रकार करते है :—

तब मन नाही, मै नही, नहि काया नहि जीव।
दादू एकै दखिये, दह दिसि मेरा पीव॥[3]

अर्थात् यह मन तुम्हारा नही है, मैं भी अपना नही हूँ। यह शरीर और जीव भी अपना नही है। दसो दिशाओ मे एकमात्र प्रियतम (परम ब्रह्म) ही विद्यमान है। अब प्रश्न यह उठाया जा सकता है कि संतो का यह 'एकेश्वर और सर्वात्मवाद' क्यो न वेदा, उपनिषदो के 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' अथवा 'सर्व खल्विद ब्रह्म' नेहं नानास्ति किंचन।' के प्रभाव का परिणाम माना जाय ? बात भी तर्कसगत है किन्तु हम पहले ही स्पष्ट कर चुके है कि सतो का ज्ञान उनके अशिक्षित होने के कारण शास्त्रीय ज्ञान नहीं था वह उन्हें सत् संगति और अनुभव मे प्राप्त ज्ञान था। सूफी कवि उनके समकालीन थे उन पर हमारे वेदो और उपनिषदों की छाप पहले से ही पड़ चुकी थी अतः परम तत्व सम्बन्धी उनका एकेश्वर और सर्वात्मवादी सिद्धान्त अत्यन्त भारतीय होते हुए भी सूफियों के माध्यम से सतो तक आया होगा इसमें कोइ संदेह नहीं। यदि ऐसा नही था तो उनके परमात्मा 'राम', 'कृष्ण', केशव आदि भारतीय नामो तक ही सीमित रह जाते। 'अल्लाह', 'रहीम', 'करीम' नामों से सम्बोधित किये जाने का श्रेय उन्हे कदापि नही मिल पाता। यह एकमात्र सूफीमत ही था जिसने हिन्दी संत कवियो को हिन्दू और मुसलमानो को एक साथ आध्यात्मिक पथ पर अग्रसर करने के लिये प्रेरित किया।

(ख) परम तत्व का निर्गुण और सगुण स्वरूप

सूफी कवियों का दृष्टिकोण—सूफियों ने उपासना के लिये 'निराकार ब्रह्म'

---

१. आदिहिं आदि अन्त ही अन्ता। एकहि अरथ रूप जो अनन्ता॥
एक अहै दोसर कोउ नाही। तेहि सम सिस्टि रूप मुख जाही॥
—मंझन कृत मधुमालती, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ७ पद ६

२. आया था संसार में, देषण को बहुरूप।
कहै कबीरा संत हौ पड़िगया नजर अनूप॥
—कबीर ग्रंथावली, काशी संस्करण परचा कौ अंग साखी २४

३. दादू दयाल—सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, परचा कौ अंग, पृ० ४७ पद ४३

को ही मान्यता दी है किन्तु उनकी उपासना में प्रेम की प्रधानता होने के का
प्रेम की अभिव्यक्ति के लिये उन्हें परमात्मा के 'साकार रूप' का आश्रय
आवश्यक हो जाता है। उनकी यह 'साकारता की भावना' केवल वाचारम्भण
है हिन्दी भक्त कवियों की भाँति उनके ईश्वर कोई अवतारी पुरुष न होकर के
अलौकिक विभूति बनकर ही रह जाते है। उनके स्वरूप का वर्णन करते हुये
कवि 'जायसी' का कथन है कि 'वह परम ब्रह्म अलक्ष्य, निराकार और रंग-
रहित है अर्थात् जिसे न कोई आँखो से देख सकता है, न जिसका कोई रूप
आकार है, जो निराकार है जिसका न कोई रंग है ऐसा वह परमात्मा इस सृ
का निर्माता है। वह सबसे सम्बन्धित है और सभी प्राणी उसी की सत्ता के का
अपने-अपने कार्यों में लगे हुये हैं। वह प्रकट या गुप्त रूप मे सर्व-व्यापी है। धर्मा
पुरुष उसे पहचानते हैं और पापियों के लिये वह अदृश्य बना हुआ है।[1] 'मृगाव
के स्तुति खंड में कुतुबन भी उस परमात्मा को 'अलख निरंजन' कहकर ही उस
स्तुति करता है—

"·········निरंजन न लखे न जाई। जोति स्वरूप जो लखत भुलाई ॥
·········मह सिध परमेसा। ना उहि तिरी ना पुरुष क भेसा ॥
·········त पिता बंध नहि कोई। एक अकेल न दोसर कोई ॥

अर्थात् 'परमात्मा अलख निरंजन है। वह देखा नहीं जा सकता। वह म
रहित है। वह ज्योति स्वरूप है जिसे देखते ही मनुष्य अपने आपको भूल जाता है
वह महा सिद्ध और परमेश्वर है वह न तो स्त्री वेश में है और न पुरुष वेश मे
उसके माता-पिता भाई कोई नही है। वह एकमात्र अकेला है उसकी तरह दूस
कोई नहीं है।'

सूफी कवि 'मंझन' परमात्मा के स्वरूप को अनिर्वचनीय बतलाते हुये कह
हैं कि प्रभु तुम्हारा गुणगान पंडितों, मुनियो और ब्रह्म-विचारको मे से कोई भी न
कर सका। मैं एक जिह्वा से तुम्हारा गुण-गान कैसे कर सकता हूँ। हजारो जिह्वा
से भी नही कर सकता।

पंडित मुनि जन ब्रह्म विचारी। तुम अस्तुति जग काहुँ न सारी ॥
एक जीभ मैं कैसे सारौं। सहस जीभ चहुँ जुवा नही पारौं ॥[3]

---

१. अलख अरूप अबरन सो कर्त्ता। वह सबसो सब ओहिसों वर्ता ॥
प्रगट गुपुत सो सरब बिआपी। धरमी चीन्ह न चीन्हे पापी ॥
— जायसी ग्रन्थावली—पद्मावत छंद ७

२. कुतुबन कृत मृगाबती—सं० डा० माता प्रसाद गुप्त, स्तुति खड पद १, पृष्ठ

३. मंझन कृत मधुमालती—सं० डा० माता प्रसाद गुप्त, छंद १, पृष्ठ १

'मंझन' परमात्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुये आगे कहते हैं कि वह परमेश्वर एक होते हुये भी अनेक होकर प्रकट हुआ है। वह बहुत से वेश धारण किये हुये भी एक रूप है। तीनों लोकों में जहाँ तक भी स्थान है वह परमात्मा नाना प्रकार का रूप धारण करके भोग करता है। वह कर्त्ता इस संसार में जो कुछ भी चाहता है करता है। वह यम रूप मे पहले भी था अब भी है और आगे भी रहेगा। वह बिना एक स्थान पर रहे सर्वत्र विलास करता है। वह स्वामी निर्गुण और एकोंकार है। वह गुप्त रूप होते हुये भी समस्त स्थानों पर प्रकट है और किसी रूप का न होते हुये भी अनेक रूपों वाला है। यथा—

एक अनेग भाउ परमेसा। एक रूप काछे बहु भेसा ॥
तीनि लोक जंहवा लहि ठाईं। भोग के अनबन रूप गोसाईं ॥
करता करे जगत जेत चाहै। जमु था जंमु रहै जमु आहै ॥
बाजु ठाउं बेरसै सम ठाईं। निरगुन एक ओकार गोसाईं ॥
गुपुत रूप परगट सम ठाईं। बाजु रूप बहुरूप गोसाईं ॥[1]

इस तरह मंझन ने परम ब्रह्म के स्वरूप का जो निरूपण किया है उसमें निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का आभास मिलता है। 'चित्रावली' में 'उसमान' भी उस सृष्टिकर्त्ता के स्वरूप का चित्रण करते हुये अपने को असमर्थ पाता है—

करता जिन जग रूप संवारा। तेहिक रूप को बरनइ पारा ॥
आपु अमूरत मुरति उपाई। मूरत भाँती तहाँ समाई ॥[2]

अर्थात् 'सृष्टि कर्त्ता परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करके कौन पार पा सकता है ? वह अपने तो अमूर्त्त है किन्तु उसने नाना प्रकार की मूर्त्तियो को उत्पन्न किया है जहाँ भ्रम (माया) का समावेश है।' 'उसमान' आगे परमात्मा के स्वरूप का चित्रण करते हुये कहता है कि प्रगट अथवा गुप्त दोनो रूपो में एकमात्र वही विधाता इस संसार में विद्यमान है। कोई दूसरा नही है।[3] वह परमात्मा अलख और अमूर्त्त है। उनकी मूर्ति को कोई देख नहीं पाता। वह जो भी चाहता है करता है। उसकी इच्छा से ही सब कुछ हुआ है।

---

१. मंझन कृत मधुमालती—डा० माता प्रसाद गुप्त, पद २, पृष्ठ २

२. चित्रावली—उसमान, पृष्ठ २, पद ३

३. परगट गुपुत विधाता सोई। दूसर और जगत नहि कोई ॥
है सब ठाउं नाहि कोउ ठाईं। मुनिगन लखहिं कि अलख गुसाईं ॥
—वही पद ३, पृष्ठ २

अलख अमूरत सोइ विधि, लखे न मूरति सोइ।
सो सब कीन्ह जो चाहा, कीन्ह चहै सो होइ ॥[१]

'उसमान' भी परमात्मा के रूप को अवर्णनीय मानते हैं और प्रशस्ति में अपने को असमर्थ पाते है।[२] 'शेखनबी' ने भी अपने ज्ञानदीप में परम तत्व के स्वरूप का निरूपण करते हुये लिखा है कि वह परमात्मा अत्यन्त ही पवित्र है। वह एक है। वह अलख और अमूर्त्त है। वही सृष्टि का एकमात्र कर्त्ता है और सभी पापों का हरण करने वाला है।

पाक पवित्र एक ओह करता। अलख अमूरत पातक हरता ॥[३]

इस तरह सूफी कवियों ने परम तत्व के स्वरूप का जो निरूपण किया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि एक तरफ तो वे परम तत्व को निराकार अलख निरंजन मानते हैं किन्तु आगे चलकर जब उन्हें प्रेम साधना का व्यावहारिक रूप देना होता है तो उसके लिये वे परम तत्व के 'साकार' रूप की भी कल्पना करने लग जाते है और उनका परम ब्रह्म गुप्त अथवा प्रकट रूप में सर्वत्र विद्यमान हो जाता है। फिर भी सूफियों के साकार ब्रह्म की कल्पना मे भी एक विशेषता यह है कि उनका परमात्मा सब कुछ होते हुये भी कोई अवतारी पुरुष नहीं होता। वह बिलकुल ही माया रहित होता है। दूसरे शब्दो में यदि यह कहा जाय कि सूफियों का परम तत्व निराकार और साकार दोनों से परे एक अलौकिक तत्व है तो अत्युक्ति नहीं होगी।

संत कवियों का दृष्टिकोण—हिन्दी के मध्यकालीन संत कवियों ने भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना को परम श्रेयस्कर माना। वे परम ब्रह्म के इस निगुण रूप को कई नामो से पुकारते है। कही-कहीं वे उपनिषदो की नकारात्मक पद्धति का भी अनुसरण करने लगते है—

ना वा बारा ब्याह बराता, पीय पितंबर स्याम न राता ॥
तीरथ ब्रत न आवै जाता, मन नही मोनि वचन नहीं आता ॥[४]

अर्थात् 'वह परम ब्रह्म न तो कच्ची उम्र का है और न प्रौढ़ ही है। वह प्रियतम न तो श्याम वर्ण का है न रक्त वर्ण का और न पीत वर्ण का। वह तीर्थ और व्रतों द्वारा नही मिल सकता।' कबीर दास जी आगे कहते है—

१. चित्रावली उसमान, पृष्ठ २, पद ३
२. रूप अबरन को बरने पारा। रहै मौन होइ इहै विचारा ॥
—वही, पृष्ठ ४, पद ७
३. ज्ञानदीप—शेखनबी, पृष्ठ १
४. कबीर ग्रंथावली—काशी संस्करण, पृष्ठ १८४, बारह पदी रमैणी

कहै कबीर बिचारि करि, ओ है पद निरबांन।
सति ले मन मैं राखिये, जहाँ न दूजी आंन॥[1]

वे ब्रह्म को एक कहते हुये उपनिषदों की भाँति उसे अद्वैत भी मानते हैं। उसकी अखंडता और एकरसता पर भी जोर देते हैं। उसे आदि मध्य और अंत तक अविहड और अभग मानते है—

आदि मधि अरु अंत लौ, अबिहड़ सदा अभंग।
कबीर उस करता की, सैवग तजै न संग॥[2]

'कबीर दास' जी ब्रह्म के अनूप तत्व का निरूपण करते हुये कहते हैं—

वेद बिबर्जित भेद बिबर्जित, बिबर्जित पाप रु पुन्यं।
ग्यांन बिबर्जित ध्यान बिबर्जित, बिबर्जित अस्थूल सुन्यं॥
भेष बिबर्जित भीख बिबर्जित, बिबर्जित ड्यंभक रूपं।
कहै कबीर तिहूं लोक बिबर्जित, ऐसा तत्त अनूपं॥[3]

ऐसे अनूप तत्व को कबीर पुष्प सुगंध की भाँति सूक्ष्म ठहराते हैं।[4] कबीर की ही भाँति 'संत रैदास' भी कृष्ण, करीम, राम, हरि, राघव, को वेद पुराण और कुरान द्वारा न दिखाई पडने पर अपनी सहज भावना से परम-तत्व के उस सत्य रूप की उपासना करते है जिनका कोई 'नाव' और 'ठाव' नहीं है।

कृस्न करीम राम हरि राघव, जब लग एक न पेखा।
वेद कतब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं देखा॥
जोइ-जोइ पूजिया सोइ-सोइ कांची, सहज भाव सत सोई।
कह रैदास मै ताहि को पूजूं, जाकै ठांव-नांव नहिं होई॥[5]

सिक्ख मत के अनुसार 'गुरू नानक देव' का विश्वास है कि जल-थल धरती आकाश वहाँ कुछ भी नहीं होता। एकमात्र स्वयं कर्त्तार ही होता है। वहाँ माया

---

१. वही, पृष्ठ १८५
२. वही, अबिहड़ को अंग, साखी ८०६, पृष्ठ ६८
३. वही, पृष्ठ १२१ पद सं० २२०
४. जाकै मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास थैं पतला, ऐसा तत अनूप॥
—कबीर ग्रथावली—काशी संस्करण पीव पिछाणन को अंग, पृष्ठ ४७ साखी ५८४
५. रैदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग पृष्ठ ३, पद ४

भी नहीं है और न अंधकार ही है। न तो वहाँ सूर्य है न चन्द्रमा है और न कोई ज्योति का आधार ही है—

'जलु-थलु धरणि गगन तंह नाही, आपे आप किया करतार।
ना तद माइआ गगन न छाइया न सूरज चंद न जोति अधार ॥[1]

संत दादू दयाल उस परम तत्व को अलख, निस्सीम और परिपूर्ण मानते हैं। उसमें अनन्त तेज का अनुभव करते है। वे परम तत्व को परम प्रकाश (नूर) का रूप मानते है।[2] ईश्वर को 'नूर' रूप मे देखने की कल्पना 'कुरान' से प्रभावित है। 'संत कवि रज्जब' जी तो उस परम तत्व को निर्गुण और सगुण दोनों से परे ज्योति अज्योति दोनों से दूर मानते हैं। उनका कहना है कि उन्हे ज्ञानी अथवा अज्ञानी कोई नहीं जानता। वह सब तरह से परिपूर्ण है।

निरगुण सरगुण सौं परै, जोति अजोत्यूं दूरि।
जाण अजाण न जाणई, सकल रह्या भर पूरि ॥[3]

'रज्जब जी' का परम ब्रह्म अविचल अमर अलेख गति वाला है। वह सारे संसार में श्रेष्ठ है उस पर किसी का प्रभुत्व नहीं—

अविचल अमर अलेख गति, सकल लोक सिरताज।
जन रज्जब सो सिर धर्या, जा सिरि और न राज ॥[4]

संत कवि 'सुन्दरदास' निर्गुणोपासना के महत्व को बतलाते हुये लिखते हैं कि इस संसार में जो भी पैदा हुआ है सबका निरन्तर नाश होता आया है। जिसने स्वरूप धारण कर लिया वह तीनो लोकों मे कहीं भी स्थिर नही रह सकता। काल सत्, रज और तम तीनों गुणों को ग्रस लिया करता है। एकमात्र निर्गुण निरंजन परम ब्रह्म ही उससे अप्रभावित है। अतः निर्गुण ब्रह्म की ही उपासना श्रेयस्कर है।

---

१. नानक वाणी—सं० डा० जयराम मिश्र पृष्ठ ३६० असटपदी २ रागु गूजरी महला १ घरु १

२. दादू अलष अल्लह का, कहु कैसा है नूर।
दादू बेहद हद नही, सकल हिया भर पूर ॥
वार पार नहि नूर का, दादू तेज अनत।
कीमति नहि करतार की, ऐसा है भगवंत ॥
—दादूदयाल—सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृष्ठ ५३, परचा को अंग, साखी ६४, ६५

३. रज्जब बानी— डा० ब्रजलाल वर्मा पृष्ठ ११, पीव पिछाण को अंग, साखी १५

४. रज्जब बानी— डा० ब्रजलाल वर्मा, साखी ७८, पृष्ठ ११५

जो उपज्यौ कछु आइ जहाँ, लगि सो सब नास निरंतर होई।
रूप धर्‌यो सु रहै नहिं निश्चल तीनहुँ लोक गनै कहा कोई॥
राजस तामस सात्विक जे गुन, देषत काल ग्रसै पुनि बोई।
आपुहिं एक रहै सु निरंजन, सुन्दर के मन मानस सोई॥[1]

संत कवि 'सुन्दरदास' ब्रह्म को निरीह, निरामय, निर्गुण, नित्य, निरंजन, अखंड और सर्वव्यापी मान कर भीतर और बाहर उसी के प्रकाश का आभास पाते है—

ब्रह्म निरीह निरामय, निर्गुन, नित्य निरंजन और न भासै।
ब्रह्म अखंडित है अध ऊरध, बाहिर भीतर ब्रह्म प्रकासै॥[2]

निरजनी सम्प्रदाय के संत 'तुरसीदास' भी परम तत्व के निगण रूप को ही मानते है। उनके विचार से परमात्मा के सगुण स्वरूप में अवतरित होना उनके महत्व को कम कर देता है। परम तत्व का सगुण रूप निर्गुण रूप का एक अंश मात्र है। अतः निर्गुण की उपासना से सगुण रूप भी संतुष्ट हो जाता है। इस तरह परम तत्व का मूल निर्गुण रूप है। सगुण रूप तो शाखा मात्र है। जिस तरह वृक्ष की जड़ सीचने से सम्पूर्ण वृक्ष हरा-भरा हो जाता है और उसकी शाखा की भी तृप्ति हो जाती है उसी तरह निर्गुण उपासना से सगुण ब्रह्म भी संतुष्ट हो जाता है। निर्गुण और सगुण के भेदों का स्पष्टीकरण करते हुये संत कवि 'तुरसीदास' कहते है—

निरगुन सगुन सरूप है, बरनै वेदन माहि।
तुरसी निरगुन मूर है, सरगुन डारी आहि॥
सबही तरवर तृपित होय, करत मूल जल पोष।
तुरसी य निरगुन भजत, सरगुन हूँ होय सतोष॥[3]

संत सिंगा जी का विचार 'संत कबीर' के विचारो से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। वे परम तत्व को पुष्प की गंध की भाँति अपने आस-पास सर्वत्र व्याप्त पाते हैं। वे कहते है कि परमात्मा हमसे दूर नही है वह आस-पास ही सर्वत्र व्याप्त है किन्तु उसको हम ठीक उसी प्रकार देख नही पाते जैसे फूल की गंध का अनुभव तो करते है किन्तु देख नहीं पाते।[4] वह न तो बोलता है और न

---

१. सुन्दर सार—स० पुरोहित हरिनारायण, पृष्ठ १९३
२. सुन्दर दर्शन—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृष्ठ १५१
३. निरजनी संप्रदाय और संत तुरसीदास—डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ४८
४. दूर नहिं आस ते पासा। जयेसी फूल में रहेती बासा॥
—निमाड़ के संत कवि सिंगा जी—डा० रमेशचन्द गंगराडे, पृष्ठ १३, साखी ११०

अपने रूप का ही दर्शन दिखलाता है। ऐसा प्रभु सारे संसार का स्वामी कहलाता है—

ना बोले ना रूप दिखावे। ऐसा तूं जगदीश कहावै। (सिंगा जी का नरद)

इस तरह हिन्दी संत कवियों ने सर्व-प्रथम तो निर्गुणोपासना को महत्व दिया। उपनिषदों के अद्वैतवाद से प्राप्त तत्व ज्ञान से पूर्णतया तृप्ति न होने पर विशिष्टाद्वैतवाद से भक्ति की प्रेरणा ली और फिर भक्ति साधना के लिये उन्हें परम तत्व के 'सगुण' रूप की कल्पना तक आवश्यक हो गई। संतों ने परम तत्व के ऐश्वर्य माधुर्य और परमानन्द रूप का चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया। कभी उसे सृष्टि कर्त्ता के रूप में कुम्हार की संज्ञा दी और सृष्टि को नाना प्रकार के घड़ों के रूप मे देखने लगे और कभी ऐसे ब्रह्म के रहस्य को जानना उनके लिये कठिन हो गया—

ब्रह्मा एक जिनि सृष्टि उपाई। नांव कुलाल धराया।
बहु विधि भाडै उनहीं घडिया, प्रभू का अंत न पाया॥[1]

कभी वे सगुण और निर्गुण कुछ भी न कहकर उसे सर्व दोषो से परे बतलाने लगे। उन निर्गुण 'राम' वे ही है जो अजर, अमर न दोनो से अतीत, पिंड, ब्रह्माण्ड दोनों में ऊपर तथा अरूप और अवर्ण दोनों से परे है। संत कबीर का कथन है —

संतो धोखा कासूं कहिये।
गुण मैं निरगुण-निरगुण मै गुंण है, बाट छाडि क्यू बनिये॥
अजर अमर कथै सब कोई, अलख न कथणां जाई।
नाति सरूप वरण नहीं जाकै, घटि-घटि रह्यौ समाई।
प्यंड ब्रह्मंड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यड ब्रह्मंड छाड़ि जे कथियै कहै कबीर हरि सोई।[2]

कबीर के निर्गुण 'राम' त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत बिलक्षण, भावाभाव विनिर्मुक्त, अलख, अगोचर, अगम्य प्रेम पारावार भगवान है। वे केवल अनुभव से ही जाने जा सकते हैं। इसी भाव की अभिव्यक्ति के लिये वे 'गूगे का गुड़' कह कर उसे याद करते हैं।[3] डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों मे वह किसी भी

---

१. कबीर ग्रंथावली—काशी संस्करण, पृष्ठ १३४ पद २६८
२. वही पृष्ठ १११ पद १८०
३. अबिगत अकथ अनूपम देख्या कहता कह्या न जाई।
सैन करै मन ही मन रहसै, गूंगै जानि मिठाई॥—वही पद ६, पृष्ठ ७१
अकथ कहाणी प्रेम की कछु कही न जाई।
गूगे केरी सरकरा बैठे मुसुकाई॥ —वही पद १५६, पृष्ठ १०५

दार्शनिक वाद के मानदण्ड से परे है तार्किक बहस के ऊपर है, पुस्तकीय विद्या से अगम्य है, पर प्रेम से प्राप्य है, अनुभूति का विषय है, सहज भाव से भावित है।[1]

संत कवियों पर सूफी प्रभाव—सूफी मत ज्ञान और भक्ति का मध्यम मार्ग है जिसमें निर्गुणोपासना को प्रधानता दी गई है किन्तु यदि ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सूफियो की निर्गुणोपासना मे सगुणोपासना का भी किसी न किसी अंश मे समावेश है। एक तरफ सूफियो पर यह भारतीय भक्ति-भावना का गहरा रंग चढ़ा है तो दूसरी तरफ योगियों, सिद्धो ने भी सूफी मत पर अपनी छाप लगा दी है। इस तरह यह इस्लामी रहस्यवाद भारतीय परिवेश मे हिन्दी सन्त कवियो के समक्ष आता है। भारतीय भक्ति और ज्ञान मार्ग बिलकुल ही भिन्न वस्तुएँ है। भक्ति में सगुण और ज्ञान मे निर्गुण ब्रह्म की उपासना को महत्व दिया गया है। ऐसी दशा में यह स्पष्ट है कि हिन्दी के ज्ञान-मार्गी सन्तो मे यदि कहीं से सगुणोपासना का आभास मिलता है तो वह निश्चय ही सूफी प्रभाव माना जाना चाहिये। कबीर के रहस्यवाद का शारीरिक ढाचा यदि भारतीय अद्वैतवाद और हठयोग है तो उसका प्राण सूफीमत का प्रेम ही है। कबीर के 'पीव' साईं, करतार, भरतार मे जिसे परवर्ती सन्त कवियो ने भी अपनाया है। सूफियो के प्रेम पद्धति का एक स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। इन सन्त कवियो के रहस्यवाद मे अव्यक्त अशरीरी प्रियतम के प्रति दाम्पत्य भाव का प्रणय प्रदर्शित किया गया है। उसमें प्रेम की पीर और विरह की भावना की जो अभिव्यक्ति की गई है वह सूफियों की अपनी विशेषता है। सन्त दादू दयाल के प्रियतम तेज स्वरूप है उनका कोई भेद नहीं जान सकता वे वेदों और उपनिषदो की पहुँच से बहुत दूर है :—

"दादू निरन्तरि पीव पाईया, जहाँ निगम न पहुँचै वेद।
तेज सरूपी पीव बसै, कोई विरला जाणै भेद॥"[2]

कबीर अपने चंचल मन को चेतावनी देते हुये कहते है कि हे मन! ठहर तूने मेरे प्रियतम से वियोग करा दिया है। अब मैं तुझे पकड़ कर टांगूगा। तेरे गले में प्रेम की रस्सी बांधकर तुझे वहाँ ले चलूंगा जहाँ मेरे 'माधव' निवास करते है। मैने काया नगरी में प्रवेश कर वहाँ निवास किया है और अब मै भगवान के प्रेम रस को त्याग करके विषय रस में उन्मत्त हो गया हूँ। अब भाव और भक्ति से भगवान से गठबन्धन करना ही श्रेयस्कर होगा —

१. कबीर—डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, छठाँ संस्करण पृष्ठ १२७
२. दादूदयाल-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-परचा को अंग, पृष्ठ ४३, साखी २।

धीरौ मेरे मनवां तोहि धरि टांगौं ।
तैं तौ कियौ मेरे खसम सूं षांगौं ।।

प्रेम की जेवरिया तेरे गलि बांधूं, तहाँ लै जांउं जहां मेरी माधौ ।।
काया नगरीं पैसि किया मैं बासा, हरि रस छाड़ि विषै रसि माता ।।
कहै कबीर तन मन का ओरा, भाव भगति हरि सूं गठजोरा ।।[1]

कबीर के इस प्रणय रूपक में अव्यक्त अशरीरी प्रियतम के प्रति दाम्पत्य भाव की जो अभिव्यंजना हुई है उसमे निर्गुणोपासना के साथ-साथ सगुणोपासना के प्रति 'भाव और भक्ति का गठजोर' सूफी कवियों का स्पष्ट प्रभाव है । इस सम्बन्ध में एक तथ्य और भी स्पष्ट कर देना उचित होगा, वह यह कि सिद्धान्त रूप में भले ही सूफीमत 'निर्गुणोपासना' का समर्थक रहा हो किन्तु जब वह काव्य के प्रबन्धात्मक रूपो में 'परम तत्व' का निरूपण करने लगता है तो उसके 'प्रियतम' और 'प्रेमी' सुस्पष्ट हो जाते है जिनके माध्यम से कवि बड़ी ही सरलता से प्रियतम के प्रति प्रणय और प्रेम की पीर की अभिव्यक्ति कर देता है । इन सूफी कवियों का अनुकरण करके हिन्दी के सन्त कवियो ने भी प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए लम्बी प्रबन्धात्मक प्रेम गाथाओं को तो नही बनाया किन्तु छोटे-छोटे रूपकों द्वारा प्रेम की आत्म-अभिव्यंजना की, जो जन-साधारण के लिये अत्यन्त ही सहज, सुबोध और सरस हो गई । हिन्दी के कवियों मे यदि कही सरस, सुन्दर और रमणीय अद्वैती रहस्यवाद है तो उसमे सूफियो की उच्चकोटि की भावुकता भी सन्निहित है । वे सूफियो की भक्ति-भावना के अनुसार कही परमात्मा को प्रियतम के रूप मे देखकर जगत् के नाना रूपो मे उस प्रियतम के रूप-माधुर्य की छाया देखते हैं और कही सारे प्राकृतिक रूपो और व्यापारों का पुरुष के समागमन हेतु प्रकृति के शृङ्गार, उत्कण्ठा, या विरह विकलता के रूप मे अनुभव करते है ।[2] हृदय में विरह की आग उठती है, चित्त मे बेचैनी पैदा हो जाती है । सारा शरीर जलकर काला हो जाता है । विरह की पीड़ा प्रचंड रूप धारण कर लेती है और विरही को सारी सुधि भूल जाती है । रज्जब जी के शब्दो में प्रियतम उसी को प्राप्त होते हैं जो प्रिय के विरह मे अत्यन्त दुःखी हो रो-रो कर बेहाल हो जाता है :—

उठी उर जागि विरह की आगि, गई मन लागि भई तन कारी ।
पीर प्रचंड भई नव खण्ड जू, बीचि बिहंडि गई सुधि सारी ।।

---

१. कबीर ग्रन्थावली-काशी संस्करण-पद सं० २१३, पृष्ठ ११६

२. जायसी ग्रन्थावली-सं० रामचन्द्र शुक्ल, भूमिका, पृष्ठ १६४

भई चक चाल कहै विकराल, नहीं कछु हाल सु लाज बिसारी।
हो रज्जब रोइ कहै पिय जोइ, दुखी अति होइ वियोग की भारी ॥[1]

यद्यपि श्री मद्‌भागवत में भी गोपी कृष्ण प्रसंग में ठीक इसी प्रकार के प्रणय की बातें मिलती है किन्तु भागवत मे वर्णित प्रेम साकार कृष्ण के प्रति है जब कि सन्तों द्वारा वर्णित प्रणय निराकार ब्रह्म के प्रति है, जो सूफियों की ही एकमात्र देन प्रतीत होती है।

(ग) परम तत्व का नाद बिन्दु और शून्य बोध तथा ज्योति स्वरूप

सूफी दृष्टिकोण—जैसा कि पहले संकेत किया गया है भारतीय साधना-पद्धति के योग-तत्व से प्रभावित हो सूफियो ने भी अपनी रचनाओ मे योग की मोटी-मोटी बातों को अपनाने का प्रयास किया। यद्यपि सूफियो ने योग की गहराई मे जाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी है किन्तु फिर भी वे परम तत्व की प्राप्ति के लिये की जाने वाली साधना मे योग के महत्व को स्वीकार करते है। सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानो में जब प्रेमी के हृदय मे विरह की आग उत्पन्न हो जाती है तो उससे राज-पाट सबका त्याग कराकर जोगी वेश में उसे प्रेम-साधना के मार्ग पर अग्रसर कर देते हैं। इससे स्पष्ट है कि वे योग के महत्व से प्रभावित है। कही-कही सूफियों ने योग से प्रभावित हो परम-तत्व को 'शून्य' रूप मे कल्पना करने का भी प्रयास किया है।

हुता जो सुन्नम सुन्न, नाव-टांव ना सुर सबद।
तहाँ पाप नहि पुन्न, मुहम्मद आपुहि आपुमहं ॥[2]

फिर वही 'शून्य' जो सबके लिये अपरिचित-सा रहा। सूक्ष्म से स्थूल रूप में परिवर्तित हो 'ससार' कहलाया। अन्धकार से एक ज्योति उत्पन्न हुई और उस ज्योति से एक मोती पैदा हुआ। फिर मोती से अपार जलराशि पैदा हुई जिसमें फेन उठने से आकाश बन गया। दूसरा फेन उठा और वह जम गया। उससे पृथ्वी बनी :—

ओ सुन भा जो अहा अचिन्हा। फनु अस्थूल भयउ जग कीन्हा।
अंधकूप महं निकसो जोती। जोतिहि ते उपन एक मोती ॥
मोती ते भया पानि अपारू। उठा फेन उठि गया अकारू।
दूसरे फेन उहै जलि जामा। मह धरती उपजइ सब नामा ॥[3]

सूफियों ने परम तत्व का निरूपण करते हुये उसे ज्योति स्वरूप माना है।

---

१ रज्जब बानी-डा० ब्रजलाल वर्मा—विरह का अंग, पृष्ठ ४३५, पद १।

२. जायसी ग्रन्थावली-अखरावट सोरठा १।

३. चित्ररेखा-जायसी-पद ३।

अपने प्रेमाख्यानों में जहाँ वे परमात्मा के रूपकों का चित्रण करते हैं उसे परम-प्रकाश के रूप में दिखलाते हैं। जायसी ने पद्‌मावत में शुक के मुख से पद्‌मावती के सौन्दर्य की प्रशस्ति कराते हुये कहलाया है :—

उअत सूर जस देखिय, चाँद छपै तेहि धूप।
ऐसे सबै जाहिं छपि, पद्‌मावति के रूप ॥[1]

अर्थात् ऐसी उस पद्‌मावती के रूप के सम्मुख सारे राजकुमार इस प्रकार छिप जाते हैं जैसे सूर्य के उदय होने पर चन्द्रमा उसकी धूप के प्रकाश में निष्प्रभ हो जाता है। सौन्दर्य में परम प्रकाश का आभास इस्लामी परम्परा का प्रभाव है। मुस्लिम धार्मिक ग्रन्थ हदीस के अनुसार अल्लाह ने सर्वप्रथम 'नूर' अर्थात् ज्योति को उत्पन्न किया था। यह ज्योति मुहम्मद साहब के रूप में अवतरित हुई थी और अल्लाह ने फिर इसी ज्योति के लिये सृष्टि की रचना की थी। ठीक इसी बात को 'मृगावती' में कुतुबन ने भी दुहराया है।[2]

इस तरह सूफी कवियों ने जहाँ कही भी परम तत्व के परम सौन्दर्य का निरूपण किया है प्रकाश पुंज के रूप मे ही दिखलाने का प्रयास किया है। 'मौलाना दाऊद' जब चन्दा की माँग का वर्णन करने लगते हैं तो उन्हे ऐसा प्रतीत होता है मानों रात्रि में दीपक जलाया गया है। माँग को चीर कर नीचे देखने पर ऐसे लगता है मानो सूर्य के उदय होते समय की किरण अंधकार में प्रविष्ट हुई हो। जब उस माँग पर मोती पूर कर बैठाये जाते है तो समस्त देश मे प्रकाश हो जाता है। यथा . —

दीया जोति रइनि जति बारी। कारें सीस दीस रतनारी ॥
मंइ वह मागि चीर तर दीठी। उवत सूरु जनु किरनि पईठी ॥
मोति पुरोइ जसहि बइसारा। सगरे देस होइ उजियारा ॥[3]

वाजिर चन्दा के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कहता है कि वह चन्दा सहदेव महर की लड़की है और चारो भुवनों में प्रकाशित है वह ऐसी लगती है मानो माणिक्य की ज्योति प्रज्ज्वलित हो रही है। वह अपार नागरी और चतुरा है :—

सहदेव महर के धिय, चाँदा चहूँ भुवन उजियारा।
मानिक जोति जानु पर जरहिं, नागरि चतुर अपारा ॥[4]

---

१. जायसी ग्रन्थावली--पद्‌मावत राजा सुआ संवाद खण्ड पद ६७।
२. कुतुबन कृत मृगावती—डा० माता प्रसाद गुप्त, स्तुति खण्ड, पद ४, पृष्ठ ३।
३. दाऊद कृत चान्दायन—डा० माता प्रसाद गुप्त, चान्दा शृङ्गार वर्णन, खंड पृ० ६३, पद ६४।
४. वही, पृष्ठ ६०, छन्द ६२।

मृगावती और पद्मावत में माँग का वर्णन चान्दायन से कुछ भिन्न अवश्य है किन्तु 'मंझन' की 'मधुमालती' में चान्दायन की भाँति ही माँग को दीपक के समान ही दिखाया गया है। दोनों मे माँग के सौन्दर्य की तुलना सूर्य किरण से की गई है।

सूर किरिन सिर माँग सोहाई । सम जग जोति गगन पर आई ।
माँग न आहि गगन कै हाटा । रबि ससि उदै अस्त कै बाटा ।।[1]

अर्थात् सिर की माँग सूर्य की किरण है जो सारे संसार को जीत कर आकाश पर आई हुई है। यह माँग नही है आकाश की हाट है जहाँ सूर्य और चन्द्रमा के उदय और अस्त होने के रास्ते हैं। इस तरह सूफियो ने परम तत्व को ज्योति (नूर) रूप में निरूपित करने का जो प्रयास किया है वह कुरान मजीद के सूर अननूर में वर्णित परमात्मा के स्वरूप से बिलकुल ही मिलता है। जिसमें कहा गया है कि अल्लाह आसमान और जमीन का प्रकाश है। उसके प्रकाश की मिशाल ऐसी है जैसे एक ताक हो और उसमें एक चिराग रखा हो। वह चिराग एक फानूस मे हो। वह फानूस ऐसा हो मानों वह चमकता हुआ तारा है।[2] प्रायः सूफियों ने नाद बिन्दु आदि का प्रयोग सन्तो की तरह नही किया है।

संत कवियों का दृष्टिकोण—सन्त साहित्य मे परम तत्व के लिये नाद (शब्द) बिन्दु (शून्य) आदि का प्रयोग सिद्ध और नाथ परम्परा के अनुसार हुआ है। सन्त कवियों ने नाद को ईश्वर का अंश और बिन्दु को शरीर अंश माना है। यह सिद्धो और नाथों का ही स्पष्ट प्रभाव है। सन्त कबीर का नाद बिन्दु का प्रयोग देखिये :—

अव्यक्त नादै बिन्दु गगन गाजै सबद अनहद बोलै ।
अन्तरगति नहि देखै, नैड़ा ढूंढ़त बन-बन डोलै ।।

जिस तरह गोरखनाथ ने अदृश्य ब्रह्म को चित्त मे रखकर ध्यानावस्थित हो, देखने और उस पर चिंतन करने का उपदेश दिया है ठीक उसी प्रकार कबीर भी परम तत्व का निवास-स्थान 'शून्य' को ब्रह्मरन्ध्र मे ही मानते है। प्राण छूट जाने पर गगन (शरीराश) विनष्ट हो जाता है और उसमें निवास करने वाला शब्द तत्व (परम तत्व) पता नहीं कहाँ विलीन हो जाता है। कबीर के संशय और चिंतन का मुख्य विषय यही है।

---

१. मंझन कृत मधुमालती—डा० माता प्रसाद गुप्त, छन्द ७८, पृष्ठ ६४

२. कुरान मजीद मक्तबा अलहसनात रामपुर सूर: २४ आयत ३१, ३२, ३३, पृ० ३६० ।

सन्तों धागा टूटा गगन बिनसिगा, सबद जू कहाँ समाई।
यदि संसा मोहि निसिदिन व्यापै, कोई न कहै समझाई ॥[1]

यहाँ पर कबीर ने गगन (शून्य) को शरीर के रूप में प्रयोग किया है। आगे चलकर वही कबीर 'शून्य' को परम तत्व के रूप में प्रयोग करने लगते हैं। कबीर आदि सन्तों ने ब्रह्मरंध्र, परम लोक आदि के अर्थ में भी 'शून्य' का प्रयोग किया है। वेदान्त के 'कनक कुंडल न्याय' के अनुसार जिस प्रकार सोने से कुंडल बनता है और कुंडल के टूट जाने पर उसे गला कर सोना ही बना लिया जाता है ठीक उसी तरह नाम रूपात्मक दृश्यो की उत्पत्ति (शून्य) ब्रह्म मे ही होती है और अन्त मे वे सारे दृश्य ब्रह्म (शून्य) मे ही विलीन हो जाते है।

जैसे बहु कंचन के भूषन, येकहि गालि तवावहिगे।
ऐसे हम लोक वेद के बिछुरे, सुन्नहि माँहि समायहिगे ॥[2]

सन्त 'रैदास' भी कबीर की ही भाँति परम तत्व को अगम, अगोचर, अक्षर, निर्गुण, आदि बताकर निर्विकार और अविनाशी बतलाते है तथा सत्य 'शून्य' के रूप में जीवों को मुक्ति प्रदान करने वाला मानते है।

सदा अतीत ज्ञान धन वर्जित, निर्विकार अविनासी।
कह रैदास सहज सुन्न सत, जिवन मुकत निधिकासी ॥[3]

इस तरह जीवात्मा 'शून्य' से ही पैदा हुई है और 'शून्य' मे ही विलीन होने वाली है। केवल भ्रम के कारण द्वैत भावना बनी हुई है। यह भ्रम ठीक उसी प्रकार ह जैसे कनक और कुण्डल का अथवा धागे और वस्त्र का भ्रम है जिसे लोग रस्सी को सर्प रूप में जानने के भ्रम की भाँति मान लेते है। ब्रह्म और जीव के बीच ठीक वैसे ही द्वैत भावना माननी चाहिये जैसे पत्थर और प्रतिमा की अथवा जल और तरंग की। अर्थात् जिस तरह पत्थर और प्रतिमा अथवा जल और तरङ्ग दो होते हुये भी एक ही है ठीक उसी तरह से परमात्मा और जीवात्मा में द्वैत दीखने पर भी दोनो एक ही तत्व है। वह परम तत्व अत्यन्त ही निर्मल है। न वह कभी उत्पन्न होता है और न कभी उसका विनाश होता है। उसका कभी उदय-अस्त भी नहीं होता। उसमे कभी-कभी नही होने पाती, वह सबमें निवास करता है।

माधो भरम कैसेहु न बिलाइ, ताते द्वैत दरसै आई।
कनक कुंडल, सूत पद जुदा, रजु भुअंग भ्रम जैसा ॥

---

१. कबीर ग्रन्थावली—प्रयाग संस्करण, पृष्ठ ६६, पद ११३।

२. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण, पृष्ठ २६।

३. सन्त काव्य—सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, तृ० सं० पृष्ठ १८५, पद ३।

जल तरंग पाहन प्रतिमा ज्यों, ब्रह्म जीव दुति ऐसा।
विमल एक रस उपजैन बिनसै, उदय अस्त दोउ नाहीं।।
विगता विगत घटै नहिं कबहूँ, बसत बसै सब नाही।।[1]

सिक्ख गुरुओं ने भी शून्य और शब्द दोनों का परम तत्व के रूप से प्रयोग किया है।

उलटै मन जब सुन्नि समावै। नानक शब्दै शब्द मिलावै।।

गुरु नानक देव का कथन है कि 'अनहद शब्द' की प्राप्ति गुरु के उपदेश पर विचार करने से होती है जब अनहद शब्द की प्राप्ति हो जाती है तो अहंकार का नाश हो जाता है।

अनहद सबद सुहावणे, पाईये गुर वीचारि।
अनहद बाणी पाईये, तउ हउमें होइ विनासु।।
सतगुर सेवे आपणा हउ सद कुर्बाणे तासु।[2]

इस तरह सिक्ख गुरुओं के विचार से भी 'अनहद नाद' से तात्पर्य उसी परम तत्व से ही लिया जाना चाहिये जिसकी प्राप्ति हो जाने पर साधक अपने अस्तित्व और अहंकार को खोकर उसी मे अपने को विलीन कर देता है। 'सन्त दादू दयाल' के विचार से भी 'शून्य' ब्रह्म रूप और ब्रह्म का निवास-स्थान भी है।

ब्रह्म सुन्न तहाँ ब्रह्म है, निरजन निराकार।
नूर तेज जहाँ जोति है, दादू देखन हार।।[3]

'कबीर' ने 'शून्य' को ब्रह्मरंध्र के रूप मे भी प्रयुक्त किया है। हठयोग की साधना में जब वे समाधिस्थ हो जाते है उस समय उनका मन 'शून्य' (ब्रह्मरंध्र) में समा जाता है और वे 'अनहद नाद' सुनने लगते है।[4] इसी अवस्था मे पहुँच कर निरंजनी सन्त 'तुरसीदास' भी 'पार ब्रह्म' की ज्योति का अवलोकन 'अनहद नाद' के बीच करते है :—

अनहद बाजा बाजहो, रुन-झुन धुन तह होति।
तुरसी तव प्रकट रही, पार ब्रह्म की ज्योति।।[5]

---

१. सन्त काव्य—स० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, तृ० सं०, पृष्ठ १८५, पद ३।

२. नानक बाणी—स० डा० जयराम मिश्र, पृष्ठ ११८, पद १८।

३. दादू दयाल की बानी—१ पृष्ठ ५८।

४. उलटै पवन चक्र षट बेधा मेर डंड सरपूरा।
गगन गरजि मन सुंनि समांना, बाजे अनहद तूरा।।
— कबीर ग्रन्थावली काशी संस्करण, पृष्ठ ७१, पद ७।

५. निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसीदास —डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ७३ पर उद्धृत।

'सन्त दादूदयाल' ने 'शून्य' को ब्रह्मरंध्र के रूप में 'सरोवर' माना है। मन को भ्रमर तथा कर्त्ता (ब्रह्म) को कमल मानकर ध्यानावस्था में चित्त को एकाग्र करके ब्रह्मानन्द की अनुभूति का उपदेश दिया है। वे ब्रह्मरध्र को 'शून्य सरोवर' मानते हैं मन को मछली और जल को 'निरंजन देव' मानकर अलख, अभेद, परम-तत्व के साथ विहार करने का उपदेश देते हैं।

सुनि सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव।
दादू यह रस विलसिये, ऐसा अलख अभैव ॥
सुनि सरोवर मन भंवर, तहाँ कंवल करतार।
दादू परिमल पीजिये, सनमुप सिरजन हार ॥[1]

सन्त कवि 'रज्जब' जी 'आदि नारायण' को 'शून्य' के सदृश्य मानते है जो निर्गुण अथवा सगुण ब्रह्म में 'ज्योति' रूप में विद्यमान है और कभी लुप्त नहीं होता।[2] सन्त कवि 'सुन्दर जी' परम तत्व को सगुण और निर्गुण की सीमित परिभाषा में नही बाँधना चाहते। वास्तव मे परम तत्व 'स्थूल' और 'शून्य' दोनों की सीमा से भी परे है। वह ब्रह्म 'अस्ति' और 'नास्ति' की सीमा से भी ऊपर है।

कोइ बार कहै कोइ पार कहै, उसका कहुँ बार न पार है रे।
कोइ मूल कहै कोई डार कहै, उसको कहूँ मूल न डार है रे ॥
कोइ शून्य कहै, कोइ थूल कहै, वह सून्य हूँ थूल निराल है रे।
कोइ एक कहै कोइ दोइ कहै, नहिं सुन्दर द्वन्द्व लगार है रे ॥[3]

'सन्त मलूकदास' परम तत्व का निरूपण करते हुये उसे गगन मडल में 'अनहद नाद' के रूप मे सुनते है। उसके जाति और वर्ण के प्रति अपनी अनभिज्ञता प्रकट करते है। वे 'परम तत्व' को 'अनामी' तथा 'शून्य' महल (ब्रह्मरंध्र) का निवासी बतलाते है :—

अवधू का कहि तोहि बखानौ।
गगन मण्डल मे अनहद बोले, जाति बरन नहि जानौ ॥
अहो अहो मैं कहा कहो तोहि, नॉव न जानो देवा।
सुन्नि महल की जुगुति बतावै, केहि विधि कीजै सेवा ॥[4]

---

१. दादू दयाल-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी पृ० ४६, परचा का अंग साखी ५६, ६०

२. औतार सू आभौ की कला, सरगुन निरगुन माहि।
आदि नरायन सुन्नि सम, लिपै छिपै सु नाहि ॥
—रज्जब बानी—डा० ब्रजलाल वर्मा, साखी भाग, पृष्ठ ११०, साखी २।

३. सुन्दर दर्शन—डा० त्रिलोकीनाथ दीक्षित, पृष्ठ १५४।

४. मलूकदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग, पृ० ४, शब्द २।

इस तरह सन्त कवियों ने परम तत्व को कहीं 'शून्य' रूप में, कहीं 'अनहद नाद' के रूप में और कहीं ज्योति के रूप में निरूपित करने का प्रयास किया है और कही स्थूल और शून्य से परे भी दिखलाया है।

सन्त कवियों पर सूफी प्रभाव—जहाँ तक परम तत्व के 'नाद बिन्दु' बोध का सम्बन्ध है यह विचार तो सन्त कवियों ने नाथ और सिद्धो के योग साधना से सीधे ग्रहण किया है। किन्तु परम तत्व का ज्योति (नूर) रूप में चित्रित करना यह स्पष्ट सूफी प्रभाव जान पड़ता है। सन्त कवि दादू दयाल कहते है कि जिस तरह आकाश में एकमात्र सूर्य का प्रकाश है उसी तरह उस परम तत्व का प्रकाश सर्वत्र कण-कण में व्याप्त है। उस एक अल्लाह का प्रकाश और ओज अनन्त है। यथा :—

ज्यों रवि एक प्रकास हैं, ऐसे सकल भरपूर।
दादू तेज अनन्त है, अलह आले नूर॥[१]

वे उस अलख 'अल्लाह के नूर' को असीम और अनन्त तेज वाला बतलाते है और उस परम-तत्व उस सृष्टि कर्त्ता के मूल्यांकन मे अपने को असमर्थ पाते है।

वार पार नहिं नूर का, दादू तेज अनन्त।
कीमति नहिं करतार का, ऐसा है भगवन्त॥[२]

सूफियों के परम ज्योति (नूर) का प्रभाव कबीर पर भी पड़ा है। उन्हें बिना चन्द्रमा और सूर्य के जो अशरीरी प्रकाश का कौतूहल दिखाई पड़ता है वह और कुछ नहीं ईश्वरीय प्रकाश (नूर) ही है। वे उसी परम-ब्रह्म की सवा में अपने को निश्चित मानते है। वह परम तेज अगम है, अगोचर है वहाँ कोई जा नहीं सकता। वहाँ पाप पुण्य का भेद नही है।

कौतिग दीठा देह बिन, रवि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माँहि है, बैपरवाही दास॥
अगम अगोचर गमि नहिं, तहा जगमगी जोति।
जहाँ कबीरा बन्दगी, पाप पुण्य नहि छोति॥[३]

सन्त कवि 'रज्जब' जी भी उसी सूफी नूर से प्रभावित है। वे आत्मा को दीपक और भगवान को ज्योति (नूर) रूप में कल्पना करते है तथा भावनाओं के तेज स परिपूर्ण कर उसी एकमात्र ईश्वरीय प्रकाश (नूर) को पूजने की सलाह देते है। भूलकर किसी दूसरे देवता की अर्चना नही करने को कहते।

---

१. दादूदयाल—सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, परचा का अंग, साखी-८०, पृ० ५१
२. वही, साखी ६५, पृष्ठ ५३।
३. कबीर ग्रन्थावली —काशी सस्करण-परचा कौ अंग, पृष्ठ १०, साखी २, ४।

आतम दीपक जोति हरि, भाव तेल तह पूरि।
रज्जब पूजि प्रकाश कौं, भूलि न पडिये दूरि ॥[1]

कुछ सन्त कवियों ने 'ब्रह्मरंध्र' या 'शून्य' को सरोवर रूप में चित्रित करने की जो कल्पना की है उसमें सूफी प्रेमाख्यानों में वर्णित 'सरोवर' में परम ब्रह्म रूपी नायिकाओं के रमण करने की कल्पना का आभास मिलता है। 'जायसी' के पद्मावत के मान सरोदक खंड मे पद्मावती के साथ चलती हुई सारी सखियाँ इस प्रकार शोभा पा रही थीं जैसे कमल में चारो ओर कुमुदियाँ खिल रही हों और गन्धर्व रूपी भौरे उनके शरीर से उठने वाली सुगन्धि का पान कर परम आनन्द में मदमत्त हो रहे हैं।

चली सबै मालति संग फूली, कंवल कुमोद।
बेधि रहे गन गंध्रब, बास परमदामोद ॥[2]

कुतुबन कृत मृगावती मे भी राजकुमार को मृगावती के दर्शन सरोवर में सखियों सहित स्नान करते समय ही होता है जिसे देखकर पहले तो वह मूर्च्छित हो हो जाता है किन्तु बाद में सम्हल कर बैठ जाता है वह देखता है कि मृगावती सखियों सहित सरोवर में क्रीड़ा कर रही है वे सभी प्रसन्न हो धमार खेल खेल रही हैं :—

देखत परा मुरछि के, इन्ह कह फुनि उठि वैठि संभारि।
कोइ करहिं रहसहिं सरवर महं, खेलहिं सबइ धमारि ॥[3]

उसमान की चित्रावली में भी नायिका सरोवर को अत्यन्त ही सुहावना बतलाते हुये कहती है कि इसका अंत बिरले ही कोई पा सकता है। हे सखियों ! तुम मेरे प्रेम का पालन करो और उसकी प्रतिज्ञा करो। मै इस सरोवर में छिपती हूँ और मुझे ढूढ़ने का प्रयास करो। देखें कोई पाता है या नहीं। यथा : —

यह सरवर जो आहि सुहावा। एहि क अंत बिरला जन पावा।
तुम संतत पालहु मम नेहू। आज मोर परतिग्या लेहू ॥
हौ छिपाउं एहि सरवर मांही। तुम खोजहु कोउ पाव कि नाहीं।[4]

संभव है सूफी कवियों ने भी योगतत्व से प्रभावित हो समाधि अवस्था में ब्रह्मरंध्र के शून्य सरोवर मे परम तत्व के दर्शन का इस प्रकार का रूपक बाधा हो और सम्पर्क मे आने वाले संत कवियो को भी इस कल्पना को अपनी रचनाओं में

---

१. रज्जब बानी—डा० ब्रजलाल वर्मा--पीव पिछाण कौ अंग, पृष्ठ ११३, साखी ४७
२. जायसी ग्रन्थावली—पद्मावत मानसरोदक खंड पद ६०।
३. कुतुबन कृत मृगावती—डा० माता प्रसाद गुप्त—मृगावती दर्शन खंड, पृष्ठ ३४, छंद ४२
४. चित्रावली—उसमान, पृष्ठ ४७, सरोवर खंड छंद ११६, पृष्ठ ४७

भी व्यवहार करने का अवसर मिल गया हो। संत दादू दयाल ने इस प्रकार के 'शून्य सरोवर' का बहुत वर्णन किया है।

दादू भंवर कंवल रस वेधिया, सुष सरवर रस पीव।
तहां हंसा मोती चूणैं, पीव देखैं सुष जीव॥
दादू तिस सरवर के तीर, जप तप संयम कीजिए।
तहा सन्मुष सिरजन हार, प्रेम पिलावे पीजिए॥[1]

संत दादूदयाल और कबीर के सरोवर सूफियो द्वारा वर्णित व सरोवर ही हैं जहाँ उनकी प्रियतमायें, सखियों समेत जलक्रीडा करती हुई दिखाई गई है। निश्चय ही संतो ने परम तत्व की प्राप्ति और उसके दर्शन के लिए ब्रह्म-रंध्र को 'शून्य सरोवर' की जो संज्ञा दी है उसके पीछे सूफियो की ही यह कल्पना काम कर रही जान पड़ती है।

(घ) परम-तत्व की सर्व-गुण सम्पन्नता और परम सौन्दर्य

सूफी कवियों का दृष्टिकोण—मध्यकालीन हिन्दी सूफी कवियों ने परम-तत्व का जो चित्र प्रस्तुत किया है उसमे उन्होने उसे सर्वज्ञ, उदार, क्षमाशील, करुणामय, सर्व-शक्तिमान्, स्रष्टा, पालनकर्ता और संहर्ता आदि सभी गुणो से सम्पन्न माना है। 'दाऊद' के कथनानुसार उस परम तत्व ने इस सारे संसार की रचना की ताकि कोई अकेले अपने संगी-साथी की खोज मे न मरे। एक और अकेले ही उसने समस्त संसार की रचना की दूसरा और कोई उसकी तरह निर्माता नही हुआ।[2] वह ऐसा सर्व-शक्तिमान् है। उस परम-तत्व के महत्व को स्वीकार करते हुये 'कुतुबन' कहता है कि "जिसकी जिह्वा पर उसका नाम नही आया वह भले ही अग्नि में जले किन्तु मोक्ष को प्राप्त नही कर सकता।"[3] 'जायसी' ने अपने पद्मावत मे परम-तत्व की सर्वगुण सम्पन्नता का बड़ा ही विस्तार से वर्णन किया है। वह कहता है कि उसने

---

१. दादू दयाल—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—परचा का अंग, साखी १४, ५२

२. सिरजसि आथि न साथि औ झांपि मरै जनि कोइ।
देकि अकेले सब जग सिरजा, दूसर और न कोइ॥
—दाऊद कृत चांदायन—सं० डा० माता प्रसाद गुप्त, स्तुति खंड छंद ५, पृष्ठ ५

३. जेहि रसना ओहि नाउं न आवा। पावक जरे 'मोख' नहिं पावा॥
—कुतुबन कृत मृगावती—सं० डा० माता प्रसाद गुप्त, स्तुति खंड छंद ४, पृष्ठ ३

इस संसार का प्रबंध कर रखा है कि वह युग-युग से सबको सब कुछ देता चला आ रहा है किन्तु फिर भी उसके भंडार में रंच-मात्र भी कमी नहीं हो पाई है। अन्य लोग जो संसार में दूसरों को दिया करते हैं वह सब भी उसी परमात्मा की देन है।[1] इस संसार में सब कुछ नश्वर है केवल वह परमात्मा ही एकमात्र स्थिर और अटल है। यह संसार उसी की रचना है। वह एक को बनाता है और फिर उसे बिगाड़ देता है। फिर यदि चाहता है तो उसे संवार देता है।[2] उस ईश्वर ने जो चाहा सो किया और जो करना चाहता है वह करता है। उसे रोकने वाला कोई भी नहीं है, उसने अपनी इच्छा मात्र से सबको जीवन प्रदान किया है।[3] इस तरह जायसी ने परम तत्व को अलक्ष्य, अरूप, सृष्टि कर्त्ता, उदार, अविनाशी, सर्व-शक्तिमान् आदि सर्वगुणों से सम्पन्न माना है। इन विचारों का मूल उद्गम उपनिषदों को माना जा सकता है। परम-तत्व की अलौकिकता का वर्णन करते हुये मझन का कथन है कि देवता, मनुष्य तथा नाग आदि सभी मिलकर यदि करोड़ों वर्ष तक उस परम-तत्व की स्तुति करें तो वे भी पीछे पछताकर यही कहेंगे कि "जैसा तू है वैसा हम किसी को नही जानते है। करोड़ो वर्ष तक यदि मन भ्रमण करता रहे तो भी बेचारी बुद्धि उस परम तत्व को प्राप्त नही कर सकेगी। वही परमात्मा संसार को अन्न तथा आहार देने वाला, उसका कर्त्ता, भर्ता और संहर्त्ता है।"

सुरनर नाग जहाँ लगि अहही। कोटि बरिस जौ अस्तुति करहीं।
पाछे सम पछिताइ कहाही। जस तैं तस हम जानहि नाही॥
कोटि बरिस जौ मन फिर आवै। बुधि बपुरो दहुं कहवां पावै।
जगत क अन अहार कर दाता। करता हरता एक विधाता॥[4]

सूफी कवियों द्वारा परम-तत्व के निरूपण की जो सबसे बड़ी विशेषता है उसका 'परम सौन्दर्यवान्' होना। उनके विचार से इतना सौन्दर्यशील है कि जीवात्मा उसे देखते ही उसके प्रेम में अपने को भुला देती है। सूफी प्रेमाख्यानो में रूपको

१. जुग-जुग देत घटा नहिं, उभै हाथ अस कीन्ह।
और जो दीन्ह जगत महं. सो सब ताकर दीन्ह॥
—जायसी ग्रंथावली पद्मावत स्तुति खंड छंद ५

२. सबै नास्ति वह अहथिर, ऐस साज जेहि केर।
एक साजै औ भाजै, चहै संवारे फेर॥
—वही, छंद ६

३. वही, छंद ७

४. मंझन कृत मधुमालती—डा० माता प्रसाद गुप्त, छंद ३, पृष्ठ ५

और प्रतीकों के माध्यम से 'परम-तत्व' के निरूपण में इसी 'परम सौन्दर्य' की भावना कार्य कर रही है और इसीलिये प्रायः सभी सूफी कवियों ने सौंदर्य वर्णन को अपने काव्य का मुख्य अंग बना लिया है। बहुत से कवियों ने नखशिख वर्णन के माध्यम से उस अलौकिक सौंदर्य के चित्रण की चेष्टा की है।[1] चांदायन में बाजिर चंदा के सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कहता है कि मैं चारों भुवनों का चक्कर लगाता हुआ 'गोबर' नामक सुहावने नगर में पहुंचा। वहाँ पर मैंने 'चांद' नामक स्त्री को देखा जो पत्थर में चुभी हुई कील की भांति मेरे चित्त मे गड़ गई है। उसकी प्रतिमा किसी भी तरह मेरे मन से मिटाये नहीं मिटती। वह दिन पर दिन बढ़ती जाती है।[2]

परम-सौंदर्य का बखान करते हुये 'कुतुबन कृत मृगावती' में राजकुवर धाय से कहता है कि मृगावती को देखकर ऐसा लगा मानो बिजली कड़क कर चमकी हो। उसे देखकर मैं अचेत हो गया।

बीजु चमकि बरु चमंकी, हौंगा बे संभार।
मार्ग पयोहर कर पा, एक-एक कहौ सिंगार ॥[3]

और फिर वह नखशिख वर्णन प्रारंभ कर देता है जिसमें मृगावती के अलौकिक शृंगार का उल्लेख है। 'जायसी' के पद्मावत मे तोते के मुख से पद्मावती के नखशिख के अलौकिक सौंदर्य का वर्णन करता हुआ कवि पद्मावत के रूप को अनुपमेय बतलाकर वर्णन करने में असमर्थता प्रकट करता है :—

बरनि सिंगार न जानेउं, नखसिख जैस अभोग।
तस जग किछुइ न पाएउं, उपमा देउं ओहि जोग ॥[4]

पद्मावत रूप चर्चा खड़ मे भी जायसी ने पुन पद्मावती के परम सौंदर्य का बखान राघव चेतन के मुख से करवाने का प्रयास किया है। राघव चेतन कहता है कि पद्मावती का शरीर सूर्य की किरणों से भी अधिक निर्मल है। उसके समक्ष दृष्टि करके देखा नहीं जा सकता। ऐसा करने से दर्शक की आँखों में पानी आ

---

१. नखशिख वर्णन (चांदायन छंद ६२ से ८५, मृगावती छंद ४८ से ७५, मधुमालती छंद ७७ से ९८, पद्मावत छंद १०१ से ११० तक)

२. दाऊद कृत चांदायन सं० डा० माता प्रसाद गुप्त चांदा शृङ्गार बर्णन खंड छंद ६२, पृ० ६०

३. कुतुबन कृत मृगावती—सं० मा० प्र० गुप्त मृगावती शृङ्गार वर्णन खंड छंद ८६, पृष्ठ ३६

४. जायसी ग्रंथावली पद्मावत—नखशिख खंड छंद ११०

जाता है। आँखें चौंधिया जाती हैं।[1] 'मंझनकृत मधुमालती' में राजकुमार जैसे-जैसे मधुमालती के रूप और शृंगार को देखकर संतुष्ट होने का प्रयास करता है वैसे-वैसे उसके नेत्र उसके अंगों को नहीं छोड़ रहे हैं क्योंकि वे उसके रूप पर मुग्ध हो चुके हैं।

> रूप सिंगार सुहागिनी, जेउ-जेउं देखि अघाइ।
> तेएं-तेएं नैन न परिहरहिं, रूप जो रहे लोभाइ ॥[2]

और उस बाला के मुख पर मदन की द्युति उदित देखकर राजकुमार के हृदय की चेतना लुप्त हो जाती है वह कहने लगता है कि उसका जन्म इस संसार मे धन्य होगा जिससे इसके मन मे प्रेम उत्पन्न होगा।

> बदन मदन धनु दुति उदित, देख हरे मन चेत।
> धनि सो जनम जग ताकर, जा सौं उपजै हेत ॥[3]

यही परम सौंदर्य जब चित्रावली के चित्र के रूप मे राजकुमार के सामने आता है तो वह एकदम मन के इस रहस्य से चिन्तित हो मौन हो जाता है। वाणी उसके सौंदर्य से बिल्कुल भ्रम मे पड़ चुप हो जाती है। नेत्र उसके रूप पर लट्टू हो जाते है।

> मन रहसहिं चितौ चितहिं, रहा मौन होइ भूप।
> रसना भरम न बोलई, लोएन भूले रूप ॥[4]

ठीक यही परम तत्व की सर्व-गुण सम्पन्नता एवं सौंदर्य दक्खिनी हिन्दी के सूफी कवियों की रचनाओं में भी मिलते है। 'सैफुल मलूक और बदीउज्जमाल' में गौवासी ईश्वर की स्तुति करता हुआ कहता है :—

> 'इलाही जगत का इलाही सो तू। करनहार जम बादशाही सो तू।
> तेरे हुक्म तल नो गढ़ असमान के। रईयत मलिक तेरे फरमान के ॥
> भर्या जिस गढ़ा बीच तारे हश्म। करै नोबता सों उलंग दम बदम।
> जहा लग जो बादल के है गड़गड़ाट। तेरी फतेह दौलत दमामे के ठाट ॥[5]

---

१. सुरुज किरिन जसि निरमल, तेहि ते अधिक सरीर।
सोह दिस्ट नहिं जाइ करि, नैनन्ह आयै नीर ॥
—जायसी ग्रंथावली पद्मावत—पद्मावती रूप खंड छंद ५०२

२. मंझन कृत मधुमालती—डा० माता प्रसाद गुप्त, छद ७६, पृ० ७२

३. वही छंद ६८, पृ० ८२

४. चित्रावली उसमान छंद ८४ पृ० ३४

५. दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा—राहुल सांकृत्यायन—गौवासी पृ० १३३

सैफुल मलूक जब बद्दीउज्जमाल के चित्र को देखता है तो उसके सौंदर्य पर दीवाना हो जाता है और वही से उसके हृदय मे प्रेम का उदय हो जाता है :—

देख्या खोलकर सरबसर ज्यो उने । सो तसवीर पाया अजब उस मने ।

वह तस्वीर देखी दिवाना हुआ । वही इश्क का उसक माना हुआ ।।[1]

परमात्मा के परम-सौदर्य का वर्णन करते हुए 'मुहम्मद कुली' का कथन है कि मेरे साजन का सौदर्य अत्यन्त ही छविमान् है। वह ऐमा प्यारा है कि मैं उसे अपनी आंखो की पुतली कहूँ तो अत्युक्ति नहीं होगी । उसके सौदर्य के समान किसी दूसरे का सौदर्य नही है । मै अपने मोहन की सराहना किस तरह करू । उसका मुख चन्द्रमा के समान है । उसे देखकर आसमान की पुतली भी शर्मिन्दा हो जाती है ।

छबीली है सूरत हमारे सजन की । कि या पुतली उस कहूँ अप नयन की ।।

न देख्या निछल कोई उस सार सूरत की । सराऊं किते जेब अपने मोहन की ।।

चंदा सा देख्या मुख उस सर्व कद पर । तो होती है शर्मिन्दा पुतली गगन की ।।[2]

सूफियो का परम तत्व सर्व-गुण सम्पन्न होने के साथ-साथ परम सौदर्यवान् भी है उसी तथ्य का निरूपण सूफी कवियो ने प्रत्यक्ष रूप मे अथवा प्रेमाख्यानो में प्रतीकों के सौदर्य वर्णन के माध्यम से करने का प्रयास किया है ।

संत कवियों का दृष्टिकोण—यद्यपि सन्त कवि परम तत्व का निरूपण उसके निर्गुण रूप मे ही करते हैं किन्तु उसके ऐश्वर्य, माधुर्य, परमानन्द, उदारता, सौदर्य आदि का चित्रण वे उसे सगुण मान कर करने लगते है । संत 'नामदेव' उन्हें सर्व-रूप तथा 'सर्वेश्वर' नाम देकर पुकारते है । उनके अनुसार परम तत्व सबका स्वामी है और सबके भीतर निवास करता है । जड़ चेतन कीट पतंग सबके साथ 'सत्य राम' का निवास है ।[3] 'कबीर' ने परम तत्व को सृष्टिकर्त्ता मानकर कहा है कि उसने स्वयं कर्त्ता बन कर कुम्हार की भांति सृष्टि की रचना की । उसी ने अनेक उपाय करके सबको एकत्रित किया । अग्नि प्रज्जवलित करके सबका भरण-पोषण किया । वही ब्रह्म जब भीतर से बाहर आता है तो शिव और शक्ति दो नाम धारण कर लेता है ।

---

१. वही, पृ० १४०

२. वही, मुहम्मद कुली, पृ० १०७

३. सब रूप सरवेसर स्वामी । त्रिगुण रहत देव अन्तरजामी ।।
थावर जंगम कीट पतंगा । सति राम सबहिन के संगा ।।
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली—सं० डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ २४, पद ५७ ।

आपुहिं करता भये कुलाला । बहु विधि सिस्टी रची दर हाला ।
बिधिना समै कीन्ह एक ठाउं । अनेक जतन के बने बनाउं ।।
जठर अगिनी दीन्हीं परजाली । तामैं आप करै प्रति पाली ।
भीतर ते जब बाहर आवा । सिव सकती दुइ नांव धरावा ।।[१]

कबीर के शब्दों में वह परम-तत्व इस चित्र रूपिणी सृष्टि का रचनाकार एवं सूत्राधार है ।[२] उसकी सर्व-शक्ति सम्पन्नता के सम्बन्ध में वे कहते हैं :—

सत्तरि सहस सलार है जाके । सवा लाख पैगम्बर ताके ।
सेख जो कहिअहि कोटि अठासी । छप्पन कोटि जाके खेल खासी ।।
तैतीस करोड़ी है खेल खाना । चौरासी लख फिरै दिवाना ।
(कबीर ग्रंथावली प्रयाग संस्करण, पृष्ठ २५, पद ४२)

इतना ही नहीं अष्ठकुल पर्वत उनके पैरों की धूल है । सातों समुद्र उनकी आंखों के अंजन है । अनेक मेरु पर्वत उनके नख पर अवस्थित है । पृथ्वी और आकाश को उसने अधर मे छोड़ रखा है । यथा :—

अष्ठ कुली परबत जाके पग की रैनां, सातों सायर अंजन नैनां ।।
ऐ उपमा हरि किती एक ओपै, अनेक मेर नख ऊपरि रोपै ।।
धरनि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगध कहै न साखी ।।[३]

सिक्ख गुरु 'नानक देव' परम तत्व की शक्ति सम्पन्नता का निरूपण करते हुये कहते है कि उसी परमात्मा के आदेश से सारी सृष्टि की उत्पत्ति हुई है । उसके आदेश के सम्बन्ध मे कुछ कहा नही जा सकता । हुक्म से ही जीवो की उत्पत्ति होती है बड़प्पन प्राप्त होता है । ऊँचे और निम्न कर्म करने पड़ते है । सुख और दुःख की प्राप्ति होती है । एक को पुरस्कार दिया जाता है और एक को दण्डित करके सदा के लिए आवागमन के भ्रम में डाल दिया जाता है :—

हुकुमी होवनि आकार हुकुम न कहिया जाई ।
हुकुम होवनि जीऊ हुकुम मिले बडिआई ।।
हुकुमी उत्तम नीच, हुकुमि लिखित दुख सुख पाइअहि ।
इतना हुकुमी बखसीस, इकि हुकुमी सदा भंवाइअहि ।।[४]

---

१. कबीर ग्रन्थावली प्रयाग संस्करण पृष्ठ ११२, रमैणी छंद १० ।

२. जिन यह चित्र बनाइआ, साँचा सो सुतधार ।
कहै कबीर ते जन भले, जे चित्तवंतहिं लेहि विचार ।। —वही ।

३. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण पृष्ठ १५१, पद ३३५ ।

४. नानक वाणी—सं० डा० जयराम मिश्र, पृष्ठ ८०, जपु जी पद २ ।

प्रभु की इसी सर्व नियामक शक्ति पर निश्चिन्त होकर 'गुरु अमरदास' जी कहते हैं :—

हरि आपै मारै, हरि आपै छोड़े, मन हरि सरणी पडि रही रे।
हरि बिन कोई मारि जीवालि न सके, मन होइ निचिंद निमल होइरहिये ॥
—(गु० ग्रं० दर्शन डॉ० जयराम मिश्र पृष्ठ ८७)

'सन्त दादू दयाल' की साखी में भी परम तत्व की इसी सर्व-शक्ति सम्पन्नता का उल्लेख मिलता है। उनका कथन है कि चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी, हवा, जल आदि सभी उस प्रभु द्वारा ही संचालित होते हैं। उससे काल भी डरता है।

चन्द सूर धर पवन जल, ब्रह्माण्ण पंड परवेस।
सो काल डरै करतार थै, जै जै तुम आदेश ॥[1]

'सन्त रज्जब जी उस परम तत्व को आदि मध्य और अंत सबका कर्त्ता तथा उसे सब कुछ करने मे असमर्थ मानते है। उनके अनुसार वे नर और नारायण रूप में दुकाल (बुरे दिन) और सुकाल (अच्छे दिन) में बराबर विद्यमान रहते है। कभी सृष्टि को उत्पन्न करते है और कभी सृष्टि का संहार करके उसका काल बन जाते हैं।

आदि किया सो भी भया मधि करै सो होइ।
अंत करै सो होइगा, रज्जब समरथ साइ ॥
नर नाराइन मै रहैं, सदा सुकाल दुकाल।
कबही सिस्टि उपावहीं, कबहूँ सबके काल ॥[2]

सन्त सुन्दरदास जी 'परम तत्व' की सर्व-शक्ति सम्पन्नता का उल्लेख करते हुये कहते है :—

सुन्दर समरथ राम को करत न लागै वार।
पर्वत सों राई करै, राई करै पहार ॥
सुन्दर सिरजन हार कौं, करते कैसी शक।
रकहि लै राजा करै, राजा को ले रंक ॥
सुन्दर सिरजन हरि की, सबही अद्भुत बात।
गर्भ मांहि पोषण रहै, जहाँ गम्य नहि जात ॥
जाकी आज्ञा में रहै, ब्रह्मा विष्णु महेस।
सुन्दर अवनि अनादि की, धारि रहै सिर सेस ॥

---

१. दादूदयाल आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—काल को अंग, साखी ८०, पृष्ठ २५४।
२. रज्जब बानी-सं० डा० ब्रजलाल वर्मा समरथाई को अंग, साखी ३७, १७।

रिद्धि सिद्धि लौंडी सदा, आज्ञा में हे नाहि।
सुन्दर मानो मास अति, प्रभु भेजे, तन जाहि ॥[1]

निरंजनी सन्त 'हरिदास जी' 'परम तत्व' को बल और निर्बल से परे निरूप और निरक्षर मानते हुये सुख का सार मानते हैं। उनका कथन है कि वह ब्रह्म बिल्कुल ही निर्भय है। विराट् है। अनन्त है और सब कुछ कर डालने में समर्थ है। फिर भी वह सबसे न्यारे है।[2] 'सन्त मलूक दास' तो सारी सृष्टि को ही ब्रह्म मान लेते है :—

सबहिन के हम सबै हमारे। जीव जंतु मोहिं लगै पियारे।
तीनों लोक हमारी माया। अंत कतहुँ से कोइ नहिं लाया ॥
छत्तिस पवन हमारी जात। हमही दिन और हमही रात।
हमही तरवर कीट पतगा। हमही दुर्गा हमही गंगा ॥
हमही मुल्ला हमही काजी। तीरथ बरत हमारी बाजी।
हमही पंडित हमीं वैरागी। हमहीं सूम हमी है त्यागी ॥
हमही देव औ हमही दानो। भावै जा को जैसा मानो।[3]

इस तरह 'मलूक दास' जी के परम ब्रह्म भेदाभेद की स्थिति प्रकट कर देते है। वे कार्य और कारण स्वयं को ही मान लेते हैं। उनसे पृथक् कोई अन्य शक्ति शेष रह ही नहीं जाती। सन्तो का परम तत्व कुरान की भांति ही संसार में अपनी एकमात्र सत्ता रखता है। वह सबको जिलाता है, सबको मारता है। उसने पृथ्वी और आकाश को बनाया है। वह सर्व-शक्ति सम्पन्न है[4] उसमे उदारता, क्षमाशीलता आदि गुण भी है। उसके नाम मात्र से ही व्यक्ति को ज्ञान का प्रकाश मिल जाता है। वह संकट में सबको उबारता है। उसके स्मरण से कोई कितना बड़ा पापी क्यो न हो यमलोक को नही जाता।

---

१. सुन्दर दर्शन—डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृष्ठ १५६ पर उद्धृत।

२. बल नहि अबल निरूप निरषर, सदा सनेही सुष सार।
निडर निराट् बिराट अनंत हरि, सब कुछ करि सबते न्यारं ॥
—श्री महाराज हरिदास जी की बाणी सं० मंगलदास स्वामी, पृष्ठ २६, पद २१।

३. मलूकदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग, पृष्ठ २३, शब्द २।

४. कुरान मजीद—मकतबा अलहसनात रामपुर सूर : २ : २५८ सूर ७ : ५४, सूर ३५ : १, २, सूर : ५४ : ५५।

संकट में हरिवेह उबारी। निसिदिन सुमिरौं नाम मुरारी ।।
नाम निकेवल सबतें न्यारा। रटत अघट घट होइ उजारा ।।
रामानंद यूं कहै समझाई। हरि सुमिर्यो जमलोक न जाई ।।[1]

'नामदेव' के प्रभु विश्व के पालनकर्त्ता है। पतितपावन हैं, दीनदयाल हैं, और इसी विश्वास से वे कहते है :—

मेरी कौन गति गुंसाई तुम जगत मरन देवा।
जन्म हीन कर्म हीन भूलि गयो सेवा ।।
बड़ो पतित पतितन में गज गनिका गामी।
और पतित जगत प्रकट तिन्ह हूँ मै नामी ।।
तुम दयाल मैं गरीब टेरि कहौ रामा।
दीन जानि बिनती मानि गावै दास नामा ।।[2]

कबीर के राम भक्त-वत्सल राम है वे उन्हे छोडकर किसी अन्य देवता की उपासना नही करते। उनका विश्वास है कि जिस प्रकार आशा का कष्ट प्यासा अनुभव करता है और प्यासा का कष्ट जल जानता है उसी प्रकार भक्त का कष्ट भगवान राम जानते है।[3] 'सन्त रैदास' के राम पतितपावन है। वह गणिका जैसी पर-पुरुष गामिनी तथा नित्य पाप कर्म करने वाली स्त्री को भी बैकुण्ठ पद प्रदान करने वाले है।[4] सिक्ख गुरुओं ने भी कबीर की भांति ही प्रभु कोमल वत्सल, पतित उद्धारक तथा अपने सेवकों की रक्षा करने वाला कहा है कि :—

पतित उधारण पार ब्रह्म सत वेद ककंदा।
भगति बछलु तेरा बिरदु है जुग जुग बरतदा ।।
पतित पुनीत दीन बन्धु हरि सरनि ताहि तुम आवउ।
गज को त्रासु मिटिओ जिह सिमिरत, तुम काहे बिसरावऊ ।।[5]

---

१. रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ—सं० डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ ७, पद १२, १३।

२. संत नामदेव की हिन्दी पदावली स० डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ३५, पद ८०।

३. आशा का दुख प्यासा जाने, प्यासा का दुख नीर।
भगति का दुख राम जाने, कह दास कबीर ।।
—कबीर ग्रन्थावली—काशी सस्करण पृष्ठ १३८, पद २८६।

४. गनिका थी किस करमा जोग। पर-पुरुष सो रमतो भोग।
निसि बासर दुस्करम कमाई। राम कहत बैकुन्ठे जाई ।।
—रैदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग, पृष्ठ ३१, पद ६७।

५. श्री गुरु-ग्रन्थ दर्शन—डा० जयराम मिश्र, पृष्ठ ६० पर उद्धृत।

वे सबकी रक्षा करने वाले तथा क्षमाशील है। वे जीवों के असंख्य अपराधों को क्षमा करने वाले हैं। (असंख खते खिन बखसन हारा। नानक साहिब सदा दइआरा-गु० ग्र० सा० महला ५ गउड़ी बावन अखरी)। वह किसी अन्य (पैगम्बर आदि) की सिफारिश से क्षमा नहीं करता, बल्कि अपने दयालु स्वभाव के कारण ऐसा करता है।

सरब निरन्तर आपै आप। किसै न पूछू बखसै आप ॥

—(गु० ग्रं० सा० आसा महल १ असटपदी)

संतों ने सूफियों द्वारा वर्णित परम तत्व के वैदिक सौदर्य की प्रशंसा को महत्व नहीं दिया है वे उसके आन्तरिक गुणों को ही उसका परम सौंदर्य मानते है और सर्व-गुण सम्पन्नता के सौन्दर्य से ही आकर्षित हो उसके समक्ष श्रद्धा नत होते है।

संत कवियों पर सूफी प्रभाव —जैसा कि हम ऊपर स्पष्ट कर चुके है मध्य-कालीन हिन्दी सन्त कवि सूफियो द्वारा वर्णित परम-तत्व के दैहिक सौदर्य अथवा वाह्य सौदर्य का विशेष चर्चा न कर आन्तरिक सौदर्य पर ही मुग्ध है। वे बार-बार उस परमात्मा के सब गुणों की प्रशंसा करते है तथा उसके इन गुणों से आकर्षित हो उसके प्रति श्रद्धा-भक्ति और प्रेम का प्रदर्शन करते है। हिन्दी संत कवियो ने प्रभु के प्रति जो पति-पत्नी प्रेम का प्रदर्शन किया है वह सूफी प्रभाव के कारण ही किया है। सिक्ख गुरुओ ने परम तत्व को महान् न्यायकर्त्ता माना है। वे कहते हैं कि वह प्रभु पापियो को दंड तथा पुण्यात्माओं को बडाई देता है। वह बिना तराजू के ही सारे संसार को तौलता है :—

मेरा प्रभु निरमल अगम अपारा।
बिन तकड़ी तोले संसारा ॥

(गु० ग्रं० सा० महला ३ माझ असटपदी)

'संत दादूदयाल' का कहना है कि प्रभु के प्रति तन-मन से दृढ़ होकर उसकी सेवा करो वह प्रभु ऐसा समर्थ है दानी है कि जो कुछ भी उससे याचना की जाय वह दे देगा।

दादू तन मन लाइ कर सेवा दिढ़ करि लेइ।
ऐसा संम्रथ राम है, जो माँगै सो देइ ॥[1]

'रज्जब जी' प्रभु को पतित पावन मानकर उससे अपने उद्धार की कामना करते हैं क्योंकि वे 'दीनदयाल' हैं। दीनो को सुख देने वाले हैं। वे अपने भक्तो की रक्षा किया करते हैं।

---

१. दादूदयाल—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ठ २४४, पद २६।

सेवक सदा संभारे स्वामी, तें अपनी उन हारि।
जन रज्जब परि परम कृपा करि, आड़ा अंतरि जारि ॥[1]

ठीक यही आशा निरंजनी संत 'तुरसीदास' जी अपने कृपा-निधान भगवान से रखते हैं। उनके लिये उनका प्रभु 'अंधे की लकडी' है।

काहू के बल भजन को, काहू के बल ज्ञान।
हमरे अंधे की लकुट, तुम हो कृपा निधान ॥[2]

संत सिंगाजी के प्रभु कोमल स्वभाव वाले है जैसे कोमल वस्त्र सबको प्रिय हो जाता है उसी प्रकार प्रभु का कोमल स्वभाव भक्तों के लिये प्रिय हो रहा है :—

नरम कपड़ा सब तुं प्यारा।
जैसा नरम साई हमारा ॥[3]

संत मलूकदास अपने को नीच और अपराधी मानते है फिर भी प्रभु के प्रति उनकी उदारता के कारण विश्वास रखते हैं कि उनके नाम को जपने से करोड़ों जन्म की फासी कट जायेगी।[4]

प्रभु की इसी सर्व-गुण सम्पन्नता के कारण आकृष्ट हो उसके प्रति संतों ने पति-पत्नी के मधुर प्रेम का निरूपण किया है और प्रभु को पति रूप मे माना है। यह स्पष्ट सूफी प्रभाव हो जान पड़ता है किन्तु अन्तर इतना ही है कि सूफियों का परम-तत्व परम-सौन्दर्य का प्रतीक पत्नी रूप में प्राय: व्यक्त किया गया है किन्तु संतों ने उसे केवल सौंदर्यवान् ही नहीं सर्व-गुण सम्पन्न मान कर पति रूप मे स्वीकार किया है और स्वयं को पत्नी माना हे। संत नामदेव पतिदेव मुरारी की आरती करते हुये अपने को उस पर न्योछावर करते हैं और कहते हैं :—

आरती पतिदेव मुरारी। चंवर डुलै बलि जाउं तुम्हारी ॥
चहुं जुग आरती चहुं जुगि पूजा। चहुं जुग राम अवर नहि दूजा ॥
चहुं दिसि देषै चहुं दिसि धावै। चहुं दिसि राम तहां मन लावै ॥[5]

कबीर सूफियों के दाम्पत्य प्रेम से ही प्रभावित होकर उन्हें प्रियतम मान-

---

१. रज्जब बानी—सं० डॉ० ब्रजलाल वर्मा, पृष्ठ ३६८, पद १२।

२. निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसीदास, पृष्ठ ८८।

३. निमाड के संत सिंगा जी—डॉ० रमेश चन्द्र गंगराडे, पृष्ठ १७, पद १७६।

४. हम अपराधी नीच घर जनमे, कुटुंब लोग करे हांसी रे।
कहि रैदास राम जपु रसना, कटै जनम की फांसी रे ॥
—रैदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग, पृ० २६, पद ६२।

५. संत नामदेव की हिन्दी पदावली—डॉ० भागीरथ मिश्र, पृ० ६८, पद १४५।

कर कहते है कि यदि प्रियतम को ही उसकी प्रेयसी नही अच्छी लगी तो पड़ोसियों की प्रशंसा किस काम की ? चूड़ा पायल और बिछुआ पहन कर नाना प्रकार के शृंगार करने से क्या लाभ ? सेन्दुर काजल और सोलहो प्रकार के शृङ्गार सभी व्यर्थ है ।

जौ पै पिय के मन नहिं भाये, तौ का परोसनि कै हुलराये ।
का चूरा पाइल झमकाये, कहा भयो बिछुवा ठमकाये ।।
का काजल स्यंदूर कै दीयै, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयै ।।[1]

संत कबीर तो सूफीमत से इतने प्रभावित दीखते है कि श्री चन्द्रबली पांडेय ने तो उन्हे संत न कह कर 'जिन्द कबीर' नाम से पुकारने तक प्रयास कर दिया है ।[2] सचमुच ही कबीर का प्रेम-विरह किसी भी अर्थ मे सूफियो से कम मार्मिक नही है । प्रियतम के मिलने के लिये उनकी आत्मा तडप रही है । जब तक दिल से दिल न लग जाय तब तक भला प्रेम कैसा ? उन्हे न अन्न अच्छा लगता है न नेत्रों मे नीद आती है । घर अथवा जंगल कही भी चैन नही पड़ती । कामिनी को उसका प्रियतम ठीक उसी प्रकार प्यारा होता है जैसे प्यासे को पानी । कबीर के शब्दों में ही सुनिये :—

वालम आओ हमारे गेह रे । तुम बिन दुखिया देह रे ।।
सब कोई कहै तुम्हारी नारी, मोको लागत लाज रे ।
दिल से नहीं दिल लगाया, तब लग कैसा सनेह रे ।।
अन्न न भावै, नीद न आवै, गृह बन धरै न धीर रे ।
कामिन को है बालम प्यारा, ज्यो प्यासे को नीर रे ।।[3]

सचमुच ही विरह का दुःख बड़ा ही कठिन होता है । यह कोई नही जानता कि विरह की व्यथा कैसी होती है :—

कठिन विरह दुःख जान न कोई । विरह बिथा दहुं कैसी होई ।।[4]

सूफियों का दाम्पत्य प्रेम-भाव सत रैदास पर भी छाया हुआ है । वे भगवान के विरह मे तडप रहे है । उनके बिना प्राणों की रक्षा असम्भव हो गई है । विरह की तपन से उनका शरीर और भी जल रहा है । न नीद आती है और न भोजन अच्छा लगता है ।

१. कबीर ग्रन्थावली—काशी सस्करण, पद १३६, पृ० १०० ।
२. विचार-विमर्श—चन्द्रबली पाण्डेय, जिन्द कबीर की संक्षिप्त चर्चा पृ० १ से ४४ तक देखिये ।
३. कबीर—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० २५८, पद ३५ ।
४. मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पद १६६, पृ० १३६ ।

मैं बेदनि कासनि आखूं, हरि बिन जिव रहै कस राखूं ।।
जिव तरसै इक दंग बसेरा, करहु सम्भाल न सुर मुनि मेरा ।।
बिरह तपै तन अधिक जरावै, नीद न आवै भोज न भावै ।।[1]

'संत दादूदयाल' अपने मस्तक को प्रियतम के चरणों में समर्पित करने के पश्चात् प्रियतम के मन्दिर मे प्रवेश पाते है और सेज पर सोये हुये स्वामी के चरणों को दबाने का अवसर प्राप्त करते है। उनके प्रियतम प्रेम की लहरो की पालकी पर सवार होकर आते हैं। वे उनमे खेल करते है। यह मिलन का सुख अकथनीय है।

मस्तकि मेरे पाव धरि, मन्दिर माहै आव।
सांई सोवै सेज परि, दादू चंपै पाँव।।
प्रेम लहर की पालकी, आतम बैसे आइ।
दादू खेलै पीव सौं यहु सुष कह्या न जाइ।।[2]

संत कवि रज्जब जी ईश्वर के प्रति एकनिष्ठ हो अपने को पतिव्रता स्त्री की भाँति उसी काम मे आनन्द का अनुभव करते है जिनसे साहब (परमात्मा) प्रसन्न होता है :—

जिन बातो साहिब खुशी, रज्जब राजी होइ।
पति वरता सो जानिये, जाके एक न दोइ।।[3]

सिक्ख गुरू 'नानकदेव' पर भी सूफी दाम्पत्य भाव का प्रभाव पड़ा है, वे अपने को परमात्मा की स्त्री मानते हुए कहते है कि सभी कंत की सहेलियाँ है और सभी शृङ्गार करती है। सभी अपने-अपने शृङ्गारो की गिनती गिनाते है किन्तु उनके लाल वेश व्यर्थ है। पाखंड से प्रेम की प्राप्ति नही होती। खोटे दिखावे उन्हें बरबाद ही करते है।[4] इसी रूपक को आगे बढ़ाकर फिर 'नानकदेव' कहते है कि

---

१. संत रैदास जी की बानी—पृ० २८, पद ६१।

२. दादूदयाल—सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, परचा को अंग, पृ० ७३, सा० २५२, २५३।

३. रज्जब जी की बानी—डॉ० ब्रजलाल वर्मा, पतिव्रता को अंग, साखी ५८, पृ० १४८।

४. सभै कंत महेलीआ करहि सीगारु।
गणत गणावणि आईआ सूहा वेसु विकारु।।
पाखंडि प्रेमु न पाईऐ खोटा पाजु खुआरु।।
—नानक वाणी—सं० डॉ० जयराम मिश्र, सिरी रागु महला १ घरु असटपादियाँ २, पृ० १३३, पद १।

सेज पर कंत है किन्तु स्त्री सोई है। अतः वह जान नहीं पाती है कि मैं तो सोई हूँ और प्रियतम जाग रहा है यह बात किससे जाकर पूछूँ ? सद्गुरु ने उसे प्रियतम से मिला दिया है।

'सेजै कंत सहेलड़ी सूती बूझ न पाइ।
हउ सूती पिरु जागणां, किस कउ पूछउ जाइ।
सतगुरि मेली मैं, बसी, नानक प्रेम सरवाइ ॥[1]

प्रायः सभी मध्यकालीन हिन्दी संत कवियो ने परमात्मा के गुणों से प्रभावित होकर प्रभु से अविच्छिन्न एकता स्थापित करने के लिये सूफी कवियों की भाँति परमात्मा और जीवात्मा के बीच पति-पत्नी के सम्बन्धों का निरूपण किया है। इस प्रकार सूफियों के यहाँ जो परम-तत्व स्त्री रूप में चित्रित हुआ है वही संतों के यहाँ पति रूप मे व्यक्त किया गया है।

(ङ) संत कवियों का सृष्टि तत्व और उस पर सूफी प्रभाव

सृष्टि तत्व (जीव, जगत् और माया)—अध्यात्मवाद के अनुसार 'ब्रह्म' ही एकमात्र परमार्थिक सत्ता है ससार नही। 'सर्वं खल्वमिदं ब्रह्म'' अर्थात् यह सारा संसार ब्रह्म ही है 'नास्ति द्वैतम्'[2] अर्थात् दूसरा कुछ नही है। इस तरह इस संसार मे मूल सत्ता के रूप मे 'ब्रह्म' विद्यमान है अतः वह सत्य है किन्तु यह संसार अपने विशेष रूप में विनाशवान् है अत. यह असत् और मिथ्या है।

सर्वं च नाम रूपादि सदात्मनैव सत्यं विकार जातं, स्वतस्तु अनृतमेव।[3]

इस तरह उपनिषदों और ऋग्वेद के नासदीय सूक्त मे तथा मनुस्मृति के प्रारंभ मे सृष्टि की चर्चा की गई है। हिन्दी के संत कवियो पर सृष्टि विषयक विचारों पर इन्ही उपनिषदो की भावनाओ का प्रभाव दिखाई पडता है। कबीर सत्यान्वेषी है। उनकी सृष्टि विषयक जिज्ञासा बडी ही उत्कण्ठा पूर्ण है। उन्होंने सृष्टि का स्वरूप उसका विकास और उसकी स्थिति आदि पर बडी ही गम्भीरता मे विचार किया है।

जड़-जगत् का भौतिक स्वरूप—सभी प्रकार की प्रतीतियों का नाम जगत् या संसार है। जगत् जब नाम रूपात्मक ही लिया जाता है तब वह व्यावहारिक दृष्टि से सत्य है अन्यथा अपने विशेष रूप के कारण परिवर्तनशील होने से नश्वर

---

१. वही असटपदी २, पद ८।
२. छान्दोग्योपनिषद् ३।१४।१।
३. वही ६।२।१।
४. वही ६।३।२।

अथवा असत्य है। जगत् का इन्द्रिय गोचर रूप अत्यन्त ही आकर्षक और मन मोहक है। जीवात्मा इसी मोहकता में भूल कर बराबर आवागमन के झंझटों में पड़ा हुआ है। वह सब कुछ जानते हुये भी सजग नहीं होता अंधा बना हुआ है।

माता जगत् मृत सुधि नाहीं। भ्रंमि भूले नर आवैं जाहीं।
जानि बूझि चेते नहिं अंधा। करम जठर करम के फंधा॥[1]

इसीलिए सन्त कबीर ने इस संसार को 'सेंमल के फूल' की भाँति तथ्यहीन किन्तु मोहक बताया है और इसके झूठे रंग में न भूलने की चेतावनी दी है।

यह ऐसा संसार है जैसा सैंवल फूल।
दिन दस के व्योहार को, झूठे रंग न भूल॥[2]

हिन्दी के अन्य सन्तो ने भी संसार की इस नश्वरता की ओर ध्यान दिया है। सन्त रैदास जी इस संसार को 'विषम व्याल' की भाति भयंकर मानते हैं जिसके साथ मोह, त्रिगुण तथा विषम वासनाएँ बँधी हुई है।[3] 'सन्त दादूदयाल' इस संसार की माया को झूठी बतलाते हुये कहते है कि माता-पिता, भाई सभी के रहते हुये भी यह जीवन नष्ट हो जाता है। जब तक जीव इस संसार मे रहता है तब तक लोग साथ मे उठते-बैठते है जब आत्मा रूपी प्राण इस संसार से निकल जाता है तो सभी लोग साथ छोड़ देते हैं। यह शरीर ठीक वैसे ही है जैसे फूटी हुई गागर।

माया ससार की सब झूठी।
माइ बाप भाई ठाढ़े, तिनहीं देषता लूटी॥
जब लग जीव काया मै थारे, षिण बैठी षिण ऊठी।
हंसजथा सो खेलि गया रे तब तै संगति छूटी॥
ए दिन पूगे आब घटाणी, तब निचित ह्वै सूती।
दादू दास कहै ऐसी काया, जैसी गागरि फूटी॥[4]

संसार की नश्वरता का वर्णन करते हुये सन्त कवि 'रज्जब' जी कहते हैं जिस तरह बिजली आकाश मे चमक कर तुरन्त ही थोड़ी देर प्रकाश करके नष्ट हो जाती है उसी तरह इस संसार में यह जीव का निवास स्थिर नही है। जिस तरह सावन के महीने में आकाश में मेघ उमड़ आते हैं और पल भर मे ही नष्ट हो जाते

---

१. कबीर ग्रन्थावली काशी संस्करण—सप्तपदी रमैणी, पृ० १७३, पद २।

२ वही, चितावणी कौ अंग, साखी १३, पृ० १६।

३. विषम संसार व्याल व्याकुल तवै, मोह गुन विषै संग बँध भूता।
—रैदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग, पृ० १०, पद २१।

४. दादूदयाल—सं० परशुराम चतुर्वेदी, राग सारंग, छन्द ३, पृ० ४१२।

हैं उसी तरह का संसार में यह शरीर पल भर में ही नष्ट होने वाला है।[1]

सृष्टि की उत्पत्ति विकास एवं स्थिति – जैसा कि हम पहले बता चुके हैं आरम्भ मे यह संसार कैसा था इससे पूर्व क्या था ? इन विचारों का आभास ऋग्वेद के नासदीय सूक्त और यजुर्वेद के अन्तिम अध्याय में मिलता है।

नासदीय सूक्त के इसी कथन को जायसी ने भी अपने अखरावट में दुहराया है।[2]

सन्त कबीर ने सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व की स्थिति के सम्बन्ध मे वर्णन करते हुये कहा है कि प्रारम्भ में न वायु था न पानी था, न सृष्टि ही उत्पन्न हुई थी न प्राण था न शरीर। न पृथ्वी थी न आकाश था। न बीज था न फल-फूल। न विद्या थी न वाद-विवाद था। न गुरू था न शिष्य था उस समय केवल वही केवल एक इन्द्रियातीत अपने स्वरूप मे स्थित था।[3] कबीर का यह कथन नासदीय सूक्त से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। किन्तु कबीर केवल इसी विश्वास पर ही दृढ़ नही है।

सृष्टि रचना के सम्बन्ध मे सन्तों के कई विचार है। एक ही सत भी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों मे सृष्टि के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त करने लगता है। कबीर ने सृष्टि सम्बन्धी चार प्रकार के विचारो को अपनी रचनाओ मे व्यक्त किया है :—

(१) ओंकार द्वारा सृष्टि रचना।[4]

(२) नूर (प्रकाश) द्वारा सृष्टि रचना।

(३) माया द्वारा सृष्टि रचना।

(४) गणोत्कर्ष द्वारा सृष्टि रचना।

ओंकार और शब्द[5] से सृष्टि उत्पत्ति की कल्पना वेदो के अनुकूल है। 'कबीर' ने कुछ स्थलों पर प्रकाश अथवा नूर से भी सृष्टि की उत्पत्ति बतलाया है।

---

१. दामिन दमकहि देखि लै, केतक बेर उजास।
   त्यूं रज्जब संसार मे, अस्थिर नाही बास॥
   जैसे सावण कै समै, धनक उदै आकास।
   रज्जब पलटै पलक मैं, त्यू तन छिन मैं नाश॥
   —रज्जब बानी-डॉ० ब्रजलाल वर्मा, काल कौ अंग, साखी ११, १० पृ० १८६।

२. अखरावट—जायसी, दोहा १।

३ कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण अष्टपदी रमैणी, छन्द १, पृ० १८१।

४. ओंकार आदि है मूला, राजा परजा एकहि सूला।
   —कबीर ग्रंथावली—काशी संस्करण, चौपदी रमैणी १, पृ० १८५।

५. 'वागेव विश्वा: भुवनानि जज्ञे'—ऋग्वेद सूत्र १।३।२२।

अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थै सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा।।[1]

कबीर ने माया से सृष्टि की रचना का उल्लेख करते हुये कहा है कि स्रष्टा त्रिगुणमयी माया के द्वारा पाँच तत्वो के सम्मिश्रण मे जरायुज, अंडज, स्वेदज तथा उद्भिज चार प्रकार की सृष्टि की। इन जीवो के लिये अलग-अलग पाप-पुण्य मान, अभिमान, अहंकार, मोह-माया, संपत्ति-विपत्ति आदि बन्धनों का निर्माण किया।

एक बिनांनीं रच्या बिनांन, सब अयान जो आपै जांन।
सत रज तम थै कीन्हीं माया, चारि खानि बिस्तार उपाया।।
पंच तत ले कीन्ह बंधानं, पाप पुंनि मान अभिमानं।।
अहंकार कीन्हें माया मोह, सम्पत्ति-बिपत्ति दीन्ही सब कोइ।।[2]

कबीर का यह सृष्टि वर्ण साख्य वादियो के गुण परिणामवाद से भी प्रभावित प्रतीत होता है।

'सिक्ख गुरु नानकदेव' ने भी सृष्टि रचना के पूर्व की स्थिति का वर्णन ठीक वैसे ही किया है जैसे उपनिषदों, वेदो और जायसी की रचनाओं मे मिलता है। उनका कथन है कि अगणित युगो पूर्व यहाँ महान् अंधकार था। न तो पृथ्वी थी और न तो आकाश था। प्रभु का अपार हुक्म मात्र था। न दिन था न रात थी। न तो चन्द्रमा था न तो सूर्य। आदि आदि।[3] सृष्टि के मूलारम्भ में परम तत्व को गुरु 'नानकदेव' 'ओंकार' नाम से पुकारते है और सृष्टि उत्पत्ति का कारण मानते है।

ओ ओंकार ब्रह्मा उतपति। ओ अंकार कीआ जिनि चिति।
ओ अंकार सैल जुग भये। ओ अंकार वेद निर भये।।[4]

साख्य मतानुसार सृष्टि रचना के मूल कारण पुरुष और प्रकृति है, किन्तु गुरु नानक इस मत से सहमत नहीं है वे परमात्मा को ही सृष्टि का मूल कारण मानते है—उनके मतानुसार सृष्टि को रचना परमात्मा के हुक्म से होती है।

हुकुमी होवनि आकार, हुकुमन कहिया जाई।[5]

संतों के सृष्टि तत्व पर सूफी प्रभाव—सृष्टि की उत्पति विकास एवं स्थिति

---

१. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण, पदावली ५१, पृ० ८१।
२. वही—बड़ी अष्टपदी रमैणी, पृ० १७४, पद १।
३. नानक वाणी—सं० डॉ० जयराम मिश्र—रागमारु सोलहे महला १५, पद १५
४ वही रामकली महला १ दखणी ओ अंकार
५. नानक वाणी सं० डॉ० जयराम मिश्र, जपु जी २, पृष्ठ ८०

के सम्बन्ध में मध्यकालीन हिन्दी संत कवियों ने जो चिंतन किये हैं उससे स्पष्ट है कि उनकी विचारधारा इस सम्बन्ध में अनिश्चित है फिर भी संतों ने ओंकार, गुणोत्कर्ष, तथा माया द्वारा सृष्टि की रचना के सिद्धान्त को तो सीधे उपनिषदों से ग्रहण किया है किन्तु 'नूर' द्वारा सृष्टि रचना का सिद्धान्त अप्रत्यक्षतः उपनिषदों से और प्रत्यक्षतः सूफियों से ग्रहण किया है। जहाँ तक 'ओंकार' द्वारा सृष्टि रचना का सम्बन्ध है इस विचारधारा पर भी सूफी प्रभाव माना जा सकता है। कुरान मजीद में यह माना गया है कि सारी सृष्टि अल्लाह द्वारा निर्मित हुई है। सूर : फातिर में लिखा है—"क्या तुमने नहीं देखा कि अल्लाह आसमान से पानी बरसाता है। फिर उसके द्वारा हमने फल निकाले, जिनके रंग विभिन्न प्रकार के होते हैं। इसी तरह आदमियों और जानवरों और चौपायों की रंगतें भी कई-कई तरह की है।[1] यदि कुरान के इस कथन से कबीर के 'सत रज तम थें कीन्ही माया। चारि खानि विस्तार उपाया' की तुलना की जाय तो बहुत कुछ साम्य मिलता है। जायसी के पद्मावत में कुरान की यही विचारधारा प्रतिध्वनित हुई है जो कबीर को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकी।

कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू।
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुते रंग उरेहा।
कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन औतारू॥[2]

सृष्टि सम्बन्धी सूफियों की सर्वात्मवादी विचारधारा के अनुसार सारी सृष्टि ही परम तत्व मय है। उसके समान कोई दूसरा नही है। यह सृष्टि दर्पण के समान है जिसमें उस परम तत्व का स्वरूप दृष्टिगोचर होती है।

दोसर ना कतहूँ तुव जोरा। दरपन सिस्टि रूप मुख तोरा।[3]

हिन्दी संत कवियों ने भी प्रायः इसी भावना से प्रभावित हो सारी सृष्टि में उस परम सत्ता को व्याप्त माना है। संत कवि सुंदर जी की वाणी में सूफी भावना से साम्य रखने वाली यह विचारधारा देखिये :—

जैसे एक व्योम पुनि बादर सों छाय रह्यो,
व्योम नहिं देषत देषत बहुसृष्टि कौ॥
तैसे एक ब्रह्म ही विराजमान सुन्दर है,
ब्रह्म को न देषे कोऊ, देषै सब सृष्टि कौ॥[4]

जन्मान्तर वाद और कर्मवाद—यद्यपि सूफीमत का मूल स्रोत कुरान है

---

१. कुरान मजीद मकतबा अलहसनात रामपुर-सूरः फातिरः पारः २२, पृष्ठ ५१७

२. जायसी ग्रंथावली—पद्मावत—स्तुति खंड छंद १

३. मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छंद ६, पृष्ठ ७

४. सुन्दर दर्शन—डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, पृष्ठ २२६ पर उद्धृत

किन्तु सूफी कुरान के अनुसार पुनर्जन्म की असंभावनाओं पर आस्था नहीं रखते। वे भारतीय दर्शन के अनुसार पुनर्जन्म और कर्मवाद पर विश्वास रखते हैं। इस जीवन में जो कुछ भी हो रहा है उसका पूर्व जन्म से निश्चय ही सम्बन्ध है ऐसा उनका विश्वास है। मंझन कृत मधुमालती में राजकुमार मधुमालती से कहता है कि मैं पूर्व दिनों से ही जानता हूँ कि तुम्हारी प्रीति के जल मे मेरी मिट्टी को सानकर विधाता ने इस शरीर की रचना की।

पुब्ब दिनन सेउं जानहुँ, तुम्हरी प्रीति के नीर।
मोंहि माटी विधि सानि के, तो यह सिरेउ सरीर॥[1]

सूफी भाग्यवादी हैं। वे ब्रह्म लेख को अमिट मानते हैं। चाहे कितना ही प्रयास किया जाय किन्तु वह किसी के मिटाये नहीं मिट सकती। कुतुबन कृत मृगावती में जब कुमार रूपमिनी को त्याग कर योगी बन कर चला जाता है तो रूपमिनी कहती है कि जो कुछ कर्म में लिखा था वही हुआ। उस भ्रमर ने कमल कोष रूपी हृदय में छेद कर मेरी माया ममता, छोड़ दी। जिस दिन विधाता ने मेरी रचना की उसी दिन कपाल में मेरा कर्म फल भी लिख दिया था। सात स्वर्ग तक भी चढ़ दौड़ू तो ललाट के वे अंक मिट नहीं सकते हैं :—

जो किछु करम लिखा सो भया। उनकी कोर छाड़सि मौ भया।
जेहि दिन विधना निरमए, तेहि दिन लिखा कपार॥
सात सरग चढ़ि धावौ, कोई अंक न मिटइ लिलार॥[2]

जन्मान्तरवाद के ये सिद्धान्त हिन्दी सत कवियों को भी मान्य हैं। कबीर कहते है :—

नलिनी सायर घर किया, दौलागी बहुतेणि।
जलहो माहै जल मुई, पूरब जनम लिषंणि॥
(क० ग्रं० काशी संस्करण माया को अंग, साखी २२, पृष्ठ २६)

मुस्लिम साहित्य मे चार प्रकार के जन्मान्तर माने गये है :—(१) नस्ख (मनुष्य), (२) मस्ख (पशु), (३) फस्ख (वनस्पति), (४) रस्ख (धातु)। 'नस्ख' को छोड़ सभी मनुष्य की पतन योनियाँ है। संतों ने विशेषकर कबोर ने भी इसी सिद्धान्त मे प्रभावित हो तीनों पतन योनियों के लिये 'त्रियुग योनि' का प्रयोग किया है।

त्रियुग यौनि जे आहि अचेता, मानिष जनम भयो चित चेता॥[3]

इसी तरह सूफियो ने इस्लामी आस्था के अनुसार विभिन्न वस्तुओं ए

१ मंझन कृत मधुमालती—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ ६४, पद ११३
२. कुतुबन कृत मृगावती—डॉ० माता प्रसाद गुप्त पृष्ठ ६४, पद ११३
३ विचार-विमर्श—चन्द्रबली पाण्डेय, पृष्ठ २४ से उद्धृत

जीवों की कोटियाँ अठारह हजार मानी है[१] जबकि हिन्दू आस्था के अनुसार यह जीव कोटि चौरासी लाख मानी गई है।[२] संतो ने जहाँ सृष्टि तत्व का वर्णन करते समय जीवों की कोटियाँ अठारह हजार मानी हैं वहाँ सूफी प्रभाव ही मानना चाहिये। सिक्ख गुरु नानक देव का कथन सुनिये :—

सहस अठारह कहनि कतेब असुलू एकु धातु।
लेखा होइ त लिखिये, लेखे होइ विणासु॥

अर्थात् 'कतेबों (तुरेत, अंजील, कुरान तथा जंबूर) का कथन है कि अठारह हजार आलम (दुनियां सृष्टि) है किन्तु वास्तव मे (असुलू) एक ही सत्ता है। यदि परमात्मा का लेखा हो तो लेखा करो। सारे लेखे जोखे नश्वर ही है।' किन्तु इस सम्बन्ध में यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि गुरु नानक ने स्वय अठारह हजार जीवों की कोटियाँ नहीं मानी हैं उन्होने 'कतेबो' का उल्लेख मात्र किया है। वास्तव में सन्तों ने सृष्टि की कोटियों को हिन्दू मान्यता के अनुसार चौरासी लाख ही माना है।[३]

(च) माया सम्बन्धी संत विचारों पर सूफी प्रभाव

संतों का दृष्टिकोण—सन्त कवियों ने माया का जो चित्र रखा है उसमे उसके दो रूप सामने आते हैं :—

(क) माया का मोहक रूप। (आवरण शक्ति मय)

(ख) माया का विकराल रूप। (विच्छेप शक्ति मय)

(क) **माया का मोहक रूप**—यह माया का प्रक्षेपक रूप है सिक्ख गुरुओं के विचार से माया की रचना परमात्मा द्वारा हुई है। निरंजन परमात्मा ने स्वयं अपने आप को उत्पन्न किया है और समस्त जगत् मे वही अपना खेल दिखा रहा है। उसी परमात्मा ने सत, रज और तम तीन गुणों की रचना की है और उससे सम्बद्ध माया को पैदा किया है। मोह की बुद्धि के साधन भी उसी से पैदा हुये हैं :—

आपै आप निरंजना, जिनि आपु उपाइआ।
आपै खेलु रचाइओनु, सभु जगत् सबाइआ॥

---

१. कीन्हेसि सहस अठारह बरन उपराजि—जायसी ग्रंथावली पद्मावत, छंद ३

२. चौरासी लख भोगवै दादू लखै न कोई।

—दादूदयाल-सं० परशुराम चतुर्वेदी—सूषि भजनम को अंग, साखी ४, पृष्ठ १२६

३. तिल सुख कारनि दुख अरु मेरू। चौरासी लख लीया फेरू।

—कबीर ग्रंथावली—काशी संस्करण बड़ी अष्टपदी रमैणी—पृष्ठ १७६

त्रैगुण आपि सिरजिअनु, माइआ मोह् बंधाइआ ॥[1]

आगे चलकर सिक्ख गुरुओं ने माया को प्रकृति (कुदरत) नाम भी दिया है।

'आपणि कुदरत आपै जाणै' अथवा 'कुदरति कवण कहाँ बीचारु' के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है। इसी कुदरत (प्रकृति) और पुरुष (परम तत्व) के संयोग से सृष्टि की रचना मानी गई है। माया त्रिगुणो से सम्बद्ध है जब कि परमात्मा माया रहित (निरंजन) है। माया अत्यन्त ही मोहिनी शक्ति है। इसी से इसका प्रभुत्व सारे संसार मे व्याप्त है। कामी पुरुष कामिनी को देख लुब्ध हो जाता है। यह माया का ही प्रभाव है। स्वर्ण, पुत्र आदि के रूप में माया ने अपने बन्धन में सबको जकड लिया है।

माइआ मोहि मगनु जगु छाइआ।
कामिणि देखि कामि लोभाइआ ॥
सुत कंचन सिउ हेतु बधाइआ ॥[2]

सन्त कबीर माया के मोहिनी रूप का वर्णन करते हुये कहते है कि ज्ञानी और अज्ञानी सभी इससे मोहित हो जाते है। इससे भगकर छुटकारा नही मिल सकता। वह सभी को अपना लक्ष्य बनाती है।[3] 'सन्त रैदास' प्रभु से अपनी असमर्थता निवेदन करते हुये अपने को माया के हाथ बिका हुआ बतलाते है जिसके प्रभाव से चंचल मन चारों ओर दौडता-फिरता है और पाँचों इन्द्रियाँ स्थिर नहीं रह पाती।[4] माया की प्रबलता का वर्णन करते हुये 'सन्त दादूदयाल' का कथन है कि इसने देवता, मनुष्य, मुनि आदि सबको अपने वश में कर लिया है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी इसके वश मे हो चुके है यह सारे संसार के सिर पर विराजमान है किन्तु सन्तो के चरणो के नीचे है अर्थात् संत लोग माया का दमन कर चुके हैं।[5] निरंजनी सन्त 'हरिदास जी' माया को एक ऐसा वृक्ष मानते हैं जिसके फल के रस

---

१. नानक बाणी—डॉ० जयराम मिश्र, सारग की वार महला १

२. वही रागु परभाती बिभास असटपदी २, पृष्ठ ७६२

३. कबीर माया मोहिनी, मोहे जाण सुजाण।
माया ही छुटै नही, भरि भरि मारै बाण ॥
—कबीर ग्रंथावली, काशी संस्करण, माया कौ अंग साखी ६, पृ० २५

४. रैदास जी की बानी, बेलविडियर प्रेस, प्रयाग, पृ० ३७, पद ७८

५. दादूदयाल – सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—माया कौ अंग साखी ६४, पृ० १३८।

में विकार भरे पड़े हैं उस वृक्ष पर जीवात्मा रूपी पक्षी निरन्तर धूप का कष्ट सहता हुआ निवास करता रहता है ।[1]

(ख) माया का विकराल रूप--यह माया का विक्षेपक रूप है। यद्यपि सन्तों ने माया के मोहक रूप का वर्णन अवश्य किया है किन्तु वे बराबर उससे सावधान रहने की चेतावनी देते रहते हैं। सन्त कवि 'रज्जब जी' का कथन है जिस माया ने बड़े-बड़े मुनियों को भी निगल लिया। सिद्ध और साधकों को भी खा डाला उस माया से आसक्त हो उस पर क्यों विश्वास करते हो।[2] इस माया ने चौरासी लाख जीवों को दास से भी बदतर बना लिया है। इस माया (शक्ति) से बड़ा कौन महन्त है ?

> चेरी के चेरी किये, चौरासी लख जन्त।
> तौ रज्जब वह कौन है, सकति समान महन्त ।।[3]

कबीर ने इस माया के विकराल और घृणित रूप का चित्रण करते हुये उसे डाकिनी, सर्पिणी, पापिनी आदि अनेक नामो से पुकारा है। वे कहते है कि माया ऐसी डाकिनी है जो संसार के सभी जीवो को खा जाती है किन्तु जब वह सन्तो के निकट जाती है तो उसके दांत भी उखाड़ लिये जाते है।

> कबीर माया डाकणी, सब किसहीं कै खाइ।
> दांत उपाड़ौ पापणी, जे सन्तौ नेड़ी जाइ।[4]

वे माया से मुक्ति पाने के लिये अपन शरीर रूपी घर में 'आग' लगाने का निश्चय कर डालते है जिसके कारण वे माया से अनुरक्त हो रहे हैं। कबीर का कहना है कि एक डाइनि मेरे मन में बसती है जिसके पाँच लड़के (पंचविकार) है वे मुझे नाच नचाया करते है। मैं उस माया का दास बन गया हूँ और इसलिये चिन्ता में उसके साथ रहकर उदास हूँ।

---

१. जन हरीदास माया बिरछं, फल विकार रस रूप।
ता तरवर पंषी बसै, न्याइ सहै सिरि धूप ।।
—श्री हरिदास जी की बाणी, साखी भाग, पृ० ३६६, माया कौ अंग, साखी ६

२. जो माया मुनियर गिलै, सिध सधिक से खाइ।
ता माया से हेत करि, रज्जब क्यूं पतियाइ ।।
—रज्जब जी की बाणी, सं० डॉ० ब्रजलाल वर्मा, माया कौ अंग, साखी ११, पृ० २२८

३. वही, पृ० २२६, साखी १७

४. कबीर ग्रंथावली, काशी संस्करण, माया कौ अंग, साखी २१, पृ० २६

लावो बाबा आगि जलावौ घरा रे, ता कारनि मन धन्धे परा रे।
इक डाइनि मेरे मन में बसै रे, नित उठि मेरे जीय को डसै रे।।
या डाइन्य के लरिका पाँच रे, निस दिन मोहि नचावै नाच रे।
कहै कबीर हूँ ताकौ दास, डाइनि के संगि रहे उदास।।[१]

सिक्ख गुरुओं ने भी माया की विकरालता का वर्णन किया है। गुरु नानक देव का कथन है कि जिस प्रकार रात्रि मे जब तक निद्रा रहती है हम लोग स्वप्न में भटकते रहते है उसी प्रकार माया रूपी सर्पिणी के वशीभूत होकर जीव चित्त में अहता और द्वैत भाव के कारण संसार में भटकता रहता है।[२] माया को डाकिनी कहते हुये सन्त 'दादूदयाल' जी कहते है कि जो लोग माया के साथ गये वे फिर लौट कर नहीं आये इसने ठिकाना नही कितनों को खा डाला।[3] सन्त 'मलूकदास' माया को ठगनी नाम से सम्बोधित कर कहते है :--

कहै मलूका चुप करू ठगनी, औगुन राखु दुराई।
जो जन उबरै राम नाम कहि, ताते कछु न बसाई।।[४]

इसी प्रकार सन्त हरिदास निरंजनी माया को सर्पिणी मानते हुये उसे सूखे वृक्ष की छाया से उपमा देते हैं :—

सग किया सापणि डसै, आइ अंधारे पाई।
जन हरिदास सूक विरिछ, की छाहड़ी, कहो मुकुति क्यू जाई।।[५]

सूफी कवियों का दृष्टिकोण—हिन्दी सूफी कवियों ने माया बोधक शैतान का जो चित्रण अपने काव्यों मे किया है वह मोहक न होकर अत्यन्त ही क्रूर, कुटिल, विकराल और घातक है। जायसी ने पद्मावत में शैतान और माया को पृथक्-पृथक् मान कर उन्हें क्रमशः राघव चेतन और अलाउद्दीन का रूप दिया है।[६]

---

१. वही, पद २३६, पृ० १२५

२. जिउ सुपनै निसि भुलीऐ, जब लगि निद्रा होइ।
इउ सरपनि कै बस जीअडा, अन्तरि हउ मै दोइ।।
—नानक वाणी, सं० डॉ० जयराम मिश्र, राउ सिरी असटपदी १५, पृ० १५६

३. माया के संगि जे गये, ते बहुरि न आए।
दादू माया डाकिनी, इनि केते खाए।।
—दादूदयाल—सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—माया कौ अंग, साखी २४, पृ० १२६

४. मलूकदास जी की बानी, बे० प्रे० प्रयाग, शब्द ४, पृ० ११

५. हरिदास जी की बानी, मंगलदास स्वामी, पृ० ३७१ माया कौ अंग, साखी २३

६. जायसी ग्रंथावली पद्मावत, उपसंहार छन्द ६६५

किन्तु अन्य सूफियों ने माया को अलग तत्व मान कर उसके चित्रण की कोई आवश्यकता नहीं समझी है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों में वर्णित प्रेममार्ग की आपदाओं के रूप मे माया का चित्रण हुआ है। कहीं समुद में तूफान आ जाता है। कहीं दैत्य से लड़ना पड़ता है। कही सर्प निगल जाता है। कहीं दानव उड़ा ले जाते है ये सभी चित्रण माया के लिये ही किए गये हैं। सत्य से डिगाने के लिये कूटनियों के क्रिया-कलाप और मार्ग में साधक को मिलने वाले आकर्षक प्रलोभन माया के ही छल-छद्म है।

सन्त कवियों पर सूफी प्रभाव--मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियों ने जहाँ माया को आकर्षक और मोहक मान कर उसे ब्रह्म की सर्जना मानी है वहाँ तो हम सूफी प्रभाव नही मान सकते किन्तु जहाँ सन्तो ने माया को विकराल और घृणित माना है, ठगिनी, पापिनी, सर्पिणी, पिशाचिनी, डाकिनी नाम से सम्बोधित किया है वहाँ निश्चय ही उन लोगों ने माया को 'शैतान' रूप में देखा है और वे सूफियों से प्रभावित जान पड़ते है। चादायन में लोरिक और चन्दा-मिलन के पश्चात् दो-दो बार सर्प दंशन (कड़वक ३०८ से ३१२ और ३१३ से ३२६) मृगावती मे नायिका की अनुपस्थिति मे कोठरी से निकल कर दैत्य का कुमार को उड़ा ले जाना और खाड़ी में छोड़ देना (छन्द २७३ से २७६) ये माया के शैतान कर्म ही है। मृगावती-मिलन के पूर्व रूपमिनी का उद्धार (छन्द १२३ से १२६) और उससे विवाह (छंद १३५ से १५२) मे माया के प्रलोभनों का चित्रण हुआ हे। मधुमालती में पेमा के उद्धार के लिये राक्षस (माया) का नाश राजकुमार को करना पडता है। (छन्द २६६ से २६८) उसमान की चित्रावली मे गुफा के अजगर का सामना राजकुमार से होता है। (अजगर खण्ड ३०२) ये सभी घटनाएँ ऐसी हैं जो माया की विकरालता की द्योतक और प्रभु-प्राप्ति में बाधक है। माया सम्बन्धी यही प्रभाव कबीर पर दिखलाई पडता है :—

> कबीर माया पापिणी, हरि सूं करै हराम।
> मुख कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम॥[1]

'सन्त दादूदयाल'[2] तथा अन्य सन्त कवियों ने भी माया के छल-छद्मों, कुटिलताओं, विकरालताओं आदि का जो चित्रण किया है उस पर स्पष्ट रूप से यही सूफी प्रभाव परिलक्षित होता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि सन्तों ने परम तत्व सम्बन्धी अद्वैतवादी

१. कबीर ग्रंथावली, काशी संस्करण, माया कौ अंग, साखी ४, पृ० २५

२. दादूदयाल, सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, माया कौ अंग, साखी ६८, पृ० १३५

एवं सर्वात्मवादी विचारधाराओं को मूल-रूप से उपनिषदों से ग्रहण किया है किन्तु उसका अधिकांश उन्हें सूफियों के माध्यम से ही प्राप्त होता है। परम तत्व के संबंध मे निर्गुण के साथ अशरीरी सगुण रूप की कल्पना सूफियों की ही एकमात्र देन है जिसे सन्तो ने अपनाया है। सूफियों के जन्मान्तर और कर्मवाद का प्रभाव सन्तों पर पड़ा है। उनका शैतान ही सन्तों के यहाँ 'माया' रूप में चित्रित हुआ है। सृष्टि—उत्पत्ति के सम्बन्ध मे 'नूर' से सृष्टि उत्पत्ति की कल्पना को सन्तों ने सूफियों से ही ग्रहण किया है। हाँ, इतना अवश्य मानना पडेगा कि सन्तमत ने मात्र सूफियों मे ही सब कुछ ग्रहण नहीं किया, बल्कि उसने अन्य प्रचलित मतो से भी सार ग्रहण करके अपना एक अस्तित्व स्थिर किया जो सूफियों से प्रभावित होने पर भी उससे अधिक उदार और लोकप्रिय रहा। सूफियो ने जहाँ 'अल्लाह' के नाना रूपो और नामो को बताकर यह स्पष्ट किया कि अल्लाह, खुदा, करीम, रहीम चाहे जिस नाम से भी पुकारो उसम कोई अन्तर नही पड़ता, वहाँ सन्तो ने इस्लामी परिधि से और आगे बढ़ कर यह घोषणा कर दी कि राम-रहीम, केशव-करीम सब एक ही तत्व के नाम है चाहे साधक उसे जिस रूप में देखे, उसमें कोई भेद नहीं उत्पन्न हो सकता। फिर भी यह तो मानना पडेगा कि साम्प्रदायिक उदारता की यह प्रेरणा निश्चय ही उन्हे सूफियो से ही प्राप्त हुई होगी।

———

अध्याय ९

सूफी और सन्त कवियों की आध्यात्मिक साधना

(तुलनात्मक साधना)

सूफी साहित्य के अध्यात्म-दर्शन की चर्चा करते समय हम बता चुके हैं कि सूफी साधना एकमात्र प्रेम साधना ही है जो योग, ज्ञान, कर्म और भक्ति से समन्वित है। प्रेम ही सूफी साधना का प्रधान अंग है। शेष योग, ज्ञान, कर्म और भक्ति उसके उपांग मात्र हैं। सूफी साधना की भांति ही भक्ति और प्रेम संत साधना के प्रमुख अंग है शेष ज्ञान, कर्म और योग उसके उपांग है। सन्तों की समाहारी प्रवृत्ति ने अपनी साधना में जैसा कि कहा जा चुका है वैदिक अद्वैतवाद से 'तत्व ज्ञान' सिद्ध और नाथ सम्प्रदायों से 'योग' विशेष कर 'हठ योग', जैन, बौद्ध और ब्राह्मण धर्मों से 'कर्म' विशेषतः आचार तत्व विशिष्टाद्वैतवाद से 'भक्ति' और सबसे अन्त में चलकर सूफियों से 'प्रेम तत्व' को ग्रहण किया है। सन्तों द्वारा की गई प्रेम भावना के समन्वय से उनके साहित्य में एक अलौकिक माधुर्य का समावेश हुआ है। इस तरह दो विजातीय धर्मों के पारस्परिक संघर्ष से उत्पन्न विषम परिस्थिति का समाधान संतों की प्रेम-साधना ने कर दिया। डॉ० बड़थ्वाल ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि 'सम्मिलन की भूमिका का मूल आधार हिन्दुओं के वेदान्त और मुसलमानों के सूफी मत ने प्रस्तुत किया।'[1] यहाँ पर हम पृथक्-पृथक् दोनों की प्रेम-साधना सम्बन्धी दृष्टिकोणों का विवेचन कर उनके पारस्परिक प्रभावों पर विचार करेंगे।

(क) सूफी कवियों की प्रेम-साधना

यद्यपि भारतीय भक्ति में पहले भी प्रेम तत्व का उल्लेख भागवत आदि ग्रंथों में मिलता है किन्तु उस भक्ति मे जिस देव विषयक रति का प्रतिपादन हुआ है उसमें श्रद्धा एवं भय का प्राधान्य है। हिन्दी में सर्वप्रथम साधना के निमित्त सूफी कवियों ने ही प्रेम को आधार बनाया है जिनके लिये यह 'प्रेम तत्व' कोई नई वस्तु नहीं थी। यह तो उन्हे परम्परा से ही प्राप्त था। भारत में आने पर जहाँ पहले से

1. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय, डॉ० पीताम्बर बड़थ्वाल, पृष्ठ ८६।

ही वैष्णव सम्प्रदाय की भक्ति परम्परा में प्रेम का उद्भव सगुणोपासना के लिए हो चुका था। इन सूफी कवियों ने निराकारोपासना में प्रेम की आधारशिला पर साधना का एक ऐसा सुन्दर भवन खड़ा किया और तत्कालीन परम्पराओं से सामग्री लेकर उसमें ऐसा पुट किया कि देखते ही बनता है।[1]

सूफी प्रेम तत्व—मध्यकालीन हिन्दी सूफी कवियों ने प्रेम की अभिव्यक्ति के लिये फारसी मसनवियों के आधार पर लिखित प्रेमाख्यान काव्यों में जो प्रेम-कथाएँ लिखी उनके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनका प्रेम तत्व चार प्रकार के प्रेमों में से अंतिम चतुर्थ कोटि का ही प्रेम है। प्रथम कोटि का वह पवित्र प्रेम है जहाँ अपरिचित अवस्था में वर-वधू का पाणिग्रहण हो जाता है और विवाहोपरान्त उनमे प्रेमोदय होता है। इसे दाम्पत्य परक प्रेम कहते है। 'ढोला मारू रा दूहा' में नायिका मारवणी का प्रेम दाम्पत्य परक प्रेम है, जिसमे नायिका का विवाह बचपन में ही हो जाता है वह पति से मिलने का प्रयास करती है और उसमे सफल भी हो जाती है। द्वितीय कोटि का प्रेम वह प्रेम है जो विवाह से पूर्व ही नायक और नायिका के परस्पर मिलन से प्रारम्भ होता है। उसमें रमणीय एकान्त स्थल, प्राकृतिक सौंदर्य, दूत अथवा दूती आदि सहायक का कार्य करते है। कभी-कभी नायक-नायिका मे क्षणिक संयोग भी हो जाता है और फिर विरह-यातना में उन्हें अपने प्रेम के परिपक्व करने का अवसर मिलता है। असूफी प्रेमाख्यान 'माधवानल काम कदला' की कथा में नायक और नायिका का प्रेम इसी कोटि का है। इसे 'काम परक' प्रेम कहते है। तृतीय कोटि का प्रेम 'सत परक' प्रेम है जिसमें नायिकाएँ बराबर अपनी एकनिष्ठता एवं सतीत्व की पवित्रता का परिचय देती है। छिताई वार्ता' तथा 'सत्यवती' असूफी प्रेमाख्यानों मे चित्रित प्रेम 'सत परक' प्रेम है। चतुर्थ कोटि का प्रेम अध्यात्म परक प्रेम है जो ईश्वर के प्रति हुआ करता है। इस प्रकार के प्रेम का उदय चित्र अथवा स्वप्न में दर्शन, गुण-अवगुण अथवा किसी सुन्दर वस्तु के दर्शन से हुआ करता है। असूफी प्रेमाख्यान 'रूप मंजरी', वेलिक्रिसन रुकमिणी री', 'प्रद्युम्न चरित्र' आदि मे इस प्रकार के प्रेम का चित्रण हुआ है। सूफी कवियों ने इसी कोटि के प्रेम की व्यंजना अपने प्रेमाख्यानो में किया है। पद्मावत मे रतनसिंह को जब हिरामन तोते द्वारा पद्मावती के सौंदर्य का आभास मिलता है तो वह विरह में व्याकुल हो उसकी प्राप्ति के लिये निकल पड़ता है। दाऊद कृत चांदायन कुतुबन कृत मृगावती, मंझन कृत मधुमालती, उसमान की चित्रावली आदि सभी सूफी प्रेमाख्यानों में इसी ईश्वरीय प्रेम का चित्रण किया गया है।

१. सूफीमत और हिन्दी साहित्य, डॉ० विमल कुमार जैन, पृ० १८४।

सूफियों के विचार से ईश्वर स्वयं प्रेममय है अतः उससे उत्पन्न सारी सृष्टि भी प्रेम की ही प्रतिमूर्ति है। इस प्रकार लौकिक प्रेम हृदय मे निहित ईश्वरीय मूल प्रेम का अभिव्यंजक है। इसी विश्वास को लेकर सूफियों ने 'इश्क मिजाजी' (लौकिक प्रेम) को 'इश्क हकीकी' (ईश्वरीय प्रेम) का आधार माना है। प्रेम का सौंदर्य से अत्यन्त ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रिय का सौंदर्य ही प्रेमी को उसकी ओर आकर्षित करता है। किन्तु यह प्रेम का मार्ग जितना ही सरल और मधुर प्रतीत होता है वस्तुतः वह उतना ही कठिन है। सूफियो ने प्रेम के साथ-साथ कष्ट का होना अनिवार्य माना है। उनका विश्वास है कि यदि प्रेम सच्चा है तो निश्चय ही कष्ट उठाना पड़ेगा। जो वस्तु अत्यन्त ही कष्ट उठाने से मिलती है वह उतनी ही प्रिय और स्थाई होती है।[१] प्रेम का खेल अत्यन्त ही कठिन होता है यदि इसे सभल कर न खेला जाय।[२] सूफी प्रेम-साधना की कठिनाइयों तथा प्रेम के लक्षणो की चर्चा हम पिछले अध्याय मे कर चुके है।

सूफी प्रेम-साधना के उपाय—यद्यपि सूफियों ने परम तत्व की प्राप्ति के लिये 'प्रेम' को ही एक-मात्र साधन माना है किन्तु अपने इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्हे साधना के अन्य मार्गों को भी अपनाना अनिवार्य हो गया है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है सूफी प्रेम-साधना के लिए नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत ये चार मंजिले मानी गई है जो क्रमशः शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत की अवस्थाओं में प्राप्त होती है। 'नासूत' की मंजिल सामान्य स्थिति होती है जिसमे साधक सामान्य मनुष्य की भाँति जीवन-व्यतीत करता है। इसी अवस्था मे उसे पूर्ण जन्म के पुण्य के परिणामस्वरूप ईश्वरीय सत्ता के प्रति रुचि पैदा होती है।[३] फिर वह कर्म मार्ग के कभी भोग्य पदार्थों का त्याग कर देता है। जोगी वेश में चल कर वह 'मलकूत' नामक दूसरी मंजिल पर पहुँचता है। इस मंजिल तक पहुँचने में साधक को कर्म और योग दो मार्गों का अनुसरण करना होता है। तीसरी मंजिल 'जबरूत' में साधक को ईश्वरीय सत्ता का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। इस मारिफत (ज्ञान) अवस्था से वह चौथी मंजिल लाहूत (हकीक) को प्राप्त होता है

---

१. प्रेम जो आहि बहुत दुःख पाइअ। दु.ख से मिलइ सो सेंति अडाइअ॥
—कुतुबन कृत मृगावती—डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छंद १६५, पृ० १६२।

२. 'प्रेम कठिन सब खेल सेउं, जो न संभरै खेल।'
—वही छंद १६५, पृ० १६२।

३. पुव्व पुन्नि फल आजु हमारा। ससि पुनिवं मुख देख तुम्हारा॥
—मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छंद १०७, पृ० ८६।

और साधक ईश्वरीय प्रेम में अपने को विलीन कर देता है। यह महामिलन की अवस्था है। इस तरह सूफियों को पूर्वाभास, प्रयत्न, प्राप्ति और महामिलन की चार अवस्थाओं के लिए क्रमशः कर्म, योग, ज्ञान, भक्ति और प्रेम इन चार मार्गों को अपनाना पड़ता है जिसमें प्रेम तो साधना का मुख्य अंग ही है किन्तु शेष चार कर्म, योग, ज्ञान और भक्ति-साधना के उपांग मात्र है। हम इनका आगे अलग-अलग विवेचन करेंगे।

सूफी प्रेम-साधना में तत्व--शरीअत की अवस्था में ईश्वरीय प्रेम के पूर्वाभास के पश्चात् मलकूत की दूसरी मंजिल तक पहुँचने के लिये कर्म-मार्ग को अपनाना पड़ता है। साधक को 'नासूत' के सभी आकर्षक भोग्य पदार्थों से अरुचि पैदा हो जाती है और उसके हृदय में ईश्वरीय प्रेम का उदय हो जाता है; साधक प्रेमी के विरह में तड़पने लगता है। कुतुबन कृत मृगावती में चित्रावली के चित्रित मृगी को देखकर जब राजकुँवर रोने लगता है[1] तो यहीं से 'मलकूत' की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। राजकुँवर निश्चय करता है कि जब तक मैं उसका समाचार नहीं पाऊँगा भले ही यहाँ मर जाऊँगा किन्तु अपने चित्त को नहीं डुलाऊँगा।[2] राजकुँवर का पिता आकर उसे बहुत समझाता है किन्तु राजकुँवर अपने निश्चय से नहीं डिगता।[3] राजकुँवर का यह राजसुख त्याग करना तथा दिन-रात 'मृगी' के लिये विरहाकुल रहना 'मलकूत' का 'कर्म मार्ग' है। 'जायसी के पद्मावत' में तोते द्वारा पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुनने पर राजा रत्न सिंह उसके प्रेम में अनुरक्त हो स्वप्नों के समझाने की कोई परवाह किये बिना ही राज-पाट छोड़कर योगी बन जाते हैं। हाथ में किंगरी धारण कर लेते हैं। पद्मावती के प्रेम में वे बावला हो जाते हैं। सिर पर जटायें हो जाती हैं। चन्दन के समान शीतल और सुगन्धित तथा चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख पर भस्म चढ़ा कर सारे शरीर को मिट्टी कर देते हैं।[4] यही तरीकत की अवस्था कर्म मार्ग का द्योतक है। मंझन कृत मधु-

---

१. कुतुबन कृत मृगावती--सं० माता प्रसाद गुप्त छंद ३७, पृ० ३०।

२. जब लगि चाह न ओहि कै पाऊँ। मारौ यहाँ पै चित न डोलाऊँ।।
—वही छंद ३०, पृ० ३३।

३. वही छंद ३३, पृ० २६।

४. तजा राज, राजा भा जोगी। औ किंगरी कर गहेउ वियोगी।
तन बिसंभर मन बाउर लटा। अरुझा पेम परी सिर जटा।।
चन्द्र बदन और चंदन देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा।
—जायसी ग्रन्थावली--पद्मावत जोगी खंड छंद १२६।

मालती में राजकुमार मधुमालती के विरह में विरहाकुल हो खप्पर दंड और अधारी माँगता है। मत्थे पर चक्र धारण करता है मुख पर भस्म रमाता है कानों में स्फटिक मुद्रा धारण करता है। हाथ में जलपात्र और किंगरी लेकर योगी वेश में मधुमालती की खोज में निकल पडता है।[१] यह उसकी कर्म-साधना ही है यही कर्म-साधना 'दाऊद कृत चांदायन' मे उस समय दिखाई गई है जब लोरिक भादो की अंधेरी रात मे रस्सा लेकर अकेला 'चंदा' के धवलगृह पर आरोहण करने के लिये चल पड़ता है।

छठि भादवं निसि भइ अंधियारी। नैन न सूझै बांह पसारी॥
चला बीरु बरहा कर लावा। जिय के परे न दूसर बोलावा॥[२]

इस प्रकार सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में प्रेम साधना की सिद्धि के लिये कर्म को सहायक के रूप में चित्रित किया है जिसमें साधक लौकिक सुखो का परित्याग कर ईश्वरीय प्रेम की ओर अग्रसर होता है। राज-पाट, माता-पिता, सभी का त्याग कर भस्म रमा योगी वेश मे निकल पड़ना ये सभी क्रियायें कर्म साधना से ही सम्बन्धित है।

सूफी प्रेम-साधना में योग-तत्व—योग के प्राणायाम, ध्यान आदि से सूफियों के 'जिक्र' की क्रियाएं बहुत कुछ मिलती-जुलती है। जब साधक को मुर्शीद का आशीर्वाद मिल जाता है और उसका आध्यात्मिक जीवन प्रारंभ हो जाता है तब वह सम्प्रदाय के नियमो के अनुसार बड़े ही मनोयोग के साथ अपनी आध्यात्मिक यात्रा (तरीका) प्रारंभ करता है। ऐसी स्थिति मे 'मुरीद' को 'सालिक' (यात्री) की संज्ञा दी जाती है। सूफी साधक जब तक यह शरीर धारण किये रहता है तब तक वह परमात्मा के एकत्व का ध्यान और उसके नामो का स्मरण करता रहता है, ईश्वर नाम स्मरण ही सूफियो की भाषा में 'जिक्र' कहा गया है, जिसमें साधक का मन समस्त लौकिक कार्य-कलापो से विरक्त हो परमात्मा की याद मे लग जाता है और उसके सिवा उसे अन्य किसी का ध्यान नहीं रह जाता। परमात्मा के स्मरण का उल्लेख कुरान में भी कई बार आया है।[३] सूफियों के यहाँ 'जिक्र' के दो प्रकार है—(१) जिक्र जली, (२) जिक्र खफी। 'जिक्र जली' मे साधक

---

१. कठिन विरह दुःख गान संभारी। मागेउ खप्पर दंड अधारी॥
चक्र माथ मुख भसम चढ़ावा। सवन फटिक मुद्रा पहिरावा॥
—मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छद १७२, पृ० १४४।

२. दाऊद कृत चांदायन—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छंद १८८, पृ० १८३।

३. कुरान मजीद—मकतबा अलहसनात रामपुर सूरः ३३, अल अहजाब और सूरः ४१ हा० मीन० अस-सजद।

जोर-जोर से अल्लाह् का नामोच्चारण इसलिये करता है कि अल्लाह के सिवा उसे किसी दूसरे का ध्यान ही न आवे। किन्तु 'जिक्र खफी' मे साधक मौन हो शान्त भाव से परमात्मा का स्मरण करता है। जिक्र की ये क्रियाएँ योग के ध्यान से बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं।

हिन्दी सूफी कवियों को योग का ज्ञान तो पहले से ही मूल सिद्धान्त के रूप में मिल ही चुका था, भारत में आकर अपने सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने के लिये प्रेमाख्यानों में वे साधक को 'तरीकत' के मार्ग पर अग्रसर होते समय 'योगी' बेश मे प्रस्तुत करते है जो उनकी प्रेम-साधना में 'योग' के महत्व को प्रदर्शित करता है। 'मृगावती' में राजकुमार का रात-दिन 'मृगी' के ध्यान मे लीन रहना तथा दूसरे को स्वप्न में भी भूल कर स्मरण न करना उसकी योग साधना है।[1] मृगावती के सुबुध्या त्याग खंड मे एक योगी राजकुमार से बात-चीत करते समय यौगिक क्रियाओं की ओर संकेत करते हुये कहता है .—

कुअर गुस्टि कै पूछै बाता। कंचनपुर कै जानहु साता।
एहि ठां हुते अधिक किछु होई। अंतर तार समुंद अहइ सोई।।
तेहि सेउं कजली वन एक आही। अंध कूप औ पथ न ताही।
चलत - चलत पंथ पैहसि जौ तै सत सै जाब।
सत सेउं सतइ सघाती, होइहिं बाघ सिंघ नहिं खाब।।[2]

अर्थात् कुंवर ने गोष्ठी करके उससे बात पूछी—"क्या तुम कंचनपुर की सात स्थिति जानते हो ?' उसने उत्तर दिया यहाँ से वह कुछ ही अधिक दूरी पर होगा। उसके बीच में एक तार समुद्र पड़ता है। वहाँ से चलकर एक कदली वन मिलता है। वह अंधे कुंए जैसा है और उसमे रास्ता नहीं है। यदि तू सत्यपूर्वक जायेगा तो तुझे अवश्य उसमें मार्ग मिल जायेगा। सत्य से ही सत्य तेरा साथी बन जायेगा और बाघसिंह तुझे नहीं खा पायेंगे।" कुतुबन द्वारा प्रस्तुत यह वार्त्ता योगोपदेश का प्रतीक है जिससे राजकुमार योगी से 'कंथा' माँग तथा उसे भिक्षा देकर उसकी समस्त योग सज्जा को प्राप्त कर लेता है।[3] ठीक इसी प्रकार जायसी के

---

१. निसि बासुर बिधि तैसेहिं दोमर चित्त न कराहिं।
चित्त महुत्त गयंद जेउं, कैसेहुं उतरि न जाइ।।
—कुतुबन कृत मृगावती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द ३८, पृ० ३०।

२. वही छन्द १५८ पृ० १२९।

३. कुअर कहा हम कंथा देहू। जो किछ चही सैं हम सेउं लेहू।
कुंअर आनि बहु भिखया दिहीं। जोगी सनां साज सब लिही।।
—वही छन्द १५९, पृ० १२९।

पद्मावत में भी रत्नसिंह पद्मावती की खोज करने के लिये प्रस्थान करने से पूर्व योगी वेश धारण कर लेता है :—

मेखल सिंघी चक्र संधारी। जोग बाट रुदराछ अधारी।
कंथा पहिरि दंड कर गहा। सिद्ध होइ कहँ गोरख कहा।।
मुद्रा स्रवन कंठ जप माला। कर उदपान कांठ बघछाला।
पावरि पांव दीन सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस करि राता।।[1]

मंझन कृत मधुमालती मे भी राजकुमार मधुमालती के लिए प्रस्थान करने से पूर्व योगी वेश ही धारण करता है :—

उदपानी कसि कै कर साटी। गुन किंगरी वैरागी ठाटी।
कंथा मेखलि चिरकुटा, जटा परी सिर केस।
बज्र कछौटी बांधि कै, किय गोरख का वेस।।[2]

योगी वेश सम्बन्धी इन उद्धरणों के उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि सूफी प्रेम साधना में चित्त की स्थिरता के लिये 'योग तत्व' को भी स्थान दिया गया है जिसके माध्यम से साधक लौकिक भोग्य पदार्थों का परित्याग कर एकमात्र साध्य की प्राप्ति के लिये चिंतनशील बन जाता है। फिर भी सूफी प्रेमाख्यानो में कवियों ने केवल योग साधना का संकेत मात्र ही किया है उसके विवेचन की ओर उनका ध्यान नहीं गया है। सूफियों ने कर्म और योग का सहारा 'तरीकत' की मंजिल तक पहुँचने मात्र के लिये ही किया है।

सूफी सन्त साधना में ज्ञान-तत्व—कर्म और योग की सहायता से साधक संयमित हो एकनिष्ठ भाव से 'तरीकत' की मंजिल पार कर लेता है तो उसे हकीकत की मंजिल पर 'ज्ञान तत्व' की अपेक्षा होती है। हकीकत की मंजिल पर साधक परमात्मा पर पूर्णतः निर्भर (तवक्कुल) हो जाता है। साधक परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त कर प्रेम और मिलन के प्रकाश मे परमात्मा के ऐश्वर्य को देखता है तथा ससार में रहते हुये भी पर-जीवन के रहस्यो का भेदन करता है।[3] प्रेम के द्वारा ही उसे मारिफ (ज्ञान) की प्राप्ति होती है किन्तु ऐसा नहीं होता कि ज्ञान की प्राप्ति के साथ ही साथ प्रेम की समाप्ति हो जाय, और ज्ञान अपने विशुद्ध रूप मे साथ-साथ बने रहते है। इसी से सूफियों का ज्ञान उपनिषदों के ज्ञान की भाँति शुष्क ज्ञान नहीं रह जाता। हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानों में सूफियों ने हकीकत

---

१. जायसी ग्रन्थावली पद्मावत—योगी खंड, छन्द १२६।
२. मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द १७२, पृ० १४५।
३. सूफीमत साधना और साहित्य—श्री रामपूजन तिवारी, पृ० ३२६।

की इस मंजिल को नायक-नायिका के दर्शन के समय दिखलाया है। प्राय. प्रथम दर्शन में साधक अपने 'अहं' को भूल कर अचेत हो जाता है और चेतना आने पर वह गुरु की कृपा से पुन. उसके दर्शन करने पर सफल होता है। दाऊद कृत चांदायन में 'चंदा' द्वारा लोरिक को शीश झुकाकर प्रणाम करने पर लोरिक अचेत हो जाता है और उसका मन चंदा के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है। उसका मुख 'मेंमर' तथा पीत वर्ण का हो जाता है, नेत्र अत्यन्त ही संतप्त हो जाते है, और काया सूख जाती है। यथा—

चांद सीसु भगवंतहि नावा। भा अचेतु मन चैनु गंवावा।
मुनिवर मन देखन गुन गएऊ। पीत बरन मुख मेंमर भएऊ ॥
नैन झुरहिं अति व्यथा मुखानी। धनि धानुक चखि हना बिनानी।[1]

फिर बृहस्पति द्वारा 'चंदा' और लोरिक के मिलन हो जाने पर लोरिक कहता है कि ऐ चंदा तुम्हारे प्रेम का वृक्ष मेरे हृदय में ऐसा लग गया है कि उसकी जड़ें धरती में और कोंपलें स्वर्ग में निकल रही हैं अब उसके लिये भले ही जी जाता है तो जाय।

तहं तोरइ रंग बिरवा, हिरदइं लागेउ आइ।
कोंप सरग जरि धरती, जिय बरु जाइ त जाइ ॥[2]

मृगावती मे राजकुंवर मृगावती के दर्शन मात्र से ही चेतना हीन हो जाता है और मूच्छित हो गिर पडता है।[3] ईश्वरीय प्रेम से जब साधक अपनी चेतना का विस्मरण कर देता है तो यहीं से उसे ईश्वरीय ज्ञान की अनुभूति होने लगती है। वह अपने प्राण को उसी दिन निकला हुआ समझने लगता है जिस दिन से उसके हृदय में प्रेम प्रीति के रस की वृद्धि होने लगती है :—

मैं आपन जिय तहियंइ काढ़ा। प्रेम प्रीति रस जेहि दिन बाढ़ा ॥[4]

पद्मावत मे वसन्तोत्सव मनाने हेतु आई हुई शिव मंदिर मे पद्मावती के दर्शन से रत्नसेन अचेत हो धरती पर लोटने लगते हैं। उनमें पहले की भांति भीम

---

१. दाऊद कृत चांदायन—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृ० १६४, छन्द १६८।

२. वही, पृ० २०४, छन्द २१०।

३. तब लगि ओइं देखो अपछरा। चेत बिलान मुरुछि कै परा ॥
—कुतुबन कृत मृगावती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, मृगावती दर्शन खंड, छन्द ४७, पृ० ३७।

४. कुतुबन कृत मृगावती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृ० १८७, छन्द २२२।

और बलि जैसी शक्ति नहीं रह जाती। प्राण विहीन उनका शरीर असहाय हो जाता है।

परी क्या मुंइ लोटे, कहाँ रे जिउ बलि भीउ।
को उठाइ बैठारे बाज, पियारे जीव ॥[१]

फिर पद्मावती के सौन्दर्य का बोध हो जाने पर राजा रत्नसेन अपने को शूली पर चढ़ने के लिये न्योछावर कर देते हैं और कहते हैं :—

रग तुम्हारेहि रातेउं, चढ़ेउं गगन होइ सूर।
जहं ससि सीतल तहं तपौ, मन हीछा धनि पूर ॥[२]

मंझन कृत मधुमालती में प्रेमा के मुख से मधुमालती के आगमन की सूचना पा राजकुमार के चित्त में सात्विक भाव उठ पड़ते हैं। शरीर में कंपन होता है। वाणी मूक हो जाती है। चेतना लुप्त हो जाती है। नेत्र झंपने लगते हैं, मानो अग्नि मे राँगा ढुलक कर निस्तेज हो गया हो।[३] प्रेमा की सहायता से चेतना आने पर वह कहता है :—

कहेसि कौन दिन आजु सुहावा। जु हौं बास प्रीतम कर पावा।
फूली मकुत प्रेम फुलवारी। जेहि सुवास पूरित महि सारी ॥[४]

इस तरह सूफी साधना में ज्ञान तत्व का जो चित्रण किया गया है वह साधना के अन्तिम चरण पर पहुंचने का मार्ग है जहाँ से साधक प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त कर अपने 'अहं' भाव का त्याग कर महामिलन की स्थिति में आ जाता है और अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इस अवस्था तक पहुँचते-पहुंचते साधक की आत्मा का लय हो जाता है जिसे सूफियों के शब्दों में 'फना' कहा जाता है।

सूफी प्रेम-साधना में भक्ति-तत्व—सूफी प्रेम साधना में प्रियतम के प्रति जो भी श्रद्धा व्यक्त की गई है उनके मूल में दाम्पत्य प्रेम ही विराजमान है। भक्ति के अन्य भाव, वात्सल्य भाव आदि के दर्शन सूफियो की प्रेम साधना में नहीं होते। इसीलिये उनकी साधना भक्ति प्रधान न कही जाकर केवल प्रेम प्रधान ही मानी

१. जायसी ग्रन्थावली—पद्मावत बसन्त, खंड छन्द २०१।
२ वही—पद्मावती रत्नसेन भेंट, खंड छंद ३२५।
३. जबहीं सखि मधु नांउ सुनावा। दरसेउ सुनतहि सात्तिक भावा।
कंप भाउं मुख आउ न बैना। चितहि चेत गा आपै नैना ॥
—मंझन कृत माधुमालती–सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द ३१६ पृ० २७०।
४. वही, छन्द ३१७, पृ० २७१।

गई है। साधक साध्य के प्रति जो भी त्याग करता है वह प्रेम के कारण करता है श्रद्धा के कारण नहीं। वह अपने साध्य से बिल्कुल ही निर्भय है। भक्ति के अन्य भावों मे श्रद्धा के साथ-साथ भय का भी सम्मिश्रण रहता है किन्तु सूफियों की प्रेम स्वरूपा भक्ति में माधुर्य के साथ-साथ आत्म-त्याग और निर्भीकता है। वह किसी भी धमकी से डरने वाला नहीं है। 'चाँदायन' में जब 'चंदा' लोरिक को यह धमकी देती है कि तूं अपनी मृत्यु को हटाकर भले ही यहां आ गया किन्तु वह किसी प्रकार हटाई नहीं जा सकती। यदि तूं ने बिस्तरे पर पैर रखा तो तूं अपने प्राण गंवा कर ही जायेगा।[1] तब लोरिक निर्भीकता से कहता है कि हे चंदा मैं तो तभी मर गया जब मैंने तुझे देखा था। आज तुझे देखकर विशेष रूप से मर गया। इस समय तूं मृतक को मार रही हो इसमें क्या तेरा महत्व है ?

हउं तउ मरिउं जउंहि तूँ देखी। तोंहि देखि धनि मुहउं विसेखी।
मुएं जो मारइ सो कस आहा। चांद मुएं कर मारब काहा॥[2]

कुतुबन कृत मृगावती में प्रेम की कठोरता का अनुभव करते हुए राजकुमार सबको चेतावनी देता है कि प्रेम विष मे परिपूर्ण सर्प होता है कर्मों का लंगर लेकर ही उससे पार पाया जा सकता है। वही बुद्धिमान है जिसने प्रेम का खेल नहीं खेला है निश्चय ही वह बावला है जो प्रेम रूपी सर्प के मुख में अंगुली डालता है। अतः किसी को प्रेम नहीं करना चाहिये। प्रेम करके जो सुख की कामना करते हैं वे सचमुच मूर्ख हैं।

पेम भुअंगम है बिस भरा। करमहिं लै लंगर नीसरा।
सोइ सरेख जो पेम न खेला। बाउर पै अंगुरी मुख मेला॥
पेम किये दुख पाइअ, पेम न करियो कोइ।
जो सुख चाहइ पेम करि, मुरिखा कहिअइ सोइ॥[3]

किन्तु राजकुमार के इस कथन का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि प्रेम बुरी चीज है। यहाँ जो कुछ भी प्रेम के सम्बन्ध में कहा गया है वह प्रेम की कठोरता दिखलाने के लिए कहा गया है। सूफियों का यह प्रेम स्वरूपा भक्ति कठोर होते हुए भी आनन्द प्रदायिनी है। इसमें साधक को साध्य के प्रति अनन्य प्रेम है वह

१. मींचु टारि तूं आतेसि, कइसेंइ मेटि न जाइ।
पाउ धरहिं तोंहि बिस्तर, जाइहिं जीउ गंवाइ॥
—दाऊद कृत चाँदायन—सं० माता प्रसाद गुप्त. छन्द १९९, पृष्ठ १९४।

२. वही, छन्द २००, पृष्ठ १९५।

३. कुतुबन कृत मृगावती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द १६५, पृ० १३५।

किसी के यहां तक कि स्वयं साध्य के बहकावे में भी आकर प्रेम मार्ग से विचलित नहीं हो सकता। 'मृगावती' में जब राजकुंवर सरोवर में स्नान करते समय 'मृगावती' के वस्त्र चुरा लेता है तब मृगावती राजकुंवर को समझाती है कि हे राजकुमार मैंने तेरे लिये ही 'मृगी का रूप धारण किया था। दूसरे वर्ष भी मैं तुम्हारे लिये आई और सखियों, सहेलियों को भी साथ लाई। फिर तीसरी बार हमने एकादशी का बहाना किया और शीघ्र ही आ गई। तूने इस कारण से मेरा वस्त्र छिपा दिया और सखियों, सहेलियों से साथ छुड़ा दिया। जहां मैं स्वयं तुम्हारे आदेश का पालन करने को तैयार हूँ वहाँ तुम्हें चतुराई करने की आवश्यकता ही क्या है? इस तरह मृगावती के लाख समझाने पर भी राजकुमार उसके बहकावे में नहीं आता। वह निर्भीकतापूर्वक नकारात्मक उत्तर देता है :—

> तोर चीर हौ देइ न पारौं कही धाइ हम बात।
> तन मन जीउ हमारेउ, अरपउं, देउं चीर सै सात ॥[1]

जायसी के पद्मावत में जब राजा रत्नसेन को शूली पर चढ़ाने के लिये लाया जाता है और फिर उससे जाति, जन्म और नाम पूछा जाने लगता है तो वह निर्भीकता से उत्तर देता है कि आज हमारे जीवन की अवधि पूरी हो गई है इसलिए मैं यहाँ से लाल मुख होकर जा रहा हूँ आप लोग जल्दी कीजिए। शीघ्र ही मुझे मार डालिए। मेरे संबन्ध मे और कुछ बाते न पूछिये।[2] साधक की इस प्रेम स्वरूपा भक्ति में एक निष्ठा एवं निर्भीकता के साक्षात् दर्शन होते हैं। प्रेम मार्ग का पथिक कठिनाइयों से त्रस्त हो पीछे हटना नहीं जानता। मधुमालती में राजकुमार अपनी प्रेम-साधना के दृढ़-निश्चय के सम्बन्ध में कहता है :—

> धाई पेम समुंद मह देखु, दौरि धसि लेउं।
> कै मानिक लै निकरौ, कै ओहि पंथ जिउदेउ ॥[3]

इस तरह हम देखते है कि सूफी कवियो के यहाँ हिन्दी सन्तो की भाँति 'भक्ति' तत्व नाम का कोई अलग मार्ग नही है जो कुछ भी है वह दम्पत्ति प्रेम से परिपूर्ण है। भय मिश्रित श्रद्धा का उसमे अभाव है। चारों ओर प्रेम ही प्रेम

---

१. कुतुबन कृत मृगावती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द ८३, पृ० ६४।

२. आजु अवधि सिर पहुँची, किए जाहु मुख रात।
बेगि होहु मोहि मारहु जिनि चालहु यह बात ॥
— जायसी ग्रन्थावली — पद्मावत छन्द २६६।

३. मंझन कृत मधुमालती — सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द १५१, पृष्ठ १२७।

है जो निश्चल, निष्कपट, निर्भीक और एकनिष्ठ है। मधुमालती में राजकुमार अपनी प्रेम स्वरूपा भक्ति का इस प्रकार चित्रण करता है :—

तोहि बिनु मोहि जग जीवन नाहीं। तुम सरीर मैं तुम्ह परिछाहीं।
तुम्ह सों प्रान मै कया तुम्हारी। तुम्ह ससि मैं सो तोरि उजियारी॥
प्रान कया कहं जेउ प्रति पारै। मसि संतन उजियारी सारै।
मै आपुन तेहि दिन परिहरा। जेहि दिन तोर पेम जिय धरा॥[1]

यही एक निष्ठा, यही मधुरा-भक्ति सूफी प्रेम साधना का एकमात्र प्राण है जो आगे चलकर हिन्दी सन्त कवियों के शुष्क ज्ञान मिश्रित भक्ति को दम्पत्ति प्रेम की सरसता मे सराबोर करने की प्रेरणा प्रदान करता है।

(ख) हिन्दी सन्त कवियों की प्रेम-साधना का स्वरूप

मध्यकालीन हिन्दी सन्त कवियो की साधना मे भक्ति और प्रेम की प्रमुखता के साथ-साथ ज्ञान कर्म और योग तत्वो के सम्मिश्रण का उल्लेख हम पहले ही कर चुके है। भक्ति-तत्व तो सन्तो ने भागवत् धर्म एवं वैष्णव सम्प्रदायो से ग्रहण किया किन्तु प्रेम तत्व विशेष कर दाम्पत्य प्रेम को उन्होने सूफियो से ही ग्रहण किया है। अत: सूफी कवियो की प्रेम साधना के साथ इनकी तुलना करने के पूर्व इनकी प्रेम साधना पर भी विचार कर लेना आवश्यक है।

हिन्दी सन्त काव्य में प्रेम तत्व—हिन्दी सन्त कवियों के ज्ञान की शुष्कता को सरस बनाकर लोकप्रिय बनाने का श्रेय 'प्रेम' को ही है। सन्त कवियो ने अपने निर्गुण ब्रह्म के प्रति भक्ति के साथ प्रेम का जो पुट दिया उससे माधुर्य की धारा निकली और ज्ञान के साथ-साथ प्रेम का समन्वय हो जाने से उसमें सर्व-ग्राह्यता आ गई। कबीर जैस सन्तो ने ईश्वर की एक और अमूर्त सत्ता को बाहरी कर्मकाण्डों द्वारा अप्राप्य बतलाया और केवल उसकी प्रेमानुभूति को ही सम्भव माना। सन्तो का विचार है कि प्रभु की सत्ता सर्वत्र विद्यमान् है। मनुष्य का हृदय भी उसका मन्दिर है अत: बाहर ढूंढने की अपेक्षा उसे भीतर ही ढूंढ़ना अच्छा है। तात्विक दृष्टि मे तो यह भावना रामानन्द में ही पूर्ण हो गई थी। कबीर ने उसको प्रतीक का वह आवरण दिया जिसमें 'मजनू' को अल्लाह भी लैला नजर आने लगा।[2] इस तरह सन्तों ने प्रभु के प्रति भक्ति के साथ-साथ प्रेम का समन्वय किया। 'कबीर' का कहना है कि :—

---

१. वही, छन्द १२६, पृष्ठ १०८।
२. हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय—डॉ० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल, पृष्ठ ८६-९०।

कबीर हंसणां दूरि करि, करि रोवण सौं चित्त ।
बिन रोयां क्यूं पाइये, प्रेम पियारा मित्त ॥[1]

प्रेम के महत्व को बतलाते हुये कबीरदास जी कहते हैं कि हृदय में प्रेम के प्रकाशित होने पर आत्मा और परमात्मा का जो प्रिय और प्रेमी का सनातन सम्बन्ध है वह जाग उठा । इस प्रेम-भावना के जगने से अज्ञान वश जो भ्रम था वह नष्ट हो गया एवं प्रिय-ब्रह्म मिलन का अमिट सुख प्राप्त हो गया । इस शरीर में ईश्वरीय प्रेम के उदित होने पर हृदय उस प्रेम ज्योति से ज्योतिर्मान हो गया । साधक का मुख सुगन्ध से परिपूर्ण हो गया और उसकी वाणी मे भी सुगन्ध निकलने लगी :—

पिंजर प्रेम प्रकासिया, जाग्या जोग अनन्त ।
संसा खूटा सुख भया, मिल्या पियारा कंत ॥
प्यंजर प्रेम प्रकासिया, अंतरि भया उजास ।
मुख कस्तूरी मंहू मही, वाणी फूटी वास ॥[2]

प्रेम की दुरूहता को बतलाते हुये सन्त कवि रैदास जी कहते है कि श्याम के प्रेम का मार्ग अत्यन्त ही दुरूह है । इस मार्ग पर अकेले ही चलना होता है कोई भी साथ नहीं होता ।

स्याम प्रेम का पंथ दुहेला । चलन अकेला, कोई संग न हेला ॥[3]

'सन्त दादू दयाल' जी का कथन है कि प्रेम की सरिता में ही आत्मा और परमात्मा केलि करके एकत्व को प्राप्त होते है । सहज सरोवर मे प्रेम की तरंगों पर जीवात्मा और परमात्मा झूला झूलते हैं । यह मन अपने स्वामी के साथ क्रीड़ा करता है । यथा :—

दादू दरिया प्रेम का, तामै झूलें देइ ।
एक आतम पर आतमा येक मेक रस होइ ॥
दादू सरवर सहज का, तामैं प्रेम तरंग ।
तहाँ मन झूलै आतमा, अपणी साईं संग ॥[4]

रज्जब जी के विचार मे प्रेम अग्नि है तथा जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों अंश और अंशी रूप में कंचन हैं । प्रेम की अग्नि दोनों को पिघला कर एक में मिला

१. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण—विरह कौ अंग—साखी २७ ।
२. कबीर ग्रंथावली—(काशी संस्करण) परचा कौ अंग, साखी १३, १४ ।
३. रैदास जी की बानी—बे० बे० प्रेस प्रयाग, पृष्ठ ३०, शब्द ६४ ।
४. दादूदयाल—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, परचा कौ अंग, साखी ६३, ६६ ।

देती है। प्रेम के उत्पन्न हो जाने से जीवात्मा और परमात्मा के बीच कोई द्वैत भावना नहीं रह जाती। सेवक और स्वामी दोनों एक होकर इस घर में प्रवेश करते हैं। प्रेम का मार्ग ऐसा विचित्र और उलटा होता है कि प्रेम के वशीभूत हो सेव्य स्वएं सेवक बन जाता है और सेवक को अपना स्वामी बना लेता है।

पेम प्रीति हित नेह की, रज्जब उलटी बाट।
सेवग कौ स्वामि करहिं, स्वामी सेवग ठाट ॥[1]

ईश्वर की भक्ति के लिये प्रेम का होना नितान्त आवश्यक है। मलूकदास जी के विचार से जिसने प्रेम साधना नही की, कामदेव को नहीं जीता, अलख पुरुष को नहीं देखा उसके नेत्रों में क्षार पड़ जाय, अर्थात् उसके नेत्र व्यर्थ हो जायँ :—

प्रेम नेम जिन न कियो, जीतो नाही मैन।
अलख पुरुष जिन न लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥[2]

प्रेम कह कर सुनाने की वस्तु नहीं होती। ईश्वर के प्रति यदि प्रेम है तो अन्तर्यामी भगवान उसे स्वयं ही जान जाता है :—

जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव।
अन्तरजामी जानिहैं, अन्तरगत का भाव ॥[3]

अतः स्पष्ट है कि सन्त मत में प्रेम प्रचार की वस्तु नहीं माना गया है। प्रेम का प्रभाव प्रेमी पर अपने आप पड जाता है।

प्रेम और विरह—प्रायः सभी हिन्दी सन्तो ने अपनी रचनाओ मे 'विरह के अंग' पर प्रकाश डाला है। विरह से प्रेम परिपूर्ण एवं परिपक्व होता है। विरह के द्वारा ही जीवात्मा परमात्मा के प्रेम पथ पर दृढतापूर्वक अग्रसर होता है। विरहिणी आत्मा प्रियतम परमात्मा से मिलने के लिए व्यग्र रहती है। बिना प्रियतम से मिले उसे एक क्षण के लिये भी चैन नहीं पड़ती। विरह का दुःख बड़ा ही विलक्षण होता है क्योंकि इसमें न तो विरहिणी ही प्रियतम तक जा पाती है और न प्रियतम ही उससे मिलने आता है। इस तरह वह विरह की तीव्र ज्वाला मे जल कर भस्म होती रहती है। विरह की वेदना का अनुभव केवल दो ही व्यक्ति जान पाते है एक तो वह जिसे वेदना हुई है और दूसरा वह जिसने वेदना दी है।[4] यह विरह उस सर्प के समान है जिसके विष का किसी प्रकार का भी मंत्र नहीं

१. रज्जब बानी—डॉ० ब्रजलाल, प्रेम कौ अंग, साखी ६, पृष्ठ १५२।
२. मलूकदास जी की बानी—बे० वे० प्रेस प्रयाग, पृष्ठ ३४, प्रेम साखी २७।
३. वही, पृष्ठ ३५, गुप्त की महिमा, साखी ३८।
४. चोट सताणी बिरह की, सब तन जर जर होइ।
मारण हारा जाणिहै, कै जिहि लागी सोइ ॥
—कबीर ग्रंथावली-काशी संस्करण-विरह को अंग, साखी १४

उतार सकता। वस्तुतः राम का वियोगी ता जीवित ही नहीं रह सकता। यदि किसी भी प्रकार वह जीवित रह भी जाता है तो वह पागल हो जाता है।[1] इस विरह रूपी सर्प के दर्शन को धैर्यपूर्वक सहन करना चाहिये क्योंकि मन में अधैर्य भाव आ जाने से प्रेम को क्षति पहुँचेगी और प्रियतम का दर्शन दुर्लभ हो जायेगा। विरह वेदना का चित्रण करते हुये सन्त दादूदयाल जी कहते है कि जिस शरीर मे राम का विरह व्याप्त हो जाता है उसे नीद नही आती। साधक रूपी विरहिणी प्रभु के विरह में तड़पती रहती है उसे विरह की पीड़ा ही प्रभु के प्रति सजग रखती है।

जिस घट विरहा राम का, तिस नीद न आवे।
दादू तलफै विरहिनी, उस पीड़ जनावै ॥[2]

प्रियतम के विरह की पीड़ा कभी पुरानी नही पड सकती यदि उसने अन्तर्मन को घायल कर दिया है। विरही जीते-मरते पड़े-पडे बराबर अपने प्रियतम को ही याद किया करता है। प्रियतम के प्रेम में सर्वप्रथम विरह का ही आगमन होता है पीछे प्रेम का प्रकाश होता है। जब मन प्रियतम के प्रेम में लीन हो जाता है तो मिलन की आशा हो जाती है।

संत कवि रज्जब जी के शब्दो में विरह 'दसवें' कुल का नाग है इसके डंस लेने से शरीर में जो दर्द होता है उसके निवारण के लिये कोई भी तंत्र-मंत्र काम नहीं कर सकता।[4] ईश्वर के प्रेमी चकोर पक्षी के समान हैं और उनके लिये विरह अंगार के समान है जो दूसरों को तो जलाया करता है किन्तु चकार को अत्यन्त ही प्रिय है।

विरही प्राण चकोर है, विरह अगिनि अंगार।
रज्जब जारै और को, उनके प्राण अधार ॥[5]

---

१. विरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
राम वियोगी ना जिवै-जिवै तो बौरा होइ॥

—वही, साखी १८

२. दादूदयाल-आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, विरह को अंग, साखी ७७, पृष्ठ ३५

३. वही, साखी ७६, ६६, पृष्ठ ३६, ३७

४. दसवे कुल का नाग है, दरद सु देही माहिं।
जन रज्जब ताके डसे, मंतर मूली नाहिं॥

—रज्जब बानी-डॉ० ब्रजलाल वर्मा-विरहा का अंग-साखी १३, पृष्ठ ३०

५. वही, साखी ४६, पृष्ठ ३२

विरहानुभूति की अवस्थायें

सामान्यतः संत साहित्य मे उपलब्ध विरहानुभूति की निम्नलिखित आठ अवस्थायें हैं :—

(१) चिन्ता, (२) व्यग्रता, (३) आंसू, (४) उद्वेग, (५) विस्मृति, (६) जागरण, (७) अरुचि, (८) मृत्यु ।

(१) **चिन्ता**—चिंता संता के विरह की प्रथम अवस्था है। यह दशा 'अभिलाषा' के बाद आती है। इसमे क्लेश की मात्रा एव प्रिय के दर्शन की लालसा बढ जाती है। यह दशा हमें प्रायः सभी संतो में मिलती है। साधना के क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर बहुत दिनों तक प्रतीक्षा करने पर भी जब प्रियतम के दर्शन नही होते तो चिन्ता का हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। सतो की चिंता मे इसी गंभीर अवस्था की अभिव्यक्ति हुई है। कबीर, रैदास, दादूदयाल, रज्जब जी, तुरसीदास निरंजनी, हरिदास निरंजनी, मलूकदास तथा सिक्ख गुरुओं की वाणियों मे चिन्ता के सुन्दर चित्रण मिलते है। 'कवि सुदरदास' के काव्य मे विरहानुभूति की प्रथम अवस्था का चित्रण देखिये :—

मेरा प्रीतम प्रान अधार कब घर आइहै।
कहं सो दिन ऐसा होइ दरस दिखाइ है॥
ये नैन निहारत भाग, इक टक हेरही।
बाल्हा जैसे चंद चकोर, दृष्टि न फेरही॥
यह रसना करत पुकार पिव पिव स्याम है।
बाल्हा जैसे चातक लीन रोत उदास है॥
ये श्रवन सुनन कौ बैन धीरज ना धरै।
बाल्हा हिरदै होइ न चैन कृपा प्रभु कब करै॥[1]

ठीक इसी विरहानुभूति की चिन्ता अवस्था का चित्रण करते हुये सन्त कबीर कहते है कि मेरे स्वामी राम मेरे घर कब आवेंगे जिन्हें देखकर मेरा मन प्रसन्न हो जायेगा। यह शरीर विरहाग्नि मे जल रहा है। प्रिय के दर्शन के बिना यहाँ शीतलता और शान्ति सम्भव नहीं है जैसे चातक स्वाति नक्षत्र के जल के लिये प्यासा रहता है उसी तरह मेरा मन प्रभु के दर्शन के लिये बेचैन रहता है। वे विरहातुर हो मनुहार करते है कि हे प्रभु आप शीघ्र ही दर्शन दीजिये। यथा—

सो मेरा राम कबै घर आवै। ता देखे मेरा जिय सुख पावै।
विरह अगिनि तन दिया जराई, बिन दरसन क्यू होई सराई॥

---

१. सुन्दर दर्शन—डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० २६४

निस बासर मन रहै उदासा । जैसे चातिग नीर पिआसा ।
कहै कबीर अति आतुरताई । हमको बेगि मिलो राम राई ॥[1]

सन्त दादूदयाल की विरहिणी प्रियतम की विरहानुभूति की चिन्ता में सदैव 'पीव, पीव' पुकारा करती है । रात-दिन उदास रहा करती है ।[2]

(२) व्यग्रता—व्यग्रता सन्तों की विरहानुभूति की द्वितीय अवस्था है । इसमें साधक को बड़ी बेचैनी का अनुभव होता है । उसे कहीं भी शान्ति नहीं मिलती । उसके हृदय में प्रियतम के दर्शन के लिये रह-रह कर बेचैनी पैदा हो जाती है । किसी भी सुखदायी पदार्थ में सुख नहीं मिलता । यह व्यग्रता दो प्रकार की होती है—(१) सामान्य कोटि की व्यग्रता जो साधारण मनुष्य जैसी होती है । (२) चरम कोटि की व्यग्रता जिसमें साधक प्रियतम के विरह मे जल से निकली हुई मछली की भांति तड़पने लगता है । सन्त दादूदयाल के शब्दों में इस विरहानुभूति का चित्रण देखिये—

दादू विरहिनि कूलै कुंज ज्यूं, निसिदिन तलफत जाइ ।
राम सनेही कारने, रोवत रैन विहाइ ॥[3]

ठीक यही भाव सन्त सुन्दरदास की वाणी में भी मिलते है—

सुन्दर पिय कै कारणौं, तलफै बारह मास ।
निसि दिन लै लागी रहे, चातक की सी प्यास ॥[4]

सन्त कबीर विरहानुभूति की व्यग्रता में कहते है कि हे प्रभु ' मैं आपका दर्शन कब प्राप्त करूँगा ? आपके बिना यह शरीर प्रति क्षण वेदना का अनुभव कर रहा है । मैं आपका मार्ग कभी से खोज रही हूँ । जिस तरह जल के अभाव मे मछली तड़पा करती है वही दशा मेरी आपके विरह में हो गई है । आपके दर्शन के बिना मुझे रात-दिन नींद नहीं आती । भला जो प्रिय के दर्शन की भूखी है वह शांति कैसे प्राप्त करेगी ?

कब देखूं मेरे राम सनेही । जा बिन दुख पावे मेरी देही ॥
हूं तेरा पथ निहारूं स्वामी । कबरे मिलहुंगे अन्तर जामी ॥

---

१. कबीर ग्रंथावली, काशी संस्करण, पद २२५

२. पीव पुकारे विरहिनी, निसि दिन रहे उदास ।
राम राम दादू कहै, ताला बेली प्यास ॥
—दादूदयाल, सं० परशुराम चतुर्वेदी, विरह कौ अंग, साखी २, पृ० २८

३. दादूदयाल, सं० परशुराम चतुर्वेदी, साखी ६, पृ० २६

४. सुन्दर दर्शन, डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० २६५

जैसे जल बिन मीन तलफै, ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै ॥
निसि दिन हरि बिन नींद न आवै, दरस पियासी राम क्यूं सच पावै ॥
कहै कबीर अब विलम्ब न कीजै, अपनी जान मोहि दरसन दीजै ॥[1]

(३) आँसू—विरहानुभूति की तृतीय अवस्था 'आँसू' है। यह दशा वैष्णवों और फारसी साहित्य में भी मान्य है किन्तु हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में नही। प्रतीक्षा जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है और प्रियतम के दर्शन नहीं होने तो निराशा में साधक के नेत्र बरस पड़ते है। सन्त दादू, सुन्दरदास, मलूकदास आदि की रचनाओ में इस दशा का विशेष उल्लेख मिलता है। सन्त दादू और सुन्दरदास के शब्दों में इस अवस्था का चित्रण देखिये—

विरहनि रोवे रात दिन, झूरे मन ही माहि।
दादू औसर चलि गया, प्रीतम पाया नाहि ॥[2]
सुन्दर तलफै विरहनि, बिलखि तुम्हारे नेह।
नैन अवै घन नीर ज्यौं, सूख गई सब देह ॥[3]

(४) उद्वेग—'आँसू' के पश्चात् 'उद्वेग' की दशा आती है। इस अवस्था में सुखदायी वस्तु भी कष्टप्रद हो जाती है। मन की गति तीव्र हो जाती है। प्रकृति के सभी उपकरण सुखदायी हो जाते है फूलों में शूल का आभास होने लगता है। नक्षत्र अंगार से प्रतीत होने लगते हैं। सन्त तुरसीदास निरंजनी तथा सुन्दरदास की रचनाओं में इस प्रकार की विरहानुभूति के दर्शन होते है। यथा—

हम पर पावस नृप चढ़ि आयो।
बादल हस्ती हवाई दामिनी, गरजि निसान बजायो।
पवन तुरगम चलै चहूँ दिशा, बूंद बनाकर लायो ॥
दादुर मोर पपीहा पाइक, मारै मार सुनायो।
दशहूँ दिशा आइ गढ़ घेर्यो विरहा अनल लगायो ॥[4]

(५) विस्मृति—इस दशा में साधक की साधना तीव्रतर हो जाती है वह ब्रह्म मे लीन हो जाने का प्रयत्न करता है। उसकी इन्द्रियाँ अपना काम भूलकर एक लक्ष्य की ओर प्रवृत्त हो जाती हैं। विस्मृति की दशा प्राय. सन्त कवियों में कम ही मिलती है। आलोच्य सन्त कवियों में सुन्दरदास की रचनाओ मे ही कहो-

१. कबीर ग्रंथावली, काशी संस्करण, पदावली २२४
२. दादूदयाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, विरह कौ अंग, साखी ५, २६
३. सुन्दर दर्शन, डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० २६६
४. वही, पृ० २६६

कहीं विरहानुभूति की विस्मृति अवस्था का चित्रण मिलता है। पाश्चात्य रहस्यवादी सेंट मार्टिन ने भी इस दशा का अनुभव किया था। सुन्दरदास की एक रचना में इस अवस्था का चित्रण देखिये—

मारग जोवै बिरहिनी, चितवे पिय की ओर।
सुंदर जियरै जक नहीं, कल न परत निसि मोर।।[1]

(६) **जागरण**—विरहानुभूति की इस अवस्था में साधक को नींद नहीं आती। उसे खाने-पीने से अरुचि हो जाती है। वह जीवन को निस्सार समझने लगता है। यह दशा कबीर, तुलसीदास, सुन्दरदास, दादू की रचनाओं में विशेष रूप से मिलती है।

सारा सूरा नीद भरि, सब कोई सोवै।
दादू घाइल दरद बंद, जागै अर रोवै।।[2]

(७) **मूर्च्छा**—विरहानुभूति की सातवी दशा मूर्च्छा है किन्तु इस प्रकार की दशा प्रायः सन्तों में नही मिलती। यह दशा सूफियों में बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है। सूफियों की भाषा में इस दशा को 'हाल' कहते है। पाश्चात्य रहस्यवादियो ने भी इस दशा का अनुभव किया है।

(८) **मरण**—विरह की अन्तिम दशा 'मरण' है। जब विरह अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है क्षण-क्षण पर मूर्च्छा आने लगती है। प्रकृति के सुखदायी तत्व कष्टप्रद हो जाते है। उस समय विरही आत्मघात करने का प्रयत्न करने लगता है। वह प्रभु से अपनी मृत्यु के लिये प्रार्थना करता है। कबीर, तुलसीदास, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास आदि की रचनाओ में ऐसी दशा का वर्णन प्रायः मिलता है। यथा—

विरही जन जीवे नहीं, कोटि कहै समझाइ।
दादू गहला ह्वै रहै, तलफि-तलफि मर जाइ।।[3]

इन अवस्थाओं के अतिरिक्त कुछ सन्तो ने विरह की अन्य दशाओ का भी वर्णन किया है जिनमें शरीर व्यापी एक विचित्र कसक होती है। इस तरह प्रेम के संसार में विरह को बड़ा ही महत्व दिया गया है।

सन्त प्रेम-साधना के उपांग

भक्ति और प्रेम सन्तों की साधना में ज्ञान, कर्म और योग का भी सन्निवेश

---

१. सुन्दर सार—विरह कौ अंग—सं० श्यामसुन्दर दास, पृ० २५६, साखी १
२. दादूदयाल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, विरह कौ अंग, साखी ७८, पृ० ३६
३. दादूदयाल—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, साखी ७३, पृ० ३५

है। यद्यपि साधना के ये मार्ग स्वतः स्वतन्त्र रूप में व्यवहृत नहीं हुये है फिर भी सहायक रूप में सन्त प्रेम साधना में ये विशेष महत्वपूर्ण हैं। अतः हम इनको यहाँ प्रेम साधना के उपांग के रूप मे ही अध्ययन करेंगे। सन्त प्रेम साधना के ये तीन उपांग निम्नलिखित हैं—

(१) ज्ञान तत्व, (२) कर्म तत्व, (३) योग तत्व।

(१) **सन्त प्रेम-साधना और ज्ञान-तत्व**—सन्त साहित्य में 'ज्ञान' शब्द ब्रह्म ज्ञान का द्योतक है। कबीर के शब्दों मे 'अवधू ऐसा ज्ञान विचारी, ज्यूं बहुरिन ह्वै संसारी' इसी अर्थ में प्रमुख हुआ है। कबीर के कथन का यही तात्पर्य है कि वह ज्ञान विचारणीय है जिससे आवागमन छूट जाय। इस प्रकार का आत्म-ज्ञान अथवा ब्रह्म ज्ञान ही हो सकता है। आत्म ज्ञान की दशा मे न भ्रम रहता है न माया, न द्वैत, न मोह, न तृष्णा, न दुर्मति। इस दशा में मन प्रकाश से जगमगा उठता है। 'सन्तो भाई ज्ञान की आई आँधी रे' नामक पद में कबीर ने ज्ञान के प्रभाव को बड़ी अच्छी तरह स्पष्ट करने का प्रयास किया है।[1]

कबीर की भाँति ही दादूदयाल ने भी ज्ञान अथवा ब्रह्म ज्ञान की बार-बार चर्चा की है। उन्होने कहा है शीर्ष स्थानीय ब्रह्म के ज्ञान का प्राप्त करके मैंने अपने मन में रखा। यह अनन्त ब्रह्म का निर्मल ज्ञान स्वयं प्रकाशित तत्व है।[2] सन्त कवि सुन्दरदास जी का कथन है कि बिना ज्ञान के हृदय की ग्रन्थि नही छूटती।[3] जब ज्ञान का प्रकाश हो जाता है तब त्रिगुणातीत साक्षी पुरुष तुरीय स्वरूप अथवा ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

त्रिगुण अतीत साक्षी तुरिया सरूप जान।
सुन्दर कहत वाकै ज्ञान को प्रकाश है॥[4]

ज्ञान के भेद—(**आत्म ज्ञान और वाक्य ज्ञान**)—सन्तो ने ज्ञान को दो कोटियों मे बाँटा है। 'आत्म ज्ञान' और वाक्य ज्ञान। आत्म ज्ञान वह ज्ञान है जो स्वानुभूति जनित होता है जब कि वाक्य ज्ञान शास्त्रीय ज्ञान है। सन्तों ने आत्म-ज्ञान को ही मान्यता दी है तथा वाक्य-ज्ञान को त्याज्य माना है। जब सन्त कबीर "झूठा जप तप झूठा ज्ञान' कहते है तो उनका तात्पर्य इसी 'वाक्य ज्ञान' से है। वास्तव मे आत्म-ज्ञान की तुलना मे 'वाक्य ज्ञान' का कोई महत्व नही है। इसीलिये

---

१ कबीर ग्रंथावली, प्रयाग संस्करण, पद ५२, पृ० ३०

२. साधना और साहित्य—डा० हरस्वरूप माथुर, पृ० १४०

३. 'बिना ज्ञान पावे नही छूटत हृदय ग्रंथि'

—सुन्दर विलास, पृ० १४८

४. वही, पृ० १४८

सन्त कवियों ने वेद, उपनिषद्, कुरान आदि से प्राप्त ज्ञान को व्यर्थ बतलाया है। 'सन्त नामदेव' षट् दर्शन के निकट न जाने का निश्चय करते हैं। उन्हें षट् कर्म करने वाले सदाचारी शुद्ध ब्राह्मण से कोई मतलब नहीं।[१] यदि भगवान से प्रेम नहीं हुआ तो चारों वेदों का पढ़ना व्यर्थ है। कबीर जैसे अपढ़ को खेत का सार तत्व 'बाल' प्राप्त हो गई और शास्त्रों के ज्ञाता पण्डित लोग भ्रम में पड़कर उसे खेत में ही ढूंढ़ रहे है।[२] 'सन्त रैदास' के विचार से परम तत्व के साक्षात्कार के लिये पढ़ना, सुनना तब तक व्यर्थ है जब तक प्रभु के प्रति सच्ची भावना का उदय न हो जाय। जब तक लोहा पारस का स्पर्श नहीं करता तब तक वह सोना नही बन सकता।[३] सिक्ख गुरुओं ने 'ज्ञान' के इन्हीं दो रूपों को ब्रह्म-ज्ञान या तत्व-ज्ञान तथा वाचक ज्ञान अथवा सांसारिक ज्ञान नाम दिया है। वे भी वाचक ज्ञान या सांसारिक ज्ञान की निन्दा करते है। बहुत से लोग शास्त्रों का अध्ययन करके महान् ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं किन्तु आचरण में उसका व्यवहार नहीं करते। सिक्ख गुरुओं ने ऐसे थोथे ज्ञान को 'चंचु ज्ञान' कहा है। जिस प्रकार कौवा 'काँव काँव' करता है उसी प्रकार 'चंचु ज्ञानी' ज्ञान की लम्बी-चौड़ी बातें करते है किन्तु उनके भीतर लोभ, झूठ और अभिमान भरा रहता है। उसका ज्ञान चंचु तक ही सीमित है भीतर प्रविष्ट नही हो पाता।

जगु कऊआ, मुखि चंचु गिआनु।
अंतरि लोभु, झूठु अभिमान॥[४]

चंचु ज्ञानी को परमात्मा के 'हुकुम' का बोध नहीं होता। वास्तविक ज्ञान तो वह है जो परमात्मा का कहना मानता है। यदि वह ऐसा नही करता तो वह कच्चा से भी कच्चा है।

---

१. षट दरसन के निकट न जाइवौ, भगति जायगो जाइ रे नामा।
षट क्रम सहित विप्र आचारी, तिन सूं नाहिन कामा॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, डा० भगीरथ मिश्र, पृ० ७, ८, पद १७

२. चारु वेद पढ़ाइकर, हरि सूं न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पण्डित ढूंढ़े खेत॥
—कबीर ग्रंथावली, काशी संस्करण, चाणक कौ अंग, पृ० २८, साखी ६

३. पढ़ै गुनै कुछ समुझ न परई, जब लौ भाव न दरसै।
लोहा हिरन होइ धौं कैसे, जौ पारस नहिं परसै॥
—रैदास जी की बानी, बे० प्रे० प्रयाग, पृ० ७, पद १३

४. श्री गुरु ग्रंथ साहब, बिलावल महला ३, पृ० ८३२

कथनी बदनी करता फिरै, हुकुम न बूझै सचु।
नानक हरि का माणां मने सो भगति होइ, बिनु मनै कचुनि कचु॥
(गुरु ग्रंथ साहब मारु सोलहे महला १, पृ० १०३४)

ज्ञान का महत्व—ज्ञान की महत्ता का उल्लेख करते हुये सिक्ख गुरु 'नानकदेव' कहते है कि यद्यपि सभी पवित्र आचरण स्नान आदि अवश्य पवित्र है किन्तु 'ज्ञान' उनमें सबसे श्रेष्ठ है।[1] 'सन्त दादूदयाल' ने भी वेद और पुराणों को वाचक ज्ञान मानकर उसे व्यर्थ बताया है। पण्डित लोग शास्त्रों को पढ़ते-पढ़ते थक गये किन्तु किसी ने उस परम तत्व के रहस्य का पता नही लगाया। इसके लिये प्रभु का नाम ही एकमात्र आधार है।

दादू सबही वेद पुरान पढ़ि, नेटि नांइ निरधार।
सब कुछ इनही माहि है, क्या करिए विस्तार॥
पढ़ि पढि थाके पण्डिता, किनहु न पाया पार।
कथि कथि थाके मुनि जहां, दादू नांइ अधार॥[2]

सन्त रज्जब जी ने भी शास्त्रो के थोथे ज्ञान को व्यर्थ बताते हुये सारी सृष्टि और पृथ्वी के वास्तविक तत्व ज्ञान को प्राप्त करने पर जोर दिया है।

सिष्टि सास्तर है सही, वेत्वा करै बखान।
रज्जब कागद का पड़ै, पिरथी पुस्तक जान॥[3]

तात्विक ज्ञान के महत्व को 'रज्जब' जी भी कबीर की ही भांति महत्व देते है। इनके अभ्यन्तर प्रदेश मे भी ज्ञान की आँधी आती है जिससे जात-पाँत वर्ण भेद की मड़ैया उड जाती है। उसका लेशमात्र भी शेप नहीं रह जाता। बडप्पन का वृक्ष धराशायी हो जाता है। राज वैभव की धूल उड जाती है। परकीर्ति रूपी पक्षी मर जाती है—

आई आँधी अकल की, अभिअन्तर देस।
बरणि बाड़ि सब उड़ि गई, लहिये नही लेसा॥
वृच्छ बड़ाइ के पड़े, रज राजस उडी।
परकीरति पंखी मुये, वैमान सु खड़ी॥[4]

---

१. सगल धरम पवित्र इसनान। सम महिं ऊंच विसेस गिआन॥
—श्री गुरु ग्रंथ साहब थिती गउड़ी महला ५, पृ० २६८

२. दादूदयाल, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० २३, पद ७८, ७६

३. रज्जब बानी, सं० डॉ० ब्रजलाल वर्मा, पिरथी पुस्तक का अंग, साखी २, पृ० ८८

४. वही, पद ४२, पृ० ३८५

सच्चे ज्ञानी का निरूपण करते हुये सन्त कवि 'सुन्दरदास' जी कहते हैं कि जिसे तात्विक ज्ञान हो जाता है; वह 'ब्रह्म' ही देखता है, ब्रह्म ही सुनता है, ब्रह्म ही ब्रह्म की वाणी बोलता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु इन पंच भूतों में भी उसे सर्वत्र 'ब्रह्म' ही दिखाई पड़ता है। उसके विचार से आदि, अन्त और मध्य सर्वत्र 'ब्रह्म' ही दृष्टिगोचर होता है।

देषत ब्रह्म सुनै पुनि ब्रह्महि, बोलत है सोइ ब्रह्महि बानी।
भूमिहि, नीरहु, तेजहु, वायुहि, व्योमहु, ब्रह्म जहाँ लगि प्रानी॥
आदि हुँ अन्तहु मध्यहुँ ब्रह्महि, है सब ब्रह्म इहै मति ठानी।
सुन्दर ज्ञेय रु ज्ञानहु ब्रह्म सु, आपुहु ब्रह्महि जानत ज्ञानी॥[1]

सन्त कवि सिंगा जी भी वेद और शास्त्रों के ज्ञान को थोथा और निरर्थक मानते है। उससे किसी का उद्धार सम्भव नही मानते। वे कहते हैं :—

वेद पढ़ै कहो काहा ते होई। वेद पढ़े तरे न कोई।
तले कागज ऊपर स्याही। आँधा रे पण्डित देखे न माही॥[2]

साधना मे ज्ञान ही एक ऐसा तत्व है जो साधक को परम तत्व के प्रति जानकारी प्राप्त कराता है, और उसकी ओर आकर्षित करता है। 'ज्ञान' की गरिमा का उल्लेख करते हुये सन्त कवि मलूकदास भी यह स्वीकार करते है कि जब तक ज्ञान नहीं था मन रूपी मृग चारों तरफ विचरण किया करता था किन्तु 'ज्ञान' ने मन को एकाग्र किया और तांत से बाँध दिया।[3]

(२) **सन्त प्रेम-साधना और कर्म-तत्व**—सन्त काव्य में 'कर्म' का विरोध किया गया है। सन्तों ने 'कर्म' को जीव का बन्धन मानकर उसे त्याज्य कहा है। कबीर ने 'करम कोटि कौ ग्रेह रच्यो रे' कहकर उसे जीव का बन्धन कहा है। इसी कर्म के बन्धन में पड़कर जीव बार-बार जन्म लेता है। 'सन्त दादूदयाल' के शब्दो में 'कर्म' जीव के लिये जंजाल है।[4] सन्त सुन्दरदास ने भी 'अकरम गहै,

---

१. सुन्दर सार—सं० पुरोहित हरिनारायण—ज्ञान कौ अंग, छन्द ७, पृष्ठ २४१।

२. निमाड के सन्त कवि सिंगा जी—सं० रमेश चन्द गंगराडे, बचनावली पृ० १२, पद १२३, १२४।

३. मन मिरगा बिन मूड़ का, चहुँ दिसि चरने जाय।
हाँक ले आया ज्ञान तत्व, बाँधा तांत लगाय॥
—मलूकदास जी की बानी, बेलविडियर प्रेस प्रयाग, पृष्ठ ३५, साखी ३७।

४. मन अपना लै लीन करि, करणी सब जंजाल।
—दादूदयाल की बानी—प्रथम भाग, पृष्ठ ६२।

करम सब त्यागे' के द्वारा कर्म का निषेध किया है, क्योंकि कर्म त्याग से जीवात्मा बन्धन मुक्त होकर आत्म-लाभ करती है। सिक्ख गुरुओं ने भी कर्म को पूर्व जन्म के संस्कारों का परिणाम माना है। यथा :—

मनमुखि किछू न सूझै, अंधु लै पूरबि लिखिआ कमाइ।[1]

अथवा

पूरब लिखिआ सु करम कमाइआ, सति गुरु सेवि सदा सुख पाइआ।[2]

किन्तु ऐसी बात नहीं है कि सन्तो ने कर्म को बिलकुल ही त्याग दिया है, और अपनी साधना में उसे कोई स्थान नहीं दिया है। स्वरूप और गुण की दृष्टि से उन लोगों ने कर्म को दो कोटियों में विभक्त किया है—मन्द कर्म और शुभ कर्म। सन्त कवि 'नामदेव' का विश्वास है, कि जीव माया के वशीभूत होकर सभी मंद कर्म करता है।[3] शुभ कर्मों को आध्यात्मिक कर्म भी कहा गया है। यही शुभ कर्म सन्तों को बिलकुल मान्य है।

कर्म का महत्व—शुभ कर्मों के महत्व को स्वीकार करते हुये, सिक्ख गुरु नानक कहते हैं कि शुभ कर्मों के विस्तार से उसमें 'राम नाम' का फल लगा, जिसका न तो कोई रूप है और न रेखा। वह अनाहद रूप से बज रहा है। यह अनाहद शब्द प्रभु की देन है।[4] वास्तव में आध्यात्मिक कर्म ही सच्चे अर्थ में कर्म कहे जा सकते हैं। इन्हीं कर्मों के द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार सम्भव हो सकता है, आध्यात्मिक कर्मों के अन्तर्गत 'गुरु नानक' पंच कामादिकों को मारना, सच्चाई धारण करना, परमात्मा की अखंड ज्योति का सर्वत्र दर्शन करना, गुरु के शब्दो पर आचरण करना, परमात्मा का भय मानना, आत्म चिन्तन मे निमग्न रहना, गुरु कृपा पर आस्था रखना, गुरु सेवा सर्व भाव से करना, अहंकार को मारना, तथा एकमात्र परमात्मा को ही जप, तप और संयम समझना आदि साधन बताये हैं।[5] स्वामी रामानन्द ने श्री रामार्चन पद्धति एवं 'श्री वैष्णव मताब्ज भास्कर' मे कर्म-

---

१ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब, सिरी रागु की वार महला ३, पृष्ठ ८५

२. वही, माझ महला ३, पृष्ठ ११८।

३. माया काज बहुत कर्म करे, सो माया ले कुंडे धरै।
अति अयान जानै नहि मूढ, धन धरतो अचला भयो धूल।
काम क्रोध त्रिस्ना अति जरै, साध्र संगति कबहुँ नहि करै॥
—नामदेव की हिन्दी पदावली, डॉ० भगीरथ मिश्र, पद ६२ पृष्ठ २७।

४. नानक वाणी—डॉ० जयराम मिश्र, रागु गउडी पूरबी, महला १, पद ८ पृ० २५२।

५. नानक वाणी—डॉ० जयराम मिश्र, रागु गउडी असटपदी ६, पृष्ठ २२४।

काण्ड का जो उल्लेख किया है, प्राय: परवर्ती सन्तों ने उसका अनुसरण न कर कबीर के कर्म मार्ग को ही अपनाया है। इसका मुख्य कारण यह है कि स्वामी रामानन्द और परवर्ती सन्तों में 'परम तत्व' के स्वरूप को लेकर विचारों में भिन्नता है। स्वामी रामानन्द जहाँ प्रभु के निर्गुण के साथ-साथ सगुण रूप में भी आस्था रखते है, वहाँ परवर्ती सन्त प्राय: प्रभु के निराकार, अलख रूप को ही मान्यता देते हैं। शुभ कर्मों के द्वारा ही साधक अपने को साधना के लिये उपयुक्त बना पाता है।

सन्त साधना में कर्म का स्वरूप—सन्त साधना में प्रयुक्त शुभ कर्मों को दो श्रेणियों में बाँटा गया है :—

(१) बाह्याडंबर का त्याग और अन्त:करण की शुद्धि।

(२) सदाचरण तथा नैतिक संयम।

शुभ कर्मों के इन्हीं दो स्वरूपों के अन्तर्गत साधक अपने को संयमित रख कर साधना मार्ग पर अग्रसर होता है।

बाह्याडंबरों का त्याग और अन्त:करण की शुद्धि—प्राय: हिन्दी के सभी संत कवियों ने अपनी साधना मे मूर्ति पूजा, वेश भूषा, तीर्थ भ्रमण, आदि सभी बाह्याडंबरो को अनावश्यक बताया है। वे अन्त:करण की शुद्धि पर विशेष बल देते हैं। सन्त नामदेव का कहना है कि यदि अन्त:करण शुद्ध नहीं है तो भगवान का सभी ध्यान और जप व्यर्थ है। सर्प भले ही अपनी केंचुली छोड़कर बाहर से निर्मल दीख पड़ता हो, किन्तु भीतर से वह विष का परित्याग नहीं करता। बिना आत्म शुद्धि के यह मिथ्या देव पूजन, जल मे बक ध्यान, तथा छिपकर सिंह का शिकार करने के समान है।

(काहे कू कीजै ध्यान जपना। जो मन नाही सुध अपना।)
साँप काँचली छाडै विष नहि छाड़ै। उदिक में बक ध्यान माड़े॥
स्यंघ के भोजन कहा लुकाना। ये सब झूठे देव पुजाना।[1]

सन्त नामदेव के विचार से बिना विश्वास के पत्थर की शिला को पूजना व्यर्थ है। स्नान करना, सिर, हृदय, आँख, कान धोना, तुलसी की माला धारण करना, ये सभी पूजा के ढोंग है। इन ढोंगी साधुओ का हृदय कोयले की भाँति काला है। ये साधू नहीं पेटू है। वे ठीक वैसे ही छद्मवेशी है जैसे भीतर लाख और बाहर सोने का मुलम्मा चढ़ा आभूषण हो।[2] तीर्थों की निस्सारता का

१. नामदेव की हिन्दी पदावली—सं० डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ १०, पद २३।

२. भगत भला काउला, बिन परतीते पूजै सिला॥
न्हावै धोवे करै सनान। हिरदै आंषि न माथै कान।
गलि पहिरै तुलसी की माला। अन्तरगति कोइला सा काला॥
नामदेव कहै ये पेटा बलू। भीतर लाष उपरि हिंग लू॥
—वही, पृष्ठ ११, पद २४।

उल्लेख करते हुये नामदेव जी निरन्तर प्रभु के चरणों की सेवा करने का उपदेश देते हैं और अन्तर्साधना पर जोर देते है :—

जाकारन त्रिभुवन फिरि आये । सो निधान घट भीतर पाये ।
(नामदेव कहै कहूँ आइये न जाइये । अपने राम कहूँ बैठे गाइये ।)[1]

सन्त कबीर ने भी बाहरी स्नान-ध्यान को व्यर्थ बतलाया है । वे कहते हैं कि जब तक 'आत्मा' को पहचाना न जाय तब तक शरीर के ऊपरी स्नान करने से अन्तःकरण के विकार ज्यों के त्यों बने ही रह जाते हैं । ये वाह्याडंबर ठीक वैसे ही व्यर्थ है जिस तरह नट का वेश बनाना और भस्म रमाना । मेढक नित्य गंगा के जल में ही निवास करता है किन्तु उसकी मुक्ति नही हो सकती ।

का नट मेष भगवा वस्तर, भसम लगावै लोई ।
ज्यूं दादुर सुरसरि जल भीतर, हरि बिनु मुकुति न होई ॥

सिक्ख गुरु 'नानकदेव' ने भी काम, क्रोध दुविधा और वाह्याडंबर को ईश्वर-प्राप्ति में बाधक माना है । वे कहते है कि अधिक तृष्णा के वशीभूत होने से उसकी पूर्ति के लिये मनुष्य को नाना वेश धारण करना पड़ता है । विषयों का दुःख शरीर के सुख को नष्ट कर देता है । काम और कोध आन्तरिक धन को चुरा लेते हैं । अत हृदय से दुविधा को त्याग देने पर हो जीव मुक्ति पा सकता है ।

अधिक तिआस मेष बहु करै, दुःख बिखिआ सुख तन परि हरै ।
काम क्रोध अन्तर धनु हरै, दुविधा छोडि नामि निस्तरै ॥[2]

वाह्याडबर का विरोध करते हुये सन्त दादूदयाल जी माला और तिलक को व्यर्थ मानते है । वे कहते है कि भक्त लोग जो नाना वेश धारण करके दूसरों की निन्दा करते है, झूठ बोलते है इससे बहुत ही अपराध होते हैं । माया के वशीभूत होकर सिर का मुँडन करा लेना यह कोई साधना नही है । कपट से ब्रह्म को कौन कहै कोई भी प्रसन्न नही हो सकता ।[3] सन्त कवि 'रज्जब' जी भी भगवत्-प्राप्ति

---

१. वही, पृष्ठ १३, पद २६ ।

२. नानक वाणी—सं० डॉ० जयराम मिश्र, राग गउड़ी महला १, पद ११, पृ० २५४

३. दादू माला तिलक सौ कुछ नहीं, काहू सेती काम ।
अतरि मेरे येक है, अहनिसि का नाम ॥
दादू भगत भेष धरि मिथ्या बोलै निंद्या पर अपवाद ।
साचें कूं झूठा कहै, लागै बहुत अपराध ॥
दादू माया कारनि मूंड मुंडाया, यहु तौ जोग न होई ।
पारब्रह्म सौं परचा नाहीं, कपटि न सीझै कोई ॥
—दादूदयाल—सं० परशुराम चतुर्वेदी, भेष कौ अंग, साखी २२, २३, २६ पृष्ठ १७२, १७३ ।

के लिए तीर्थों मे जा जाकर स्नान करना व्यर्थ मानते है, तथा अन्तःकरण की शुद्धि पर जोर देते हैं।[1] सन्त कवि 'सुन्दरदास' जी भी वाह्याडंबरों के भ्रम में ही पड़कर अपने को पिछड़ा हुआ होने का अनुभव करते हैं :—

तो भक्तन भावै, दूरि बतावै, तीरथ जावै फिरि आवै।
श्री कृतम गावै पूजा लावै, रूठ दिढ़ावै बहिकावै॥
अरु माला नावै, तिलक बनावै, क्या पावै गुरु बिन गैला।
दादू का चेला मरम पछेला, सुन्दर न्यारा है वेला॥[2]

निरंजनी सन्त 'तुरसीदास' का कथन है कि जब तक विषयो से रहित होकर भगवान की भक्ति न की जाय। यह पाषाण पूजा तथा तुलसी को तोड़-तोड़ कर कष्ट देना भगवान को अच्छा नही लगता।

पाहन पूजि-पूजि जग षीना, तुलछी तोरि दुष दीया।
यहु पूजा हरि कूं नहि भावै, जौ लौ चित निर बिष न कीया॥[3]

सन्त सिंगा जी तो बड़ी ही निर्भीकता से मूर्ति-पूजा का विरोध करते हैं। वे संध्या तर्पण को भी व्यर्थ बतलाते है और अन्तःकरण की शुद्धि में उनका कोई उपभोग नही मानते।[4] 'सन्त मलूकदास' जी बुरी संगत वालो से दूर रहने का उपदेश देते है। लोक और वेद के आश्रय को व्यर्थ मानते है। उनका विश्वास है कि जिसके हृदय में दया नही जो आत्मा को मार कर पाषाण की पूजा करता है उसकी चर्चा ही व्यर्थ है उनकी साधना कभी सफल नहीं हो सकती।

---

१. तन धोया फिर तीर थौं, मैल रह्या मन माहिं।
रज्जब पातग प्रान मैं, क्यू उरके अध जाहिं॥
—रज्जब बानी–सं० डॉ० ब्रजलाल वर्मा, तीरथ तस्कार का अंग, पृ० २६८, साखी २।

२. सुन्दर सार—सं० श्याम सुन्दरदास—भ्रम विघरु अष्टक त्रिभंगी, छन्द १, पृ० ६१-६२।

३. निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसीदास—डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ १४७, बानी १७।

४. सालग राम पूजै मत कोई, आंत काल फतर ते होई।
संध्या तर्पण टीका लावै, भीतर का कपट कहो कौन छोड़ावे॥
—निमाड़ के संत सिंगा जी, डॉ० रमेश चन्द गंगराडे बचनावली, पृ० ८१, पद ८२, ८३।

लोक वेद का पैंडा औरहिं इनकी कौन चलावै ।
आतम मारि पषानैं पूजे हिरदै दया न आवै ।।
(मलूकदास जी की बानी–बे० प्रे० प्रयाग, शब्द १०, पृष्ठ २०)

वास्तव में उस अलख निरंजन के दर्शन तो तब हो सकते हैं जब काम, क्रोध सबका त्याग करके उसका गुण-गान किया जाय :--

काम क्रोध सब त्यागि के जो रामै गावै ।
दास मलूका या कहै, तेहि अलख लखावै ।।[1]

अत: संत मत से सभी बाह्याडम्बरों अर्थात् अशुभ कर्मों को त्याग कर अन्त:करण की शुद्धि के लिये शुभ कर्मों को मान्य बताया गया है ।

सदाचरण तथा नैतिक संयम—प्राचीन काल से ही मानव समाज के विकास के लिए नैतिकता तथा सदाचरण पर जोर दिया जाता रहा है : 'मागृधः कस्य स्विद्धनम्'[2] अर्थात् किसी दूसरे के धन का लालच न करो । 'एष: वै समूल: परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति'[3] अर्थात् जो असत्य भाषण करता है वह जड़ से सूख जाता है ये वैदिक ऋचायें और उपनिषद् वाक्य बराबर नैतिक संयम और सदाचरण पर जोर देते आये है । गीता में योगी के स्वरूप निर्धारण में नैतिक संयम पर ही जोर दिया गया है । जैन और बौद्ध दर्शन का आधार भी नैतिक संयम ही है प्राचीन मत-मतान्तरों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होकर हमारे हिन्दी के संत कवियों ने भी अपनी सम्पूर्ण साधना का मूल आधार नैतिक संयम को ही माना है । नैतिक संयम के अन्तर्गत उन्होंने सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, इन्द्रिय निग्रह, दया, क्षमा, कथनी करनी का एकत्व, विश्वास, श्रद्धा, विनय, मृदुबचन, धैर्य, स्वावलंबन, परिश्रम, सरल जीवन, परहित साधन, सेवा, भाव, साधु संगति आदि सभी सृजनात्मक कर्मो को लिया है । 'नामदेव' का कहना है कि गोविन्द कपट से नहीं प्राप्त किए जा सकते ।[4] बिना सत्य के प्रभु का साक्षात्कार नहीं हो सकता ।

तन तोल्या तो क्या भया, मन तोल्या नहिं जाय ।
साच बिना सीझसि नहीं, नाम कहै समझाय ।।[5]

---

१. मलूकदास जी की बानी—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, शब्द ६, पृष्ठ १८ ।

२. यजुर्वेद ४०/१, पृष्ठ ५४६

३. प्रश्नोपनिषद् ६/१

४. कपट मैं न मिलै गोविंद, गुन सागर गोराला ।।
—नामदेव की हिन्दी पदावली, सं० डा० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ६७, पद १४२

५. वही पृष्ठ ११५, साखी १२

स्वामी रामानन्द जी ने अपने भगति जोग ग्रन्थ मे साधना के प्रारम्भ में सदाचरण और नैतिकता पर बल देते हुये कहा है—

माया मोह करै नहिं काहूँ। रहै सबसूं वेपरवाहूँ।
कनक कामिणि का करै न संगा। आसा तिसना धरै न अंगा ॥
सील भाव छम्या उर धारै। धीरज सैहत दया व्रज पारै।
दीन गरीबी राषै पासा। देषै निरपष होइ तमासा ॥
मानि महातम कछू न चाहै। ऐक दसा सदा निरवाहै।
राव रंक की संक न श्राणै। कीड़ी कुंजर एक करि जाणै ॥[1]

संत कबीर ने तो नैतिक संयम और सदाचरण के प्राय सभी पक्षो पर अलग-अलग बड़े ही विस्तार से विचार किया है। वे सदाचरण के लिये कथनी और करनी मे ऐक्य देखना चाहते है। उनका कथन है—

जैसी मुख ते नीक्सै तैसो चालै चाल।
पार ब्रह्म नेड़ा रहे, पल मे करै निहाल ॥[2]
कथनी कथीं तो क्या भया, जो करनी न ठहराइ।
कालूबूत के कोट ज्यो, देखत ही ढहि जाइ ॥[3]

इसी तरह कबीर ने कुसंगति, सत्य, विश्वास, कपट आदि आचरण सम्बन्धी तत्वो पर अपनी साखियों और पदो में विचार व्यक्त किया है। कनक और कामिनी का बहिष्कार करने के लिए कहते हुये कबीरदास जी कहते है कि ये दोनों ही विष के फल हैं जिनके दर्शन मात्र से ही विष व्याप्त हो जाता है खाने पर तो प्राणी मर ही जायेगा।[4] सिक्ख गुरू 'नानकदेव' लालच को कुत्ता और झूठ को भंगी मानते है। किसी को ठग कर खाने को मृत पशु भक्षण तुल्य समझते है। उनके लिये पर-निंदा पराई मैल तथा क्रोधाग्नि चाण्डाल है। वे कहते है—

---

१. रामानंद की हिन्दी रचनाएँ—सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ५३, परिशिष्ट ४
२. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण, करणी बिना कथणी कौ अग, पृष्ठ ३०, साखी २
३. कबीर ग्रन्थावली प्रयाग संस्करण, करनी कथनी कौ अंग. पृष्ठ २४१, साखी ५
४. एक कनक अरु कामिनी, विष फल की एउ पाइ।
देखै ही ते विष चढ़ै, खाये मूं मरि जाइ ॥
—कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण, कामी नर कौ अंग, साखी ११

लबु कुता कूड़ चूहड़ा, ठगि खाधा मुरदारु।
पर निंदा पर मलु मुख सुधी, अगनि क्रोध चंडाल ॥[1]

अनैतिक कर्मों की निंदा करते हुये वे कहते हैं कि विषयासक्त मनुष्य का चित्त बराबर काम, क्रोध और माया मे लगा रहता है। झूठ और विकार मे ही उसका चित्त जागता रहता है। उसने पाप और लोभ की ही पूंजी एकत्र की है। साधक मन मे प्रभु के पवित्र नाम का स्मरण करके स्वयं भी तरता है और दूसरों को भी तारता है।[2] संत दादूदयाल, रज्जब जी, तुलसीदास, संत सिंगा जी, मलूकदास आदि प्राय. सभी सन्तो ने सदाचरण तथा नैतिक संयम पर जोर दिया है।

(३) **संत प्रेम साधना में योग तत्व**—निर्गुन संत साधना सम्बन्धी काव्यो में योग के तत्व यथेष्ट मात्रा मे उपलब्ध है। किन्तु यहाँ योग का स्वरूप शास्त्रीय एवं विश्लेषणात्मक न होकर प्राय: अनुभूतिमय शब्दों मे रहस्यात्मक रूप धारण करके प्रकट होता है जिसका रहस्य भेदन कठिन है। 'शून्य' आदि योगपरक पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग, मंदला बजने, एव मन के नृत्य करने के उल्लेख का रहस्यात्मक वर्णन कबीर के शब्दो मे सुनिये—

मुनि मंडल मे मंदला बाजै, तहाँ मेरा मन नाचै।
गुरु प्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषुमना काछै ॥[3]

कबीर ने योग की जिन मुद्राओं का प्रभाव ग्रहण किया है उनमें खेचरी प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओं मे हठयोग में वर्णित नाडी, चक्र, कुण्डलिनी, आदि तत्वों का यथा-स्थान वर्णन हुआ। वे कहते हैं—

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरै सदा सुख उपजै, बंक नालि रस पीजै ॥
मूल बांधि सर गगन समाना, सुखमन यो तन लागी।
काम क्रोध दोऊ भया पलीता, तहां जोगणी जागी ॥
मनवा जाइ दरीबै बैठा, मगन भया रसि लागा।
कहै कबीर जिय संसा नाही, सबद अनाहद बागा ॥[4]

---

१. नानक वाणी—स० डा० जयराम मिश्र, रागु सिरी महला १, घरु १, पृष्ठ १०२, पद ४

२. काम क्रोध माइआ महि चीतु। झूठ विकारि जागै हित चीतु ॥
पूंजी पाप लोभ की कीतु। तरु तारी मनि नामु सुचीतु ॥
—नानकवाणी—सं० डा० जयराम मिश्र, रागु गउडी गुआरेरी महला १, चउपदे दुपदे गउड़ी ७, पृष्ठ २०५

३. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण, पृष्ठ ८६, पद ७२

४. कबीर ग्रन्थावली काशी सस्करण, पृष्ठ ८५ पद ७०

संत कबीर ने अपनी रचनाओं में नादानुसंधान, अजपा या हंस मंत्र, पंच प्राण, पचीस प्रकृति, त्रिकुटी संयम आदि विषयों की संक्षिप्त एवं सांकेतिक चर्चा की है। इनका योग वर्णन सांकेतिक प्रणाली पर ही चलता है उसमें योग की व्याख्या अथवा विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं किया गया है। कबीर के परवर्ती अन्य संतों ने भी कबीर का ही अनुसरण किया है। संत कवियों में 'सुन्दरदास' ही एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने योग वर्णन बहुत कुछ शास्त्रीय पद्धति पर किया है।[1] कबीर के पूर्ववर्ती संत 'कवि नामदेव' ने भी अपने पद में वेद, पुराण और शास्त्रों के प्रति नाथ पंथियों की भाँति उपेक्षा भावना दिखाकर अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त अनहद नाद का व्यष्टि रूप मे नाद श्रवण, इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीनों नाड़ियों का प्राणायाम द्वारा नियंत्रित करना, चन्द्र-सूर्य को सम करना, ब्रह्म ज्योति में मिलना, शून्य में विलीन होना आदि का उल्लेख किया है।[2] वे मन को अन्तर्मुखी करके सहज समाधि द्वारा परम तत्व का साक्षात्कार करते है। उनके ब्रह्म शून्य में निवास करते हैं। सहज समाधि द्वारा ही उनसे मिलन हो सकना है जो योग से ही संभव है—

गगन मंडल में रहनि हमारी। सहज सुन्नि गृह मेला।
अन्तर धुनि मे मन बिलमाऊँ। कोई जोगी या गम लहेला ॥[3]

यद्यपि 'नामदेव' ने अन्तर्दर्शन के लिए योग मार्ग का उल्लेख किया है किन्तु वे योग को ईश्वर-प्राप्ति का एकमात्र साधन नहीं मानते। वे कहते है—

जोग जगि तप नेम धरम व्रत, जब लगि इनकी आसा।
बसुधा आदि देहि दहिणादिक, नहिं मम चरन निवासा ॥[4]

---

१. देखिये सुन्दरदास कृत 'ज्ञान समुद्र' एवं सर्वाङ्ग योग प्रदीपिका।

२ वेद पुरान सास्त्र अनता गीत कवित्त न गांवउंगौ।
अखंड मंडल निरंकार महिं, अनहद नाद बजाऊंगौ।
बैरागी रामहि गावऊंगौ।
सबदि अतीत अनाहद राता, आकुल कै घपरजाऊंगौ।
इड़ा पिंगला अउरु सुषमनां, पऊनै बांधि रहाऊंगौ ॥
चंद सूरज दुइ सम करि राखऊ ब्रह्म जोति मिलि जाऊंगौ।
नामा कहै चित हरिसिऊर, राता सुन्नहिं सुन्नू समाऊंगौ ॥
—हिन्दी को मराठी संतों की देन—आचार्य विनय मोहन शर्मा, पृ० २५२

३. नामदेव की हिन्दी पदावली—सं० डा० भगीरथ मिश्र, पद ६५, पृ० २६

४. नामदेव की हिन्दी पदावली—सं० डा० भगीरथ मिश्र, पद ६५, पृष्ठ ४३

प्रायः सभी संत कवि साधना में योग की पृथक् स्वतन्त्र महत्ता को स्वीकार नहीं करते। वे उसे भक्ति साधना का एक सहायक अंग मात्र मानते हैं जिससे चित्त-वृत्तियों का परिमार्जन कर प्रभु के प्रति अनुराग पैदा किया जा सकता है। कबीर ने हठ योग, मंत्र योग, लय योग, सहज योग और राज योग आदि सभी योग पद्धतियों में समन्वय स्थापित कर 'मन साधना' पर विशेष जोर दिया गया है जिसके लिए किसी क्लिष्ट साधना की आवश्यकता नहीं है। 'मन योग' युक्ति द्वारा सरलता से केन्द्रीभूत किया जा सकता है। योग युक्ति साधना मन पर अवलंबित रहती है। इसीलिए प्रायः सभी संतों ने 'मन' तत्व पर अलग से बड़ी गम्भीरता-पूर्वक विचार किया है। कबीर की भाँति सिक्ख गुरुओं ने भी यौगिक क्रियाओं की सार्थकता केवल भक्ति-साधना के लिए ही मानी है। इनमें शब्दो में भक्ति से शून्य योग निष्प्राण शरीर की भांति हेय एवं त्याज्य है। वे कहते है—

चाड़सि पवन सिंघासन भीजै। निउली करम खटु करम करीजै।
राम नामु बिनु विरथा सासु लीजै। अतरि पंच अगनि किउ धीरज धीजै॥
अन्तरि चोरु किउ साहु लहीजै। गुरमुखि होइ काइआ गढ़ लीजै।[1]

ज्ञान और भक्ति का समन्वय करते हुये सत दादूदयाल ने भी अपने 'लै कौ अंग' में इसी सहज योग में अमृत रस पान का उपदेश दिया है—

दादू सहज सुनि मन राषिये, इन दून्यू के माहि।
लै समाधि रज पीजिये, तहां काल भय नाहिं॥[2]

हठ-योग की क्रिया बहिरंग होने के कारण रज्जब जी को भी पूर्णतया मान्य नहीं है। वे अधिक से अधिक इडा, पिंगला और सुषुम्ना अथवा चन्द्र, सूर्य मिलाप तक, चक्रों मे केवल षट् चक्रों के नाम-स्मरण तक ही सीमित रहते है। वे हठयोग की अपेक्षा राजयोग को विशेष महत्व देते है। लय, ध्यान और समाधि उनकी परमात्म साधना से विशेष अंग हैं। उनके अनुसार सारे लोक, दीप, खंड मनुष्य के पिंड के भीतर ही स्थित है अतः बाहर भ्रमण करने की अपेक्षा यदि अन्तर्गमन किया जाय, तो अन्तर्यामी की प्राप्ति हो सकती है। यथा—

सप्त दीप नौ खंड फिरि, हाथ चढ़ै कछु नाहिं।
रज्जब रजमा पाइये, आये उर घर माहि॥[3]

---

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब रामकली महला १, पृ० ६०५
२. दादूदयाल—सं० परशुराम चतुर्वेदी, लै को अंग, पृ० ६१, साखी ८
३. रज्जब वाणी—सं० डा० ब्रजलाल वर्मा, ध्यान का अंग, साखी ५, पृ० ५४

रज्जब जी इंद्रियों पर विजय-प्राप्ति के लिए हठ-योग द्वारा लय योग और ध्यान योग का आश्रय ग्रहण करने का उपदेश देते हैं। जिस प्रकार कच्छप जल के भीतर रहकर तट पर रखे अंडे का ध्यान से पालन करता है ठीक उसी तरह जीव को संसार की माया मे रहकर उस ब्रह्म की ओर ध्यान लगाना चाहिये।[1]

इस प्रकार संत कवियों ने नाथ पंथियो से प्रभावित होकर भी यौगिक क्रियाओं की नीरस अवतारणा नहीं की। उसके स्थान पर प्रेम भक्ति का सरस सामंजस्य स्थापित किया।

(ग) हिन्दी संत प्रेम साधना पर सूफी प्रेम-साधना का प्रभाव

मध्यकालीन हिन्दी संत कवियों ने अपनी साधना में भक्ति और प्रेम को जो प्रश्रय दिया उससे स्पष्ट है कि संतों पर वैष्णव भक्ति का प्रभाव तो पड़ा ही था साथ ही साथ वे सूफी प्रेम साधना से भी प्रभावित रहे। भागवत मे भक्ति को प्रेम रूपिणी कहा गया है।[2] संत कबीर जब यह कहते है कि 'कहै कबीर जन भये खालासे प्रेम भगति जिन जानी' या 'भगति नारदी मगन कबीरा' तो इससे उनकी प्रेम स्वरूपा भक्ति पर प्रकाश पड़ता है। भक्ति भाव का लक्षण शरणागति या प्रपत्ति का रूप भी कबीर की उपासना मे पूर्ण से मिलता है जब वे कहने लगते है--

> गोव्यंदे तुम्ह थैं डरपों भारी।
> सरणाई आयौ क्यूँ गहिये, यह कौन बात तुम्हारी ॥[3]

दादूदयाल ने भी प्रेम भक्ति की ही याचना की है। अन्यत्र जब भक्ति के सम्बन्ध में यह कहते है कि "हरि सुमिरण से हेत लगाइ। भगत प्रेम जस गोविन्द गाइ" तो उसमे भी प्रेमा-भक्ति की ही झलक मिलती है। इसी तरह अन्य संतो की रचनाओ पर भी यदि विचार किया जाय तो उसमे प्रेम भक्ति और दास्य भक्ति का विशेष चित्रण मिलता है। सूफी प्रेम साधना का प्रभाव देखने के लिये हमें यहाँ संतो की प्रेमा-भक्ति का ही अध्ययन आवश्यक है।

---

१. काछिप दृष्टि ध्यान धरि, अकल पुरुषि की सौर।
तौ रज्जब सहजै मिलै, परम पुरुष सिर मौर ॥
वही ध्यान का अंग, साखी ५, पृ० ५४

२. येषां चित्ते वसेद् भक्तिः सर्वदा प्रेम रूपिणी।
न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्य मल मूर्तय ॥
—श्रीमद्भागवत पुराण २/१६

३. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण पद ११२, पृष्ठ ६५

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद को साधनात्मक और भावनात्मक जिन दो कोटियों मे विभक्त किया था उनके इस भेदीकरण को अधिक तर्क-संगत न मानते हुये डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने रहस्यानुभूति की दो प्रक्रियायें मानी है एक के सहारे साधक समस्त विश्व के प्रति एकात्मकता का अनुभव करता है और दूसरी से उसे आत्मानुभूति होती है। इन्ही प्रक्रियाओ के आधार पर डॉ० त्रिगुणायत ने रहस्यवादियो को समष्टि मूलक अनुभूति प्रधान और व्यष्टि मूलक अनुभूति प्रधान इन दो कोटियों मे बाँटा है।[1] समष्टि मूलक अनुभूतियों मे प्रायः व्यष्टि मे समष्टि का आरोप होता है जो भावना प्रधान, साधना प्रधान और बुद्धि प्रधान तीन प्रकार का हो सकता है। सूफी कवियो का रहस्यवाद भावना प्रधान है जबकि उपनिषदो का रहस्यवाद बुद्धि प्रधान और योगियो का साधना प्रधान। व्यष्टि-मूलक अनुभूतियाँ भक्ति और योग के क्षेत्र में उपलब्ध होती है। अतः सूफी रहस्यवादी समष्टि मूलक और हिन्दी संत कवि व्यष्टि मूलक अनुभूति प्रधान रहस्यवादियो की श्रेणी मे आते है। फिर भी दोनो के रहस्यवाद का प्रधान तत्व भावात्मकता ही है। संस्कृत मे भाव का अर्थ प्रेम ही होता है। सूफियो का प्रेम तत्व हिन्दी सत कवियो को किस अंश तक प्रभावित किये हुये है यहां यही तथ्य विशेष विचारणीय है।

प्रेम-तत्व और विरहानुभूति—हम पहले ही लिख चुके है कि सूफियों का प्रेम आध्यात्मिक प्रेम है जो ईश्वर के प्रति पति-पत्नी के प्रेम के रूप मे चित्रित किया गया है। संतो के यहाँ जो प्रेम चार प्रकार की प्रेम साधनायें हैं उनमें से प्रथम तीन दास्य सख्य, और वात्सल्य भावनाओ को भले ही संतो ने वैष्णव मत, भागवत अथवा नारद भक्ति सूत्र से ग्रहण किया हो किन्तु अंतिम दाम्पत्ति भावना तो निरसंदेह सूफी प्रेम साधना से ही प्रभावित जान पड़ती है। ज्ञानमार्गी निर्गुणोपासक संतो में अशरीरी भगवान के प्रेम की जो भावना है वह एकमात्र सूफी प्रेम साधना की ही देन है। कबीर के प्रेम तत्व का निरूपण करते हुये बाबू श्यामसुन्दर दास ने लिखा है कि 'कबीर का यह प्रेम तत्व सूफियो के संसर्ग का फल है परन्तु उसमे भी उन्होने भारतीयता का पुट दे दिया है।'[2] श्री चन्द्रबली पाण्डेय तो बिना किसी हिचक के 'कबीर' को 'जिन्द' ही मानने को तैयार है।[3] जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है। वे सूफी शब्द के भीतर उन सभी हिन्दी

१. कबीर और जायसी का रहस्यवाद और तुलनात्मक विवेचन, डा० गोविन्द त्रिगुणायत, पृ० २२६

२. कबीर ग्रंथावली—काशी संस्करण, भूमिका, पृष्ठ ३१।

३. विचार-विमर्श-श्री चन्दबली पाण्डेय, जिन्द कबीर की संक्षिप्त चर्चा, पृ० १-४४।

कवियों को समेट लेना चाहते है जो वस्तुतः जन्म से मुसलमान है और कर्म से सूफी हैं।[१] हम इस मत को एकांगी मानते हुये इससे सहमत नहीं है। हिन्दी के मुसलमान कवियों मे अधिकांश ऐसे भी है जिन पर सूफियाना प्रभाव नहीं पड़ सका है। वे शुद्ध रूप से भारतीय दर्शन से प्रभावित है। अत. आंख मूंद कर उन्हें भी सूफी कवियों की श्रेणी मे बैठा देना न्याय-संगत नहीं होगा। फिर भी हमारे कथन का यह तात्पर्य कदापि नही है कि वे सूफी प्रभाव से सर्वथा वंचित हैं। हम तो यह दावा करते है कि हिन्दी के केवल मुसलमान कवि ही क्यों, समस्त संत कवि जो जाति-पाति की परिधि से सर्वथा उन्मुक्त थे सूफियो से प्रभावित है। उनकी प्रेम-साधना में दाम्पत्य प्रेम की वही मधुरता है, विरह की वही कसक है, प्रेम मार्ग की वही कठोरता है जो हमें सूफी प्रेम साधना मे मिलती है। प्रभु मिलन के अवसर पर जब कबीर कामना करते है :—

दुलहिन गावहु मंगल चार। हम घरि आये राजा राम भरतार।
तन रत करि मै मन रति करिहौं, पांचउ तत्त बराती।।
रामदेव मोरे पाहुने आये, मैं जोबन मैमाती।
सरीर सरोवर वेदी करिहौं, ब्रह्मा वेद उचारी।।
रामदेव सति भावरि ले हहौं, धनि-धनि भाग हमारी।।[२]

तो हमें सूफियों का वह प्रेम निश्चय याद आ जाता है जहां वे अपने मित्र, सहेली अथवा धाय से अपने प्रणय निश्चय को उद्घाटित करते हैं और प्रिय के लिये अपना सर्वस्व त्याग कर अपने को न्योछावर करने का संकल्प ले लेते है। हाँ, इतना अवश्य है कि सूफियों ने जहां संयोग की अपेक्षा विरह की तड़पन मे आनन्द का अनुभव किया है वहां संतों ने संयोग सुख की कल्पना भी कर डाली है। फिर भी सूफियों की विरहानुभूति का प्रभाव संतो पर भली-भांति पड़ा है। प्रायः सभी सूफी कवि विरह के महत्व को एक स्वर से दुहराते है। 'मधुमालती' मे सूफी कवि मंझन कहता है :—

विरह अगिनि जिय लागि न जाही। एहि जग जनम अविरथा ताही।
जैइं जिय पेम तंत नहिं लखा। जीवन फर तेइं जनमिन पावा।।[३]

अर्थात् जिसके हृदय में विरह की अग्नि नहीं लगी इस ससार में उसका जीवन व्यर्थ है जिसने अपने जी को प्रेम तंत्र में नहीं लगाया उसने जन्म लेकर भी जीवन का फल नहीं पाया।

---

१. वही, पृष्ठ १।

२. कबीर ग्रंथावली प्रयाग संस्करण, पृष्ठ ५, प्रेम पद ५।

३. मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, पृष्ठ १६६, छंद २३५।

सूफी कवि जायसी ने धरती और आकाश को कंपा देने वाली प्रेम की चिनगारी (विरह) रखने वाले हृदय को धन्य माना है।

विरह की इसी चिनगारी की भयंकरता का चित्रण करते हुये दाऊद ने भी लिखा है कि प्रेम की इस ज्वाला की एक चिनगारी मात्र यदि बाहर निकाल दी जाय तो उसके एक तिल मात्र से धरती आकाश तथा पाताल जल कर भस्म हो जाएं।

चिनगि एक जउ बाहेरि मारहु एहि पिरम कइ भार।
भसम होइ धरती तिल इक सरग पतार॥[1]

संत कबीर दास जी प्रेम की पीड़ा को असह्य बतलाते हुये कहते है कि पीडा तो यो ही इतनी वेदनापूर्ण होती है कि उपचार करने पर भी नही जाती फिर प्रेम की जो पीडा है वह तो सर्वथा ही उपचार से बाहर है। विरह की चोट बडी ही पीडा देती है इसकी वेदना से शरीर कृशकाय हो जाता है। इस पीडा का अनुभव केवल दो को ही होता है—एक तो उसको जो रोग भोग रहा है तथा दूसरे उसको जो इस पीडा को प्रदान करता है।[2] ठीक यही भाव सूफी कवि दाऊद के प्रेम निरूपण में देखिये :—

जेहि रे पिरम तेहि विरह सतावा। विरह जेंहि तेहि नींद न आवा।
पिरम सेलु आइए अनियारा। पैग न जोर पिरम कर मारा।
पिरम घाउ तेहु पूछहु जाई। जेहि यह भाल करे जइ खाई॥
पिरम घाउ ओखदि नहि मानइ। पिरम बान जेहि लाग सो जानइ।
मल फुनि होइ खांड कर मारा। जरम न पलुह पिरम कर जारा॥[3]

अर्थात् जिसे प्रेम होता है उसे विरह सताता है और जिसे विरह होता है उसे नींद नही आती। प्रेम एक खरी नुकीली बर्छी है। प्रेम का मारा इसीलिए एक पग भी आगे नही बढ सकता। प्रेम के घाव के सम्बन्ध में उससे पूछो

---

१. दाऊद कृत चादायन—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त–द्वितीय सर्प दंश, खंड छंद ३२३, पृष्ठ ३२१।

२. कबीर पीर पिरावनी, पंजर पीर न जाइ।
एक ज पीड़ परीत की, रही कलेजा छाइ॥
चोट सताणी विरह की, सब तन जर-जर होइ॥
मारणहारा जाणिहै, कै जिहि लागी होइ॥
—कबीर ग्रंथावली काशी संस्करण, विरह को अंग, साखी १३, १४, पृ० ७।

३. दाऊद कृत चादायन—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छंद ३२४, पृष्ठ ३२२।

जिसने इस बर्छी को खाया है। प्रेम विरह का घाव कोई औषधि नहीं मानता। इसका वाण जिसे लगता है वही जानता है। खडग का मारा तो पुनः अच्छा हो जाता है किन्तु प्रेम का जलाया हुआ जीवन भर पल्लवित नहीं होता।

इस तरह जैसा कि हम पहले ही लिख चुके है विरहानुभूति की आठो अवस्थायें-चिंता, व्यग्रता, आँसू, उद्वेग, विस्मृति, जागरण, आशक्ति और मृत्यु जो संत काव्य में देखने को मिलती हैं सूफी काव्य की ही देन है। संत कवि रज्जब के शब्दो में विरहानुभूति की जागरण अवस्था का एक चित्र देखिये :—

म्हारो मंदिर सुनो राम बिन, विरहिन नींद न आवै रे।
पर उपगारी ना मिलै कोई, गोबिंद आनि मिलावै रे॥
चेती विर निच्यंतन भागे, अनिवासी नहि आवै रे।
इहि वियोग जागे निसि वासर, विरहा बहुत सतावै रे॥
विरह विजोग विरहिनी बैंधी, घर वन कछु न सुहावै रे।[१]

प्रियतम के विरह में विरही बावला हो जाता है उसे अपनी सुध नही रह जाती। संत दादूदयाल के शब्दों में सूफियों की यह 'हाल' की अवस्था देखिये :—

काया माहें क्यू रह्या, विण देखे दीदार।
दादू विरही बावरा, मरै नही तिहि बार॥[२]

विरह की अवस्था मे साधक को सांसारिक भोग-विलासो के प्रति विरक्ति तो हो ही जाती है उसे स्वर्ग के सुखों की भी लालसा नही रह जाती। उसे राम के दर्शन के अतिरिक्त किसी वस्तु की इच्छा नही रहती।[३] सूफियों के हाल से ही कुछ मिलती-जुलती अवस्था संत तुरसी के शब्दों में देखिये :—

तुरसी विरहिन बौरी हुए रही, तन की सुधि विसराय।
का जानू कम मिलहिगै, परम सनेही आय॥[४]

तुलसी के भाव मे मिलन की आभा नहीं उत्सुकता है। उन्हें सन्देह है कि

---

१. रज्जब वाणी—सं० ब्रजलाल वर्मा, पृष्ठ ३८४, पद ३६।

२. दादू दयाल—आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, विरह कौ अंग, साखी १२१, पृष्ठ ३६।

३. ना चाहू सुष सरग कौ, ना घर के धन धाम।
मैं प्यासी तब दरस की, दरसन दै हो राम॥
—निरंजनी सम्प्रदाय और संत तुरसीदास निरंजनी, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ७१।

४. वही, पृष्ठ ७२।

पता नहीं अभी कितनी यातना और भुगतनी पडेगी और कब प्रियतम आकर मिलेंगे। प्रेम के विरह की यह तडपन सूफियों से ही प्रभावित है।

प्रेम की कठोरता—सूफियों ने प्रेम मार्ग को अत्यन्त ही कठोर बतलाया है। प्रेम का खेल समाप्त खेलों मे कठिन खेल है यदि वह सभल कर न खेला जाय।[1] कबीर के प्रियतम भी हँसी-हँसी मे नहीं मिलते जिस किसी को प्रियतम मिले हैं उसे रो-रोकर ही मिले हैं।

हँसि-हँसि कंत न पाइये, जिन पाला तिन रोइ।
हांसी खेला पिउ मिलै, तौ नही दुहागिन कोइ॥[2]

प्रेम का विरह जब शरीर मे उदय हो जाता है तो शरीर और मांस सभी समाप्त हो जाते है। केवल साधक का अस्थिपंजर शेष रह जाता है जिसमें प्रिय का स्वरूप निवास करता है। रतनसेन का कथन पद्मावत में देखिये :—

जागा विरह जहाँ का, गूद मांस कै हान।
हौ पुनि साचा होइ रहा, ओहि के रूप समान॥[3]

प्रेम और विरह का अत्यन्त ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहाँ प्रेम होता है वहाँ विरह अपने आप पैदा हो जाता है। इस विरह तत्व को साधारण नहीं मानना चाहिये। जिस शरीर में प्रेम की आग उठती है वहाँ विरह का पवन उसे प्रज्ज्वलित करता है जहाँ प्रेम का अकुर सिर उठाता है वहाँ विरह का जल उसके विकास मे सहायक होता है। जहाँ प्रेम के दीपक का प्रकाश होता है वहाँ विरह उसे पल-पल म उकसाकर जलाया करता है :—

जहाँ प्रेम तहा विरहा जानहु। विरह बात जनि लघु करि मानहु।
जेहि तन प्रेम आगि सुलगाई। विरह पौन होइ दे सुलगाई॥
प्रेम अंकुर जहँ सिर काढ़ा। विरह नीर सो दिन-दिन बाढ़ा।
प्रेम दीप जहँ जोति देखाई। विरह देइ छिन-छिन उसकाई॥[4]

प्रेम की भयकरता का वर्णन करते हुये कुतबन का कहना है कि यदि तुम्हे प्रेम की साध है तो अपने को नष्ट कर दो टुकड़ो मे कर डालो। प्रेम का स्वाद वही पा सकता है जिसने अपने को उसके लिये न्यौछावर कर दिया है। कहने से प्रेम का रस और हर्ष नहीं होता जो जीव देता है वही उसे प्राप्त करता है।

---

१. कुतुबन कृत मृगावती, स० माता प्रसाद गुप्त, पृ० १६२, छन्द १६५
२. कबीर ग्रन्थावली प्रथम संस्करण प्रेम विरह, साखी ३८, पृ० १४६
३. जायसी ग्रन्थावली पद्मावत, छन्द २६७
४. चित्रावली उसमान, पृ० १३, छन्द ३१

प्रेम का गढ़ उत्तुंग और ऊँचा है वह पागल है जो बिना कष्ट सहे उसे प्राप्त करना चाहता है प्रम का खेल जो खेलना चाहता है उसे अपने सिर से खेल कर जीवन की आशा त्याग देनी चाहिये। प्रेम का कंगूरा अत्यन्त ही ऊँचा और उत्तुंग है जब तक अपने सिर को पैरों के नीचे रखकर नही बढ़ोगे वहाँ हाथ नहीं पहुँच सकेगा :—

कुतुबन कंगुरा पेम का, ऊँचा अति रे उतंग।
सीस न दीजइ पावतर, कर न पहूँचइ खंग ॥[1]

मंझन ने भी प्रेम की इसी कठोरता को व्यक्त करते हुए कहा है कि प्रेम के अमृत फल की जो आकाक्षा करता है वह आत्म-चेतना का त्याग कर देता है जो जी में मृत्यु का वरण करके पैर नहीं रखता वह प्रेम का अमृत फल कभी नही चखता। प्रेम पथिक अपना सिर पहले ही काट कर हाथ में ले लेता है तब प्रेम मार्ग पर कदम रखता है। यथा :—

पेम अमिअ फर साध जो करई। सहज अपान आपु परि हरई।
जिउ बरि मीचु करै नहिं पाऊ। पेम अमिअ फर चाखन काऊ॥
प्रथमहिं सीस हाथ कै लेई। पाछे ओहिं मारग पगु देई।[2]

सूफियों की यह प्रेम कठोरता संत कबीर मे इस प्रकार उद्‌भासित हुई है :—

कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस उतारि पग तलि धरै, तब निकटि प्रेम का स्वाद॥
सीस काटि पासंग दिया, जीव सरभरि लीन्ह।
जाहि भावे सो आइ ल्यौ, प्रेम आट हम कीन्ह॥[3]

संत कबीर का ही आदर्श ग्रहण करके दादूदयाल जी कहते हैं कि अपने स्वामी के लिये क्या-क्या नही करना चाहिये ? प्रियतम के लिये सारे संसार के सुखों का त्याग तो करना ही चाहिये, साथ ही साथ अपना शीश भी दे देना चाहिये।

अपने साई कारणै, क्या क्या नहीं कीजै।
दादू सब संसार तजि, अपणा सिर दीजै॥

---

१. कुतुबन कृत मृगावती, सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द १६४
२. मंझन कृत मधुमालती, सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द २३४
३. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण सूरातन कौ अंग, साखी २०, २२, पृ० ५४, ५५

पैले सीस उतारि कर, अधर एक सौं जाइ।
दादू पावै प्रेम रस, सुष मै रहै समाइ ॥[1]

संत कवि रज्जब के शब्दों में यदि प्रभु के प्रेम मार्ग पर चलने की चाव कुछ मन में है तो इस संसार को त्याग दो और तन-मन-शीश सब भगवान के चरणो में न्यौछावर कर दो।[2] प्रेम की इस कठोरता को सन्तो ने निस्सन्देह सूफियों से ही लिया है। वैष्णव भक्ति तथा भागवत् में जो प्रेम का चित्रण हुआ है उसमे आत्म-त्याग की भावना भले ही विद्यमान हो किन्तु वह भक्ति माधुर्य की सरसता से ही सराबोर है। विरह की दग्धता की अपेक्षा साधक उसमें प्रिय के संयोग सुख का ही आनन्द अधिक लेता है। इसके विरुद्ध सन्तों में विरहमयी प्रेम भावना जिसमें साधक धुल-घुल कर प्रिय के लिये आत्मोत्सर्ग करने के लिये तैयार है सूफी प्रेम साधना की ही देन है।

सन्त काव्य में प्रेम की विरहावस्था वस्तुत द्वैतावस्था है जिसमें प्रिय और प्रेमी के बीच विशेष दूरी तो नही है किन्तु इतना सामीप्य भी नही है कि प्रिय और प्रेमी का अन्तर नष्ट हो गया हो। इस विरहानुभूति में प्रिय की निष्ठुरता के साथ ही अपनी क्षमता की सीमा का ज्ञान और भावना की तीव्रता के प्रति आशंका सजग रहती है :—

तलफि-तलफि विरहिन मरै, करि-करि बहुत विलाप।
विरह अगिन मे जल गई, पीव न पूछै बात ॥[3]

विरहोन्माद की यह दशा सूफी काव्यो मे चित्रित विरह वेदना से विशेष प्रभावित है। पद्मावत में नागमती वियोग खण्ड में विरह का यही चित्रण देखिये :—

बज्र अगिनि विरहिन हिय जारा। सुलगि-सुलगि दगधे होइ हारा।
यह दुख दगध न जाने कतू। जोबन जनम करै ससमतू ॥
पिउ सों कहेहु संदेसड़ा, हे भौंरा ह काग।
सा धनि विरहे जरि मुई, तेहि के धुआ हम लाग ॥[4]

---

१. दादू दयाल परशुराम चतुर्वेदी, सूरातन को अंग—पृष्ठ २२१, साखी ४१,४३
२. हरि के मारग चलन का जै कछु है चित चाव।
तौ रज्जब त्यागो जगत, दै तन मन सिरि पाव ॥
—रज्जब वाणी—सं० डॉ० ब्रजलाल वर्मा, सूरातन का अंग, साखी १३, पृ० १५३
३ दादूयाल की वाणी-ब्रेलविडियर प्रेस प्रयाग भाग १. पृ० ३८
४. जायसी ग्रन्थावली-पद्मावत, छन्द ३७२

अतः स्पष्ट है कि सूफियों की प्रेम-साधना में विरह वेदना के कारण जो कठोरता और विकरालता है वह सन्त कवियों में विशेषकर कबीर, दादू और रज्जब जी आदि को निश्चित रूप मे प्रभावित किये हुये है।

सूफी प्रेम साधना और सन्तों की कान्ता-भक्ति—सूफी प्रेम का साम्प्रदायिक स्वरूप सभा और परवाना के रूपकत्व में स्पष्ट होता है जहाँ प्रिय का उद्देश्य प्रेमी को जलाना होता है। इसकी साधना में प्रेम मार्ग की जिन कठिनाइयों का उल्लेख रहता है वह योगियों के काया कष्ट से बहुत कुछ साम्य रखता है जिसे सन्त कवियों ने भी आत्म-शुद्धि और सदाचरण के लिए आवश्यक माना है। सूफी प्रेम साधना में जिस दाम्पत्य प्रेम का निरूपण हुआ है वह प्रायः पत्नी प्रेम के रूप में व्यक्त किया गया है। वहाँ साधक पुरुष रूप में ईश्वर के परम सौंदर्य रूपा नारी पर आसक्त होता है किन्तु सन्त कवियों की प्रेम भावना उनकी 'कान्ता भक्ति' के रूप में प्रकट हुई है। सन्त साहित्य मे प्रेमी के बहु प्रयुक्त आदर्श देखने को मिलते हैं जैसे सती, सूरमा, चकोर और मीन आदि। संतों की एक निष्ठुरता मे निराशा और विवशता की छाया नहीं है। यह शरीर त्याग देने के पश्चात् भी प्रिय का साथ नही छोड़ती। वह अपने निजत्व का नाश कर प्रियतम को प्राप्त करती है अपने पार्थिव शरीर की आशा नही पालती।[1] इसी तरह चकोर चन्द्रमा से दूर रहकर भी भावात्मक एकता के सूत्र में बँधा है। एक टक देखते-देखते चकोर अपनी गर्दन भी तोड़ देता है किन्तु चन्द्रमा को छोड़कर किसी अन्य की ओर दृष्टि नहीं फेरता :—

> ये नैन निहारत भाग एक टक हेरहीं।
> वाल्हा जैसे चंदन चकोर दृष्टि न फेरहीं।।
> —(सुन्दर ग्रंथावली (२) पृ० ६०३)।

संत बराबर लौकिक बाधाओं की चिन्ता किये बिना ही अपने प्रेम पंथ पर अग्रसर होता रहता है। सच्चा सूरमा मरने-जीने की आशा नहीं पालता और न भय के कारण रणक्षेत्र ही छोड़ता है। उसे जीवन-मरण, जय-पराजय की कोई चिन्ता नहीं होती। वह तो युद्ध क्षेत्र में बिना मुँह मोड़े दोनों के बीच जूझता रहता है।[2] इस तरह सूफियो की प्रेम साधना जहां अपने सीमित क्षेत्र में निराशा और

१. सती जलन कू नीकली, पीव का सुमरि सनेह।
सबद सुनत जीव नीकल्या, भूलि गई सब देह।।
—कबीर ग्रंथावली काशी संस्करण, सूरातन कौ अंग, साखी ३६, पृष्ठ ५६

२. खेत न छाड़ै सूरिवां, झूझै द्वै दल माँहि।
आसा जीवन मरण की, मन मैं आंणै नाँहि।।
—वही सूरातन कौ अंग, साखी १०, पृष्ठ ५४

विवशता को संजोये हुये तड़प रही है वहाँ संतों की कांता भक्ति आशा और निराशा की परिधि से ऊपर उठकर प्रिय के निकट अथवा दूर की चिन्ताओं से अपने को मुक्त मानती है। फिर भी जहाँ तक दोनों की प्रेम साधनाओं में दाम्पत्य प्रेम का सम्बन्ध है संतों की एकनिष्ठा और ऐक्य भावना बहुत कुछ अंशों में सूफियों से ही प्रभावित है। कबीर अपने और प्रभु के बीच अंश और अंशी के संबंधों को व्यक्त करते हुये प्रभु के प्रति अपनी एकनिष्ठा प्रकट करते हैं कि बिना प्रभु के शरीर के तापों का शमन नहीं हो सकता, क्योंकि यदि प्रभु सागर हैं तो मैं जल पर जीवित रहने वाली मछली हूँ किन्तु विडंबना है कि जल में ही रहकर जल बिना क्षीण बनी हुई हूँ। यदि प्रभु पिंजड़ा है तो मैं उनमें आबद्ध तोता हूँ जिसकी सीमा उस पिंजड़े तक ही सीमित है। यदि प्रभु सद्गुरु हैं तो मैं उनका आज्ञाकारी शिष्य हूँ।[1] यही अंश अंशी भाव सूफियो ने भी अपने दाम्पत्य प्रेम में व्यक्त किया है।

तै जो समुंद लहरि मैं तोरी। तै रवि मैं जग किरनि अंजोरी।
मोंहि आपुहिं जनि जानु निरारा। मैं शरीर तुम प्रान पियारा ॥[2]

अथवा

तुइ जो समुंद मैं लहरि तुम्हारी, मैं जो बिरिख तुंइ मूल।
तोंहि मोंहि सपत बचा दहुं कैसी, मैं सुवास तू फूल ॥[3]

जीवात्मा और परमात्मा का यही अंश अंशी भाव रैदास के शब्दो में देखिये :—

प्रभु जी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग अग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा, जैसे चितवत चंद चकोरा ॥
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोनहिं मिलत सुहागा ॥
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।
(रैदास जी की बानी बे० प्रे० प्रयाग, पद ८६, पृष्ठ ४१)

---

१. राम बिन तन की ताप न जाई, जल मै अगनि उठि अधिकाई।
तुम्ह जलनिधि मै जल कर मीना, जल मैं रहौ जलहिं बिन षीनां ॥
तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनां तोरा, दरसन देहु भाग बड़ मोरा।
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला, कहै कबीर राम रमूं अकेला ॥
—कबीर ग्रंथावली काशी संस्करण, पद १२०

२. मंझन कृत मधुमालती—सं० माता प्रसाद गुप्त, छंद ११८

३. वही, छंद—१२६

प्रेम की दृढ़ता को लेकर जहाँ सूफी कवि यह कहते हैं कि प्रेम ऐसा करना चाहिये जिसके आदि और अन्त सभी स्नेहमय हों। यदि इस प्रकार का प्रेम इस लोक और परलोक दोनों जगत् में निभ जाय तो इसमे किसी प्रकार का संदेह नहीं मानना चाहिये,[१] वहाँ संत कवि भी प्रेम की स्थिरता को लेकर ठीक वही भाव प्रदर्शित करते हैं :—

घटै न बधै सदा ज्यूं का त्यूं, विरचिन बुरो लषावै।
राम भरतार परम सुखदाता, सो म्हारे मन भावै ॥[२]

संतों की कान्ता भक्ति ठीक उसी कोटि की है जैसे सूफियों के यहाँ पति-पत्नी प्रेम की साधना। विरह की तीव्रता तो संतो ने सूफियों की ठीक उन्हीं भावनाओं से उधार लिया है जिसको सूफियों ने अपने प्रेमाख्यानों में बारहमासा और षट्ऋतु वर्णनों में विस्तार से व्यक्त किया है। अन्तर इतना ही है कि संतों की विरहानुभूति के रूप में व्यक्त की गई है जब कि सूफियो की विरहानुभूति प्रतीकात्मक है। संत कवि रज्जब जी की विरह वेदना देखिये :—

प्रानपति आये न होइ, बिरहिन अति बेहाल।
बिन देखे जिव जात है अब बिलम्ब न कीजै लाल ॥
बिरहिनि व्याकुल केसवा निस दिन दुखी बिहाइ।
जैसे चंद कमोदनी, बिन देखे कुम्हिलाइ ॥
अति गति दुखिया दगधि ये, बिरह व्यथा तनि पीर।
घरी पलक मै बिनसि है, ज्यूं मछली बिन नीर ॥
पीव पीव टेरौं पिक भई, स्वाति सरूपी आव।
सागर सरिता सब भरे, परि चात्रिग कै नहिं चाव ॥
दीन दुखी दीदार बिन, रज्जब धनि बेहाल।
दरस दया कर दीजिये, तौ निकसै सब साल ॥[३]

संत कवि रैदास की विरह वेदना भी इसी कोटि की है। वे कहते है :—

---

१. प्रीति तो ऐसी कीजिये आदि अंत जेहि नेह।
दुहुं जग जो यह निरबहै, तौ कहु कौन संदेह ॥
—मंझन कृत मधुमालती—सं० माता प्रसाद गुप्त, छंद १३०

२. श्री महाराज हरिदास जी की वाणी—स० मगलदास स्वामी, अथ ब्याह लो जोग ग्रंथ छद ४, पृष्ठ १०६

३. रज्जब वाणी—स० डा० ब्रजलाल वर्मा—पद भाग पद १०, पृष्ठ ३८६

पिउ संग प्रेम कबहुँ नहिं पायो, करनी कवन बिसारी।
चक को ध्यान दधिसुत सों हेत है, यों तुम ते मैं न्यारी।।
भवसागर मोहिं इक टक जोवत, तलफत रजनी जाई।
पिय बिन सेजइ क्यों सुख सोऊँ, बिरह विया तन खाई।।
मेटि दुहाग सुहागिन कीजै, अपने अंग लगाई।
कहु रैदास स्वामी क्यों बिछोहे, एक पलक जुग जाई।।[1]

हाँ, यह बात अवश्य है कि सूफियो मे विरह भावना की जो तीव्रता है वह संतों में नही है। संतों ने भावना की तीव्रता को संदेह की दृष्टि से देखा है। कबीर का प्रेम चेतना प्रधान है वे भावना प्रधान चेतन्य और चेतना प्रधान भावना को सीमाओं में ही अपनी प्रेम साधना को रखना चाहते है।[2] 'रैदास' में अहंकार के नाश आदि की चर्चा है किन्तु ज्ञान की वह पुष्टता नहीं जो कबीर में उपलब्ध होती है। रैदास में चैतन्य धारा की अपेक्षा प्रेम साधना का स्वरूप ही यहाँ अधिक स्पष्ट रूप में निखरा है। गुरु नानक में ज्ञान योग की चेतना और भाव भगति की पेरणा है। किन्तु यही प्रेम की तीव्रता विरहोन्माद की उत्तेजना दादू मे अधिक दीख पडती है, जो अज्ञात रूप से सूफी 'शेख बूढन शत्तारी' के संसर्ग का प्रभाव है। अंतर इतना ही है कि संत साहित्य मे जहाँ विरह की व्याकुलता और असह्य वेदना स्त्रियों के मत्थे अधिक मढी गई है वहाँ सूफी साहित्य मे पुरषो के बाँटे पडी है। भारतीय नारी के विरहोच्छ्वास में विवशता के आसू है जो सूफियों से भिन्न पड़ते है।

सूफी प्रेम का सौंदर्य से अत्यन्त ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनकी दृष्टि से प्रेम का स्रष्टा स्वयं प्रभु ही है प्रेम के लिये ही उसने जगत् को रचना जिसमे अपने सौंदर्य को देखकर उसे आनन्द प्राप्त हुआ। चन्द्रमा यदि सौदर्य है तो उसकी किरण प्रेम है। जहाँ सौदर्य होता है वहा पेम निश्चय ही रहता है।[3] इसी आस्था को लेकर सूफियों ने प्रभु का प्रतीक परम सौंदर्य रूपा नारी को ही माना है। किन्तु संतो ने सौंदर्य को केवल दैहिक सौदय तक ही सीमित नहीं रखा और न उस पर विशेष जोर

१. रैदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग, पद ७३, पृष्ठ ३४.

२. कबीर घोड़ा प्रेम का, चेतनि चढि असवार।
ग्यान षड़ग गहि काल सिरि, भली मचाई मार।।
—कबीर ग्रंथावली काशी संस्करण—सूरातन कौ अंग, साखी २७

३. प्रेम किरन ससि रूप जेउं, पानी प्रेम जिमि हेम।
एहि विधि अह तहं जानियहु जहाँ रूप तहँ प्रेम।।
—चित्रावली—उसमान पृष्ठ १३, छंद २६

दिया वे उससे ऊपर उठ कर परम सौंदर्य को सर्व शिरोमणि तेज स्वरूप परम ब्रह्म के रूप में देखा।

'तेज सरूपी सकल सिरोमनि, अकल निरंजन रावा।'[१]

वे परमात्मा के सौंदर्य के तेज को ऐसा भासमान मानते हैं मानों अनेक सूर्यों की श्रेणी उदित हो गई हो। वे इस सौदर्य का दर्शन प्रियतम (प्रभु) के साथ अज्ञान रूपी रात्रि में जग कर करते हैं।

कबीर तेज अनंत का मनो ऊगी सूरज सेणि।
पति संग जागी सुन्दरी, कौतुग दीठा तेणि॥[२]

उस एकमात्र अल्लाह के नूर का 'अनंत तेज चारो तरफ इस प्रकार भरपूर है जैसे आकाश में सूर्य चमकता है।[३] सौदर्य निरूपण के साथ-साथ 'सूफी प्रेम साधना और संत प्रेम साधना में एक अन्तर यह भी है कि सूफियों का प्रेम सम्बन्ध पूर्व जन्म से ही सम्बन्धित है जो प्रिय के प्रत्येक दर्शन, गुण श्रवण, स्वप्न दर्शन अथवा चित्र दर्शन से अंकुरित होता है।' मधुमालती' में मंझन कहता है :—

पुनि जौ पेम पिरीत पुब्व कै, बिबि जय आइसमानि।
उठी ऊमि उर सांस दुहुँन कै, समुझि आदि पहिचानि॥[४]

अर्थात् फिर जो पूर्व की प्रेम प्रीति दोनों के जी में आकर समाई तो आदिम परिचय का स्मरण कर दोनों के हृदय से साँस ऊपर आकर रुक गई।

किन्तु सन्तों की प्रेम साधना में प्रेम गुरु के उपदेश से अंकुरित होता है।

मैं नहीं बौरा राम कियौ बोरा। सतगुरु जारि गयौ भ्रम मोरा॥
(क० ग्रं० काशी सं० पद १४७)

गुरु ही अज्ञान रूपी भ्रम को दूर करते हैं और प्रभु के प्रति प्रेम का बीजारोपण करते हैं।

प्रेम साधना में गुरु की महिमा—प्रेम साधना में चाहे वह सूफी कवियों की हो चाहे हिन्दी संत कवियो की, दोनों में गुरु की महिमा को विशेष महत्ता प्रदान की गई है। सूफी कवि मंझन का कथन है कि जो परम तत्व में लय (लीन) होन

---

१. रैदास जी की बानी—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, पद ७२, पृष्ठ ३४

२. कबीर ग्रंथावली—काशी संस्करण परचा को अँग, साखी १

३. ज्यौं रवि एक अकास है, अैसे सकल भरपूर।
दादू तेज अनंत है, अलह आले नूर॥
—दादू दयाल–आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, परचा को अंग, साखी ८०, पृ० ५१

४. मंझन कृत मधुमालती, सं० डा० माता प्रसाद गुप्त, छंद १२१, पृष्ठ १०१

जानता है वही मन के बोल को पहचानता है। मन के बोल अपार और विषम होते हैं। यदि गुरु होता है तो वह साधक को पार लगा देता है।[1] सन्त कवियों का भी विश्वास है कि गुरु के समान हितैषी और अपना सगा नहीं है। उसकी महिमा अनन्त है। गुरु की कृपा जिस व्यक्ति पर होती है कलियुग का प्रभाव उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। गुरु ही अपनी शिष्य के भीतर की ज्योति को प्रज्जवलित करने में समर्थ होता है। सद्गुरु की प्राप्ति भी भगवान की कृपा से ही होती है। वास्तव में गुरु और गोविन्द दोनों में कोई भेद नहीं है। सद्गुरु के प्राप्त हो जाने पर सभी सांसारिक और मानसिक कष्टों का अन्त हो जाता है।[2] जब सर्व समर्थ सद्गुरु मिल जाते हैं तो वे प्रभु के मूल तत्व को बतला देते हैं और साधक मंथन करके घृत निकाल कर उसे खाता है।

साचा समरथ गुरु मिल्या, तिन तत दीना बताइ।
दादू मोटा महाबली, घट घृत मथि कर खाइ॥[3]

कुम्हार जिस प्रकार मिट्टी को ठोक-ठोक कर बर्तन बनाता है उसी प्रकार गुरु भी बार-बार शिक्षा देकर शिष्य को योग्य बनाता है। संत कवि रज्जब जी की उक्ति सुनिये :—

ज्यूं माटी कूं कूटे कुम्भार। त्यूं सत गुरु की मार विचार॥

तथा

गुरु ग्याता परजापती, सेवक माटी रूप।
रज्जब रज सूं फेरिके, घड़ि ले कुम्भ अनूप॥[4]

सन्त पुरुष के लिये सद्गुरु की प्राप्ति भाग्य की सबसे बड़ी सफलता है। इससे उसे जितना आनन्द होता है उतना और किसी से नहीं। गुरु के दर्शन मात्र से ही सन्त कवि सुन्दरदास को मोक्ष प्राप्ति का सन्तोष होने लगता है।

गुरु को दरसन देखते शिष पायो सन्तोष।
कायर मेरो अब भयो, मन मांहि मान्यो मोष॥[5]

---

१. परम तन्त लौ लीन जो जानै। सो मन कै आखर पहिचानै।
मन के आखर विखम अपारा। गुरु होइ तौ लावै पारा॥
—मंझन कृत मधुमालती – स० माता प्रसाद गुप्त, छन्द १७, पृष्ठ १६

२. कबीर ग्रंथावली—काशी संस्करण, गुरुदेव कौ अंग, साखी १ से ३५ तक।

३. दादूदयाल—सं० परशुराम चतुर्वेदी—गुरुदेव जी को अंग, साखी ३३, पृ० ४

४. राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकालीन सन्त एवं भक्त कवि। डॉ० मदन कुमार जानी पृ० १०६।

५. वही पृष्ठ १०७ पर उद्धृत।

अब विचारणीय यह है कि गुरु के प्रति सन्तों से यह श्रद्धा की भावना कहाँ से आई ? हिन्दू धर्मशास्त्रो मे भी तो गुरु महिमा का उल्लेख मिलता है फिर क्यों न मान लिया जाय कि सन्तो ने गुरु महिमा को इन धर्मशास्त्रो से ही लिया होगा, किन्तु हम पहले ही स्पष्ट कर चुके है कि सन्तों को हमारे धर्मशास्त्रों के प्रति कोई विशेष रुचि नहीं थी और न वे उससे पठन-पाठन मे समर्थ ही थे। उन्होंने जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त किया, सत सग और गुरु कृपा से ही प्राप्त किया। सूफियों ने भले ही गुरु महिमा को भारतीय दर्शन से अपनाया हो किन्तु सन्तो पर गुरु महिमा की जो छाप पड़ी है वह सूफियों के मध्यम से ही पड़ी प्रतीत होती है। गुरु उनका मार्ग-दर्शक ही नही, बल्कि सब कुछ है।

गुरु के प्रसाद बुद्धि उत्तम दिशा को ग्रहै, गुरु के प्रसाद भव दुःख बिसराइये।
गुरु के प्रसाद प्रेम प्रीति हू अधिक बाढ़ै, गुरु के प्रसाद राम-राम गुनगाइये ॥
गुरु के प्रसाद सब योग की भुगुति जानै, गुरु के प्रसाद शून्य मे समाधि लाइये।
सुन्दर कहत गुरु देव जो कृपाल होहि, तिनके प्रसाद तत्व ज्ञान पुनि पाइये ॥[1]

गुरु प्रसाद की यह महिमा सन्तों ने ही नहीं सूफियों ने भी बहुत पहले से ही गाई है। जायसी ने अपने पीर सैयद अशरफ की प्रशस्ति में लिखा है कि उन्होने ही मुझे ज्ञान का उज्जवल मार्ग प्रदर्शित किया। उन्होने मेरे हृदय में प्रेम का दीपक जलाया। उस दीपक की ज्योति से मेरा हृदय निर्मल हो गया। भ्रम का सारा अंधकार मिट गया। चारो ओर प्रकाश छा गया। मेरे पापों ने मुझे खारे समुद्र में पटक रखा था, उन्होने मुझे अपना शिष्य बनाकर सूफी पंथ रूपी नौका पर चढ़ा लिया।[2] मंझन का विश्वास है कि गुरु का दर्शन दुःखों को धो डालने वाला होता है। वह दृष्टि धन्य है जो गुरु दर्शन पर प्रेम रखती है जो साधक गुरु शिष्य दृष्टि का प्रति पालन करता है, वह चारो युगों मे राजा होता है।'[3] इस तरह सूफियों की गुरु के प्रति जो आस्था है वह भले ही भारतीय दर्शन से प्रभावित हो किन्तु उसने समकालीन हिन्दी सन्त कवियो को निश्चय ही प्रभावित किया है इसमें सन्देह नहीं है।

सन्तों की नाम स्मरण साधना और उस पर सूफी प्रभाव—सन्तों की साधना

---

१. सुन्दरसार—सं० श्याम सुन्दरदास, ज्ञान समुद्र सार, छन्द १२, पृष्ठ ५।

२. जायसी ग्रंथावली—पद्मावत छन्द १८

३. गुरु दरसन दुख धोवन, धनि-धनि दिस्टि जो भाइ।
जो गुरु सिक्ख दिस्टि प्रति पालै, सो चारिहुं जुग राइ ॥
—मंझन कृत मधुमालती—सं० माता प्रसाद गुप्त, छन्द १५

में जहाँ एक ओर 'गुरु' को अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है, वहीं 'नाम' को भी अति अत्यधिक प्राप्त हुई है। सन्तों की वाणी प्रभु के इस नाम की सराहना करते नहीं थकती। कबीर से लेकर उनके परवर्ती सभी सन्तों ने इस नाम महिमा को स्वीकार किया है। यद्यपि नाम महिमा को भक्त और सन्त दोनों प्रकार के कवियो ने महत्व प्रदान किया है, किन्तु सन्तों का नाम भक्तों की भाँति किसी स्थूल सत्ता का द्योतक नहीं है। उनका 'नाम' सर्जक, पालक और संहारक है। विश्वास के साथ मन, बचन, कर्म से प्रभु का नाम स्मरण ही सत्य है। अन्यथा पंडितों के उपदेश, सभी कथायें, मन्दिर अन्य देवों की उपासना आदि सभी थोथे है :—

> थोथा पंडित थोथी बानी। थोथी हरि बिन सबै कहानी।
> थोथा मन्दिर भोग विलासा। थोथी आनदेव की आसा।
> साचा सुमिरन नाम विसासा। मन बच कर्म कहै रैदासा।।[1]

नाम स्मरण साधना में मन से प्रभु के नाम का जप करना साधक का मुख्य कार्य होता है। प्रभु के नाम का सुमिरन ही साधक की साधना का आदि और अन्त होता है। अजपा जाप की अवस्था साधना की चरम सीमा के समीप है। सन्त 'तुरसीदास' के अनुसार 'सुमिरन' तभी पूर्ण होता है जब कि शारीरिक कर्म करते हुये भी साधक का चित्त प्रभु के सुमिरन में लगा रहता है और पल भर के लिये उससे विलग नहीं होता।

> जैसी सुरति विषयी पर नारी। लोभी परधन हरन मझारी।
> जैसी सुरति कीटी भृङ्ग कीन। अरु जल बिछुरै जैसे मीन।।
> जैसी सुरति नटिनी की होय। बांस वरत चित राखै चोय।
> ऐसी सुरति राम सूं होय। तुरसी सुमिरन कहिये सोय।।[2]

सन्तों ने अपनी नाम स्मरण साधना में प्रायः 'राम नाम' का ही प्रयोग किया है, जो ब्रह्म का पर्यायवाची एवं केशव, करीम, अल्लाह, रहीम इन सबका रूप। 'सुमिरन' से तात्पर्य सन्त मत की साधना में मुख से केवल नाम रटना ही नहीं है, बल्कि इसका अभ्यास योग साधना द्वारा सम्भव माना गया है। वे 'सुमिरन' के लिये न तो माला की आवश्यकता समझते हैं, और न मुख से बार-बार राम-नाम चिल्लाते हैं। सुमिरन एक प्रकार की ध्यानावस्था है जिसमें वे राम का नाम अपने अन्तःकरण में स्मरण करके उसी मे तल्लीन हो जाते हैं। सन्त कबीर ने राम नाम की महिमा का उल्लेख करते हुये लिखा है :—

---

१. रैदास जी की बानी—बेलविडियर प्रेस प्रयाग, पद ५५, पृष्ठ २५।

२. निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसीदास—डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ६३।

कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अन्त सब सोधिया, दूजा देखौं काल ॥[1]

नाम स्मरण की चरम सीमा का उल्लेख करते हुये सन्त कबीरदास जी कहते हैं कि राम-नाम का स्मरण करते हुये मेरा मन स्वयं राम में ही रम गया है, और इससे भी आगे अब वह स्वयं राममय हो गया है। जब मन ही स्वयं राममय हो गया तो शीश किसके आगे झुकाया जाय।

मेरा मन सुमिरै राम कूं, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रहा, सीस नवावों काहि ॥[2]

सन्त मलूक दास जी का विश्वास है कि रत्ती भर राम-नाम पापो के करोड़ों बहुत बड़े पहाड़ो को भी जला कर राख कर सकता है।[3] सन्त दादूदयाल ने नाम स्मरण साधना को केवल 'राम-नाम' की सीमा के अन्तर्गत ही नहीं बाँधा है। विश्वास है कि सृष्टिकर्त्ता के कितने ही अनन्त नाम है जो जी में अच्छा लगे उसे याद कीजिये।[4] नाम स्मरण साधना के विधान का उल्लेख करते हुये सन्त दादूदयाल जी कहते है कि साधक को 'सुमिरन' के समय साध्य में एकदम रम जाना चाहिये। अविनाशी प्रभु से एकाकार होकर एक क्षण के लिये भी चित्त को इधर-उधर नहीं करना चाहिये :—

रमिता सेती रमि रहे। विमलि-विमलि जस गाइ।
अविनासी सौं एक ह्वै, निमिष न इत उत जाइ ॥[5]

सन्तों की नाम-स्मरण साधना को दृष्टिगत रखते हुये जब हम सूफी साधना को सामने रखते हैं, तो वहाँ भी हमें एकान्तवास, स्वाध्याय, जप और ध्यान को बड़ा ही महत्वपूर्ण पाते हैं, जिसमे नाम-स्मरण की साधना का सम्बन्ध सूफियो के जिक्र (जप) और सभा (संगीत) मे है। यद्यपि सरजि कुशेरी और हुज्वेरी जैसे कुछ

---

१. कबीर ग्रन्थावली काशी संस्करण, सुमिरन कौ अंग, साखी ५।

२. कबीर ग्रन्थावली काशी संस्करण, सुमिरन कौ अंग, साखी ८।

३. राम नाम एकै रती, पाप के कोटि पहाड़।
ऐसी महिमा नाम की, जरि करै सब छार ॥
—मलूकदास जी की बानी, पृष्ठ ३३, साखी १६।

४. दादू सिरजन हार कै, केते नाम अनन्त।
चिति आवे सो लीजिये, यूं साधू सुमिरे सन्त ॥
—दादूदयाल—परशुराम चतुर्वेदी, सुमिरन कौ अंग, साखी २०, पृ० १७।

५. वही, साखी ३८।

सूफी कीर्तन पद्धति को वासनात्मक मानते हैं, किन्तु गज्जाली आदि सूफी साधकों ने सभा (संगीत) को हाल (आनन्दावस्था) का साधन माना है। हल्लाज (मंसूर) ने 'अनलहक' के रूप में इस नाम स्मरण साधना को व्यवहृत किया था। सूफी प्रेमाख्यानों में जिक्र का उल्लेख स्पष्ट रूप में तो नहीं मिलता, किन्तु प्रतीकात्मक रूप में उसे दिखाने का अवश्य प्रयास किया गया है। 'मुकीमी कृत' चन्दरबदन और महियार में जब नायक अपनी प्रियतमा का नाम लेकर उसके घर के चारो ओर मँडराने लगता है तो यह 'जिक्र' की ही अवस्था है जिसमे साधक लोक-लज्जा की परवाह किये बिना दुनिया की नजरों में पागल बनकर अपने प्रिय मे रम कर एकाकार हो जाता है। चान्दायन, मृगावती, पद्मावत, मधुमालती, चित्रावली आदि सभी सूफी प्रेमाख्यानों में जब पिय के प्रेम में नायक विह्वल होकर अपने को भूल जाता है, और उसी की याद में दिन-रात बेचैन रहने लगता है, तो यही सूफी साधना की 'जिक्र' की अवस्था है। हिन्दी के मध्यकालीन सन्तो ने अपनी नाम-स्मरण साधना में इसी जिक्र को अपनाया है तथा नाम स्मरण के आगे के वेद और पुराणो को भी व्यर्थ बतलाया है :—

रज्जब टीका नांव कौ वेद पुरान सूदेहि।
यूं तनवेता त्यागि सब, हरि सुमिरन करि लेहि ॥[1]

नाम-स्मरण साधना मे सन्तो ने राम नाम के साथ-साथ 'अल्लाह', 'रहीम' को उसका पर्यायवाची मानने का जो साहस किया है।[2] वह सूफियों की साधना की उदारता का ही परिणाम है, जिसका प्रभाव सन्तो पर पड़ा हुआ दिखाई पड़ता है। सिक्ख गुरुओं ने भी 'नाम' को बहुत ही अधिक महत्व दिया है। उनके यहाँ परमात्मा की सर्वव्यापी सत्ता का बोधक 'सति नाम' स्मरणीय माना गया है। उनका विश्वास है कि परमात्मा के निकट कोई विशेष शब्द अथवा 'नाम' अपना विशेष महत्व नहीं रखता। 'नाम' तो आन्तरिक भावों को अभिव्यक्ति का साधन मात्र है। इसीलिये सिख गुरुओं ने परमात्मा को किसी विशिष्ट नाम से नहीं पुकारा है, कबीर आदि सन्तों की भाँति वे भी प्रभु को अकाल पुरुष, निर्गुण, निरकार, मधुसूदन, दामोदर, माधव, धरणीधर, श्याम सुन्दर, खालिक, रहीम, मौला आदि

---

१. रज्जब बाणी—डॉ० ब्रजलाल वर्मा, सुमिरण को अंग, साखी १८, पृष्ठ ४३।

२. रज्जब राम रहीम कहि, आदि पुरुष करि यादि।
सदा सनेही सुमिरिये, जनमन आई जाई बादि ॥
अल्लह-अल्लह कहत ही, अल्लह लह्या सु जाइ।
रज्जब अज्जब इरक है, हृदे हेत चित लाइ ॥
—वही, साखी २६, २७, पृष्ठ ४५

नामों से सम्बोधित करते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि संत कवियों की नाम-स्मरण की साधना एक ऐसी शाश्वत् साधना है जो उनके स्वभाव का अंग बन चुकी है और जो कभी निष्फल नहीं जाती। उनके 'सुमिरन' की स्थिति साधना की वह आभ्यान्तरिक अवस्था है जिसमें साधक अपनी समस्त चित्त-वृत्तियो को अपने आराध्य की ओर उन्मुख कर लेता है। नाम-स्मरण की यह साधना पूर्ण निष्काम भाव से चलती है। साधक प्रिय के सिवा किसी दूसरी वस्तु की प्राप्ति की कामना स्वप्न में भी नही करता। प्रिय के प्रति निष्काम भाव से एकनिष्ठ सूफी प्रेम साधना के आदर्श को ही सन्तों ने अपनी साधना में अपनाया होगा ऐसा अनुमान करना भी हमारे विचार से अत्युक्ति नही है।

निष्कर्ष

सूफी और सन्त कवियों की साधना का विवेचन करने के पश्चात् यह बात निस्संदेह स्पष्ट हो जाती है कि हमारे निर्गुण सन्त साहित्य मे जहाँ अनेक अन्य प्रभाव दृष्टिगोचर होते है वहाँ सूफी साधना का भी अवश्य ही प्रभाव पडा है। कबीर, नानक, दादू, रज्जब और तुरसी दास जैसे कुछ प्रमुख निर्गुण सन्तो ने तो प्रायः सूफी मत के प्रेम-दर्शन को अपनी आध्यात्मिक साधना का अंग ही बना लिया है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि सन्तों ने सूफियों की प्रेम साधना पद्धति को ज्यों का त्यो अपना लिया है। सन्तों का बराबर यही प्रयास रहा है कि वे साधना के प्रत्येक मार्ग से सार-तत्व को ही ग्रहण करते रहे है। इन लोगों ने सूफियों के दिव्य प्रेम (इश्क हकीकी) को तो अपना लिया किन्तु लौकिक प्रेम (इश्क मजाजी) को अपनी साधना से दूर रखा। सूफी भावना और सन्त साहित्य पर दृष्टि डालने से एक बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि सन्तो के प्रतिनिधि कवि कबीर पर तो सूफी विचारधारा का प्रभाव सीधे सूफियो से पड़ा है, किन्तु कबीर के परवर्ती अन्य सन्तो पर यह प्रभाव उनकी गुरु परम्परा से आया प्रतीत होता है, जिसमें सन्त दादूदयाल अपवाद माने जा सकते है, कारण ये प्रारम्भ में सूफी सन्त बुड्ढन के संसर्ग मे बहुत दिनों तक रह चुके थे। दादू की शिष्य परम्परा पर जो सूफी प्रेम साधना का प्रभाव है, वह कबीर की भाँति चेतना प्रधान न होकर सूफियो की भाँति विशेष भावना प्रधान ही रहा है। प्रेम साधना में विरह की तीव्रता दिखलाई तो अवश्य गई है किन्तु उसमें सूफियों की भाँति आत्म विह्वलता नहीं है। वह मर्यादित है जो भारतीय संस्कार जन्य है। जहाँ तक सन्तों की नाम स्मरण साधना का सम्बन्ध है, उसे भी उन लोगों ने सूफियों के 'जिक्र' की अवस्था से ग्रहण किया है, यह निर्विवाद है।

———

समन्वित स्वरूप तैयार किया जिसमें ब्रह्म, जीव, जगत् और माया सम्बन्धी तात्विक ज्ञान शंकर के अद्वैतवाद से, साधना सम्बन्धी हठयोग तथा सम्प्रदाय से, भक्ति भावना विशिष्टाद्वैतवाद से ग्रहण किया गया था। सूफी और सन्त मत दोनों के उद्भव नैराश्य के वातावरण में हुआ था। साथ ही साथ सिद्धान्त और साधना के मूल स्रोत प्रायः दोनो में एक ही थे। अतः सूफी मत इस्लामी साम्राज्य के साथ-साथ भारत में प्रविष्ट होने पर अपने उदारवादी दृष्टिकोणों से जाति-पाँति के भेद-भावों को मिटाकर समस्त मानव समाज को एक ही प्रेम-सूत्र में बाँधने का प्रयास करने लगा। इससे समकालीन सन्त मतावलम्बियों के लिये वह विदेशी न रह सका। फिर पारस्परिक मिलन से सन्त कवियो ने सूफियो के प्रेम की पीर को भी अपनी साधना का एक विशिष्ट अंग बना लिया और इसी प्रेम की पीर के कारण सन्त मत का सर्व-समन्वित स्वरूप जन-साधारण के लिये अत्यन्त ही लोकप्रिय और सहज ग्राह्य बन सका। यह बात अलग है कि आलोच्य काल के सभी सन्त कवियों पर सूफी अध्यात्म-दर्शन का प्रभाव एक-सा नहीं पड़ा है। निश्चय ही सन्त कवियो में से बहुतों पर तो सूफी प्रभाव बहुत अधिक पडा है और कुछ पर बहुत ही कम। हम यहाँ आलोच्यकाल के संत कवियों पर पडे हुये सूफी प्रभाव का पृथक्-पृथक् विवेचन प्रस्तुत कर देना भी आवश्यक समझते है।

(क) कबीर के पूर्ववर्ती सन्त कवि और सूफी अध्यात्म-दर्शन

यद्यपि कबीर ही सन्त साहित्य का प्रतिनिधित्व करने में पूर्ण सक्षम है किन्तु इनके पूर्व भी सन्त साहित्य का बीजारोपण हो चुका था। सन्त साहित्य का अभ्युदय काल मे नामदेव और रामानन्द का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। अतः सूफी अध्यात्म-दर्शन के परिप्रेक्ष्य में यह विचार कर लेना आवश्यक है कि इन सन्तों पर सूफियों का कितना प्रभाव पडा है।

नामदेव—सन्त नामदेव के मराठी पदों में तो प्रायः सगुणोपासना का ही प्रभाव दृष्टिगोचर होता है किन्तु उत्तरी भारत में आने तथा सन्त ज्ञानेश्वर से सम्पर्क हो जाने के पश्चात् इनके द्वारा रचित हिन्दी पदों में स्पष्टतः निर्गुणोपासना के महत्व और संदेश की चर्चा की गई है। उनमें न केवल सन्त ज्ञानेश्वर के ज्ञान का और उनके गुरु बिसोबा खेचर की योगानुभूति का प्रभाव है वरन् उत्तरी भारत में फैले इस्लामी रहस्यवाद की भी छाया स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। मूर्तिपूजा का विरोध, ईश्वर को अवतार न मानना, एक ईश्वर की प्रतिष्ठा, ईश्वरीय प्रेम में दाम्पत्य भाव की कल्पना, विरह की आतुरता आदि के चित्रण सूफी अध्यात्म-दर्शन के प्रभावों के ही द्योतक हैं। सभी तर्क-वितर्कों को त्याग वे ईश्वर

में एकनिष्ठा तथा दसों दिशाओं में उसी परमेश्वर की सत्ता को विद्यमान मानते है।[1] यथा :—

जामैं सकल जीव की उतपति, सकल जीव में आप जी।
माया मोह करि जगत भुलाया, घटि घटि व्यापक बाप जी ॥[2]

उनकी यह एकनिष्ठा और एकत्व भावना सूफियों से बिल्कुल ही मिलती-जुलती है जब वे कहने लगते है :—

तुम बिन घरि येक रहूँ नहिं न्यारा। सुन यह केसव नियम हमारा।
जहाँ तुम गिरिवर तहाँ हम मोरा। जहां तुम चंदा तहाँ मैं चकोरा॥
जहाँ तुम तरुवर तहाँ मैं पंक्षी। जहाँ तुम सरोवर तहाँ मैं मच्छी।
जहाँ तुम दिवा तहाँ मैं बत्ती। जहाँ तुम पंथी तहाँ मैं साथी॥
जहाँ तुम शिव तहाँ मैं बेल पूजा। नामदेव कहे भाव नहीं दूजा।[3]

जीव और ब्रह्म के बीच सूफी अध्यात्म-दर्शन के अनुसार पति-पत्नी प्रेम की जो कल्पना की गई है। सन्त नामदेव उससे भी प्रभावित है :—

"आरती पति देव मुरारी, चंवर डुले बलि जाऊँ तुम्हारी।[4]

अथवा

अनेक सिंगार करै बहु कामिनि। पीय के मन नहि भावै भामिनि।
पति ब्रता पति ही की जानै। नामदेव कहै हरि ताकी मानै॥[5]

प्रतीकात्मक दाम्पत्य प्रेम को नामदेव ने उपमा के माध्यम से भी स्पष्ट किया है।[6] प्रेम की आतुरता, विरहानुभूति की तीव्रता नामदेव के निम्नलिखित पद में ठीक उसी कोटि की है जैसे सूफियो की रचनाओं मे मिलती है :—

मोर पिया बेलम्यो परदेस, होरी मैं का सौ खेलौं।
घरी पहर मोहि कल न परतु है कहतन कोउ उपदेस॥

---

१. दह दिसि राम रह्या भर पूरि। संतनि नीयरै साकत दूरि।
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली—डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ २, पद ० ।

२. वही—राग गौड़ पद ४८, पृष्ठ २०।

३. वही—पृष्ठ ८८, पद १६१।

४. वही—पृष्ठ ६८, पद १४५।

५. वही—पृष्ठ ११, पद २६।

६. जैसे पर पुरुषा रत नारी। लोभी नर धन को हितकारी।
कामी पुरुष काम रतनारी। ऐसो नामदेव प्रीति मुरारी॥
—सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली—सं० डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ ५३, पद ११५।

झर्यो पात बन फूलन लाग्यो, मधुकर करत गुंजार।
हाहा करौं कंथ घर नाहीं, के मोरी सुनै पुकार॥
जा दिन तें पिय गवन कियो है; सेंदुरा न पहिरौं भंग।
पान फुलेल सबै सुख त्याग्यो, तेल न लावौ अंग॥
निसि बासर मोहि नींद न आवै, नैन रहे भरपूर।
अति दारुन मोहि सवति सतावै, पिय मारग बड़ि दूर॥[1]

इसी तरह सूफियों के ईश्वरीय नूर तथा गुरु महिमा आदि को भी सन्त नामदेव जी ने स्वीकार किया है। इनकी भाषा में पीर, पैगम्बर, अल्लाह, खलक आदि शब्दों के प्रयोग भी सूफियों की ही देन है। सन्त नामदेव की भक्ति में माधुर्य भावना का समावेश किस अंश तक भागवत धर्म से प्रभावित था और कितना सूफियों से, यह कह सकना तो निश्चय ही कठिन है किन्तु इतना तो स्पष्ट ही है कि सूफी अध्यात्म-दर्शन का इन पर अवश्य ही कुछ न कुछ प्रभाव पड़ा था। हाँ, नामदेव मे ब्रह्मानुभूति का जो आनन्द और उल्लास है उसमे सूफियों की भांति प्रेम पियाला का खुमार चित्रित नहीं मिल सकता। उनका प्रेमोन्माद तो अत्यन्त ही संयमित है।

स्वामी रामानन्द—यह कहना कि स्वामी रामानन्द पर सूफी अध्यात्म-दर्शन का कोई प्रभाव पड़ा है, न्यास संगत नही प्रतीत होता। सूफियो और रामानन्द के आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारो मे जहा कही साम्य दिखाई पड़ता है वहाँ वह सूफी प्रभाव न होकर भारतीय औपनिषदिक ज्ञान का प्रभाव है क्योंकि स्वामी रामानन्द भारतीय वेदान्त तथा योग-साधना के जितने समीप है उतना सूफी अध्यात्म और साधना से कदापि नहीं। कही कही तो उनके विचार सूफी विचारों के बिल्कुल ही प्रतिकूल पडने लगते है। उनके यहाँ भक्ति-साधना म कर्मकाण्ड को एक आवश्यक अंग माना गया है जिसका सूफियो के यहाँ कड़ा विरोध है।

सन्त नामदेव और रामानन्द पर यदि किसी अंश तक सूफी अध्यात्म-दर्शन का प्रभाव नहीं पड़ा तो इसमे अधिक आश्चर्य की बात नही क्योंकि ये दोनो सर्व-प्रथम सगुणोपासक भक्त थे जो बाद मे निर्गुणोपासना की ओर उन्मुख हुये थे। इनके समय में निर्गुण साधना अभी पूर्ण विकसित नही थी। उसको चरमोत्कर्ष तक पहुचाने का श्रेय तो कबीर को था जिन्होंने नामदव और रामानन्द द्वारा प्रति-पादित इस अविकसित निर्गुण साधना को व्यापक बनाया तथा उसमे सूफियों के प्रेम की पीर को जगा कर उसे अत्यन्त ही लोकप्रिय बना दिया।

१. वही—पृष्ठ १११, पद २३०।

(ख) कबीर और उनके समकालीन सन्त कवि तथा सूफी अध्यात्म-दर्शन

हिन्दी के मध्ययुगीन सन्त कवियो मे अकबर अग्रगण्य हैं। अपने युग की अनेकानेक साधनाओ एव विचारधाराओ का सारमयी समन्वित रूप उनकी वाणी मे मिलता है। उन पर तथा समकालीन अन्य सन्तो पर तत्कालीन सूफीमत का भी विशेष प्रभाव दिखाई पड़ता है। हम यहाँ पर कबीर और रैदास की रचनाओं पर सूफी अध्यात्म-दर्शन के पड़े हुये प्रभाव पर विचार कर लेना ही पर्याप्त समझेंगे।

कबीर—कबीर और सूफीमत के अध्यात्म-दर्शन सम्बन्धी विचारों मे बहुत कुछ साम्य है। इसका प्रमुख कारण दोनो मतों की आधारशिला 'अद्वैतवाद' का होना है। जहाँ कबीर का कहना है :—

जल मे कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, इहि तथ कथ्यो ग्यानी ॥[1]

वहाँ सूफी कवि जायसी ने भी ईश्वर की इसी मान्यता को स्वीकार किया है :—

सातों दीप नव खण्ड, आठों दिसा जो आहि।
जो ब्रह्मड जो पिंड है, हेरत अंत न जाहि ॥[2]

कबीर पर सूफी प्रेम माधुर्य एवं विरह की आतुरता का भी प्रभाव पड़ा है। यह बात दूसरी है कि कबीर में सूफियो की भांति प्रेमोन्मादता का अभाव है। सूफी प्रेमानुभूति, भावना प्रधान है किन्तु कबीर का प्रेम संयमित और मर्यादित है। फिर भी प्रेम की मधुरता और विरह की आतुरता कबीर मे सूफियो से किसी भी अंश मे कम नही है। यद्यपि कबीर ने अपने एक पद में 'नारदीय भक्ति' का उल्लेख किया है[3] किन्तु केवल उतने से ही यह सिद्ध नही हो जाता कि वे उस प्रकार की भक्ति से व्यक्तिगत रूप से परिचित भी अवश्य रहे होंगे।

आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिये कबीर ने विभिन्न प्रतीकों, रूपकों, उलटबाँसियो का जो आश्रय ग्रहण किया है वह सूफी प्रेमाख्यानो मे व्यक्त प्रतीकात्मक योजनाओ का ही प्रभाव है। सूफियों के नफ्स, रुह, कल्ब, अक्ल, आदि योगपरक अभिव्यक्ति कबीर के यहाँ षट् चक्र, नौ द्वार, पंच चोर, त्रिनाड़ी, कुण्ड-

१. कबीर ग्रन्थावली—काशी संस्करण—पद ४४, पृष्ठ ८०।
२. अखरावट—जायसी—दोहा ८।
३. भगति नारदी मगन शरीरा, इहि विधि भवतिरि कहै कबीरा।
—कबीर ग्रंथावली - काशी संस्करण पदावली पद २७८, पृष्ठ १३६।

लिनी आदि के वर्णन के रूप मे दिखाई पड़ती है। कबीर सूफियों से इतना प्रभावित होने पर भी सूफी नही कहे जा सकते। उनका अद्वैतवाद व्यष्टि-मूलक है। कबीर जहां परम-तत्व को अपने अन्दर ही देखते हैं।[1] वहाँ सूफियों के प्रभु सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है।

त्रिभुवन पूरि अपूरी कै, एक जोति सभ ठाउं।
जोतिहि अनबन मूरति, मूरति अनबन नाउं ॥[2]

इस प्रकार कबीर जहाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' के समर्थक है सूफी कवि जायसी, मंझन आदि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' को मान्यता प्रदान करते है। कबीर सृष्टि, प्रकृति और माया को आध्यात्मिक साधना मे बाधक मानते है जब कि सूफी समस्त सृष्टि में प्रकृति भी जिसका अंग है खुदा का ही नूर देखते है। फिर भी यह कहना कि कबीर सूफियों से बिलकुल ही प्रभावित नही है न्याय-सगत नहीं होगा। वे भले ही साधना की भारतीय प्रणाली के पोषक है किन्तु उन पर सूफी अध्यात्म का निश्चय ही प्रभाव पडा है। सूफियो का दाम्पत्य प्रेम, योग-निष्ठा, गुरु महिमा, विरहानुभूतियाँ ये सभी कबीर की रचनाओ मे स्पष्ट दिखाई पड़ती है। अभिव्यक्ति के लिये प्रतीक योजनाओं, रूपको, उपमाओ आदि के प्रयोग भी कबीर ने सूफियों की भाँति ही किया है। हाँ, इतना अवश्य है कि सूफियों ने जहाँ मुक्तक और प्रेमाख्यान दोनो प्रकार की रचनाएँ की है वहाँ कबीर ने केवल मुक्तक साखियो और पदो के माध्यम से अपने विचारो को व्यक्त किया है।

रैदास—कबीर की शिष्य परम्परा में होने के कारण उन्ही की भाँति ही सन्त रैदास भी सूफी अध्यात्म-दर्शन से प्रभावित हैं। सूफियो की भाँति ही वे ईश्वर की सर्वव्यापकता पर आस्था रखते है—

सब में हरि है, हरि मे सब है, हरि अपनो जिन जाना।
साखी नही और कोइ दूसर, जाननहार समाना ॥[3]

प्रेम माधुर्य और विरहानुभूति भी रैदास जी की रचनाओ मे यत्र-तत्र अवश्य ही दिखलाई पड जाती है। फिर भी सन्त रैदास सूफी अध्यात्म-दर्शन से उतने प्रभावित नही है जितने इनके परवर्ती अन्य सन्त।

(ग) कबीर के परवर्ती अन्य संत संप्रदाय और सूफी अध्यात्म-दर्शन

कबीर के पश्चात् सन्त मत पर क्रमशः सूफियाना रग और भी गहरा

---

१. ज्यूं नैनों, मे पुतली, त्यूं खालिक घट माहि।
मूरखि लोग न जांणही, बाहरि ढूंढण जांहि ॥ —वही पृष्ठ ६४, साखी ७६६।

२ मंझन कृत मधुमालती—सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त, छन्द २, पृष्ठ ४।

३. रैदास जी की बानी, बे० प्रे० इलाहाबाद, पद १०, पृ० ६

चढ़ता गया। इस मत से प्रभावित सन्त सम्प्रदायों में सिक्ख सम्प्रदाय, दादू पन्थ निरंजनी सम्प्रदाय, सन्त सिंगा जी और उनका सम्प्रदाय तथा मलूकदास का पन्थ विशेष उल्लेखनीय है।

नानक और उनके परवर्ती सिक्ख गुरु—आन्तरिक अनुभूतियों की एकता के सम्बन्ध में 'मिस अंडरहिल' का कथन है कि 'कोई भी व्यक्ति सच्चाई से यह बात नहीं कह सकता कि ब्राह्मण, सूफी और ईसाई रहस्यवादियों मे कोई महान् अन्तर है।'[1] अतः गुरु नानक के उपदेश मे वही अनुभूति है जो हिन्दुओं के प्रस्थान त्रयी (उपनिषद् ब्रह्म सूत्र तथा गीता), मुसलमानों के कुरान और ईसाइयों के धार्मिक ग्रन्थ बाइबिल में मिलती है।[2] सिक्ख गुरु नानकदेव के रागात्मिका भक्ति में कबीर पन्थ, दादू पन्थ अथवा रैदास पन्थ की भाँति संकीर्णता नही आने पाई है। अतः यह पन्थ अन्य पन्थो की भाँति एक निश्चित सीमा के भीतर आबद्ध नहीं हो पाया है।

हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों में समन्वय स्थापित करना ही सिक्ख मत की सबसे बड़ी विशेषता है इसके लिये गुरु नानक ने दोनों धर्मों की अच्छाइयों को ग्रहण तथा वाह्याडम्बरों का विरोध किया। पंजाब में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष सम्भवतः सबसे अधिक था। इसीलिये उन्होने जहाँ एक ओर सच्चे मुसलमान बनने की विधि बताई वही दूसरी ओर यह भी स्पष्ट कर दिया कि सच्चा ब्राह्मण कौन है?[3] सिक्खो की इस समन्वयवादी प्रवृत्ति पर सूफियों के प्रभाव की स्पष्ट झलक मिलती है। परम तत्व सम्बन्धी सूफियो के विचारो मे भी सिक्ख गुरुओं का काफी मेल बैठता है। सिक्ख गुरुओ ने भी अवतारवाद का खण्डन तथा एकेश्वरवाद को मान्यता प्रदान की है।[4] परमात्मा के निर्गुण और सगुण स्वरूपो के अतिरिक्त उन्होंने उसके उभय स्वरूपों को भी स्पष्ट रूप मे माना है। गुरु अमरदास का कथन है—

निरगुण सरगुण आपे सोई। ततु पछाणै सो पंडित होई॥[5]

सिक्ख गुरुओ ने अपनी साधना मे भी सूफियों की भाँति ही दाम्पत्य-परक प्रतीकों के माध्यम से प्रेमाभक्ति को व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि जो स्त्री बेपरवाह पति परमात्मा को प्यारी होती है वही धन्य है वही सुहागिनी है। यथा—

---

१. दि हिन्दू व्यू आफ लाइफ, राधाकृष्णन्, पृ० ३४

२. नानक वाणी, सं० डा० जयराम मिश्र, भूमिका, पृ० १६

३. श्री गुरु ग्रंथ दर्शन, डा० जयराम मिश्र, पृ० ५७

४. साहिब मेरा एक है अवरु नहीं भाई॥३॥१८॥

—श्री गुरु ग्रंथ साहिब, आसा काफी महला १, पृ० ४२०

५. वही, माझ महला ३, पृ० १२८

नानक धनु सोहागणी, जो भावहि वेपरवाह ।[१]

सिक्ख गुरु अर्जुनदेव के बारहमासे में साधक का प्रभु-दर्शन के लिये मारा-मारा फिरना तथा सभी सुखों को त्याग 'वैरागिनि' होना प्रेम की आतुरता मे सूफियाना रंग का ही द्योतक है--

खोजत खोजत भई वैरागिनि । प्रभु दरसन कउ हउ फिरत तिसाई ।।[२]

सूफियों के 'प्रेम पियाला' की मादकता का रंग यदि कही सन्तों मे चढता दिखाई पड़ता है तो वह सिक्ख गुरुओ की ही वाणियो मे है । गुरु अमरदास परमात्मा की मदिरा के अमृत रस मे मतवाले होकर सासारिक विषय-वासनाओ की झूठी मदिरा को त्यागने का उपदेश देते है—

झूठा मदु मूलि न पीचई जे का पारि वसाइ ।
नानक नदरी सचु मद पाइऐ सति गुर मिलै जिसु आइ ।।[3]

सन्त दादूदयाल—सन्त कवियो की शृंखला मे दादूदयाल ही एक ऐसी कडी है जहाँ पर सन्तो की प्रेमाभक्ति पर प्रत्यक्ष सूफी प्रभाव पड़ा दिखाई पडता है । इसका प्रमुख कारण यह है कि सन्त दादूदयाल जी का अधिकाश समय सूफी सन्त बूढ़न के संसर्ग में बीता था । उनकी ईश्वर सम्बन्धी एकेश्वरवादी धारणा सूफियो मे बिलकुल ही मेल खाती है । आध्यात्मिक प्रेम को दाम्पत्य प्रेम के प्रतीक द्वारा व्यक्त करने की सूफी परम्परा को दादूदयाल ने भी अपनाया है । विरह की तीव्रता जिसके कारण जीवन का एक-एक क्षण एक-एक युग के समान हो गया है और जिसका बीतना कठिन है, दादू की इन वाणियों पर सूफी आध्यात्मिक प्रभाव ही है ।

पीव बिन पल पल जुग भया, कठिन दिवस क्यू जाइ ।
दादू दुखिया राम बिन, काल रूप सब खाइ ।।[४]

दादू भी सूफियों की भांति स्वर्ग अथवा मोक्ष के आकांक्षी नही हैं । परमात्मा में जीवात्मा का विलय ही इनका परम लक्ष्य है—

दादू जब दिलि मिली दयाल सौ तब सब पडदा दूरि ।
ऐसे मिलि एकै भया, बहु दीपक पावक पूरि ।।[५]

---

१. नानक वाणी, सं० डा० जयराम मिश्र, रागु मारु वार, महला १, सलोकु ५, पृ० ६६७

२. श्री गुरु ग्रंथ साहिब, राग गउड़ी पूरबी, महला ५, पृ० २०४

३. वही, बिहागड़े की वार, महला ३, पृ० ५५४

४. दादूदयाल, सं० आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, विरह को अंग, साखी १०, पृ० २६

५. वही, परचा को अंग, साखी २७६, पृ० ७६

प्रतीक उपमा दृष्टान्तों के माध्यम से सूफियों की भाँति ही आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति को सन्त दादूदयाल ने भी व्यक्त किया है। परमात्मा को प्रियतम और जीवात्मा को सुन्दरी की उपमा देकर वे दाम्पत्य परक ईश्वरीय प्रेम को स्पष्ट करते है—

ज्यों सुन्दरि मोहै पीव को, बहुत भाँति भरतार।
त्यू दादू रिझवै राम को, अनन्त कला करतार ॥[1]

सूफी प्रेमाख्यानों के षट् ऋतु वर्णन तथा बारहमासे के माध्यम से चित्रित विरह की भावपूर्ण आतुरता से प्रभावित हो सन्त दादूदयाल ने भी विरहानुभूति की प्रायः सभी अवस्थाओ को चित्रित किया है—

अजहुँ न निकसे प्राण कठोर।
दरसन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर।
चारि पहर चार्‌यू जुग बीते, रैनि गवाई मोर।
अवधि गई अजहूँ नहिं आये, कतहू रहै चितचोर॥
कबहू नेनि त्रिषि नहिं देखे, मारग चितवत तोर।
दादू ऐसे आतुर विरहनि, जैसे चन्द चकोर ॥[2]

इस प्रकार दादूदयाल सूफी अध्यात्म दर्शन के सिद्धान्त और साधना दोनों दृष्टियों से विशेष प्रभावित प्रतीत होते है।

रज्जब जी—रज्जब जो काव्य मे गुरु की महिमा, ईश्वरीय प्रेम की पीड़ा, विरह की आतुरता, परमात्मा की अद्वैतता (वहदानियत), अवतारवाद का खण्डन, मूर्ति पूजा का विरोध, वाह्य कर्मकाण्ड का निराकरण, जप (जिक्र) की प्रधानता, ऐहिकता (फना) की दिव्यता (वका) मेल, तन्यमता (हाल) का आनन्द, निर्धनता, दीनता, विनम्रता, निस्पृहता आदि प्रायः सभी सूफी साधना के तत्व विद्यमान है। सूफी मतानुसार पीर अथवा मुरशिद (गुरु) के बिना ईश्वरीय साधना पथ (राहे मारिफत) पर चलना असम्भव है। रज्जब जी भगवत् सिद्धि को हीरा मानते हैं हीरा कठोर वस्तु है गुरु उस वज्र में भी छेद कर देता है जिसमें शिष्य रूपी धागा आसानी से प्रविष्ट कर जाता है।[3] इसी तरह रज्जब जी ने स्थान स्थान पर परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित किया है जो सूफी इश्क

१. वही, सुन्दरि को अंग, साखी २४, पृ० २८१

२. वही, पद, राग गौड़ी ५, पृ० ३१०

३. हरि सिद्धी हीरा मयी, व्रज न बेधा जाय।
तहां गुरू गैला किया, तब सिख सूत समाय॥
—रज्जब वाणी, डा० ब्रजलाल वर्मा, गुरुदेव को अंग, साखी १८, पृ० ३

हकीकी से बिलकुल मेल खाता है। उनके अनुसार जीवात्मा ब्रह्म रूपी पति की पतिव्रता स्त्री है। कोई भी स्त्री पतिव्रत धर्म का निर्वाह करके ही अपने पति को अपना बना सकती है। एक ब्रह्म की प्राप्ति से ही विश्व के सारे ऐश्वर्य अपने आप ही उसे प्राप्त हो जाते हैं किन्तु बिना उसके कुछ भी हाथ नहीं लगता। आशिक तथा पतिव्रता स्त्री को न दोजख का खौफ होता है और न वहिश्त की हविश। उसका मन तो सदैव अपने प्रिय मे आसक्त रहता है।

> दोजख भिस्तंहि क्या करै, जो अल्लह के यार।
> रज्जब राजी एक सौ, कामिनि इहै करार॥
> भिस्त न भावै आसिकूं, दिन दूनी रुचि नाहि।
> रज्जब रातें रब्ब सो, येक बस्या मन माहि॥[1]

रज्जब जी के काव्य मे सूफी विरह की तड़पन के साक्षात् दर्शन होते है। प्रियतम के अभाव में प्रेमी को कोई भी ऋतु अच्छी नही लगती। विरह रूपी नाग के दंशन कर लेने पर कोई मन्त्र या जड़ी व्यर्थ हो जाती है। सूफी विरहानुभूति की अवस्थाएँ रज्जब जी के 'विरह का अंग' में पूर्णतया देखी जा सकती हैं। उनका विरही विरह में ही आनन्द का अनुभव करता है बिना विरह के वह इस प्रकार मर जाता है जैसे चूने के कंकड पर जल पड जाने से वह मर जाता है।[2] रज्जब जी के सम्पूर्ण साहित्य मे सूफी साधना का विरह तत्व व्यक्त किया गया है जिसके लिये अलग से एक स्वतन्त्र प्रबन्ध लिखा जा सकता है। रज्जब जी के साहित्य पर सूफी प्रभाव को लेकर डा० ब्रजलाल वर्मा ने अपने प्रबन्ध 'सन्त कवि रज्जब-सम्प्रदाय और साहित्य' मे विस्तार से प्रकाश डाला है। सूफी साधना का मूल केन्द्र प्रेम है और वह प्रेम ईश्वर के प्रति होता है। इसी प्रेम-साधना को सन्तो के यहाँ 'भक्ति' नाम से पुकारा गया है जो रज्जब जी के काव्य मे पूर्णतया दृष्टिगोचर होता है। सूफियो के यहाँ स्थूल के प्रति विराग तथा सूक्ष्म के प्रति रुचि देखी जाती है। इसका प्रभाव भी रज्जब जी के काव्य पर पड़ा है। वे अव्यक्त, अगोचर, निराकार, निर्गुण ब्रह्म की उपासना मे विश्वास करते है

सुन्दरदास सुन्दरदास जी ने अपने समय की सारी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुये हिन्दू-मुसलमानो के पारस्परिक मतभेद को मिटाने के लिये समन्वय-वादी दृष्टिकोण को अपनाया, तथा राम और रहीम की एकता पर जोर दिया।

---

१. वही, पतिव्रता को अंग, साखी १३, १४, पृ० १४५

२. बिरहीः स्यावति विरह मै, बिरह बिना मरि जाइ।
ज्यू चूने का काकरा, रज्जब जल मिलि राइ॥
——रज्जब बाणी, स० डा० ब्रजलाल वर्मा, विरह को अंग, साखी ४८, पृ० ३२

मूर्ति पूजा तथा साधना के बाह्याडम्बरों का खण्डन किया। ईश्वर की अद्वैतता स्वीकार की। योग-साधना द्वारा अन्तः शुद्धि पर जोर दिया। सुन्दरदास की ये सभी बातें सूफी साधना से बहुत कुछ मेल खाती है। सूफी साधना के प्राण 'प्रेम' और 'विरह' ये दोनो सुन्दरदास जी की रचनाओ में भली-भाँति दृष्टिगोचर हो रहे है : साधना के क्षेत्र में असफलता, निराशा प्रियतम प्राप्ति के विलम्ब के कारण उत्पन्न विरह की आतुरता का चित्रण सुन्दरदास के शब्दों मे देखिये—

हो वैरागी राम तजि किहि देश गये।
ता दिन तै मोहि कल न परत है, परबसि प्रान भये।
भूप पियास नीद नहिं आवै, नैननि नेम लये।
अजन मंजन सुधि सब बिसरी, नख शिख विरह तये॥
आपु कृपा करि दरसन दीजै, तुम कौने रिझये।
सुंदर बिरहनि, तब सुख पावै, दिन दिन नेह नये॥[1]

यद्यपि सुन्दरदास जी सूफियो के सिद्धान्त और साधना पक्ष से प्रभावित होकर गुरु महिमा, ईश्वर की अद्वैतता, सर्वव्यापकता आदि को स्वीकार करते है तथा साधना मे प्रेम और विरह का सूफी ढंग से अत्यन्त ही उत्कृष्ट चित्रण करते है फिर भी जहाँ तक अभिव्यक्ति का प्रश्न है वे सूफियो से सर्वथा भिन्न है। सूफी संत जहाँ नारी को परम-सौन्दर्य का प्रतीक मानकर उसमें ईश्वर का आरोप करते है, सुन्दरदास नारी को निकृष्ट नरक की खान बतलाते है।

उदर में नरक, नरक अध द्वारिन मे,
कुचन मे नरक, नरक भरी छातिन है।
कंठ में नरक, गाल चिबुक नरक चित्र,
मुख मे नरक जीभ लारहुं चुवाती है॥
नाक मे नरक, आंगि कान मे नरक बहै,
हाथ पाँव नख शिख नरक दिषाती है।
सुन्दर कहत नरक को कुड यह,
नरक में जाइ परै सो नरक पाती है॥[2]

सुन्दरदास जी ने निर्गुण ब्रह्म को छोड़कर अन्य देवी-देवताओ की उपासना मे रत रहने की क्रिया को व्यभिचार माना है। आध्यात्मिक प्रेम की सफलता में कवि सुन्दरदास जी ने पतिव्रता की महत्ता स्वीकार की है—

---

१. सुन्दर दर्शन, डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित, पृ० २६७
२. वही, पृ० २७८

सुन्दर रीझै राम जी, जाके पतिव्रत होइ।
रुलत फिरै ठिक बाहरी, ठौर न पावै कोई ॥[1]

निरंजनी सन्त—हरिदास एवं तुरसीदास—कबीर, दादू और रज्जब आदि सन्तों की भाँति सूफी अध्यात्म-दर्शन का प्रभाव निरंजनी सम्प्रदाय के सन्त हरिदास और तुरसीदास पर भी पडा दिखाई पड़ता है। दोनो सूफियो के मतानुसार निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर विश्वास करते हैं। गुरु महिमा, ईश्वर की अद्वैतता, प्रेम और विरह की आतुरता आदि का चित्रण इनकी रचनाओं मे ठीक सूफियो की भाँति ही दिखाई पड़ता है। ईश्वर को अगम्य और सबसे दूर मानते हुये निरंजनी सन्त हरिदास जी सत् गुरु की कृपा से ही उसकी प्राप्ति सम्भव मानते है—

जन हरिदास अवगति अगम, रहै सकल तै दूरि।
सत गुरु रहे तो पाइए, हरि जहां तहा भर पूरि ॥[2]

वे हिन्दू मुसलमानो की संकीर्णता से ऊपर उठकर उनके बाह्याडम्बरो का विरोध करते है तथा अन्तःसाधना पर बल देते है[3] विरह की महत्ता को स्वीकार करते हुये हरिदास जी कहते है—

विरह मंढी मैं पेस करि, दह दिसि दीन्ही आगि।
जीव लगया पणि पीव कै, रही निरन्तर लागि ॥
रही निरन्तर लागि आन चित वोट न धारी।
प्रगट जली मैदानि, लोक लज्जा सब डारी ॥
जन हरिदास पिव का विरह, तहा बसै धसि जागि।
विरह मंढी मै पैसिकर, दह दिसि दीन्हो आग ॥[4]

सूफियों की विरह की आकुलता निरंजनी सन्त हरिदास जी की इस वाणी मे देखी जा सकती है---

---

१. सुन्दर दर्शन, डॉ० त्रिलोकी नारायण दीक्षित, पृ० २८२
२. श्री महाराज हरिदास जी की वाणी, सं० मगलदास स्वामी, ब्रह्मस्तुति, पद ३३, पृ० ६
३. हिन्दू चाल्यां तीरथां, तुरक पीर तहां जांहि।
दिल माही दीदार था, गोता मार्या नांहि ॥
—श्री महाराज हरिदास जी की वाणी, अथ निरपख मूल जोग ग्रन्थ, साखी, पृ० ४३
४. „, अथ ग्यान विरह को अंग, छन्द १६, पृ० ३०३

विकल भई विलंबै कहां, ताला बेली जीव।
हरिदास जन विरहिणी, मिलो सनेही पींव॥[१]

प्रेम और विरह की यह आतुरता हरिदास जी की अपेक्षा तुरसीदास जी में कहीं अधिक मात्रा में चित्रित की गई है। तुरसीदास के इन वेदनात्मक गीतों में वेदना का सम्बन्ध सूफियों की विरहानुभूति की भाँति ही परम आनन्ददायिनी है एकनिष्ठा पतिव्रता नारी की भाँति साधक बिना भगवान के प्राण त्याग देने का निश्चय करता है। रात-दिन उसे चैन नहीं है। शरीर पीला पड़ गया है। सारे शरीर में पीड़ा उत्पन्न हो गई है। उपचार के लिये कोई औषधि भी नहीं है। प्रियतम के विरह में पागल होकर वह वन-वन में ढूंढ रहा है। यथा—

पीय बिना पियरी भई, सरब विथा तन छाई।
औषधि कछु न संचरै, मोंहि लागि बौराई॥
विकल ह्वै वन वन फिरी हूँ, टेरि सुनि धाई।
जन तुरसी प्रभु मिलै हंसि के, सकल सुषदाई॥[२]

इसी प्रकार सन्त तुरसीदास सूफियों के गुरु महत्व,[३] जिक्र, विराग, दीनता, प्रभु के प्रति माधुर्य प्रेम भाव आदि से भी पूर्णतया प्रभावित प्रतीत हो रहे है।

सिंगा जी—यद्यपि सन्त सिंगा जी ने अनेक विचारों और साधना पद्धतियो से उपयोगी तत्व लेकर उनका समन्वय किया है फिर भी उसमें उनकी मौलिकता अक्षुण्ण है। उनकी वाणियो मे निर्गुण ब्रह्म निरूपण, ज्ञान की प्रधानता, भक्ति की प्रधानता, योग की प्रशंसा वाह्याडम्बर की निंदा के साथ-साथ संसार की नश्वरता के प्रति उद्‌बोधक संदेश मिलते है।[४] इनकी साधना-पद्धति भारतीय साधना पर आधारित है। वे कबीर और दादू के समान निर्गुण मतवादी ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। पूर्ण रूप से तो नही कहा जा सकता फिर भी इन पर सूफी अध्यात्म-दर्शन का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य पड़ा है। सूफियो की भाँति सिंगा जी ने गुरु महिमा को स्वीकार किया है। वे कहते हैं—

---

१. श्री महाराज हरिदास जी की वाणी, अथ विरह कौ अंग, साखी ३, पृ० ३५६
२. निरंजनी सम्प्रदाय और सन्त तुरसीदास निरंजनी, डॉ० भगीरथ मिश्र, पृष्ठ १०७
३. पारसइ ते परम गुरु, तुरसी अधिक प्रवान।
पारस धातहिं कनक करि, गुर करै आप समान॥
—वही, तुरसीदास जी की बानी, पद ४, पृ० १२३
४. निमाड़ के सन्त कवि सिंगा जी, रमेशचन्द गंगराडे, पृ० १३४, १३५

तीन लोक में सत गुर दाता। जाकी माया सब जुग खाता ॥
सतगुर है देवन के देवा। आजरा आमरा जाकी सेवा ॥[1]

सन्त सिंगा जी की वाणियों में ईश्वर के निराकार रूप की कल्पना की गई है। साधना में जीवात्मा और परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्धों में 'दाम्पत्य प्रेम' का तो स्पष्ट उल्लेख नहीं दिखाई पड़ता, किन्तु भक्ति में प्रेम तत्व की प्रधानता है। ईश्वर के प्रति एकनिष्ठा है जिस पर सूफी प्रेम साधना की अप्रत्यक्ष छाप हो सकती है। वे सूफियों की भांति ही मोक्ष अथवा स्वर्ग के आकांक्षी नही हैं। उनकी साधना का परम लक्ष्य ईश्वर में एकाकार हो जाना मात्र है। वे कहते हैं—

कोई कछु कहै मन लागा।
मेरा मन लागा सत्त नाम से, हटकट लोग अभागा ॥
जरते अगन मे कंचन डारा, सोने में डारा सुहागा।
हंस की चाल हंस पहचाने, क्या जाने कारो कागा ॥
कहैं जन सिंघा जी, सुनो भाई साधू, जीव ब्रह्म हो जायगा ॥[2]

फिर भी यह स्पष्ट है कि सन्त सिंगा जी भारतीय साधना-पद्धति से ही विशेष प्रभावित हैं। इन पर नाथ और सिद्धों की साधनाओं का विशेष प्रभाव है। कबीर और दादू की भांति सूफी अध्यात्म-दर्शन को प्रत्यक्ष ग्रहण करने में इनका दृष्टिकोण समर्थ नहीं हो सकता है।

मलूकदास—हमारे आलोच्य काल के अन्तिम सन्त कवि मलूकदास भी सूफियों की भांति अद्वैतवादी है। इन्हे एकेश्वरवाद पर पूर्ण आस्था है। इनका एकनिष्ठ प्रेम देखिये—

हरि हजरत मोहि माधव मुकुंद की सौं,
छाड़ि केसव राय मेरो दूसरो न कोई है।[3]

सूफी कवियों के प्रेम प्याले का आनन्द सन्त मलूकदास ने भी लेने की चेष्टा की है। इस कठिन प्रेम के प्याले को प्रभु के हाथों से ही पीने में ये आनन्द का अनुभव करते हैं।[4] वे ईश्वरीय प्रेम का प्रचार करना अनावश्यक मानते हैं। प्रेम को वे अत्यन्त ही गोपनीय रखना चाहते हैं। यथा—

---

१. वही, सिंगा जी की परचुरी, छन्द ८, पृ० ८१
२. वही, सिंघा पदावली, पद ५२, पृ० ५४
३. मलूकदास जी की बानी, बे० प्रे० प्रयाग, कवित्त ५, पृ० २८
४. कठिन पियाला प्रेम का, पिये जो हरि के हाथ।
तारों जुग माता रहे, उतरै जिय के साथ ॥
—मलूकदास जी की बानी, प्रेम साखी २८, पृ० ३४

सुमिरन ऐसा कीजिये, दूजा लखैं न कोय।
ओंठ न फरकन देखिये, प्रेम राखिये गोय ॥[1]

सूफियों के माधुर्य एवं आशंकाओं का चित्रण भी मलूकदास की रचनाओं में प्रतीक योजनाओं के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

रात न आवै नींदड़ो, थर थर कांपे जीव।
ना जानूं क्या करैगा, जालिम मेरा पीव ॥[2]

सूफियो की भांति प्रेम साधना के माधुर्य से प्रभावित होने पर भी वे नारी के सौन्दर्य को ईश्वरीय सौन्दर्य का प्रतीक न मानकर माया का रूप मानते है। वे परम-सौन्दर्य रूपी नारी में ईश्वरीय तत्व की सूफी स्थापना से सहमत नहीं हैं।

नारी घोंटी अमल की, अमली सब संसार।
कोइ ऐसा 'सूफी' ना मिला, जो संग उतरे पार ॥[3]

फिर भी गुरु महिमा, विनय, सदाचार आदि को मलूकदास जी ने सूफियों की ही भाति मान्यता प्रदान की है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सन्तों पर सूफी मत का प्रभाव दो प्रकार का है। कुछ प्रभाव तो ऐसा है जो सामान्यत: प्राय: सभी सन्तों पर पड़ गया है और वह सन्त साहित्य मे इतना घुल पच गया है कि उसकी निजी सम्पत्ति-सा बन गया है। इसके विपरीत यही सूफी प्रभाव कुछ विशेष सन्तो पर अन्य सन्तों की अपेक्षा बहुत अधिक पड़ गया है।

जहाँ तक सामान्य प्रभाव का प्रश्न है सूफियों के दाम्पत्य प्रेम का प्रभाव प्राय: सभी सन्तो पर पड गया है। सूफियों ने 'इश्क मजाजी' को 'इश्क हकीकी' तक पहुँचने का सोपान माना है। सन्तों ने भी इसे पूर्णत: तो नहीं किन्तु अंशत: स्वीकार किया है। अंतर केवल इतना ही है कि सन्तो में जीवात्मा को जहाँ पत्नी तथा परमात्मा को पति माना गया है सूफियों के यहां ठीक इसका उलटा परमात्मा को स्त्री और जीवात्मा को पत्नी माना गया है। संभवत: इसका यह कारण हो सकता है कि सन्त धारा भारतीय मत के समीप है जिसमें ब्रह्म पुरुष माना गया है।[4] सूफियों के इश्क मजाजी में नायक, नायिका जहा लौकिक प्राणी

---

१. वही, गुप्त महिमा, साखी ४०, पृ० ३५
२. वही, प्रेम साखी ३०, पृ० ३५
३. मलूकदास जी की बानी—बे० प्रे० प्रयाग—माया साखी—७४, पृष्ठ ३६।
४. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास—भाग ४, सं० परशुराम चतुर्वेदी, पृ० ४१५।

हैं वहां सन्तों के यहाँ प्रेम पात्र कोई लौकिक पुरुष न होकर एकमात्र ईश्वर को ही पति रूप में चित्रित किया गया है।

सूफियों के प्रेम की मादकता का भी प्रभाव प्रायः सभी सन्तों पर कुछ न कुछ अवश्य पड़ा है। सूफियों ने प्रेम की पीर को ब्रह्म प्राप्ति में अत्यन्त ही महत्व दिया है। उनकी यह विरहानुभूति की तीव्रता सन्तों में भी सामान्य रूप से देखने को मिलती है। यद्यपि 'नारद भक्ति सूत्र' में 'परमविरहासक्ति' रूप में इसका संकेत अवश्य मिलता है किन्तु सन्तों की यह विरहानुभूति 'नारद भक्ति सूत्र' से प्रभावित नहीं कही जा सकती, क्योंकि सन्तों का शास्त्रीय ज्ञान अत्यन्त ही सीमित था इस कारण भारतीय साहित्य से इस प्रकार के प्रभाव पड़ने की बहुत ही सम्भावना है। निश्चय ही सूफी सत्संग से ही सन्तों ने इस प्रेम की पीर को अपनाया होगा।

सन्तों में भावात्मक रहस्यवाद की जो झलक मिलती है वह भी सूफियों की ही देन है। जिससे दादू, रज्जब, तुरसीदास निरंजनी आदि विशेष प्रभावित हैं। सन्त साहित्य में प्याला, खुमार, इश्क आदि कुछ पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग भी सूफी प्रभाव के ही द्योतक है। सूफियों ने अपनी दिव्य स्थितियों के चित्रण में प्रेमाख्यानों के माध्यम से प्रतीक योजनाओं का जो आश्रय लिया उसे भी सन्तों ने बड़ी ही सफलता से अपने मुक्तक गेय पदों में अपनाया है।

इस सम्बन्ध में जैसा कि पहले भी संकेत किया गया है एक बात और भी यह उल्लेखनीय है कि सूफी अध्यात्म-दर्शन का प्रभाव सन्त कवियो मे कबीर और दादू, नानक पर तो सीधे पडा है किन्तु शेष अन्य कवियो पर यह उनकी गुरु परम्परा से पड़ा हुआ जान पड़ता है। इस कथन का आधार यह है कि प्रायः सभी सन्तों की वाणियों में प्रेम और विरह सम्बन्धी उक्तियां कबीर, दादू और नानक की उक्तियो मे न केवल भाव-साम्य रखती है, बल्कि उनमे शब्द-साम्य और भाषा-साम्य भी दृष्टिगोचर होता है।

इस प्रकार मध्यकालीन हिन्दी सन्त काव्य उस अगाध उदार सागर की भांति परिपूर्ण है जिसमें नाना धर्मों और सम्प्रदायों के गुणो की सरिताएँ आकर मिलती है, साथ ही सूफी मत रूपी महानद का प्रेम जल भी इसी मे आकर विलीन होता है जिसके लिये मध्यकालीन हिन्दी सन्त साहित्य निश्चय ही सूफी अध्यात्म-दर्शन का ऋणी कहा जायेगा, इसमे कोई संदेह नहीं।

— — —

परिशिष्ट

(सहायक ग्रंथ की सूची)

(क) हिन्दी सहायक ग्रंथ

अथर्ववेद —सं० श्रीराम शर्मा आचार्य—संस्कृति संस्थान बरेली।

अनुराग बांसुरी (नूर मुहम्मद) —सं० चन्द्रबली पाण्डेय तथा पं० रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (२००० वि०)।

अपभ्रंश और हिन्दी में जैन रहस्यवाद —डा० वासुदेव सिंह–समकालीन प्रकाशन, वाराणसी (सं० २०२२ वि०)।

आदि तुर्क कालीन भारत —अतहर अब्बास रिजवी—(सन् १९५६ ई०)।

इस्लाम के सूफी साधक —अनु० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी–मित्र प्रकाशन, प्रयाग।

ईरान के सूफी कवि —बांके बिहारी तथा कन्हैया लाल—भारती भंडार लीडर प्रेस इलाहाबाद।

ईश्वरदास कृत सत्यवती कथा तथा अन्य कृतियां —विद्या मंदिर प्रकाशन—ग्वालियर।

ईशावास्योपनिषद् —गीता प्रेस, गोरखपुर।

उत्तरी भारत की सन्त परम्परा —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—भारती भंडार लीडर प्रेस इलाहाबाद। द्वितीय संस्करण सं० २०२१ वि०।

उर्दू साहित्य का इतिहास —एजाज हुसैन—राजकमल प्रकाशन दिल्ली (१९५७ ई०)।

उर्दू साहित्य का इतिहास —ब्रज रत्न दास—हिन्दी साहित्य कुटीर काशी (सं० २००७ वि०)।

ऋग्वेद (चार खंडों में) —संस्कृति संस्थान बरेली (सन् १९६२ ई०)।

ऐतरेयोपनिषद् —गीता प्रेस, गोरखपुर।

कठोपनिषद् —गीता प्रेस, गोरखपुर।

कबीर और जायसी का रहस्यवाद और तुलनात्मक विवेचन —डा० गोविंद त्रिगुणायत, साहित्य सदन देहरादून।

कबीर ग्रंथावली —सं० डा० पारस नाथ तिवारी–हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय (सन् १९६१ ई०)।

कबीर ग्रंथावली —सं० डा० माता प्रसाद गुप्त—प्रामाणिक प्रकाशन आगरा (सन् १९६९ ई०)।

कबीर ग्रन्थावली —सं० श्याम सुन्दर दास—नागरी प्रचारिणी सभा काशी (सं० २०२१ वि०)।

कबीर —डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी—हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बम्बई (सन् १९५५ ई०)।

कबीर साखी संग्रह —बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स इलाहाबाद।

कबीर साहित्य का अध्ययन —पुरुषोत्तम लाल श्रीवास्तव—साहित्यरत्न कार्यालय बनारस (सं० २००८ वि०)।

कबीर साहित्य की परख —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—भारती भण्डार—लीडर प्रेस, इलाहाबाद (सं० २०११ वि०)।

काम कंदला प्रबन्धम् —गायकवाड़ ओरियन्टल सिरीज बड़ौदा।

कुतुबन कृत मिरगावती —डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त—वाराणसी (सन् १९६७ ई०)।

कुतुबन कृत मृगावती —डॉ० माता प्रसाद गुप्त—आगरा (सन् १९६८ ई०)।

कुतुबन कृत मृगावती —डॉ० शिवगोपाल मिश्र—हि० सा० स० प्रयाग (शक १८८५)।

कुतुब शतक और उसकी हिन्दुई —डॉ० माता प्रसाद गुप्त—भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, कलकत्ता (सन् १९६७ ई०)।

कुरान मजीद —मकतबा अलहसनात रामपुर उ० प्र० (सन् १९६६ ई०)।

केनोपनिषद् —गीता प्रेस, गोरखपुर।

खालिकबारी (अमीर खुसरो) —सं० श्रीराम शर्मा—का० ना० प्र० सभा (सं० २०२१ वि०)।

खुसरो की हिन्दी कविता —ब्रजरत्न दास ना० प्र० सभा काशी (सं० २०१० वि०)।

चित्रावली (उसमान) —सं० जगन्मोहन वर्मा—ना० प्र० सभा काशी।

छान्दोग्योपनिषद् —गीता प्रेस, गोरखपुर।

छिताई वार्त्ता (नारायण दास) —सं० माता प्रसाद गुप्त ना० प्र० सभा काशी (२०१५ वि०)।

जायसी का पद्मावत —डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत—अशोक प्रकाशन दिल्ली (सन् १९६३ ई०)।

जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य —डॉ० सरला शुक्ल—लखनऊ विश्वविद्यालय (सं० २०१३ वि०)।

जायसी ग्रन्थावली —सं० रामचन्द्र शुक्ल ना० प्र० सभा काशी (२०१३ वि०)।

ढोला मारू रा दूहा —सं० राम सिंह सूर्य किरण पारिक—नागरी प्रचारिणी सभा काशी (सं० २०१६ वि०)।

तसव्वुफ अथवा सूफीमत —सं० चन्द्रबली पाण्डेय—सरस्वती मन्दिर बनारस, तृतीय संस्करण (सन् १९६६ ई०)।

तैत्तिरीयोपनिषद् —गीता प्रेस, गोरखपुर।

दक्खिनी का गद्य और पद्य — हिन्दी प्रचारक सभा, हैदराबाद।

दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास—श्रीराम शर्मा—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग (सन् १९६४ ई०)।

दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा —सं० पं० राहुल सांकृत्यायन—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पटना (१९५९ ई०)।

दक्खिनी हिन्दी —बाबू राम सक्सेना हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद (सन् १९५२ ई०)।

दाऊद कृत चांदायन — डॉ० परमेश्वरी लाल गुप्त बम्बई (सन् १९६४ ई०)।

दाऊद कृत चांदायन —डॉ० माता प्रसाद गुप्त—आगरा (सन् १९६७ ई०)।

दादू —आचार्य क्षितिमोहन सेन—शान्ति निकेतन कलकत्ता।

दादूदयाल —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, ना० प्र० सभा काशी (२०२३ वि०)।

दामो रचित लखमसेन पद्मावती कथा —सं० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी—परिमल प्रकाशन प्रयाग, सन् १९५९ ई०।

दोहावली —गोस्वामी तुलसीदास—गीता प्रेस, गोरखपुर।

नन्ददास ग्रन्थावली —सं० ब्रजरत्न दास—काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

नानक वाणी —डॉ० जयराम मिश्र—मित्र प्रकाशन प्रयाग (सं० २०१८ वि०)।

निमाड के सन्त कवि सिंगाजी —डॉ० रमेशचंद गंगराडे—हि० सा० भंडार लखनऊ १९६६ ई०।

निर्गुण काव्य-दर्शन —श्री सिद्धिनाथ तिवारी-अजंता प्रेस पटना १९५३ ई०।

पद्मावत का ऐतिहासिक आधार —इलाचंद नारंग-हिन्दी भवन इलाहाबाद १९५६ ई०।

पद्मावत का काव्य-सौंदर्य —डॉ० शिव सहाय पाठक हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर बम्बई (सन १९५६ ई०)।

पद्मावत (जायसी कृत) —सं० डॉ० माता प्रसाद गुप्त—इलाहाबाद (सन् १९६३ ई०)।

पद्मावत (जायसी कृत) —व्याख्या डा० वासुदेव शरण अग्रवाल-झांसी २०१२ वि०।

पदमावत-सार —इलाचन्द नारंग हिन्दी भवन, इलाहाबाद, १९५३ ई०।

परिचयी साहित्य —डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित—लखनऊ विश्वविद्यालय प्रकाशन (सन् १९५७ ई०)।

पलटू साहब की बानी —बेलविडियर प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद।

पुहुकर कृत रस रतन —डा० शिवप्रसाद सिंह—ना० प्र० सभा काशी २०२० वि०।

प्रश्नोपनिषद —गीता प्रेस, गोरखपुर।

प्रेम दर्शनम् (नारद भक्ति सूत्र) —गीता प्रेस, गोरखपुर।

फारसी साहित्य की रूपरेखा —अली असगर हिकमत—हिन्दी प्रचारक वाराणसी (सन् १९५७ ई०)।

बेलि क्रिसन रुक्मिणी री — विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर।

बृहदारण्यकोपनिषद् —गीता प्रेस, गोरखपुर।

भक्ति काव्य में रहस्यवाद —रामनारायण पाण्डेय—दिल्ली (सन् १९६६ ई०)।

भागवत् सम्प्रदाय —बलदेव उपाध्याय।

भारतीय प्रतीक विद्या —जनार्दन मिश्र—पटना (सन् १९५९ ई०)।

भारतीय प्रेमाख्यान काव्य —डा० हरिकान्त श्रीवास्तव-हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी (सन् १९६१ ई०)।

भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—इलाहाबाद १९५६ ई०।

भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएं —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी।

मंझन कृत मधुमालती —सं० डा० माताप्रसाद गुप्त—मित्र प्रकाशन इलाहाबाद (सन् १९६१ ई०)।

मंझन कृत मधुमालती —सं० डा० शिवगोपाल मिश्र—हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी (सन् १९६५ ई०)।

मंझन का सौन्दर्य-दर्शन — लालता प्रसाद सक्सेना—आत्माराम एण्ड संस दिल्ली (सन् १९६६ ई०)।

मध्यकालीन प्रेम-साधना —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी-साहित्य भवन प्रा० लि० इलाहाबाद (सन् १९५७ ई०)।

मध्यकालीन संत साहित्य —डा० रामखेलावन पाण्डेय—वाराणसी १९६५ ई०।

मध्यकालीन हिन्दी संत साहित्य —डा० केशनी प्रसाद चौरसिया—इलाहाबाद—१९६५ ई०।

विचार और साधना —(हिन्दुस्तानी एकेडेमी)

मध्ययुगीन प्रेमाख्यान —डा० श्याममनोहर पाण्डेय—इलाहाबाद १९६१ ई० ।

मनुस्मृति — चौखंभा संस्कृत सिरीज आफिस वाराणसी २०२१ वि० ।

महर्षि पतंजलि कृत योगदर्शन —गीता प्रेस, गोरखपुर ।

महाभारत —गीता प्रेस, गोरखपुर ।

माण्डुकोपनिषद् — गीता प्रेस, गोरखपुर ।

मुण्डकोपनिषद् —गीता प्रेस, गोरखपुर ।

मुगल कालीन भारत —सैयद अतर अब्बास रिजवी ।

यजुर्वेद —संस्कृति संस्थान बरेली (सन् १९६२ ई०) ।

योग प्रवाह —डा० सम्पूर्णानन्द—काशी विद्यापीठ प्रकाशन २००३ वि० ।

रज्जब वाणी —सं० ब्रजलाल वर्मा—उपमा प्रकाशन कानपुर—१९६३ ई० ।

रहस्यवाद —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी—पटना (सन् १९६३ ई०) ।

रहस्यवाद —राममूर्ति त्रिपाठी—दिल्ली (सन् १९६६ ई०) ।

राजस्थान एवं गुजरात के मध्यकालीन संत एवं भक्त कवि —डा० मदन कुमार जानी—जवाहर पुस्तकालय, मथुरा (प्रथम संस्करण)

रामानन्द सम्प्रदाय — डा० बदरी नारायण श्रीवास्तव—हिन्दी परिषद प्रयाग विश्वविद्यालय (सन् १९५७ ई०) ।

वजही कृत कुतुब मुश्तरी —सं० डा० विमला व्याघ्रे हैदराबाद (सन् १९५४ ई०) ।

वजही कृत सबरस —श्रीराम शर्मा—हैदराबाद (सन् १९५५ ई०) ।

वैष्णव धर्म —आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ।

शंकराचार्य —बलदेव उपाध्याय

श्री गुरु ग्रन्थ दर्शन —डा० जयराम मिश्र—साहित्य भवन इलाहाबाद १९६० ई० ।

श्री गुरु ग्रंथ साहिब —शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी अमृतसर १९५१ ई० ।

श्रीमद्भगवद्गीता —गीता प्रेस, गोरखपुर ।

श्रीमद्भागवत् पुराण भाग १, २ —गीता प्रेस, गोरखपुर।

श्री महाराज हरिदास जी निरंजनी की वाणी —सं० मंगलदास स्वामी–दादू महाविद्यालय मोतिगरी रोड, जयपुर (सन् १९६२ ई०) ।

सन्त कबीर —डा० रामकुमार वर्मा—साहित्य भवन इलाहाबाद (सन् १९६६ ई०) ।

सन्त कवि रज्जब–सम्प्रदाय और साहित्य —डा० ब्रजलाल वर्मा राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (सन् १९६५ ई०) ।

सन्त काव्य —परशुराम चतुर्वेदी—किताब महल, इलाहाबाद १९६७ ई० ।

सन्त मत में साधना का स्वरूप —प्रताप सिंह चौहान—प्रत्यूष प्रकाशन कानपुर १९६१ ई० ।

सन्त सिंगा जी एक अध्ययन —रामनारायण उपाध्याय—खंडवा (सन् १९६५ ई०) ।

संस्कृति के चार अध्याय —डा० रामधारी सिंह दिनकर— उदयाचल पटना १९६२ ई० ।

सधारु कृत प्रद्युम्न चरित —सं० चैनसुखदास न्याय तीर्थ एवं कस्तूर चन्द कांवलीवाल ।

साधन कृत मैना सत —सं० हरिहरनाथ द्विवेदी—विद्या मन्दिर ग्वालियर १९५९ ई० ।

सुन्दर ग्रंथावली —सं० हरिनारायण शर्मा—राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता ।

सुन्दर दर्शन —डा० त्रिलोकी नारायण दीक्षित—इलाहाबाद १९६० ई० ।

सुन्दर सार —सं० पुरोहित हरिनारायण—ना० प्र० सभा काशी १९२८ ई० ।

सूफी काव्य-विमर्श —डा० श्याम मनोहर पाण्डेय—विनोद प्रकाशन आगरा (सन् १९६८ ई०) ।

सूफी-काव्य-संग्रह —परशुराम चतुर्वेदी–हि० सा० सम्मेलन, प्रयाग—सं० २००० वि०।

सूफी मत और हिन्दी साहित्य —डा० विमल कुमार जैन—आत्मा राम एण्ड सन्स दिल्ली (सन् १६५५ ई०)।

सूफी मत साधना और साहित्य —डा० रामपूजन तिवारी—ज्ञान मण्डल वाराणसी २०१३ वि०।

सूफी महाकवि–जायसी —डा० जयदेव—भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ १६६६ ई०।

सूफी सन्त चरित —सस्ता साहित्य मण्डल (सन १६६१ ई०)।

सूफी सन्त मिर्जा मजहर जानजाना —मुहम्मद उमर भारत प्रकाशन मन्दिर अलीगढ २०१७ वि०।

सैफुल मलूक और बद्दीउज्जमाल —सं० राज किशोर पाण्डेय—हैदराबाद (सन् १६५५ ई०)।

स्वामी रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ —सं० हजारी प्रसाद द्विवेदी–काशी नागरी प्रचारिणी सभा (सं० २०१२ वि०)।

हकायके हिन्दी (मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी कृत) —अनु० सैयद अतहर अब्बास रिजवी काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

हिन्दी काव्य में निर्गुण सम्प्रदाय —डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल—अवध पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ।

हिन्दी की निर्गुण काव्य-धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि —डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत-साहित्य निकेतन कानपुर (सन् १६६१ ई०)।

हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान —परशुराम चतुर्वेदी—हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बम्बई (सन १६६२ ई०)।

हिन्दी को मराठी सन्तों की देन —डॉ० विनय मोहन शर्मा—बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् पटना (सन् १६५७ ई०)

हिन्दी पर फारसी का प्रभाव —अंबिका प्रसाद बाजपेयी—हि० सा० सम्मेलन प्रयाग २००३।

हिन्दी प्रेम गाथा काव्य-संग्रह —हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग।

हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य —डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ—चौधरी मान सिंह प्रकाशन, अजमेर (सन् १६६३ ई०)।

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास —डॉ० रामकुमार वर्मा-रामनारायण लाल इलाहाबाद (सन् १६४८ ई०)।

हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास भाग ४—सं० परशुराम चतुर्वेदी–नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

हिन्दी साहित्य का आदि काल —हजारी प्रसाद द्विवेदी –बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना (सन् १९५२ ई०)

हिन्दी साहित्य का इतिहास —रामचन्द्र शुक्ल—ना० प्र० सभा काशी (२००६ वि०)।

हिन्दी साहित्य की भूमिका —डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी।

हिन्दी साहित्य —श्यामसुन्दर दास।

हिन्दी साहित्य —हजारी प्रसाद द्विवेदी।

हिन्दी साहित्य कोश भाग १, २ —ज्ञान मण्डल प्रा० लि० वाराणसी (सं० २०२० वि०)।

हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका —रामपूजन तिवारी—ग्रंथ वितान, पटना (१९६० ई०)।

(ख) अंग्रेजी सहायक ग्रंथ

अलगजाली दि मिस्टिक —स्मिथ मार्गरेट लंदन (सन् १९४४ ई०)।

अवारिफुल मारिफ —एच० विल्डर फोर्स क्लार्क।

आउट लाइन ऑफ इस्लामिक कल्चर —ए० एम० शुस्त्री—बंगलौर (सन् १९५४ ई०)।

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रेलिजन एण्ड एथिक्स खंड ११, १२ —जेम्स हेस्टिंग्स।

इन्फ्लुएंस ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर —डॉ० ताराचन्द—इलाहाबाद।

इस्लामिक सूफिज्म —सरदार इक़बाल अली शाह।

ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ अरब्स —आर० ए० निकल्सन—लंदन (सन् १९६२ ई०)।

ए लिटरेरी हिस्ट्री ऑफ परसिया —एडवर्ड ब्राउन–लंदन (१९५६-६४ ई०)।

ए सिक्सटीन्थ सेंचुरी इण्डियन मिस्टिक —डॉ० डब्ल्यू० जी० आर०—लंदन (१९४७ ई०)।

ए सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डियन —डॉ० मोहम्मद यासीन।

ए हिस्ट्री ऑफ मुस्लिम फिलासफी —एम० एम० शरीफ—जर्मनी (१९६३ ई०)।

कनसेप्सन ऑफ डिविनिटी इन इस्लाम एण्ड उपनिषद्स —वाशेद हुसैन।

कनसेप्शन ऑफ तौहीद — बुरहान अहमद फारूकी।

कश्फुल महजूब —अनु० आ० ए० निकलसन ल्युजक एण्ड कम्पनी, लंदन (१९२३ ई०)।

ग्लिम्प्सेज ऑफ मिडिवियल इंडियन कल्चर —यूसुफ हुसैन।

दि आइडिया ऑफ परसनालिटी इन सूफिज्म —आ० ए० निकल्सन—लंदन (१९२३ ई०)।

दि परसियन मिस्टिक्स—अत्तार — मार्गरेट स्मिथ।

दि परसियन मिस्टिक्स—रूमी —जलालुद्दीन एफ हैंड लैण्ड डेविस।

दि पीपुल ऑफ दि मास्क —बेवेन जान्स।

दि मिस्टिकल फिलासफी ऑफ मही-यूद्दीन इब्नुल अरबी —ए० ई० अफीफी।

दि रेलिजन आफ दि सेमेटीज —डब्ल्यू० राबर्ट्सन स्मिथ।

दि लिगेसी आफ इस्लाम —सर टॉमस आर्नोल्ड एण्ड अल्फ्रेड।

दि सिक्स रेलिजन —एम० ए० मेकालिफ।

पंजाबी सूफी पोयट्स —लाजवंती रामकृष्ण।

मिडिवियल इण्डियन कल्चर — यूसुफ हुसैन।

मिडिवियल भक्ति मूवमेन्ट —डॉ० मोहन सिंह।

मिडिवियल मिस्टिसिज्म आफ इण्डिया —क्षिति मोहन सेन—लंदन (१९३३ ई०)।

मिस्टिक्स आफ इस्लाम —आर० ए० निकल्सन।

मोहम्मडनिज्म —एच० ए० आर० गिब्स—लन्दन (१९४९ ई०)।

मिस्टिसिज्म इन महाराष्ट्र —प्रो० आर० डी० रानाडे—पूना (१९३३ ई०)।

राबिया दि मिस्टिक्स —मार्गरेट स्मिथ—लन्दन (१९२८ ई०)।

लाइफ ऐण्ड टाइम्स आफ शेख फरीदुद्दीन गंजेशकर — खालिक अहमद निजामी।

लाइफ ऐण्ड वर्क्स आफ हजरत अमीर खुसरो — वाहिद मिर्जा।

वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रेलिजस सिस्टम्स —भंडारकर।

सिम्बलिज्म —पद्मा अग्रवाल।

सूफिज्म —ए० जे० आरबेरी—लन्दन (१९५६ ई०)।

सूफिज्म इट्स सेंट्स एन्ड आइंस इन इण्डिया —जान० ए० शुबद्दान—लखनऊ (१९६० ई०)।

सूफिज्म एण्ड वेदान्त —डॉ० रमा चौधरी कलकत्ता (१९४५ ई०)।

सूफीज इदरिश शाह—न्यूयार्क (१९६४ ई०)।

सूफीज मिस्टिक्स ऐण्ड योगीज आफ इण्डिया —बांके बिहारी—बम्बई (१९६२ ई०)।

स्टीज इन अर्ली मिस्टिज्म इन दि निअर ऐण्ड मिडिल ईस्ट —मार्गरेट स्मिथ—(१९३१ ई०)।

स्टडीज इन इस्लामिक मिस्टिसिज्म —आर० ए० निकल्सन।

(ग) उर्दू सहायक ग्रन्थ

उर्दू की इब्तदाई नशनुमा में सूफियाए कराम का काम —अब्दुल हक करांची (सन् १९५३ ई०)।

कदीम उर्दू भाग १, २ —हुसैन खाँ मशूद उर्दू विभाग उस्मानिया वि० वि० हैदराबाद (सन् १९६५ ई०)।

कश्फुल महजूब (हुज्वेरी) —अनु० मौ० मुहम्मद हुसीन मुनाजिर लाहौर हि० १३७४।

कुरान और तसव्वुफ —मीर वलीउद्दीन दिल्ली (१९५६ ई०)।

कुल्लियात (मुहम्मद कुली) —सैयद महियुद्दीन कादरी दानिश महल लखनऊ (१९४० ई०)।

चंदर बदन व महियार —सं० मु० अकबरुद्दीन अहमद सिद्दीकी हैदराबाद (१९५६ ई०)।

चक्कीनामा —स० डॉ० मुहियुद्दीन कादरी।

तजकिरा औलियाये लाहौर —कामिल मुहम्मद वारिस करांची (१९६३ ई०)।

तसव्वुफ और सलूक (ख्वाजा बंदानेवाज) —मीर वलीउद्दीन देहली (१९५६ ई०)।

तारीखे तसव्वुफ इस्लाम —रईस अहमद जाफरी लाहौर (१९५० ई०)।

तारीख मसायखे चिश्त —खालिक अहमद निजामी ।

तूतीनामा (गौवासी) —मीर सादात अली—रिजवी हैदराबाद भारत (हि० १३५७) ।

मनसमझावन (शाह तराब किश्ती) —डॉ० सैयद सफर—हैदराबाद (१९६४ ई०) ।

मैना सतवंती (गौवासी) —डॉ० गुलाम उमर खाँ—हैदराबाद (१९६५ ई०) ।

लैला मजनूं (अमीर खुसरो) —नवल किशोर प्रेस लखनऊ (सन् १८८० ई०) ।

शीरी खुसरो (अमीर खुसरो) —अलीगढ़ (सन् १९५७ ई०) ।

(घ) सहायक पत्र-पत्रिकायें

कल्याण (शक्ति, सन्त, साधना, योग) —विशेषांक—गीता प्रेस, गोरखपुर ।

नागरी प्रचारणी पत्रिका काशी —श्रद्धांजलि अंक सं० २०२४ एवं २००५, अंक ३, ४ ।

विश्वभारती (खंड ५, अंक ४ —हिन्दी भवन, शान्ति निकेतन बंगाल ।

हिन्दुस्तानी (अक्टूबर १९३२) —हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद ।

हिन्दी अनुशीलन प्रयाग —जनवरी १९५६, धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक १९६० ई० ।

———